हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका ४० वाँ ग्रन्थ ।

साम्यवाद ।

[विविध प्रकारके साम्यवादोंकी उत्पत्ति, विकास और प्रचारका सिलसिलेवार इतिहास ।]

लेखक,—
श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा ।

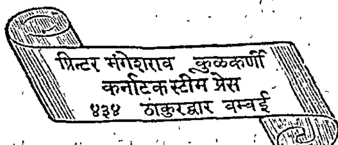
प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।

पौष संवत् १९७६ वि० ।

दिसम्बर, सन् १९१९ ई० ।

[प्रथमावृत्ति ।] [मूल्य ढाई रुपये । सजिल्दका तीन रुपये ।


प्रकाशक:-
नाथूराम प्रेमी
और
छगनमल
बाकलीवाल
मालिक
हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर
कार्यालय
हीराबाग
बम्बई


प्रिन्टर मंगेशराव कुळकर्णी
कर्नाटक स्टीम प्रेस
४३४ ठाकुरद्वार बम्बई

प्रस्तावना ।



प्रत्येक प्राणीके लिये संसार एक समरभूमि है, जहाँ प्रतिकूल परिस्थितिके अनुकूल बनानेके उद्योगमें उनको अनेक संकट और आपत्तियोंसे यावज्जीवन संग्राम करना पड़ता है। कामनाप्रेरित मनुष्यको अभावकी पूर्त्ति अथवा विपत्तिनिवारणके लिये अविरत परिश्रम करना पड़ता है। प्राप्त पदार्थोंसे अधिक पानेकी लालसा उसको सदा बनी रहती है। सांसारिक सुख मृगतृष्णाकी नाईं उसको बराबर अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। धन, बल, प्रताप, ऐश्वर्य आदिमें समान पुरुषसे बढ़नेकी और उन्नतसे बराबरी करनेकी इच्छा बनी रहती है। मानसिक तथा शारीरिक प्रवृत्तियाँ ही उसके जीवनका कारण हैं। अतएव ईर्ष्या, राग, द्वेष, असन्तोष आदि विकार मनको चंचल बनाए रखते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि मनुष्यको शान्ति प्राप्त न हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इने-गिने त्यागी, जितेन्द्रिय और आत्मनिष्ठ महात्माओंके अतिरिक्त संसारमें किसीको परम सुखी और सन्तुष्ट पाना असंभव है। शरीर व्याधिमन्दिर है, कोई देहधारी क्लेशसे तो बच नहीं सकता। परन्तु संख्यातीत मनुष्य तो मानों दुःख भोगनेके लिये ही जन्म लेते हैं। सुखसामग्री मिलना तो एक ओर रहा, जीवन-निर्वाहके आवश्यक पदार्थ भी उनके लिये अलभ्य होते हैं। अनेक यातनाएँ भोगते हुए वे किसी प्रकार अपना दुःखद जीवन व्यतीत करते हैं और अन्तमें मृत्यु ही उनको संकटमुक्त करती है।

जब व्यक्तिकी ऐसी दशा है तो व्यक्तिसमूह अर्थात् समाजकी अवस्था भी इससे निराली नहीं हो सकती । समाज अनेक व्याधियोंसे पीड़ित एक रोगीके समान है । एक व्याधिका उपाय हो नहीं पाता कि नए नए रोग उत्पन्न हो जाते हैं । समाजका समस्त क्लेशोंसे मुक्त होना असंभव है । नई नई समस्याएँ प्रतिदिन उपस्थित होती हैं । परम सुखी और सन्तुष्ट समाजकी कल्पना ही नहीं हो सकती। क्योंकि स्थितिप्रतिकूलताके कारण जबतक समाजमें हलचल तथा प्रवृत्ति है तभीतक उसमें जीवन है । अतएव पूर्ण साम्यावस्था असम्भव है और यदि प्राप्त हो जाय तो समाजका अस्तित्व ही न रहे ।

अस्तु, अनेक संस्थाओंको बनाकर मनुष्यने सभ्य बनने और सुख प्राप्त करनेका उद्योग किया है । परंतु कोई संस्था सर्वथा दोषमुक्त नहीं है । जब वे मनुष्यकी रचनायें हैं तब निर्दोष और स्थायी हो भी कैसे सकती हैं ? समय समयपर महात्माओंने अपने आदर्श चरित्र तथा अमूल्य उपदेशोंसे मानवजातिके उद्धारका यत्न किया है । परन्तु यह प्रत्यक्ष है कि उनको सफलता बहुत ही थोड़ी प्राप्त हो सकी है । कारण इसका चाहे कुछ भी हो । सभ्यताकी अवश्य उन्नति हुई, कुछ संतप्त आत्माओंको उनके उपदेशामृतसे शान्ति भी मिली; परन्तु असंख्य प्राणियोंको संकटमुक्त करनेमें वे सर्वथा अशक्य रहे । विज्ञानकी ज्योति भी व्याधियोंके उमड़ते मेघोंमें अपनी चमक मात्र दिखलाकर निस्तेज पड़ जाती है । वेगवती आपदाओंके दमन करनेमें मन्दगति विज्ञान भी असमर्थ ही रहा है । प्रतिक्षण जो आर्तनाद मानव-जातिके कंठसे निकल रहा है उसकी हृदयविदारक भीषणता किसी प्रकार कम नहीं हो रही है । सदैव नाना प्रकारके घोर प्रयत्न करनेपर भी असंख्य जनोंके लिये सुखकी मात्रा बढ़ती नहीं दिखाई देती । करुणासागर परमात्माकी प्रजा भवसागरमें पड़ी, नितान्त असहाय होकर दारुण वेदनासे व्यथित रहती है । यह क्या माया है, कैसी विचित्र लीला है !

समस्त आपदाएँ अनिवार्य्य नहीं हैं। कुछ ऐसी भी हैं जिनका उपाय समाजकी सुव्यवस्थापर निर्भर है ।

सामाजिक दुरवस्थाके कारण समाजमें सब ओर असन्तोषका साम्राज्य है । असन्तोषके बिना उन्नति नहीं हो सकती परन्तु इसीके कारण समाजमें परस्पर द्वेषभाव उत्पन्न होता है । मनुष्य स्वतंत्रताका स्वभावसे अभिलाषी है परन्तु वह देखता है कि अधिकारप्राप्त लोग अपने स्वार्थसाधनके लिये उसकी स्वतंत्रताका

अपहरण कर लेते हैं। दूसरी ओर वह यह भी देखता है कि समाजमें असह्य असमानता या विषमता व्यापक है। सब मनुष्य प्रकृतिके अटल नियमानुसार सब बातोंमें एक से नहीं हो सकते। परन्तु बहुतसी बातोंमें असमानता प्राकृतिक नियमों पर अवलम्बित नहीं है। सुव्यवस्थासे वह बहुत कुछ अंशोंमें दूर की जा सकती है। इतिहासके देखनेसे जान पड़ता है कि किसी प्रकारके अधिकार प्राप्त कर लेनेपर मनुष्य उनकी रक्षा करनेका पूरा प्रयत्न करता है। पहले तो वह यही सिद्ध करनेकी चेष्टा करता है कि वे जन्मसिद्ध हैं। इसलिये उनके विरुद्ध किसीका कुछ आपत्ति करना धर्म या न्यायसंगत नहीं है। यदि इतनेसे अधिकारोंकी रक्षा नहीं होती तो वह समाजकी भलाईका बहाना बनाकर उनको अपने हाथसे नहीं जाने देता। परन्तु अंतमें यह सब चेष्टाएँ विफल होती हैं। क्योंकि एक ओर तो उसके स्वार्थकी मात्रा बढ़ती जाती है जिससे लोगोंमें असन्तोष बढ़ता जाता है और दूसरी ओर उसके विपक्षियोंका विरोध भी प्रबल होता जाता है। यदि अधिकारप्राप्त लोग स्वभावसे स्वार्थी न हों तो जनसाधारणको आपत्ति करनेका विचार सहज उत्पन्न न हो। फिर मनुष्य इस बातको भी भली प्रकार समझता है कि जिनके पास किसी प्रकारका अधिकार वा शक्ति है वे सुगमतासे अपनो दशा विशेष उन्नत कर सकते हैं और जो इससे वञ्चित हैं उनके लिये साधारण उन्नति भी दिन प्रतिदिन कठिन होती जाती है। धनवानको धनोपार्जनकी जितनी अनुकूलता प्राप्त है उतनी निर्धनको नहीं हो सकती। एककी शक्ति सुयोगसे बराबर बढ़ती जाती है और दूसरेके लिये उसकी बराबरी करना अधिक दुःसाध्य होता जाता है। स्वातंत्र्य-प्रियता और अनीति ही असन्तोषके कारण नहीं हैं। सबसे प्रबल कारण तो यह है कि एक ओर तो समाजमें गिनेगिनाए स्वार्थपरायण, धनसम्पन्न मनुष्य हैं जो भोगविलासमें अपना जीवन बिताते हैं और इतनी सम्पत्तिके स्वामी बने बैठे हैं कि उनकी समझमें यही नहीं आता कि उसका उपयोग कैसे करें और दूसरी ओर असंख्य भाग्यहीन प्राणी हैं जिनको अंग ढकनेको वस्त्र और उदरपूर्तिके लिये अन्नतक नहीं होता। इन कारणोंसे भी असन्तोष और अशान्तिने भीषण-रूप धारण कर रक्खा है।

साम्यवाद ऐसी सामाजिक अनीतियोंका उपाय बताता है और आशा दिलाता है कि समाजकी सुव्यवस्था यदि उसके अनुसार कर दी जाय तो मनुष्यके बड़े बड़े संकटोंका अन्त हो जाय।

साम्यवादके मूल सिद्धान्तोंपर विचार करनेसे यह विदित हो जायगा कि ऐतिहासिक दृष्टिसे वे अति प्राचीन हैं। पाश्चात्य समाज-सुधारकोंने उनका प्रचार करनेमें बड़ा उद्योग किया है सही, परन्तु कोई प्रामाणिक धर्मग्रन्थ ऐसा न मिलेगा जिसमें उसके मूल सिद्धान्तों वा किसी अंग-विशेषकी चर्चा न की गई हो। कोई विरला ही उपदेशक सुधारक वा व्यवस्थापक ऐसा मिलेगा जिसने उनकी सत्यता किसी न किसी अंशमें न मानी हो वा स्थापित न की हो। समयानुसार इसकी चर्चा किसी न किसी रूपसे सब सभ्य देशोंमें अवश्य हुई है। अवस्था और सामाजिक आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंको विशेष महत्त्व दिया गया है। दया और दानकी महिमा सब धर्म गाते हैं। स्वार्थत्याग और परोपकारका उपदेश सभी देशोंमें होता है। धनके बोझसे लदे हुए मनुष्यके लिये परलोक-यात्रामें स्वर्गके द्वारतक पहुँचना सर्वकालमें दुःसाध्य बताया गया है और फिर दीन दुखियोंकी आत्मा शान्त करनेके लिये महात्माओंने उनको विशेष रूपसे संबोधन कर सदा उपदेश किया है। संसारमें गुलामीकी कुप्रथा प्राचीन कालसे चली आती थी। इस कालिमासे समाजको मुक्त करनेका गौरव साम्य-वादके मूल सिद्धान्तोंको ही प्राप्त है।

पाश्चात्य देशोंमें, विशेषकर वर्त्तमान युगमें साम्यवादका समाजपर बड़ा प्रभाव है। इसके कई कारण हैं। उनमें दो मुख्य हैं। एक तो यह है कि पाश्चात्य देशवासियोंको सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नोंमें विशेष रुचि रही है। जैसे इस देशमें धार्मिक बातोंकी ओर लोगोंका विशेष ध्यान रहा है और प्रत्येक प्रश्नको धर्मकी दृष्टिसे देखनेका भाव रहा है वैसे युरोपवासियोंको राजनीतिक और सामाजिक समस्याओंके हल करने और अधिकार प्राप्त करनेमें उत्सुकता रही है। दूसरा कारण युरोपकी औद्योगिक जागृति है। कारखानोंके बननेसे समाजकी व्यवस्था एकदम बदल गई। धनी और दरिद्र पूँजीवाले और मज-दूरोंका संबंध घनिष्ट हो गया और इससे परस्पर विषमता और भी प्रत्यक्ष होने लगी। गाँवमें जो शान्तिमय जीवन था वह शहरों और कारखानोंमें मज-दूरोंको स्वप्नवत् हो गया। कारखानोंमें काम करनेवालोंसे पशुवत् व्यवहार किया गया। इससे भी असन्तोषकी मात्रा बढ़ती गई। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि उद्योग धंदोंमें श्रमजीवियों और मजदूरोंका कितना हाथ है। उनको संघ शक्ति-का प्रभाव भी मालूम पड़ गया है। अब पूँजीवाले उनके साथ स्वार्थान्ध होकर मनमानी नहीं कर सकते। संघशक्ति और कानूनकी रक्षासे उनकी

दशा बिलकुल बदल गई है और अब उनकी उन्नतिमें कोई बड़ी रोक नहीं रही। परन्तु यह दशा सहज प्राप्त नहीं हो गई। बड़े बड़े आन्दोलनोंके बाद यह सब हो सका है। राज्यक्रान्ति और विप्लवोंने भी साम्यवादके प्रचारमें सहायता की है, बल्कि यह कहना चाहिए कि इससे प्रेरित होकर जनसाधारणने कभी कभी राज्यसिंहासनतक उलट दिए और अपने अधिकार प्राप्त करनेके लिये फ्रान्समें तो रक्तकी नदियाँ बहा दीं। साम्यवादके सिद्धान्तोंको कार्यमें परिणत करने और अपने अधिकार प्राप्त करनेके लिये इस प्रकारकी उग्र और भयानक चेष्टा प्रजाको करनी पड़ी, इसका कारण अधिकारीवर्गका घोर विरोध और निष्ठुर व्यवहार था। परन्तु साम्यवादी कितनी ही प्रकारके हो गए हैं और उनके साधन सर्वथा ऐसे नहीं होते जो न्याय और नीतिसंगत हों। घोर अराजकता और निर्दोष लोगोंका ईर्ष्याके कारण रक्तपात करना किसी सभ्य मनुष्यको सहन नहीं हो सकता और विशेषकर एक हिन्दूके लिये तो यह किसी प्रकार समर्थनयोग्य नहीं मालूम हो सकता।

भारतवर्षमें राजनीतिक और सामाजिक विप्लव इतिहासके पृष्ठोंको रक्तवर्णसे नहीं अंकित करते। साम्यवादकी शिक्षा धर्मग्रन्थोंमें विद्यमान है परन्तु क्रूर और निष्ठुर साधनोंका अवलम्बन प्रजाने कभी नहीं किया। इसके कई कारण हैं, जो विचारने योग्य हैं। धर्मका भाव यहाँ सदासे प्रबल रहा है। हिन्दू धर्मभीरु और शान्तिप्रिय हैं। पाप भावसे प्रेरित होकर हत्याके लिये एकमत होना उनके लिये इतना सुगम नहीं है। उत्तम उद्देश्यकी पूर्तिके लिये चाहे जैसे साधनोंका अवलम्बन करना उनके स्वभावके विरुद्ध रहा है। दूसरे—हिन्दू लोग कर्मके सिद्धान्तमें दृढविश्वास करते हैं। यदि समाजमें विषमता है तो उसको अच्छे या बुरे कर्मोंका फल मानते हैं। इससे असन्तोष और ईर्ष्याकी मात्रा कम हो जाती है। दरिद्री अपने पापोंका फल भोगता है और धनी अपने सत्कर्मोंका, ऐसा उनका विश्वास है। तीसरे—सांसारिक बातोंकी ओरसे उनको उदासीनता होती है और ऐसा भाव पाश्चात्य देशवासियोंके मनमें इतना प्रबल नहीं होता। युरोपवासी प्रायः संसारको सुख और आनन्दका स्थान बनानेका उत्सुकतासे प्रयत्न करते हैं। एक हिन्दू संसारयात्राको दुःखमय जानकर हतोत्साह होनेपर सहज ही कर्त्तव्यकी ओरसे उदासीन हो जाता है। चौथे वर्णव्यवस्था परस्पर स्पर्धाकी उग्रताको निर्बल कर देती है और जीवन-संग्रामकी भीषणताको कम कर देती है। कई बातें यहाँ मनुष्यके लिये जन्मसे ही निश्चित हो गई मानी जाती हैं। पाँचवें—सम्मिलित-

कुटुम्बप्रथा साम्यवादके सिद्धान्तोंका बहुत अंशोंमें अनुकरण करती है । धन विभागमें समानता हो जाती है और विभाग होनेपर सब भाई एक सी आर्थिक अवस्थासे अपना कार्य्य आरम्भ करते हैं और मिले रहनेपर समस्त सम्पत्ति प्रत्येक भाईकी है । दूरके सम्बन्धियोंका भरण-पोषण भी आवश्यकता पड़नेपर करना पड़ता है । हिन्दू समाजका यह एक नियम है और इसीकी बदौलत यहाँ अनाथालय खोलनेकी इतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी अन्य देशोंमें । छठे—रीतिरिवाजोंका यहाँ बड़ा प्रभाव है। इससे भी जीवनसंग्रामकी भीषणता कम हो जाती है । परस्पर स्पर्द्धा बहुत बलवती नहीं हो पाती । इन कारणोंसे और इनके अन्तर्गत अन्य बातोंसे भारतवर्षमें जनसाधारण इतने असन्तुष्ट नहीं हैं जितने अन्य देशोंमें उसी श्रेणीके लोग हैं । इसीसे यहाँ रक्तपात और हत्याकाण्डकी नीति लोगोंको अत्यन्त घृणित जान पड़ती है और उससे स्वाभाविक द्वेष उत्पन्न होता है । इतना ही नहीं, साम्यवादका प्रचार पाश्चात्य देशोंमें कानूनके द्वारा शासनकी सहायतासे किया जा रहा है परन्तु यहाँ समाजकी व्यवस्था इस प्रकारकी हो रही है कि बहुत अंशोंमें तो साम्यवादका उद्देश्य पहलेहीसे सिद्ध हो रहा है और बहुत सी बातोंकी आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती । फिर यह तो निश्चय समझना चाहिए कि रक्तरंजित हाथोंसे तो समाजसुधारका कोई कार्य्य यहाँ जनसाधारणसे किया ही नहीं जा सकता । यह हमारे लिये गौरवकी बात है ।

साम्यवादियोंने अपने सिद्धान्तके प्रचारमें बहुत भूलें की हैं । कभी तो असंभव बातोंको उत्साहपूर्वक संभव कर दिखानेका उन्होंने साहस किया और फिर विफल-मनोरथ हुए और कभी ऐसी ऐसी बातोंकी परीक्षा की कि जिनका वर्णन पढ़कर हँसी आती है । जो लोग केवल साम्यवादसे रामराज्य स्थापित करनेकी आशा करते हैं उनको पछताना पड़ेगा । मनुष्य-स्वभाव और प्राकृतिक असमताको ध्यानमें रखना आवश्यक है । हिंसक साधनोंसे क्षणिक सफलता भले प्राप्त हो जाय पर समाजका वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता । जैसे धनी स्वार्थी लोग अपनी शक्तिका दुरुपयोग कर सकते हैं वैसे ही संघशक्तिका दुरुपयोग साम्यवादी भी कर सकते हैं । इस बातके कहनेकी आवश्यकता इस कारणसे है कि युरोपीय महायुद्धका अन्त होते ही व्यावसायिक संसारमें उग्र नीतिका प्राधान्य देखनेमें आ रहा है और बोल्शेविज्म तो रक्तपात करनेमें नियमानुसार युद्ध कर रहा है । इसको आन्दोलन नहीं कहा जा सकता । हड़तालके

बाद महँगी और महँगीके बाद हड़ताल इस प्रकारका चक्र चल रहा है। पञ्चायतसे यह दशा सुधर सकेगी ऐसी आशा होती है।

दोषपूर्ण और आपत्तिजनक साधनोंके अतिरिक्त यह भी विचारणीय बात है कि कट्टर साम्यवादी भी धनी और प्रभावशाली व्यक्ति बननेका प्रयत्न करता है। अर्थात् जिस श्रेणीके लोगोंसे आज विपक्षी बनकर वह लड़ रहा है उन्हींकी श्रेणीमें पहुँचनेका उद्योग भी कर रहा है। जिनके हाथमें सत्ता नहीं होती वे अधिकारी वर्गके विरुद्ध आन्दोलन करते हैं और जिनको सत्ता प्राप्त हो जाती है वे फिर वर्तमान संस्थाओंके रक्षक एवं हिमायती बन जाते हैं। यह एक विचित्र बात मनुष्यस्वभावकी द्योतक है।

साम्यवादमें मानव-जातिके समस्त सन्ताप दूर कर पृथ्वीको स्वर्गतुल्य बनानेकी शक्ति हो या न हो परन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि सुधारकी सामर्थ्य जितनी इसमें है उतनी और किसी आन्दोलनमें नहीं जान पड़ती। प्रजासत्तावाद, समाजसुधार, स्त्रियोंकी स्थितिसम्बन्धी चर्चा, बालरक्षा, शिक्षा-प्रचार आदि महत्त्वके प्रश्न इसीके अन्तर्गत हैं अथवा इसकी प्रेरणासे उनमें बलका सञ्चार होता है। न्याय, स्वतंत्रता, भ्रातृभाव और सहकारिता इसके चार सुदृढ़ स्तम्भ हैं और यही साम्यवादको जगद्विजयी बनानेमें सफल होंगे।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक महाशयके प्रशंसनीय परिश्रमका परिणाम है। इस विषयका हिन्दीमें प्रथम ग्रन्थ रचनेसे वे सर्वथा धन्यवादके पात्र हैं। जिस अँगरेजी पुस्तकके आधारपर यह लिखी गई है उसका बड़ा आदर है और इसमें सन्देह नहीं कि उत्तम भाषा और रोचकताके कारण यह भी उचित स्थान प्राप्त करेगी। इसकी सर्वप्रियता, गहनविषयोंके प्रति, हिन्दी पाठकोंकी विशुद्ध अभिरुचिकी साक्षी होगी।

जीवनशंकर याज्ञिक

(एम. ए. साहित्य और अर्थशास्त्र)
एलएल. बी., प्रोफेसर हिन्दूविश्वविद्यालय और सम्पादक स्वार्थ।)

काशी विश्वविद्यालय,
पौष शुक्ला २ सं० १९७६

भूमिका ।



केवल भारतमें ही नहीं बल्कि पाश्चात्य देशोंमें भी अनेक ऐसे लोग हैं जो या तो साम्यवादके सिद्धान्तोंसे बिलकुल अपरिचित हैं और या बिना समझे बूझे साम्यवादियों तथा उनके विचारोंकी निन्दा करते हैं। वास्तवमें साम्यवादके मुख्य निन्दक थोड़ेसे ऐसे धनिक आदि ही हैं जिनके स्वार्थोंकी साम्यवादके सिद्धान्तोंके प्रचारके कारण हानि होती है; और उन्हीं धनिकोंका अनुकरण और भी बहुतसे दूसरे लोग करने लग जाते हैं। जो लोग साम्यवादके सिद्धान्तोंसे अपरिचित हैं अथवा जो उनके सिद्धान्तोंकी बिना समझे बूझे निन्दा किया करते हैं उनके लिये यह पुस्तक लिखी गई है। इस पुस्तकमें साम्यवाद-का आरम्भसे अब तकका इतिहास भी दिया गया है और उसके उद्देश तथा सिद्धान्त भी समझाए गए हैं। आशा है, पाठकगण मनमें उदार भाव रखकर यह पुस्तक पढ़ेंगे और इसमें प्रकट किए हुए विचारों पर ध्यान देंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि बहुतसे साम्यवादियोंके भाव बहुत उग्र रहे हैं और उन विचारोंके प्रचारके कारण पाश्चात्य देशोंमें समय समय पर अनेक ऐसे अनुचित कृत्य हुए हैं जिनके लिये प्रत्येक विचारवान्‌को दुःखी होना पड़ता है; परन्तु साथ ही हमें यह भी मानना पड़ेगा कि ऐसे अनुचित कृत्य करनेवाले लोग वास्तवमें समाजके एक बहुत बड़े अंशकी भीषण दुर्दशा देखकर ही विचलित और क्षुब्ध हुए थे; और इसी विचलता तथा क्षोभने उन्हें अनुचित मार्गमें लगाया था। यदि निष्पक्ष होकर विचार किया जायगा तो ज्ञात होगा कि जिन कारणोंसे सैकड़ों-हजारों आदमियोंने अनेक प्रकारके कष्ट सहना, जेल जाना और अपने प्राणतक देना मंजूर किया उन कारणोंका आधार सच्चा और वास्तविक अवश्य था; और साथ ही उन्हें इस बातकी भी पूर्ण आशा थी कि हमारे ऐसे कृत्यों और स्वार्थत्यागसे आगे चल कर समाजका बहुत बड़ा लाभ होगा।

साम्यवादका मुख्य उद्देश्य यह है कि आजकल समाजमें बलवानोंने जो सामाजिक विषमता उत्पन्न कर दी है और जिसके कारण समाजके थोड़ेसे

लोग बहुत अधिक सुखी तथा बहुतसे लोग बहुत अधिक दुःखी हो रहे हैं ह दूर कर दी जाय; समाजके हित अथवा इच्छाके सामने व्यक्तिगत हित ।थवा इच्छा प्रबल न हो सके । इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये संसारमें अब क बहुतसी व्यवस्था हो भी चुकी है; परन्तु उस व्यवस्थाके एक बहुत बड़े ंगकी पूर्तिकी ओर लोगोंका ध्यान अब तक नहीं गया था, जिसके परिणाम-वरूप आजकल संसारमें एक ओर स्वर्ग-सुख और दूसरी ओर नरक-ातना दिखाई दे रही है। इधर अनेक शताब्दियोंसे जो जो कार्रवाइयाँ ो रही हैं उनका फल यही होता है कि भूमिपरसे कृषकोंका तथा पूँजी ौर उत्पादनके दूसरे साधनोंपरसे श्रमजीवियोंका अधिकार उठता जाता है। ो थोड़ेसे लोग भूमि तथा उत्पादनके साधनोंपर अपना अधिकार कर लेते हैं ; बहुधा निकम्मे और दुराचारी हो जाते हैं; और जो बहुतसे लोग भूमि तथा त्पादनके साधनोंसे वंचित हो जाते हैं, वे सब प्रकारसे दीन-हीन और नीति-ष्ट हो जाते हैं। फल यह होता है कि थोड़ेसे आदमी तो लखपती और रोड़पती हो जाते है और बहुतसे लोगोंको भर पेट अन्न अथवा रहनेके लिये क झोपड़ी भी नहीं मिलती—शिक्षा आदिकी कौन कहे पूस-माघमें भी नके लड़कोंके लिये फटे-पुराने चीथड़ों तककी व्यवस्था नहीं हो सकती। दि यही दशा और कुछ दिनोंतक बनी रही तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं के किसी समय समाजमें ऐसा भीषण विप्लव होगा जिसकी इस समय लोग ल्पना भी नहीं कर सकते। आप प्रश्न कर सकते हैं कि जब हजारों लाखों वर्षोंसे ानव-समाज संगठित है और आजतक कभी ऐसा विप्लव नहीं हुआ तब भविष्यमें ेसा विप्लव क्योंकर सम्भव है? तो इसका उत्तर यह है कि आजसे हजार आठसौ रस पहले संसारमें जो विषमता थी वह आजकलकी विषमताका पासंग भी नहीं थी। र्तमान विषमताकी सृष्टि तो इधर ही कुछ शताब्दियोंसे, युरोपमें बड़े बड़े ारखानोंकी स्थापनाके समयसे, हुई है। और अब ये कारखाने सारे संसार-ें फैलकर दिन पर दिन इस विषमताकी वृद्धि करते जा रहे हैं। यहाँ तक कि हमारे भारतवर्षमें भी जहाँकी परिस्थिति श्रीयुत जीवनशंकरजी याज्ञिक एम० ए०, एल एल० बी० के कथनानुसार अनेक कारणोंसे उसके बहुत ही प्रतिकूल ी इस विषमताकी सृष्टि होने लग गई है। इस भीषण विप्लव, इस सामाजिक ाशसे बचनेका यदि कोई उपाय है तो वह केवल साम्यवादके सिद्धान्तोंके अनु-सार समाजका संगठन करना ही हैं। यही कारण है कि साम्यवादी इस बातपर

बहुत जोर देते हैं कि जमीन और पूँजी पर से व्यक्तिगत अधिकार उठा कर उन्हें समाजके अधिकारमें कर दिया जाय जिसमें सुख और सम्पत्ति आदिका सारे समाजमें समान रूपसे बटँवारा हो जाय। यह मुख्य उद्देश्य है जिसके सम्बन्धमें समस्त साम्यवादी सहमत हैं। हाँ, इस उद्देश्यकी सिद्धिके उपायोंके सम्बन्धमें उनमें अवश्य मतभेद है। परन्तु फिर भी आशा होती है कि कुछ समयमें उद्देश्यसिद्धिका कोई ऐसा उपाय भी निकल आवेगा जिस पर सब साम्यवादी सहमत होंगे। यहाँ इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक देश और समाजकी परिस्थितिके भेदसे उनमें साम्यवादके उद्देशोंकी सिद्धिके उपाय भी एक दूसरेसे कुछ भिन्न होंगे।

यद्यपि साम्यवादका मुख्य आधार केवल आर्थिक है परन्तु समाजके राजनीतिक, औद्योगिक, सामाजिक तथा नैतिक आधारोंका भी उसके साथ ओत-प्रोत सम्बन्ध है। बिना राजनीतिक अधिकारोंके इतने आधारोंमें कोई भारी परिवर्तन करना असम्भव है, इसीलिये साम्यवादी लोग शासनसंस्थाओंको भी लोकमतवादके आधार पर संगठित करके समाजके अधिकारमें कर देना चाहते हैं। अथवा यों कहा जा सकता है कि लोकमतानुसारी अथवा प्रजातंत्रशासनमें सामाजिक विषमताके कारण जिस मुख्य सुव्यवस्थित आर्थिक अंगका अभाव है, उसीकी पूर्ति साम्यवादका मुख्य उद्देश्य है। जो धनवान् और सबल अब तक केवल निर्धनों और दुर्बलोंको दबाने और उनके धनका अपहरण करनेमें ही अपनी सारी लियाकत खर्च किया करते थे वे ही धनवान् और सबल प्रजातंत्रशासनके इस अंगकी पूर्ति हो जाने पर उन निर्धनों तथा दुर्बलोंको सब प्रकारसे सुखी और उन्नत करनेके प्रयत्नमें लग जायँगे। साम्यवादियोंको यह भी आशा है कि साम्यवादी राज्यमें आर्थिक प्रतियोगिताके भावके समूल नष्ट हो जाने पर शिल्प और कला आदिकी यथेष्ट उन्नति होगी; क्योंकि उस समय किसीको केवल सस्ती चीजें ही तैयार करनेकी चिन्ता न रह जायगी। और सबसे बढ़कर बात यह होगी कि समाजका प्रत्येक व्यक्ति सब प्रकारसे स्वतंत्र सुखी और सम्पन्न हो जायगा। साम्यवादकी अनेक बातें इतनी युक्तियुक्त और सामाजिक विकासके नियमोंके अनुकूल हैं कि बहुतसे अंशोंमें यही कहना पड़ता है कि साम्यवाद समाजके भावी स्वरूपके सम्बन्धमें केवल भविष्यद्वाणी कर रहा है।

अन्तमें मैं उन ग्रन्थोंके लेखकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिनकी सहायतासे मैं यह पुस्तक लिखनेमें समर्थ हुआ हूँ।

इस पुस्तकका मुख्य आधार थामस कर्कपका A history of Socialis नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जो साम्यवादके इतिहासोंमें सर्वोत्तम समझा जाता है इसके अतिरिक्त मुझे जेन० टी० स्टार्डट लिखित The New Socialisr बैरन पी० ग्रेवेनिज लिखित from Autocracy to Bolshevism; आ रैन्सम लिखित Six weeks in Russia in 1919 और बंकिमबाबू लिखे हुए 'साम्य' नामक निबन्धसे भी विशेष सहायता मिली है जिसके लि मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। जिन अनेक पत्रों और पत्रिकाओंमें प्रक शित फुटकर लेखोंसे मैंने यत्र तत्र थोड़ी बहुत सहायता ली है उनके सम्पाद और लेखकोंका भी मैं ऋणी हूँ। इनमें मेरे प्रिय मित्र पण्डित लक्ष्मण नाराय गर्दे (वर्तमान सम्पादक 'दैनिक भारतमित्र' कलकत्ता) विशेष उल्लेखयोग हैं, भारतमित्रमें प्रकाशित जिनके लिखे हुए बोल्शेविज्मसम्बन्धी अनेक उ योगी और विचारपूर्ण लेखोंसे मुझे अपूर्व सहायता मिली है। और सब अन्तमें मैं अपने सहयोगी तथा होनहार युवक लेखक बाबू कालिकाप्रसादजी को धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता जिनसे मुझे इस पुस्तकके तेरहवें औ पन्द्रहवें प्रकरणके लिखनेमें अमूल्य सहायता मिली है।

अन्तमें इतना और निवेदन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि अने कारणोंसे यह पुस्तक बहुत ही जल्दीमें लिखी और छापी गई है; जिसके कार इसमें स्थान स्थानपर कई प्रकारकी भूलें रह गई हैं। आशा है, विज्ञ पाठक उन् यथासाध्य स्वयं सुधार लेंगे। आगामी संस्करणमें इन भूलोंके सुधारके अति रिक्त और कुछ परिवर्द्धन तथा परिवर्तन करनेका भी मेरा विचार है। दूस बात यह है कि इस पुस्तकमें जिस सिद्धान्तका वर्णन किया गया है उसका ना यद्यपि 'साम्यवाद' की अपेक्षा 'समष्टिवाद' ही अधिक उपयुक्त तथा युक्ति युक्त है परन्तु आरम्भमें कुछ कारणोंसे इसका नाम साम्यवाद ही रक्खा गया था जिसका निर्वाह विवश होकर अन्ततक करना पड़ा है। यदि सुयोग्य समालो चकों तथा पाठकोंकी सम्मति होगी तो आगामी संस्करणमें 'साम्यवाद'के स्थानपर 'समष्टिवाद' ही कर दिया जायगा।

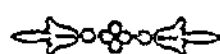
काशी।
१ पौष १९७६

—रामचन्द्र वर्म्मा।

विषय-सूची।

पृ० सं०।

साम्यवाद ।



१ प्राचीन साम्यवाद ।



इस संसारमें एक बात सदा ही सुननेमें आती है। लोग प्रायः कहा करते हैं कि—"अमुक व्यक्ति बहुत बड़ा आदमी है—अमुक व्यक्ति छोटा या गरीब आदमी है।" लेकिन यह केवल कहनेकी ही बात नहीं है। हमें लोगोंकी इस पारस्परिक विषमता या अन्तरका जो ज्ञान होता है मनुष्य-समाजमें वह ज्ञान कार्य करनेकी एक प्रधान प्रवृत्तिका मूल या कारण होता है। अर्थात् हममें कार्य करनेकी जो इच्छा या प्रवृत्ति होती है उसपर इस वैषम्यज्ञानका—बड़े छोटेके इस अन्तरके ज्ञानका—बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। लोगोंके साथ इसी बड़े और छोटेके अन्तरका ध्यान रखकर व्यवहार किया जाता है। अमुक व्यक्ति बड़ा आदमी है, उसे सारे संसारका घी, दूध और मक्खन उपहारस्वरूप दो; भाषा-सागरसे अच्छे अच्छे शब्द-रत्न निकाल कर और उनका हार बनाकर उसे पहनाओ, क्योंकि वह बड़ा आदमी है। यदि रास्तेमें कोई छोटा मोटा काँटा पड़ा हो तो उसे यत्नपूर्वक उठाकर दूर फेंक दो, क्योंकि अमुक बड़ा आदमी आ रहा है; कहीं ऐसा न हो कि यह काँटा उसके पैरमें चुभ जाय। इस जीवनमार्गका छायायुक्त शीतल

पार्श्व छोड़कर धूपमें खड़े हो जाओ, क्योंकि बड़ा आदमी आ रहा है। संसारमें जितने बढ़िया बढ़िया फूल हों उन सबको चुनकर सेजपर बिछाओ, क्योंकि वह बड़े आदमीके सोनेकी सेज है। वह आकर इसपर सोएगा। और तुम? तुम बड़े आदमी नहीं हो; इसलिये तुम यहाँसे हट जाओ, इस संसारकी कोई अच्छी चीज तुम्हारे लिये नहीं है। यदि तुम्हारे लिये कुछ है तो केवल यही लपलपाती हुई बेंत है। बड़े आदमियोंके मनोविनोदके लिये बीच बीचमें यही बेंत तुम्हारी पीठपर पड़ा करेगी।

संसारमें बड़े आदमी और छोटे आदमीका यह अन्तर क्यों है? राम बड़ा आदमी क्यों है और कृष्ण छोटा आदमी क्यों है? यह बात कुछ लोग एक प्रकारसे समझा देते हैं। कृष्ण चोरी करना नहीं जानता, किसीको ठगना नहीं जानता, धोखा देकर किसीका सर्वस्व लेना नहीं जानता, इसलिये वह छोटा आदमी है। रामने चोरी करके, लोगोंको ठगकर, धोखा देकर बहुतसा धन एकत्र किया है, इसलिये वह बड़ा आदमी है। अथवा बेचारा राम स्वयं तो बहुत ही सीधासादा और भला आदमी है। लेकिन उसके परदादा चोरी करने और लोगोंको धोखा देनेमें बड़े निपुण थे, उन्होंने अपने मालिकका सर्वस्व हरण करके बहुत बड़ी सम्पत्ति प्राप्त की थी। राम एक बड़े भारी धोखेबाजका परपोता है, इसलिये वह बड़ा आदमी है। कृष्णके दादा मेहनत मजदूरी करके किसी तरह अपना पेट पालते थे इसलिये कृष्ण छोटा आदमी है। अथवा रामने किसी बड़ेभारी जालिएकी कन्याके साथ विवाह किया था इसलिये वह बड़ा आदमी है, और कृष्णका विवाह एक सज्जन परन्तु दरिद्र गृहस्थकी कन्यासे हुआ था इसलिये वह छोटा आदमी है।

अथवा रामने किसी बड़े भारी राजा महाराजा या नवाबके यहाँ रहकर उसे खूब सलाम करके, उसकी गालियाँ खाकर, शायद लात खाकर अथवा इससे भी कोई और बड़ा काम करके उसे प्रसन्न किया है; और उसकी खूब खुशामद करके बेइज्जती सहकर बहुतसा धन एकत्र किया है। हम केवल भारतीय चापलूसोंका ही जिक्र नहीं करते, संसारके सभी देशोंमें इस प्रकारके चापलूस और खुशामदी टट्टू होते हैं। वे अपने मालिकके सामने तो तुच्छसे तुच्छ जीव बने रहते हैं लेकिन दूसरोंके लिये ये धर्मावतार बन जाते हैं। तुम चाहे कोई हो, इन्हें खूब झुककर दोनों हाथोंसे सलाम करो, क्योंकि ये धर्मावतार हैं। तुम कह सकते हो कि इन्हें धर्म और अधर्मका ज्ञान तो है ही नहीं, इनकी आसक्ति तो अधर्ममें ही है। लेकिन इससे क्या होता है? उनकी आसक्ति अधर्ममें ही हुआ करे लेकिन राजा साहबकी कृपासे तो वे धर्मावतार बन गए हैं! नवाब साहबकी मेहरबानीसे तो वे 'हुजूर' और 'सरकार' कहलानेके काबिल हो गए हैं। तुम कहोगे कि वह बड़ा आदमी है तो क्या हुआ परन्तु है बड़ा भारी मूर्ख, और हम इसके मुकाबलेमें बड़े भारी विद्वान् और पण्डित हैं, सभी शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। नहीं, इन सब बातोंको जाने दो, ये बड़े आदमी हैं; आओ इन्हें आदरपूर्वक झुककर प्रणाम करें।

यह तो एक प्रकारके बड़े आदमियोंकी बात हुई। संसारमें इनके अतिरिक्त एक और प्रकारके बड़े आदमी हुआ करते हैं। गोपाल पाँडे सब लोगोंसे यही कह कहकर दोचार पैसे माँग लेते हैं कि मुझे अपनी कन्याका विवाह करना है, मुझे कन्यादानके लिये कुछ धन चाहिए। लेकिन इतनेपर भी गोपाल पाँडे बड़े आदमी हैं। क्योंकि गोपालका जन्म एक अच्छे और उच्च ब्राह्मण कुलमें हुआ है। तुम चाहे कितने

ही बड़े आदमी क्यों न हो लेकिन तुम शूद्र हो, इसलिये तुम्हें उनके चरणोंकी धूल लेकर अपने सिरपर चढ़ानी होगी । दो पहरके समय पाँडेजी कहीं नाराज होकर चले न जायँ, उन्हे खूब अच्छी तरह भोजन कराओ और जो कुछ माँगें सो देकर बिदा करो । चाहे गोपाल पाँडे कितने ही दरिद्र, मूर्ख, नराधम और पापिष्ट क्यों न हों लेकिन फिर भी वे बड़े आदमी हैं ।

सारा संसार इसी प्रकारकी विपमतासे परिपूर्ण है । यह विपमता सभी विषयोंमें होती है । रामने इस देशमें जन्म न लेकर उस देशमें जन्म लिया है, यह भी विपमताका एक कारण हो गया । रामने ललिताके गर्भसे जन्म न लेकर कमलाके गर्भसे जन्म लिया, यह भी विपमताका एक कारण हो गया । तुम्हारी अपेक्षा मैं बात-चीत करनेमें बहुत होशियार हूँ, अथवा मुझमें अधिक शक्ति है, अथवा मैं लोगोंको ठगना खूब जानता हूँ, इसलिये मैं तुमसे बड़ा हूँ । इस प्रकारकी सभी बातोंसे सामाजिक विपमता होती है । इसीलिये कहना पड़ता है कि यह संसार विपमतासे परिपूर्ण है ।

और फिर संसारमें विपमताका होना ही उचित है । स्वयं प्रकृतिने ही अनेक प्रकारकी विपमताओंकी रचना करके हम लोगोंको इस संसारमें भेजा है । तुम्हारी अपेक्षा मेरे हाथ पैर ज्यादा मोटे और मजबूत हैं; तुम्हारी अपेक्षा मेरे हाथोंमें अधिक बल है; इसलिये मैं तुम्हें एक ही घूँसेमें जमीनपर गिराकर तुम्हारी अपेक्षा अधिक बड़ा आदमी बन जाता हूँ । राधाकी अपेक्षा कमला अधिक सुन्दरी है, इसलिये कमलाका विवाह तो एक बहुत बड़े जमींदारके साथ होता है और वह बड़े सुखसे रहती है, लेकिन बेचारी राधा मेहनत मजदूरी करती है । रामके मस्तिष्ककी अपेक्षा कृष्णका मस्तिष्क तौलमें दस

औन्स भारी है, इसलिये संसारमें कृष्णकी तो बहुत प्रतिष्ठा होती है और रामके साथ लोग घृणा करते हैं।

इसलिये वैपम्य ही सांसारिक नियम है। संसारके सभी पदार्थोंमें विषमता होती है। मनुष्य मनुष्यमें प्राकृतिक विषमता है। जिस प्रकार लोगोंमें प्राकृतिक विषमता—ऐसी विषमता जो प्राकृतिक नियमोंके अनुसार हो—है, उसी प्रकार उनमें अप्राकृतिक विषमता भी है। ब्राह्मण और शूद्रमें जो विषमता है वह अप्राकृतिक है। यह बात किसी प्राकृतिक नियमके अनुसार नहीं है कि ब्राह्मणकी हत्या करनेसे तो बहुत बड़ा पातक हो और शूद्रकी हत्या करनेसे केवल एक छोटासा पाप हो। ब्राह्मणकी हत्या न की जाय, वह अवध्य हो। लेकिन फिर शूद्रकी हत्या क्यों की जाय? वह वध्य क्यों हो? शूद्र ही दाता और केवल ब्राह्मण ही गृहीता क्यों हो? इसके बदलेमें यह नियम क्यों न रहे कि जो सम्पन्न और दान करनेमें समर्थ हो वही दाता हो और जो दरिद्र हो, जिसे दूसरोंकी सहायताकी आवश्यकता हो वही गृहीता हो?

भारतवासियों और गोरोंमें भी इसी प्रकारकी एक और अप्राकृतिक विपमता है। लेकिन यहाँ उसके विषयमें कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता।

सबसे बढ़कर विपमता वह है जो धन या सम्पत्तिके कारण होती है। इसके कारण कहीं कहीं ऐसा होता है कि दस पाँच आदमियोंको तो रुपए रखनेकी जगह नहीं मिलती और लाखों आदमियोंको आधा पेट भी अन्न न मिलनेके कारण अनेक प्रकारके रोग हो जाते हैं।

जिन सब कारणोंसे किसी समाजकी उन्नति रुकती अथवा अवनति होती है उन सब कारणोंमेंसे अप्राकृतिक विषमताकी अधिकता ही प्रधान कारण है। इतने दिनोंसे हमारे भारतवर्षकी जो इतनी दुर्दशा हो रही है उसका मुख्य कारण यही है कि हमारे यहाँ सामाजिक विषमता बहुत अधिक है।

इस सामाजिक विषमताकी अधिकता केवल हमारे भारतवर्षमें ही नहीं है बल्कि सारा संसार ही विषमतासे भरा हुआ है। सभी देशोंमें इस विषमताका जाल फैला हुआ है। उन्नतिशील समाजमें लोगोंने परस्पर मिल जुलकर इस विषमताको दूर किया है। जिन जिन देशोंने यह विषमता दूर की है उन उन देशोंकी उन्नति भी यथेष्ट हुई है। प्राचीन रोमराज्य इसका बहुत बड़ा उदाहरण है। आरम्भमें वहाँ इसी प्रकारकी सामाजिक विषमता थी। वहाँके लोगोंमें दो वर्ग थे। एक वर्ग तो उन लोगोंका था जिनका जन्म बहुत उच्च और प्राचीन कुलमें हुआ था। इस वर्गके लोग पेट्रीशियन (Patrician) कहलाते थे। दूसरा वर्ग साधारण लोगोंका था जो प्लीबियन (Plebeian) कहलाते थे। लेकिन आगे चलकर धीरे धीरे यह सामाजिक विषमता दूर हो गई थी और सब लोग मिलजुलकर एक हो गए थे। इसके कुछ दिनों बाद वहाँ नागरिकता और अनागरिकताकी एक और विषमता खड़ी हो गई थी; लेकिन वहाँके सुयोग्य शासकोंकी उत्कृष्ट राजनीति-कुशलताके कारण वह विषमता भी दूर हो गई थी। यही कारण था कि रोमन लोगोंका राज्य थोड़े ही समयमें बहुत दूर दूर तक फैल गया था।

कुछ दिनों पहले अमेरिकामें भी इसी प्रकारकी विषमता थी। वहाँके गोरे निवासियोंका एक अलग वर्ग था और दूसरे वर्गमें उनके क्रीत दास अफ्रीकाके हब्शी थे। उन हब्शियोंको इस दासत्वसे

सदाके लिये मुक्त करके इस सामाजिक विषमताको दूर करनेके लिये वहाँ बहुत भीषण आभ्यन्तरिक युद्ध हुआ था। जिस प्रकार अस्त्र-चिकित्सा करके शरीरका रोग या विष दूर किया जाता है उसी प्रकार इस युद्धके द्वारा वहाँका सामाजिक विष दूर किया गया था और समाजमें समताका भाव दृढ़तापूर्वक स्थापित किया गया था। फ्रान्सके पहले और दूसरे विप्लवका भी केवल यही उद्देश था कि सामाजिक विषमता दूर करके समानता स्थापित की जाय।

लेकिन सभी देशोंमें इस प्रकार आभ्यन्तरिक युद्धों अथवा विप्लवोंकी आवश्यकता नहीं हुई—सभी जगह इस प्रकारकी कठोर चिकित्सासे काम लेनेकी नौबत नहीं आई। अधिकांश देशोंमें केवल उपदेशकोंके उपदेशोंके द्वारा ही साम्यकी स्थापना और आदर हुआ है। बात यह है कि अस्त्रबलकी अपेक्षा वाक्यबलसे कहीं अधिक कार्य्य निकलता है और युद्धकी अपेक्षा शिक्षाका कहीं अधिक और उत्तम परिणाम होता है। ईसाई और बौद्ध धर्म्मका प्रचार केवल उपदेशके द्वारा ही किया गया था; पर इस्लाम धर्मके प्रचारके लिये शस्त्रोंसे सहायता ली गई थी। लेकिन फिर भी संसारमें मुसलमानोंकी संख्या बहुत ही कम है और बौद्ध तथा ईसाई धर्मको माननेवाले लोग बहुत अधिक हैं।

संसारमें तीन बार तीन बहुत ही आश्चर्यजनक घटनाएँ हुई हैं। तीन भिन्न भिन्न देशोंमें, बहुत बहुत दिनोंके अन्तर पर, तीन महात्माओंने जन्म लेकर इस संसारमें एक मंगलमय महामंत्रका प्रचार किया है। उस मंत्रका मुख्य तात्पर्य केवल यही है कि सभी मनुष्य एक समान हैं; उनमें न कोई बड़ा है और न कोई छोटा। उन तीनों महात्माओंने इसी स्वर्गीय परम पुनीत मंत्रका सारे संसारमें प्रचार कर-

के सभ्यता और उन्नतिका बीज बोया था। जब जब मनुष्यजातिकी घोर दुर्दशा हुई, जब जब वह अवनतिके मार्गपर आगे बढ़ने लगी तब तब एक न एक महात्माने जन्म लेकर सब लोगोंको यही समझाया कि—"तुम सब लोग समान हो, परस्पर समान व्यवहार करो।" इस उपदेशको सुनते ही और इसके अनुसार कार्य करते ही मनुष्य-जातिकी दुर्दशाका अन्त हो गया और उसके अच्छे दिन आने लग गए। अवनति रुक गई और उन्नति होने लगी।

इन तीनों महात्माओंमेंसे सबसे पहले महात्मा बौद्ध धर्मका प्रचार करनेवाले हमारे शाक्यसिंह बुद्धदेव थे। जिन दिनों वैदिक धर्मके कारण उत्पन्न हुई विपमतासे सारा भारतवर्ष अनेक प्रकारके कष्ट भोग रहा था उन दिनों महात्मा बुद्धदेवने ही जन्म लेकर भारतवर्षका उद्धार किया था। संसारमें आजतक अनेक प्रकारकी सामाजिक विपमताएँ उत्पन्न हुई हैं। लेकिन प्राचीन कालमें हमारे भारतवर्षमें इस वर्ण-व्यवस्थाके कारण जैसी भीपण विपमता उत्पन्न हुई थी वैसी भीपण विषमता आजतक संसारके किसी समाजमें हुई ही नहीं। उन दिनों हमारे यहाँ यह नियम था कि और वर्णोंके लोग तो अनेक प्रकारके अपराध करनेपर मार डाले जा सकते थे, लेकिन ब्राह्मण चाहे लाख अपराध करता पर फिर भी उसे कभी प्राणदण्ड नहीं दिया जा सकता था। ब्राह्मण चाहे आपका सब प्रकारका अनिष्ट कर डालते, पर आप उनका किसी प्रकारका अनिष्ट नहीं कर सकते थे। लोगोंको ब्राह्मणोंके चरणोंकी धूल अपने माथेमें लगानी पड़ती थी। शूद्र लोग बिलकुल अस्पृश्य माने जाते थे और उनका छूआ हुआ जलतक काममें न लाया जा सकता था। शूद्रोंको संसारका किसी प्रकारका सुख प्राप्त करनेका अधिकार नहीं था और वे केवल नीच वृत्तिको छोड़कर और कोई काम कर ही न

सकते थे। जीवनकी सबसे बढ़कर शोभा विद्यासे ही होती है। विद्या मानों जीवनका जीवन है। लेकिन शूद्रोंको वह विद्या प्राप्त करनेका भी कोई अधिकार नहीं था। सारी विद्याएँ शास्त्रोंमें बन्द थीं और उन लोगोंको आँखोंसे शास्त्र देखने तकका अधिकार नहीं था। स्वयं उनकी पारलौकिक सद्गति भी ब्राह्मणोंके ही हाथमें थी। उन दिनों माना जाता था कि ब्राह्मण जो कुछ कह दे यदि वही काम किया जाय तब तो मनुष्यकी सद्गति होती है और नहीं तो नहीं होती। ब्राह्मण जो कुछ कराना चाहते थे वही काम परलोकको सुधारनेवाला माना जाता था और उसके विपरीत जो कुछ होता था वह सब परलोकको बिगाड़नेवाला माना जाता था। ब्राह्मणको दान देनेसे ही मनुष्यका परलोक सुधरता था। लेकिन शूद्र यहाँतक निकृष्ट समझे जाते थे कि जो ब्राह्मण शूद्रका दान ग्रहण करता था वह ब्राह्मण ही पतित हो जाता था। शूद्रोंकी सद्गति केवल ब्राह्मणोंकी सेवा करनेसे होती थी। कोई यह नहीं सोचता था कि शूद्र भी मनुष्य ही हैं और ब्राह्मण भी मनुष्य ही। प्राचीन युरोपमें कैदियों और शासकोंमें जो विषमता होती थी वह भी इतनी भयानक नहीं थी। यह दुर्दशा, यह सामाजिक विषमता अब भी बहुत कुछ बनी हुई है। और इसीको देखनेसे प्राचीन भीषण विषमताका बहुत कुछ अनुमान किया जा सकता है।

इसी भीषण वर्णभेदकी विषमताके कारण भारतवर्षकी अवनति होने लगी। संसारकी समस्त अवनतियोंका मूल ज्ञानकी उन्नति है। पशुओंकी तरह अपनी इन्द्रियोंकी तृप्ति कर लेनेके अतिरिक्त संसारमें आप और कोई ऐसा एक भी सुख नहीं बतला सकते जिसका मूल ज्ञानकी उन्नति न हो। लेकिन इस वर्णसम्बन्धी विषमताके कारण

ज्ञानकी उन्नतिका मार्ग रुक गया। शूद्र लोग विद्या और ज्ञानकी चर्चा करनेके अधिकारी ही न थे। केवल ब्राह्मणोंको ही उसका अधिकार था। देशमें ब्राह्मणोंकी संख्या थोड़ी ही थी और दूसरे वर्णके लोगोंकी संख्या अधिक थी। इसलिये अधिकांश लोग मूर्ख हो गये। उस समयकी अवस्थाका ज्ञान एक कल्पित उदाहरणसे किया जा सकता है। यदि प्राचीन कालमें इंग्लैण्डमें इस प्रकारका कोई नियम होता कि रसेल, कैवेण्डिश, स्टैनले आदि कुछ विशिष्ट वंशोंके लोगोंको छोड़कर और कोई व्यक्ति विद्या नहीं पढ़ सकता तो आज हमें इंग्लैण्डकी जो सभ्यता दिखलाई पड़ती है वह कहाँसे आती? कवियों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकोंको जाने दीजिए, वाट, स्टीविन्सन और आर्कराइट कैसे उत्पन्न होते? भारतवर्षमें प्रायः यही बात हुई थी; लेकिन केवल इतना ही होकर नहीं रह गया। विद्याध्ययनका जो अधिकार ब्राह्मणोंने केवल अपने लिये ही रख लिया था उसका भी इस वर्णभेदके दोषके कारण बहुत ही बुरा परिणाम होने लगा। ब्राह्मणोंने पहले तो अपने आपको सब वर्णोंका स्वामी या प्रभु बना लिया और तब अपने उस प्रभुत्वकी रक्षाके लिये विद्याको मानों पहरेदार बनाकर नियुक्त कर दिया। वे उसी रूपमें और उसी प्रकार विद्या और ज्ञानकी आलोचना करने लगे जिस प्रकारकी आलोचनासे उनका प्रभुत्व बना रह सकता, उस प्रभुत्वमें और भी वृद्धि होती और दूसरे वर्णोंके लोग और भी दबकर केवल ब्राह्मणोंके चरणोंकी धूलको ही अपने इस सांसारिक जीवनका सार मानने लगते। वे लोग खूब यज्ञ-यागकी सृष्टि करने लगे, मंत्र, दान, दक्षिणा और प्रायश्चित्त बढ़ाने लगे, देवताओंकी महिमासे भरे हुए मिथ्या इतिहासों और कथाओंकी कल्पना करके उन्हें बढ़िया और मधुर आर्यभाषामें प्रस्तुत करने

लगे। कहने लगे कि दर्शन, विज्ञान और साहित्य आदिकी कोई आवश्यकता नहीं है; उन सबकी ओर ध्यान न दो; अमुक 'ब्राह्मण' का कलेवर बढ़ाओ, नये उपनिषद्का प्रचार करो। ब्राह्मणोंपर ब्राह्मण, उपनिषदोंपर उपनिषद्, आरण्यकोंपर आरण्यक, सूत्रोंपर सूत्र, तब उनके ऊपर भाष्य, फिर भाष्यकी टीका और तब उस टीकाकी भी टीका होने लगी। अनन्त प्रकारके भाष्य और टीकाएँ बनने लगीं। कदाचित् वे लोग वैदिक धर्मके ग्रन्थोंसे ही सारा भारत भर देना चाहते थे और विद्याका नाम ही देशसे मिटा देना चाहते थे।

इन सब बातोंसे लोग बहुत ही दुखी, व्यस्त और शंकित हो गये। वे सोचने लगे कि यहाँ तो सभी कामोंमें पाप बतलाया जाता है और सभी पापोंका प्रायश्चित्त बहुत कठिन है। क्या ब्राह्मणोंके अतिरिक्त दूसरे वर्णके लोगोंकी पापसे मुक्ति ही नहीं हो सकती? क्या पारलौकिक सुख इतना ही दुर्लभ है? अब हम लोग कहाँ जायँ? क्या करें? धर्मशास्त्रोंकी इस पीड़ासे हमारा कौन उद्धार करेगा? सभी सुखोंको रोकनेवाले ब्राह्मणोंके हाथोंसे हमें कौन बचावेगा? भारतवासियोंको कौन जीवनदान देगा?

उस समय विशुद्धात्मा शाक्यसिंह अपनी अनन्त कालतक स्थायी रहनेवाली महिमाका विस्तार करते हुए भारतके आकाशमें उदित हुए और दशों दिशाओंको गुँजादेनेवाली दिव्यध्वनिमें बोले—"मैं तुम लोगोंका इस कष्टसे उद्धार करूँगा। तुम लोगोंके उद्धारका बीजमंत्र मैं बतला देता हूँ। तुम लोग उसी मंत्रकी साधना करो। तुम सब लोग समान हो, ब्राह्मण और शूद्र दोनों बराबर हैं, सभी मनुष्य एक दूसरेके बराबर हैं। सभी लोग पापी हैं और सबका उद्धार केवल सदाचरणसे होगा। वर्णभेद झूठा है। न कोई राजा है और न कोई प्रजा

है। यह सब मिथ्या है; केवल धर्म ही सत्य है। तुम सब लोग मिथ्या बातोंको छोड़कर सत्य धर्मका पालन करो।"

वैषम्य-पीड़ित भारतवर्ष यह महामंत्र सुनकर हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक विचलित हो गया। भारतवर्षमें बौद्धधर्म प्रचलित हुआ और वर्णभेद बहुतसे अंशोंमें नष्ट हो गया। प्रायः एक हजार वर्षतक भारतवर्षमें बौद्धधर्म प्रचलित रहा। पुरातत्त्ववेत्ता लोग जानते हैं कि वही एक हजार वर्षका समय भारतके लिये सच्चे सुखका समय था। उन्हीं दिनोंके सम्राट् हिमालयसे लेकर गोदावरीतक सचमुच एकच्छत्र शासन करते थे। अशोक, चन्द्रगुप्त, शिलादित्य आदिका उन्हीं दिनोंमें अभ्युदय हुआ था। उन्हीं दिनों तक्षशिलासे लेकर ताम्रलिप्तितक लाखों आदमियोंकी बस्तीके सैकड़ों और हजारों समृद्ध नगरोंसे सारा भारत भर गया था। उन्हीं दिनोंके भारतवर्षका गौरव पश्चिममें रोमतक और पूर्वमें चीनतक पहुँचा था; और उन दोनों देशोंके राजाओंने भारतीय सम्राटोंके साथ राजनैतिक मित्रता और सम्बन्ध स्थापित किया था। उन्हीं दिनोंमें भारतीय धर्मप्रचारकोंने धर्मप्रचारके लिये बड़ी बड़ी यात्राएँ करके प्रायः आधे एशियाको भारतीय धर्ममें दीक्षित किया था। इस बातके भी अनेक प्रमाण हैं कि शिल्प और व्यवसाय आदिकी भी उन्हीं दिनों विशेष उन्नति हुई थी। जान पड़ता है कि दर्शनशास्त्रका विशेष अनुशीलन भी बौद्धधर्मके उदयके साथ ही साथ हुआ था। यद्यपि विज्ञानसाहित्यके विशेष अनुशीलनका समय निश्चित करना कठिन है, तथापि इस बातके प्रमाण दिए जा सकते हैं कि शाक्यसिंहके द्वारा जो धार्मिक विप्लव हुआ था उसके साथ विज्ञान और साहित्य आदिके अनुशीलनका विशेष सम्बन्ध है।

साम्यके दूसरे अवतार महात्मा ईसा मसीह थे। जिस समय ईसाई धर्मके प्रचारका आरम्भ हुआ था उस समय युरोप और पश्चिमी एशिया रोमन राज्यके अधीन था। रोम राज्यकी उन्नति प्रायः चरम सीमातक पहुँच चुकी थी। उस समय रोम राज्यमें युद्धविशारद वीरोंका जन्म होना बन्द हो गया था और उसके बदलेमें वह बड़े बड़े धनवान् इन्द्रियलोलुपोंका निवासस्थान बन गया था। पहले जो लोग केवल रणक्षेत्रमें ही अपना सारा समय बिताकर प्रसन्न होते थे वे लोग अब केवल खाने पीने, दासियोंके साथ संसर्ग करने और रंगभूमियों पर नकली लड़ाइयाँ लड़ने और देखनेमें ही आनंद प्राप्त करने लगे थे। जिस देशप्रेमके कारण रोमका नाम सारे संसारमें प्रसिद्ध हुआ था वह देशप्रेम अब अन्तर्हित हो गया था। जिस सम-सामाजिकताके लिये हमने रोमकी प्रशंसा की है और जिस सम-सामाजिकताके कारण उसका राज्य प्रायः सारे संसारमें प्रसिद्ध हो गया था वह सम-सामाजिकता धीरे धीरे नष्ट होने लगी। हमने पहले रोम नगरके विषयमें कहा था, अब हम रोम-साम्राज्यके विषयमें कुछ बातें बतलाना चाहते हैं। बहुत दिनोंके दासत्वके कारण जो वैषम्य उत्पन्न होता है उस वैषम्यने संघातिक रोगके रूपमें रोम-साम्राज्यमें प्रवेश करना आरम्भ कर दिया था। एक एक आदमीके पास हजार हजार दास रहा करते थे। स्वामीके न करने योग्य जितने कार्य होते थे वे सब दासोंके द्वारा ही हुआ करते थे। दास ही लोग जमीन जोतते और बोते थे, घर गृहस्थीमें सेवाका काम करते थे और शिल्पादिमें भी लगे रहते थे। गौवों और भैंसों आदिकी तरह वे खरीदे और बेचे जाते थे। स्वामी यदि चाहता तो अपने दासोंको मार-पीट सकता था; यहाँ तक कि यदि वह उनकी हत्या भी कर डालता तो भी वह दण्डनीय न होता

था। स्वामियोंकी आज्ञासे दास लोग रंगभूमिमें उतर कर शेर और चीते आदि हिंसक पशुओंके साथ लड़कर अपने प्राण गँवाते थे और स्वामी लोग बैठे हुए तमाशा देखा करते थे। रोम-साम्राज्यके लोग दो भागोंमें विभक्त थे। एक भागमें स्वामी लोग थे और दूसरेमें दास, एक भाग अनन्त भोग-विलासमें लीन था और दूसरा भाग अनन्त दुर्दशाएँ भोगता था।

इस विषमताका केवल यहीं अन्त नहीं हो जाता था। वहाँके सम्राट् बड़े ही स्वेच्छाचारी होते थे। उनके बल और प्रतापकी कोई सीमा न होती थी। एक सम्राट्ने एक बार नीरो नगरमें आग लगा दी थी और आप बीन बजाता हुआ तमाशा देखने बैठ गया था! कैलीगुलाने अपने घोड़ेको कान्सल (Consul=मंत्री) के पदपर नियुक्त किया था। ईलीया गैब्रेलसकी स्वेच्छाचारिता तो यहाँतक बढ़ गई थी कि उसका वर्णन करनेमें भी लज्जा आती है। चाहे कोई कैसा ही प्रतिष्ठित और बड़ा आदमी क्यों न हो सम्राट्की इच्छा मात्रसे ही विना कारण, विना प्रयोजन और विना विचारके ही मार डाला जा सकता था। और फिर उस सम्राट्पर भी शासन करनेवाले पेट्रीशियन सैनिक होते थे। वे जिसे चाहते उसे आज सम्राट् बना देते और कल फिर उसीकी हत्या करके उसका स्थान दूसरेको दे देते थे। रोम-साम्राज्य-को वे लोग साग-मूलीकी तरह खरीदा और बेचा करते थे। राज्यके विषयमें वे लोग जो कुछ चाहते थे वह तुरन्त कर डालते थे। प्रत्येक सूबेके सूबेदार भी बड़े ही स्वेच्छाचारी होते थे। तात्पर्य यह कि जिसके हाथमें कुछ भी शक्ति होती थी, जिसमें कुछ भी बल होता था वही स्वेच्छाचारी हो जाता था। और जहाँ स्वेच्छाचार प्रबल होता है वहीं विषमता भी प्रबल होती है।

उन्हीं दिनों रोम-साम्राज्यमें ईसाई-धर्मका प्रचार होने लगा। ईसा-मसीहकी बड़ी बड़ी बातें लोगोंके मनको छेदती हुई उनपर अपना प्रभाव जमाने लगीं। उन्होंने कहा था कि "मनुष्य मनुष्यमें भाई-भाईका सम्बन्ध है। सभी मनुष्य ईश्वरकी दृष्टिमें समान हैं, वल्कि जो मनुष्य पीड़ित दुखी और कातर हैं वही ईश्वरको अधिक प्रिय हैं।" इसी महावाक्यसे बड़े आदमियोंका गर्व नष्ट हुआ—स्वामियोंका गर्व नष्ट हुआ—लँगड़े लूले भिक्षुक भी सम्राट्की अपेक्षा अधिक बड़े हो गए। ईसामसीहने कहा था कि "इस संसारमें हम लोगोंका जो राजत्व है वह सच्चा राजत्व नहीं है—ऐहिक सुख वास्तविक और सच्चा सुख नहीं है, ऐहिक प्रधानता वास्तविक और सच्ची प्रधानता नहीं है।" इस संसारमें दो ही बार दो वाक्य कहे गए हैं और वे ही दोनों वाक्य नीतिशास्त्रका सार हैं। उन दोनों वाक्योंके अतिरिक्त नीतिमें और कुछ नहीं है। एक बार आर्यवंशीय ब्राह्मणने गंगातट पर खड़े होकर कहा था—"आत्मवत् सर्वभूतेषु यःपश्यति सपण्डितः" दूसरी बार जेरुसलमके पहाड़की चोटीपर खड़े होकर यहूदा-वंशी ईसाने कहा था—"दूसरोंसे तुम जैसे व्यवहारकी इच्छा करते हो, दूसरोंके साथ भी तुम वैसा ही व्यवहार करो।" इस बातमें सन्देह ही है कि इन दोनों वाक्योंके समान महत्त्वपूर्ण वाक्य संसारमें और भी कभी कहे गए हैं या नहीं। ये ही वाक्य साम्यतत्वका मूल हैं।

इन सब तत्त्वोंको लोग धर्मशास्त्रोंकी आज्ञाके रूपमें ग्रहण करने लगे। दासोंके बन्धन खुलने लगे, भोग-विलासकी अभिलाषा रखने-वाले लोग भोग-विलास और उसकी अभिलाषाका त्याग करने लगे। इन्हीं सब तत्त्वोंकी कृपासे रोमन और जंगली लोग मिल गए और उनके मेलसे महा तेजस्वी उन्नतिशील और युद्धमें दुर्दम जातियाँ बनने

लगीं । आजकल युरोपीय सभ्यताके कारण जैसी लौकिक उन्नति हुई है वैसी उन्नति आजतक संसारमें कभी नहीं हुई और न पुराने जमानेके उन आदमियोंको इस बातकी कभी आशा ही थी कि कभी इस प्रकारकी भी लौकिक उन्नति होगी । हमारे कहनेका यह तात्पर्य्य नहीं है कि सारी उन्नति ईसाई धर्मके प्रचारके कारण हुई है । इस उन्नतिके अनेक कारण हैं; लेकिन इसका प्रधान कारण ईसाकी नीति और ग्रीक-साहित्य तथा दर्शन हैं । और फिर यह बात भी नहीं है कि ईसाई धर्मके प्रचारके कारण केवल अच्छी ही अच्छी बातें हुई हों । उससे इष्ट और अनिष्ट दोनों ही प्रकारके फल हुए हैं । यद्यपि ईसाई धर्म साम्यात्मक था लेकिन तो भी अन्तमें उसके कारण एक बहुत बड़ी विषमता उत्पन्न हो गई थी । धर्मयाजकोंका प्रभुत्व बहुत अधिक बढ़ गया था । युरोपके स्पेन और फ्रान्स आदि कई राज्योंमें इस विषमताने बहुत ही भीषण रूप धारण किया था । विशेषतः फ्रान्समें उच्चश्रेणी और निम्नश्रेणीके लोगोंमें इतना भारी वैषम्य उत्पन्न हो गया था कि अन्तमें उसी वैषम्यके कारण फ्रान्समें बड़ा भारी विप्लव हुआ था । उस मथित समुद्रमें एक मन्थनकर्त्ता महात्मा थे । लोगोंमें साम्यतत्त्वका प्रचार तीसरी बार उन्हींने किया था । साम्यके वे तीसरे अवतार महात्मा रूसो थे ।

---

२ आधुनिक साम्यवादका बीजारोपण।



अठारहवीं शताब्दीमें फ्रान्स राज्यकी जो अवस्था थी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इस छोटेसे प्रकरणमें न तो उसके वर्णनके लिये स्थान ही है और न उसकी कोई ऐसी आवश्यकता ही है। अनेक जगत्प्रसिद्ध वाक्य-विशारद पुरातत्त्ववेत्ता और सूक्ष्मदर्शी लेखकोंने उसका बहुत अधिक वर्णन कर डाला है। वे सब वर्णन लोगोंको सहजमें ही प्राप्त हो सकते हैं, इसलिये हम यहाँ उनका उल्लेख नहीं करते। केवल दो एक बातें बतला देनेसे ही हमारा उद्देश सिद्ध हो जायगा।

कारलाइलने व्यंग्यपूर्वक कहा है कि—"जिन कानूनोंके अनुसार कोई जमींदार शिकारसे लौटकर दो दासोंको मार डालता था और उन्हीं दोनों दासोंके रक्तसे अपने पैर धो सकता था वे कानून अब प्रचलित नहीं हैं।" अब प्रचलित नहीं हैं, लेकिन हाँ, पहले अवश्य प्रचलित थे। कारलाइलने यह भी कहा है कि—"इधर पचास वर्षोंमें शारलोअरकी तरह कोई ऐसा आदमी नहीं हुआ था जो इमारतका काम करते हुए राजमजदूरोंको गोली मार देता और उन लोगोंको छत परसे गिरते हुए देखकर प्रसन्न होता।" हमारे यहाँ सिराजुद्दौलाने

भी इसी प्रकारके कुछ अत्याचार किए थे लेकिन उसमें और शारलो-अरमें अन्तर यह था कि वह (सिराजुद्दौला) तो एक बड़े देशका शासक और अधिपति था और शारलोअर उच्च श्रेणीकी प्रजा मात्र था।

इस व्यंग्योक्तिसे इस बातका बहुत अच्छी तरह पता लग जाता है कि उन दिनों फ्रान्सीसियोंमें कैसी भीषण विषमता उत्पन्न हो गई थी। राजा पन्द्रहवाँ लुई पहले सिरेका विलास-प्रिय, फजूलखर्च और स्वार्थी था। उसकी उपपत्नियोंके सन्तोषके लिए अनन्त धनकी आवश्यकता होती थी। मैडम पाम्पाडोर और मैडम डूबेरीने जो ऐश्वर्य-भोग किया था वह विवाहिता रानियोंके निष्कलंक भाग्यमें भी नहीं था। मैडम डूबेरीका एक काफिर खानसामा था जिसकी शकल बन्दरोंकी सी थी। वह एक स्थानके शासकके पद पर नियुक्त कर दिया गया था—मैडमकी आज्ञा ही तो थी! लुईके विलासभवनके सम्बन्धमें ऐसी ऐसी बातें कही जाती हैं जिन्हें सुनकर उसकी तुलना इन्द्रप्रस्थकी पाण्डवोंवाली उसी नगरीके भवनोंसे की जा सकती है जो दैवी शक्तिसे बना थीं। और उन सब प्रमोदमन्दिरोंमें जो जो उत्सव होते थे उनकी तुलना किसके साथ की जाय? एक ओर तो पानीकी तरह धन बहाया जाता था और दूसरी ओर राजकोष बिलकुल शून्य था। अन्नके अभावके कारण प्रजामें जो हाहाकार मचता था उससे सारा आकाश गूँजता था। आप पूछ सकते हैं कि ऐसी दशामें जब कि राजकोष बिलकुल शून्य था और अन्नके अभावके कारण प्रजामें हाहाकार मचा हुआ था तब यह सभा-पर्वका राजसूय, यह नन्दन-काननका इन्द्रविलास और इसी प्रकारके दूसरे अर्थसाध्य कार्य कैसे होते थे और उनके लिये कहाँसे धन आता था? तो इसका उत्तर यह है कि अन्नके अभावसे पीड़ित उसी प्रजाकी जीविकाका अपहरण करके,

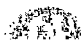
पिसे हुएको पीसकर, सोखे हुएको सोखकर, जले हुएको जलाकर, कुलकलंकिनी डूबेरीकी अलकोंको सुशोभित करनेके लिये रत्न एकत्र किए जाते थे। खैर, साधारण प्रजाकी तो यह दशा थी पर राज्यके बड़े बड़े आदमी क्या करते थे? वे लोग राजकोपमें कानी कौड़ी भी नहीं देते थे और केवल राजप्रसादका भोग करते थे। राजप्रसाद अजस्र अनंत और अपरिमित था। जिसे जितना राजप्रसाद मिलता वह उतना ग्रहण कर लेता था। क्योंकि वह पीड़ितको और भी पीड़ा देकर प्राप्त किया गया था। लेकिन राजप्रसादका भोग करनेवाले ये बड़े आदमी कानी कौड़ी भी राजकोपमें न देते थे। न तो बड़े आदमी कर देते थे, न धर्मयाजक लोग कर देते थे और न राजपुरुप कर देते थे। कर देते थे केवल दीन और दुखी कृपक लोग। और तिसपरसे कर संग्रह करनेवाले लोग बड़े बड़े अत्याचार करते थे। मिशेल ने कहा है—"उन दिनों कर देना और लेना एक प्रकारका नियमबद्ध युद्धसा हो गया था। इसके लिये दो लाख निकम्मे पृथ्वीका भार बने हुए थे। इन अपाहिजोंके समूह प्रजाका सर्वनाश करते थे। कर देते देते जिस प्रजाके पास कुछ भी नहीं बच रहा था जब उस प्रजासे और भी कर वसूल करनेकी आवश्यकता हुई तब उसके साथ ही आपसे आप निष्ठुर राजव्यवस्था, भयंकर दण्ड-विधि, नाविक दासत्व, फाँसी और पीड़न यंत्रों आदिकी भी आवश्यकता आ पड़ी।" राजकर वसूल करनेके लिये लोगोंको ठेका दे दिया जाता था। ठेकेदारोंको यहाँतक अधिकार था कि वे शस्त्रतकका आघात करके कर वसूल कर लें। वे लोग कर वसूल करनेके लिये लोगोंकी हत्यातक कर डालते थे। एक ओर तो वन-विहार, नाच-गाना, पराई स्त्रीके साथ प्रेम, हँसी ठट्ठा, अनन्त प्रमोद और चिन्ताशून्यता और दूसरी ओर दरिद्रता, अनाहार, पीड़ा, निरपराधके लिये नाविक-

दासत्व, फाँसीकी तिकठी और प्राणवध ! पन्द्रहवें लुईके राज्यकालमें फ्रान्समें इस प्रकारकी भीषण विषमता थी। और यह विषमता बहुत ही बुरी और बिगड़ी हुई शासन-प्रणालीके कारण उत्पन्न हुई थी। रूसोके गहरे प्रहारसे उस राज्य और उसकी शासन-प्रणालीकी जड़ उखड़ गई और पीछेसे उनके मानस-शिष्योंने उसका बिलकुल अन्त कर दिया।

शाक्यसिंह और ईसामसीहने संसारमें पवित्र और सत्यसिद्धान्तका प्रचार किया था इसलिये लोग उन्हें देवताके समान पूजते हैं। और उनका ऐसा करना बहुत ठीक है। लेकिन रूसो उन दोनों महात्माओंके बराबरीके आदमी नहीं थे। संसारमें उनके द्वारा केवल शुद्ध और विमल सत्यका ही प्रचार नहीं हुआ था। उन्होंने महान् लोकहितकर नैतिक सत्यके साथ अनिष्टकारक झूठ भी मिला दिया था। और उस मिश्रसिद्धान्तका अपनी अद्भुत वक्तृत्व शक्तिके कारण फ्रान्सीसियोंमें प्रचार किया था। एक तो उनकी बातें ही समयको देखते हुए बहुत उपयुक्त थीं तिसपर उनकी वाक्शक्ति मानों जादूसे भरी हुई थी। इसलिये उनकी सच्ची बातोंके साथ जो भ्रान्तिपूर्ण बातें मिली हुई थीं वे भी फ्रान्सीसियोंकी जीवनयात्राका एक मात्र बीजमंत्र बन गई थीं। फ्रान्सके सभी लोग उनके मानस-शिष्य हो गए। उनकी उसी शिक्षाके कारण फ्रान्समें प्रसिद्ध विप्लव हुआ था।

इस अवसर पर साम्यके विषयमें रूसोके विचारोंका उल्लेख करनेसे पहले उनके जीवनकी कुछ बातोंका वर्णन कर देना आवश्यक जान पड़ता है। उनका जन्म २८ जून सन् १७१२ को जनेवा नगरमें हुआ था। उनका पूरा नाम जेन जेक्स रूसो था। उनका वंश शुद्ध फ्रान्सीसी था लेकिन उनके पूर्वज उन्हीं दिनों जनेवामें जा बसे

थे जिन दिनों युरोपमें धार्मिक युद्ध बहुत जोरोंसे छिड़े हुए थे। रूसोके पिता घड़ीसाजीका काम करते थे; और उनकी माता एक पादरीकी लड़की थी। रूसोके जन्मके कुछ ही समय उपरान्त सौरीमें ही उनकी माताका देहान्त हो गया था। उनके पिताका स्वभाव बहुत ही उग्र था और उनमें समझदारी बहुत ही कम थी। इसी लिये बाल्यावस्थामें रूसोकी शिक्षा आदिका कोई विशेष प्रबन्ध न हो सका था। समाज और राजनीति आदिके सम्बन्धमें उनके पिताके विचार बहुत ही उग्र और उद्दण्डतापूर्ण थे और आगे चलकर उन्हीं विचारोंका विकास रूसोके द्वारा हुआ था। जब रूसो दस वर्षके थे तभी एक आदमीके साथ उनके पिताका कुछ झगड़ा हो गया था जिसके कारण वे अपने पुत्रको जनेवामें ही छोड़कर भाग गए थे। इस घटनाके उपरान्त पिता-पुत्रने परस्पर एक दूसरेकी बहुत ही कम खोज-खबर ली और दोनोंमें भेंट भी बहुत ही कम हुई। तबसे रूसो अपनी ननिहालवालोंकी देखरेखमें रहे। प्रायः दो वर्ष तक स्कूलमें पढ़नेके उपरान्त वे ननिहालसे अपने चाचाके घर चले गए। चाचाने उन्हें कई कामोंमें लगाया पर उन्हें किसी काममें, कदाचित् जी न लगनेके कारण, कोई सफलता नहीं हुई। १६ वर्षकी अवस्थामें वे अपने चाचाके घरसे भी निकल खड़े हुए और कई वर्षोंतक इधर उधर घूमते रहे। इस बीचमें उन्होंने प्रायः व्यर्थ ही दूर दूरकी यात्राएँ कीं और कई बार अपना धर्म बदला। इसी बीचमें उनका सम्बन्ध एक विधवा युवतीसे जिसका नाम वारेन्स था हो गया था और जिसने कुछ दिनोंतक इनकी शिक्षा आदिकी अच्छी व्यवस्था कर दी थी। एक बार उस युवतीके साथ कुछ झगड़ा हो जानेके कारण वे उसके घरसे भी कुछ दिनोंके लिये चले गए थे। पर अब उनका श्रीव



शान्त हो गया और जब वे लौटे तब उन्हें माळूम हुआ कि वह भी घर छोड़कर कहीं चली गई है और उसका कोई पता नहीं है। कुछ दिनोंतक व्यर्थ ही इधर-उधर घूमनेके उपरान्त वे पहले तो एक स्थानपर संगीतकी शिक्षा देने लगे और तब एक यूनानीके सेक्रेटरी बनकर एक धार्मिक कार्यके लिये चन्दा वसूल करनेके उद्देश्यसे सारा स्वीजरलैण्ड घूम आए। इस प्रकार २० वर्षकी अवस्थातक वे यों ही इधर उधर घूमते और छोटे-मोटे कार्य करते रहे। तबतक इन्हें कोई अच्छी संगति नहीं मिली थी। बीस वर्षकी अवस्थामें एक फ्रान्सीसी राजदूतकी सिफारशी चिट्ठियाँ लेकर वे पेरिस पहुँचे और वहाँसे सारडीनियाके राजाके यहाँ नौकर हो गए। लेकिन वहाँ भी उनका चित्त न लगा और वे फिर पता लगाकर अपनी प्रेमिका वारेन्सके पास पहुँचे। सन् १७३६ में उनका स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया था जिसके कारण उनकी प्रेमिकाने एक देहातमें मकान ले लिया। कुछ दिनों तक रूसो और वारेन्स उसी मकानमें रहे और वहीं रूसोने कुछ अध्ययन किया। सन् १७४० में उन्होंने एक भले आदमीके लड़कोंको पढ़ानेकी नौकरी कर ली, लेकिन न तो लड़कोंके पढ़ानेके काममें उनका चित्त ही लगता था और न वे उन्हें ठीक तरहसे पढ़ा ही सकते थे। वास्तविक बात तो यह थी कि ईश्वरने इन सब कामोंके लिये उन्हें उत्पन्न ही नहीं किया था। जिस कामके लिये उनका जन्म हुआ था उसका अभीतक समय ही न आया था। यद्यपि वे संगीतशास्त्रके अच्छे ज्ञाता नहीं थे लेकिन फिर भी संगीतकी ओर उनकी बहुत कुछ स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। सन् १७४१ में उन्होंने संगीत-प्रणालीके सम्बंधमें कुछ नए और मौलिक आविष्कार करके एक निबंध तैयार किया था। वह निबंध अगस्त सन् १७४२

में पेरिसकी वैज्ञानिक महासभामें पढ़ा गया था। इसके उपरांत वे वेनिसमें फ्रान्सीसी राजदूतके सेक्रेटरीके प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त हो गए और प्रायः डेढ़ वर्ष तक उस पद पर रहे। लेकिन वहाँ भी अपने मालिकके साथ उनकी न बनी और सन् १७४५ में वे फिर पेरिस चले आए। पेरिस लौटनेपर वे सुप्रसिद्ध विश्वकोषकार डिडराटसे मिले और उसके साथ मिलकर साहित्यका कुछ काम करने लगे। उसी अवसर पर एक और स्त्रीसे उनका सम्बन्ध हो गया था जो न तो रूपवती ही थी और न गुणवती ही; और जिससे आगे चलकर उन्होंने विवाह भी कर लिया था। कहते हैं कि इस स्त्रीसे उन्हें पाँच संतानें हुई थीं।

इसके उपरान्त वे डिडराटके विश्वकोशमें लेख लिखने लगे और तब बड़े बड़े लोगोंसे उनकी जान-पहचान होने लगी। उनकी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धिका कुछ कुछ आरम्भ यहींसे हुआ था।

लोग कहते हैं कि मनुष्यके किसी विशिष्ट सद्गुणका विकास किसी विशिष्ट अवसरपर ही होता है। और जिस विशिष्ट कार्यके लिये उसमें कोई शक्ति होती है उसके अतिरिक्त कोई दूसरा कार्य वह अच्छी तरह नहीं कर सकता। रूसोके सम्बन्धमें यह बात बहुत ठीक उतरी थी। अभीतक उनके विशिष्ट गुणको विकसित होनेके लिये अवसर नहीं मिला था। इसी लिये अबतक वे इधर उधर भटकते फिरते थे और किसी काममें उन्हें सफलता न होती थी। पर अब उनके विशिष्ट गुणके विकसित होनेका अवसर आ गया था। सन् १७४९ में डिजन नगरकी विद्वत्परिषद्ने इस बातकी घोषणा की थी कि जो व्यक्ति इस विषयपर सबसे अच्छा निबन्ध लिखेगा कि सभ्यताकी उन्नति और वृद्धिका मनुष्यके नैतिक चरित्रपर कैसा प्रभाव पड़ता है, उसे

इनाम दिया जायगा। इसपर रूसोने Le Contrat Social नामक एक बड़ा निबन्ध लिखा जिसकी मुख्य मुख्य बातें आगे चलकर बतलाई गई हैं। युरोपके आधुनिक साहित्यमें साम्यवादका यही पहला ग्रन्थ था। इसमें रूसोने बहुत ही योग्यतापूर्वक युक्तियोंसे यह बात सिद्ध कर दी थी कि आधुनिक सभ्यताका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है और नैतिक दृष्टिसे असभ्य और जंगली लोग भी आधुनिक सभ्य मनुष्यसे कहीं अच्छे हैं। विद्वत्परिषद्के सभासदोंको इस निबन्धकी बातें पसन्द आ गई और उन्होंने रूसोको निश्चित इनाम दिया। दूसरे वर्ष जब वह निबन्ध प्रकाशित हुआ तब शिक्षित समाजमें बड़ी हलचल मच गई। इसीके कारण उन्हें एक बड़े सरकारी दफ्तरमें खजानचीकी जगह मिल गई। पर अपनी उदासीन वृत्तिके कारण वे शीघ्र ही इस्तीफा देकर अलग हो गये। इसके बाद उन्होंने एक नाटक लिखा जिसका बहुत ही आदर हुआ। सन् १७५२में डिजनकी विद्वत्परिषद्ने फिर इस बातकी घोषणा की कि 'वैषम्यकी उत्पत्ति' के विषयमें जो व्यक्ति सबसे अच्छा निबन्ध लिखेगा उसे पुरस्कार दिया जायगा। रूसोने इस विषयपर भी निबन्ध लिखा था, जो था तो बहुत ही अच्छा लेकिन फिर भी उसके लिये उन्हें पुरस्कार नहीं मिल सका था। इसके कुछ दिनों बाद वे पेरिस चले गए और वहाँ उन्होंने एक बहुत अच्छा उपन्यास लिखा जिसमें अपने सम्बन्धकी बहुतसी घटनाओंका भी उल्लेख किया था। १७५८ में उन्होंने एक लेखमें वाल्टेअर पर बहुतसे आक्षेप किए थे जिसके कारण दोनोंमें झगड़ा हो गया था। लक्समबर्गके ड्यूकके आश्रयमें रहकर उन्होंने फिर कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखे जिनमें एक शिक्षासम्बन्धी उपन्यास भी था। इसके सम्बन्धमें सन् १७६२ में पेरिसकी पार्लिमेण्टमें बहुत कड़ी

त हुई थी और सरकारकी ओरसे उनका पकड़ा जाना निश्चित हो
। था लेकिन उन्हें पहलेसे ही खबर हो गई और वे वहाँसे न्यूचैटल
पहुँचे। न्यूचैटल उन दिनों प्रूशियाके अन्तर्गत था। वहाँके
नर मार्शल कीथने उन्हें आश्रय दिया और बहुत आदरपूर्वक अपने
र्ग रक्खा। वहाँ रहकर उन्होंने कई धार्मिक और राजनीतिक संस्था-
की कड़ी आलोचना की जिसके कारण लोग उनसे बिगड़ गये।
कारण वे न्यूचैटलसे भागकर बर्न जा पहुँचे; पर वहाँकी सरका-
भी उन्हें अपने राज्यसे निकल जानेकी आज्ञा दी। सन् १७६६
वे किसी प्रकार भागकर इँग्लैण्ड पहुँचे। यद्यपि आरम्भमें इंग्लैण्डमें
का अच्छा आदर हुआ था और तृतीय जार्जने उनके लिये कुछ
शन भी नियत कर दी थी लेकिन पीछेसे अपने विलक्षण स्वभाव
र विचारोंके कारण वहाँ भी उन्होंने अपने बहुतसे शत्रु खड़े कर
ए और अन्तमें मई सन् १७६७ में वे फिर फ्रान्स भाग आए।
न्समें ही कुछ दिनोंतक रहनेके उपरान्त २ जुलाई सन् १७७८
उनका देहान्त हो गया।

रूसोका सिद्धान्त यह था कि साम्य प्राकृतिक नियम है। स्वाभाविक
वस्थामें सभी मनुष्य समान हैं। लेकिन जब मनुष्य स्वाभाविक
वस्थाको छोड़कर उस अस्वाभाविक अवस्थामें आता है जिसे आज-
ल लोग सभ्यता कहते हैं तब उसमें विषमताकी उत्पत्ति और वृद्धि
ती है। और जो सभ्यता इस प्रकार विषमता उत्पन्न करती और बढ़ाती
वह मानवजातिके लिये बहुत ही अमंगलकारिणी है। उन्होंने
पने ग्रन्थमें इस बातको स्वीकार किया है कि दो मनुष्योंमें कुछ नै-
र्गिक विषमता भी देखनेमें आती है; लेकिन वह विषमता भी इसी
भ्यताके दोषके कारण होती है। सभ्यताके युगमें लोग भोगविला-

सकी ओर विशेष प्रवृत्त होते हैं और पापकर्मोंपर उनका अधिक अनुराग होता है। असभ्य अवस्थामें सभी लोगोंके लिये समान रूपसे शारीरिक परिश्रम करना आवश्यक होता है। इसीलिये सब लोगोंका शरीर भी समान रूपसे पुष्ट होता है। जब मनुष्यका शरीर बिलकुल नीरोग और हृष्ट पुष्ट होता है तब उसका मन भी नीरोग और शुद्ध रहता है। जिन दिनों लोग जंगली अवस्थामें रहते थे, शिकार करते हुए जंगल जंगल घूमते फिरते थे और पेड़ोंके नीचे सोया करते थे उन दिनों उनकी भाषा बहुत ही संकुचित रहती थी और उनमें बहुत तरहकी बातें कहनेकी शक्ति थोड़ी होती थी। इसीलिये वे लोग एक दूसरेको जली कटी सुनाना नहीं जानते थे और न मुँहसे कोई बात कहकर दूसरोंका वैसा अपकार कर सकते थे जैसा कि आजकल कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त उनमें न तो कोई ऐसी आकांक्षा होती थी जिसकी निवृत्ति न हो सकती हो, न कोई ऐसा लोभ था जिसकी तृप्ति न हो सकती हो और न कोई ऐसी वासना थी जिसकी पूर्ति न हो सकती हो। वे लोग यह नहीं समझते थे कि एकके साथ प्रेम करना चाहिए और दूसरेके साथ न करना चाहिए; और न उनमें अपने पराएका कोई विशेष भेद होता था। उसी अवस्थामें मनुष्यके लिये स्वर्गीय सुख था। उसी अवस्थाका सुन्दर चित्र खींचकर उन्होंने मनुष्य जातिको सम्बोधित करके कहा था—"यह अपूर्व चित्र देखो और इसके साथ आजकलकी दुःख और पापसे पूर्ण सभ्य अवस्थाका मिलान करो।"

रूसोका सिद्धान्त था कि जो मनुष्यका जन्म ग्रहण करता है वह दूसरे समस्त मनुष्योंके समान है। नैसर्गिक बातोंमें सब मनुष्य समान होते हैं इसलिये सम्पत्तिपर भी सबका समान ही अधिकार होना चाहिए।

पृथ्वीकी भूमिपर किसी राजाको प्रकृतिकी ओरसे जो अधिकार
हैं वही अधिकार एक भिक्षुकको भी पूर्ण रूपसे प्राप्त है । जमीन
की है, उस पर व्यक्तिविशेषका कोई विशेष अधिकार नहीं है ।
से बलवान् लोग दुर्बलोंको अधिकारच्युत करके अपना अधिकार
ने लगे तभीसे समाजकी स्थापनाका आरम्भ हुआ। और बलवानोंने
लोंका जो कुछ अपहरण किया था उसीको स्थायी बनानेके लिये
कुछ विधान हुआ उसीका नाम आईन या कानून है ।

जिस मनुष्यने पहले पहल भूमिके किसी अंशपर कोई चिह्न बना-
कहा था कि—"यह भूमि मेरी है" वही मनुष्य समाजकी सृष्टि
नेवाला था । यदि उसी समय कोई मनुष्य उसे वहाँसे हटा देता
र कहता कि—"यह ठग है, तुम लोग इसकी बात मत सुनो,
मी किसीकी नहीं है; उस पर जो कुछ उपजता है उस पर सबका
ान अधिकार है" तो वह मनुष्य मानवजातिका अनन्त उपकार
ता ।

रूसोकी ये सब बातें बहुत ही भयानक थीं । इन सब बातोंको
ाकर वाल्टेअरने कहा था कि यह सब बदमाशोंका दर्शनशास्त्र है ।
र इन्हीं सब बातोंके अनुवर्त्ती होकर उनके एक शिष्यने कहा था
अपहरणका नाम ही सम्पत्ति है ।

अपने सुप्रसिद्ध The Contrat Social नामक ग्रन्थमें रूसोने
पने इन सब विचारोंको किञ्चित् परिवर्तित रूपमें प्रकट किया था ।
समें उन्होंने सभ्य अवस्थाके दोष बहुत अधिक बढ़ाकर नहीं बतलाए
। उन्होंने लिखा था कि असभ्य अवस्थामें जिस जगह मनुष्य किसी
तको अपने सहज ज्ञानसे 'धर्म' समझता है सभ्य अवस्थामें उसी
ाह उसके बदले वह केवल 'न्याय' मान बैठता है । सम्पत्तिके

सम्बन्धमें भी उन्होंने सबसे पहले अधिकारीको वास्तवमें अधिकारी समझा था; लेकिन उनका यह अधिकारी मानना केवल कुछ विशिष्ट अवस्थाओंके लिये ही था। उन्होंने कहा था कि यदि किसी भूमिपर पहलेसे किसीका अधिकार न हो और उसपर कोई व्यक्ति अपना अधिकार कर ले, अथवा यदि अधिकारी उतनी ही भूमिपर अधिकार करे जितनी कि उसके भरण-पोषणके लिये आवश्यक है और उससे अधिक भूमिपर अधिकार न करे, अथवा यदि वह केवल नाम मात्रके लिये अधिकार न करे बल्कि उस जमीनको बराबर जोतता बोता रहे और इस प्रकार उस पर अपना अधिकार बनाए रहे तो अधिकृत भूमि अवश्य ही अधिकारीकी सम्पत्ति होती है।

Le Contrat Social नामक ग्रन्थका मुख्य तात्पर्य यही है कि समाजकी सृष्टि उन्हीं लोगोंकी सम्मतिसे हुई है जिन लोगोंके सहयोगसे समाज बना है। जिस प्रकार दस पाँच व्यवसायी मिलकर आपसके व्यवहारके लिये कुछ नियम बना लेते हैं और एक ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनी खड़ी कर लेते हैं, रूसोके मतसे समाज, राज्य और शासनकी सृष्टि भी ठीक उसी प्रकार लोगोंके मंगलके लिये हुई है। इस बातका तात्पर्य्य या परिणाम बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। तुम्हारा हमारा यह तै हो चुका है कि तुम हमारी जमीन जोत और बो दोगे और हम तुम्हें खाने और पहननेको देंगे और साथ ही अपने घरमें रहनेके लिये जगह भी देंगे। जिस दिन तुमने हमारी जमीन जोतना और बोना बन्द किया उसी दिन हम भी तुम्हारी गरदनमें हाथ देकर घरसे बाहर निकाल देंगे और तुम्हें खाना कपड़ा देना बन्द कर देंगे। हमारा यह काम न्यायसंगत ही होगा। इसी प्रकार यदि राजा और प्रजामें परस्पर कोई बात तै हो जाय तो राजाके अत्याचार करनेपर प्रजा

उससे कह सकती है कि—" हमारी तुम्हारी जो बात तै हुई थी वह तुमने नहीं की। तुम इस बातको स्वीकार करके राजा हुए थे कि हम प्रजाका मंगल करेंगे। तुम राजा हो, तुम्हारा काम ही हम लोगोंका मंगल करना है; और हम लोगोंका काम है—तुम्हें कर देना और तुम्हारी आज्ञाओंका पालन करना। लेकिन अब तुम हम लोगोंका मंगल नहीं करते हो इसलिये हम भी न तो तुम्हें कर देंगे और न तुम्हारी आज्ञाका पालन करेंगे। तुम इस रत्न-सिंहासन परसे उतर जाओ।"

यही कारण था कि जिस समय Le Contrat Social का फ्रान्समें प्रचार हुआ उसी समय वहाँके राजाके हाथका राजदण्ड टूट गया। उस ग्रन्थके प्रचारका मुख्य परिणाम यह हुआ कि वहाँका राजा सोलहवाँ लुई सिंहासनसे उतार दिया गया और उसे प्राणदण्ड मिला। फ्रान्सके सुप्रसिद्ध विप्लवमें जो कुछ हुआ था उसका मुख्य कारण इसी ग्रन्थका प्रचार था। उस यज्ञमें इसी ग्रन्थकी बातें वेदमंत्र थीं।

फ्रान्सके उस विप्लवमें राजा गया, राजकुल गया, राजपद गया, राजाका नामतक लुप्त हुआ, बड़े आदमियोंका सम्प्रदाय नष्ट हुआ, पुराना ईसाई धर्म गया, धर्मयाजकोंका सम्प्रदाय गया और यहाँतक कि मास और वार आदिका भी नाम मिट गया। उस विप्लवमें खूनकी जो नदियाँ वही थीं उन्हींमें सब कुछ वह गया। समय पाकर फिर सब बातें हुईं लेकिन जो बातें पहले थीं वे फिर नहीं हुईं। फ्रान्सने बिलकुल नया कलेवर धारण किया, युरोपमें नई सभ्यताकी सृष्टि हुई —मनुष्यजातिका स्थायी मंगल आरम्भ हुआ। रूसोकी भ्रान्त बातोंसे उसकी ऐसी कीर्ति स्थापित हुई जो अनन्तकालतक बनी रहे

भ्रान्त बातें साम्यात्मक थीं लेकिन फिर भी उस भ्रान्तिकी काय बहुत कुछ सत्यनिर्मित थी।

फ्रान्सका विप्लव शान्त हुआ और उसका उद्देश सिद्ध हुआ। रूसोने भूमिको सर्वसाधारणकी सम्पत्ति बतलाकर जिस भारी वृक्षका बीज बोया था उस वृक्षमें नित्य नए फल फलने लगे। इस समय उन फलोंसे सारा युरोप भरा हुआ है। कम्यूनिज्म (Communism) उसी वृक्षका फल है। इण्टरनैश्नल (Internationale) उसी वृक्षका फल है और रूसका आधुनिक बोल्शेविज्म (Bolshevism) भी इसाकी फल है। इन सबका थोड़ा थोड़ा परिचय आगे चलकर दिया जायगा।

इस देश तथा अन्य देशोंमें समस्त चर और अचर सम्पत्तिपर व्यक्ति विशेषका ही अधिकार होता है। यह मकान हमारा है; वह खेत तुम्हारा है; वह बाग उसका है। लेकिन यह बात नहीं है कि उसके सिवा और किसी प्रकारकी सम्पत्ति हो ही नहीं सकती। ऐसा भी होता है कि सम्पत्तिपर व्यक्तिविशेषका अधिकार न हो बल्कि सर्वसाधारणका अधिकार हो। मनुष्य-मात्रका पालन करनेवाली इस वसुन्धराकी सृष्टि किसी एक व्यक्तिके लिये नहीं हुई है। इस लिये भूमिपर सब लोगोंका समान अधिकार होना चाहिए। रूसोने अपनी प्रबल वाक्शक्तिके द्वारा इसी सिद्धान्तका प्रचार किया था। उनके बाद अनेक विज्ञ और विवेचक विद्वानोंने इसी नींव पर साम्यकी यह बड़ी इमारत तैयार की जो इस समय देखनेमें आ रही है। आगेके प्रकरणोंमें यह बतलानेका प्रयत्न किया जायगा कि कब कब और किस किस देशमें किन किन विद्वानोंने यह इमारत खड़ी करनेमें क्या क्या प्रयत्न किए और उन्हें कहाँतक सफलता हुई।

३–आरम्भिक फ्रान्सीसी साम्यवाद।



(१) सेण्ट साइमन।

जब लोगोंने देखा कि रूसोकी साम्य-सम्बन्धी शिक्षाका सर्वसाधारणपर इतना प्रभाव पड़ा और लोगोंको (प्रसिद्ध फ्रान्सीसी) विप्लव करके राजाके हाथका राजदण्ड तोड़नेमें इतनी सफलता हुई तब उनका उत्साह और आशाएँ बहुत बढ़ गई और साम्यके सिद्धान्तोंपर उनका विश्वास दृढ़ हो चला। अब उन्हें इस बातकी पूरी पूरी आशा हो गई कि भविष्यमें मानव-जातिकी यथेष्ट उन्नति होगी; सामाजिक व्यवस्थाके वर्त्तमान दोप धीरे धीरे नष्ट हो जायँगे और वह पूर्णता प्राप्त कर लेगी। लेकिन उनकी आशाएँ औचित्यकी सीमासे कुछ बढ़ी हुई थीं। इसका एक कारण तो उनका आवेश और उत्साह था और दूसरा कारण यह था कि वे समाजके विकास आदिके सिद्धान्तोंसे पूर्णतया अभिज्ञ न थे; अथवा यदि अभिज्ञ थे तो उनकी ओरसे उदासीन थे। यही कारण था कि उनके प्रयत्नोंमें सफलता तो हुई परन्तु उतनी अधिक नहीं हुई जितनी अधिककी वे आशा करते थे। अस्तु।

रूसोके उपरान्त फ्रान्समें साम्यके कुछ सिद्धान्तोंका प्रचार तथा पुष्टि करनेवाले महात्मा काम्टे हेनरी डी सेण्ट साइमन हुए।

इन्होंने सन् १७६० में फ्रान्सके एक प्रसिद्ध और उच्च डयूक-कुलमें जन्म लिया था और बाल्यावस्थामें अच्छी शिक्षा पाई थी। इनके सेवकको इस बातकी आज्ञा थी कि वह इन्हें सदा यह कहकर जगाया करे कि—"महाशय, स्मरण रखिए आपको बहुत बड़े बड़े काम करने हैं।" कहते हैं कि एक बार स्वप्नमें इनके पूर्वज सुप्रसिद्ध शार्लमेनने इन्हें दर्शन देकर कहा था कि तुम्हारा भविष्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। आरम्भमें इनका विचार था कि किसी तरह एटलाण्टिक और पैसिफिक महासागर मिला दिए जायँ और समुद्रसे मेड्रिडतक एक नहर तैयार की जाय। फ्रान्सकी प्रसिद्ध राज्यक्रान्तिमें इन्होंने कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया था बल्कि उससे अलग रहकर अपने विचारोंको भविष्यमें कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये कुछ सम्पत्ति उपर्जित कर ली थी। अपने विचारोंको विस्तृत करनेके लिये इन्होंने चालीस वर्षकी अवस्थामें कुछ विशेष अध्ययन किया था और संसारका कुछ अनुभव प्राप्त करना चाहा था। उसी समय इन्होंने एक विवाह भी किया था परन्तु उस विवाहसे ये बहुत ही दुखी हुए थे और एक ही वर्ष बाद दम्पतिकी सहमतिसे वह विवाह-सम्बन्ध टूट गया। उसी अवसरपर इनकी सारी सम्पत्ति भी नष्ट हो गई और इन्होंने अपना शेष सारा जीवन दरिद्रता और कष्टमें ही बिताया। पैंसठ वर्षकी अवस्थामें इनका कष्ट बहुत ही बढ़ गया और अन्तमें इन्हें अपने ही एक पुराने नौकरके यहाँ ४० पाउण्ड वार्षिकपर नौकरी भी करनी पड़ी।

सेण्ट साइमन यद्यपि विचारशील थे परन्तु विचारोंको अच्छी तरह प्रकट करना नहीं जानते थे। तौ भी उनके विचार मौलिक और बुद्धिमत्तापूर्ण होते थे। उनकी रचनाओंमें थोड़ेसे ही परन्तु पुष्ट विचारोंकी बहुत अधिक पुनरुक्ति देखनेमें आती है। आरम्भमें तो

उनकी रचनाएँ केवल वैज्ञानिक अथवा राजनीतिक ही हुआ करती थीं, परन्तु प्रायः सत्तावन वर्षकी अवस्थामें (१८१७ में) उन्होंने साम्यवादकी ओर ध्यान दिया और उनके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करने आरम्भ किए। और तबसे अन्ततक उन्होंने श्रम आदिके सम्बन्धमें पाँच बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की। इन ग्रन्थोंमें उन्होंने जो विचार प्रगट किये थे उनका साम्यसम्बन्धी भावी विचारोंके संगठनपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था।

समाजके पुनर्गठनके सम्बन्धमें सेण्ट साइमनके विचार बहुत ही सादे और सरल थे। वे वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाको बदलकर समाजका पुनर्गठन तो अवश्य चाहते थे परन्तु किसी प्रकारकी भीषण क्रान्ति अथवा विद्रोह आदिके वे बहुत बड़े विरोधी थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उन्होंने स्वयं राजा अठारहवें लूईसे ही समाजकी नए सिरसे व्यवस्था करनेके लिये प्रार्थना की थी। वे सैनिक और सामन्त शासन हटाकर ऐसी व्यवस्था करना चाहते थे जिसमें समाजपर बड़े बड़े कारखानेदारोंका अधिकार हो और इस काममें उन नेताओंको बड़े बड़े वैज्ञानिकोंसे सहायता मिला करे और जो लोग उत्पादक श्रमके लिये समाजकी सर्वोत्तम व्यवस्था कर सकते हों वही समाजपर शासन करनेके अधिकारी हों। साम्यके सिद्धान्तोंमें श्रम और पूँजीका झगड़ा बहुत बादमें शुरू हुआ था; सेण्ट साइमनने इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं किया था। उनका सिद्धान्त केवल इतना ही था कि समाजका उद्देश्य केवल यही रहना चाहिए कि ऐसी चीजें उत्पन्न की जायँ जो जीवन-निर्वाहके लिये उपयोगी हों और इस उत्पत्तिके काममें सब लोग मिल-जुलकर लगे रहें; और उत्पत्तिकी व्यवस्था जिन श्रमजीवी नेताओंके हाथमें रहे वे सारे समाजके हितका ध्यान रखते हुए उसका शासन

करें। आगे चलकर दरिद्रोंकी दीन अवस्थापर भी उनका ध्यान गया और वे उसे भी सुधारनेकी चिन्तामें लगे। अन्तिम समयमें उनकी वह चिन्ता यहाँतक बढ़ गई थी कि उनका सारा लक्ष्य इसीकी ओर हो गया और दरिद्रोंकी अवस्था सुधारनेके प्रयत्नको उन्होंने एक बिलकुल धार्मिकरूप दे देना चाहा। उनका 'नया ईसाई मत' (Noeve christianisme; The New christianity) नामक अन्तिम ग्रन्थ इसी सम्बन्धके विचारोंसे भरा हुआ है। उनके विचारोंके इस धार्मिक रूप ग्रहण करनेके कारण ही अन्तमें काम्टे (Comte) के साथ उनका झगड़ा हो गया था।

अपने इस अन्तिम ग्रन्थमें सेण्ट साइमनने ईसाई धर्ममें घुसे हुए दोषोंकी कड़ी टीका करते हुए यह सिद्ध किया था कि ईसाई धर्मका मुख्य उपदेश यह है कि सब लोग मिलजुलकर रहें और एक दूसरेके साथ भाई-भाईका सा व्यवहार करें। उनके सारे कथनका निष्कर्ष यह था कि सारे समाजको मिलकर दीनों और दरिद्रोंकी नैतिक, आर्थिक और शारीरिक दशा सुधारनेका प्रयत्न करना चाहिए, और समाजकी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो उसके इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये पूर्ण रूपसे अनुकूल हो और उसमें पूरी पूरी सहायता कर सके। यही सिद्धान्त मानों सेण्ट साइमनके अनुयायियोंके लिये पथप्रदर्शक हो गया और इसीको वे सामाजिक सुधारका मूल मंत्र तथा धर्मतत्त्वका सार मानने लगे।

सेण्ट साइमनके जीवनकालमें लोगोंपर उनके विचारोंका बहुत ही थोड़ा प्रभाव पड़ा था और कुछ इने-गिने लोग ही ऐसे थे जो अपने गुरु सेण्ट साइमनको अवतारतुल्य मानते थे। उन लोगोंमें बैजर्ड और एन्फैण्टिन नामक दो व्यक्ति मुख्य थे। जुलाई १८३० में

फ्रान्समें फिर विद्रोह हुआ और उस समय सारे फ्रान्सका ध्यान फिर एक बार साम्यके सिद्धांतोंकी ओर आकृष्ट हुआ। अनेक योग्य और कर्म्मशील युवक इन साम्यवादियोंके दलमें आकर मिल गए और 'ग्लोब' (Globe) नामक एक समाचारपत्र भी दलके हाथमें आ गया। इस दलके सब लोगोंने मिलकर अपना एक स्वतंत्र समाज या परिवार बना लिया और बहुतसे अंशोंमें प्रायः सम्मिलित परिवारकी भाँति रहना आरम्भ किया। उस परिवारकी जितनी सम्पत्ति थी उस-पर परिवारके सब लोगोंका समान अधिकार माना जाता था और उसमेंसे सबके व्ययके लिये धन लिया जाता था। इस प्रकार वह परिवार अपने सिद्धान्तोंका एक आदर्शसा बन गया था।

लेकिन शीघ्र ही इस परिवारमें मतभेद आरम्भ हुआ। एन्फैण्टि-नने चाहा कि मैं इस समाजमें धर्म्मके नामपर फिरसे ढोंग फैलाऊँ और अपनी पुरोहिताई स्थापित करूँ। इसके अतिरिक्त विवाह और स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्धके विषयमें भी उसके विचार बहुत ही दोषपूर्ण और शिथिल थे। लेकिन बैजर्ड बहुत ही बुद्धिमान, सात्विक और अपने सिद्धान्तोंका पक्का था; उसे एन्फैण्टिनकी ये बातें पसन्द न आईं इसलिये वह उस परिवारसे अलग हो गया। उसकी देखादेखी और भी अनेक सज्जनोंने उस परिवारसे सम्बन्ध त्याग दिया। इसके थोड़े ही दिनों बाद कई ऊटपटाँग काम करनेके कारण उस परिवारकी आर्थिक अवस्था भी बहुत खराब हो गई और लोगोंमें उसकी बदनामी भी बहुत फैल गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि सन् १८३२ में वह परिवार सामाजिक व्यवस्थाके लिये हानिकर समझा जानेके कारण सरकार द्वारा तोड़ दिया गया। उस परिवारमेंके बहुतसे लोग आगे चलकर अच्छे अच्छे व्यापारी, इंजीनियर और अर्थशास्त्रज्ञ हुए। स्वेजकी प्र-

सिद्ध नहर बनानेका विचार पहले पहल इसी दलके लोगोंमें उठा था जिसे पीछे सेलीसेप्स ने पूरा किया। इस प्रकार एन्फैण्टिनसे तो कुछ भी न हो सका; हाँ, सेण्ट साइमनके सिद्धान्तों और विचारोंका बहुत कुछ आधार और विस्तार उनके बाद वैजर्डने किया।

इस दलके लोगोंका यह सिद्धान्त है कि संसारके सभी देशोंके इतिहासमें दो प्रकारके युग पाये जाते अथवा होते हैं। एक नाशक और दूसरा विधायक। नाशक युगमें लोग दार्शनिक भावोंसे प्रेरित होकर युद्ध और विद्रोह आदि करते तथा अहंकारी होते हैं, और विधायक युगमें लोग धर्म्म-भावसे प्रेरित होकर आज्ञाकारी, परोपकारी तथा बन्धुत्व और सहयोगके उपासक होते हैं। वैमनस्य अथवा विरोध और बन्धुत्व अथवा सहयोगके यही दोनों भाव दो बड़े सामाजिक सिद्धान्त हैं। जिन दिनों इन दोनोंमेंसे जिस भावकी प्रबलता या अधिकता देखनेमें आवे उन दिनों उसीका युग मानना चाहिए। उनका यह भी सिद्धान्त है कि आजकल लोगोंमें वैमनस्य अथवा विरोध आदिका भाव दिनपर दिन कम होता जाता है और सहयोग अथवा बन्धुत्वका भाव समाजसे नगरतक, नगरसे देशतक और देशसे संसारतक बढ़ता हुआ उत्तरोत्तर विस्तृत होता जाता है। भविष्यमें सहयोगका सिद्धान्त ही सामाजिक विकासका मूलमंत्र होगा। पहले संसारके अधिकांश भागोंमें दासत्वकी प्रथा थी। वह प्रथा उठ गई, पर फिर भी जमीन्दारों और खेतिहरों, पूँजीवालों और मजदूरोंके सम्बन्धमें वह दूपित प्रथा किसी न किसी रूप और कुछ न कुछ अंशोंमें बच रही है। अबतक लोग जैसे तैसे अपने भाइयोंका धन हरण किया करते हैं; पर भविष्यमें मानव-जातिका सिद्धान्त यह होना चाहिए कि सब मनुष्य मिलकर पृथ्वीमेंसे धन उत्पन्न करें।

वर्त्तमान व्यवस्थामें बड़े बड़े कारखाने-दार और अमीर दरिद्रोंके परिश्रमसे लाभ उठाते हैं। उनकी अधीनतामें काम करनेवाले मजदूर नाम मात्रके लिये भले ही स्वतंत्र होते हों, परन्तु वास्तवमें वे पूर्ण रूपसे अपने मालिकोंके अधीन ही होते हैं। उन्हें विवश होकर अपने मालिकोंकी सब बातें माननी पड़ती हैं। यदि वे मालिकोंकी बात न मानें तो उन्हें भूखों मरना पड़ता है। उत्तराधिकारके सम्बन्धमें इस समय संसारमें जो नियम प्रचलित हैं उनके कारण अवस्था और भी विकट हो जाती है, क्योंकि उन नियमोंके अनुसार उत्पादनके साधन और समस्त सामाजिक सुविधाएँ पैतृक हो जाती हैं। व्यक्तिगत योग्यताका तो कोई ध्यान रह ही नहीं जाता; केवल जन्मका विचार रह जाता है। यही बात सामाजिक असुविधाओंकी भी है। परिणाम यह होता है कि सम्पन्नता और दरिद्रता दोनों पैतृक हो जाती हैं। जो कुल एक बार सम्पन्न हो गया वह बहुत दिनोंतक बराबर सम्पन्न बना रहता है और जो कुल एक बार दरिद्र हुआ वह मानों सदाके लिये दरिद्र हो जाता है। इस दोषको दूर करनेका उपाय केवल यही है कि उत्तराधिकारके नियम तोड़ दिए जायँ और उत्पादनके जितने साधन हैं वे सब एकमें मिलाकर सारे समाजके अधिकारमें कर दिए जायँ—सारा समाज मिलकर उनसे समान रूपसे काम ले और सामाजिक कोशके लिये समान रूपसे द्रव्य उपार्जित करे। इस प्रकार सब चीजोंका मालिक समाज हो जाय और वह छोटे छोटे सामाजिक दलोंको भिन्न भिन्न सम्पत्तियोंका प्रवन्ध और संचालन आदि सौंप दे।

सेण्ट साइमनके दलके लोगोंका यह भी सिद्धान्त था कि समाजमें प्रत्येक मनुष्यको उसकी योग्यताके अनुसार स्थान और कार्य या परि-

श्रमके अनुसार पुरस्कार दिया जाय । शारीरिक बल और मानसिक योग्यता आदिके अनुसार श्रम-विभाग हो और श्रम-विभागके अनुसार धन-विभाग हो । स्त्रियोंको वे पुरुषोंसे विलकुल अलग रखना और उन्हें पुरुषोंके समान अधिकार देना चाहते थे । आरम्भमें इस दलने विवाहके पवित्र सम्बन्धको पूर्ण रूपसे मान्य किया था; परन्तु स्त्रियों और पुरुषोंकी समानताके इसी सिद्धान्तको लेकर एन्फैण्टिनने बात यहाँतक बढ़ा दी कि स्त्रियों और पुरुषोंको बहुत ही स्वच्छन्दतापूर्वक एक दूसरेके साथ सम्बन्ध स्थापित करने और तोड़नेका अधिकार दे दिया जिसके कारण सारे फ्रान्स-देशकी बहुत बदनामी हुई। लेकिन बैजर्ड तथा दूसरे कई प्रतिष्ठित पुरुषोंने उसी समय इस अनीतिपूर्ण सिद्धान्तको माननेसे इनकार कर दिया था । वैजर्ड आदिके अलग हो जानेका सर्व साधारणपर कोई प्रभाव न पड़ा और सारे युरोपमें सेण्ट-साइमनके अनुयायी बहुत बदनाम हो गए जिससे उन महात्माके इस परम पवित्र और उच्च विचारका प्रसार बिलकुल रुक गया । सामाजिक संगठन, श्रम और सम्पत्ति-विभाग आदिके सम्बन्धमें उनके जो उत्तम सिद्धान्त थे वे भी स्त्रियोंके स्वाधीन-गमनवाले झगड़ेके फेरमें हवा हो गए । कुछ लोगोंने तो साम्यके सिद्धान्तोंको हँसीमें उड़ा दिया और कुछने क्रोधमें आकर साम्यवादियोंको बुरा-भला कहना आरम्भ कर दिया । बात फिर प्रायः जहाँकी तहाँ रह गई । परन्तु इतना लाभ अवश्य हो गया कि संसारको यह बात मालूम हो गई कि समाजकी वर्त्तमान व्यवस्था दोषपूर्ण तथा असन्तोषजनक है और उसमें किसी भारी सुधार तथा परिवर्त्तनकी आवश्यकता है ।

(२) फोरियर ।

सेण्ट साइमनसे भी पहले फ्रान्समें फोरियर नामके एक और सज्जनने साम्यके सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें कुछ विचार आदि प्रकट किए और ग्रन्थ आदि लिखे थे, जिनमेंसे पहला ग्रन्थ सन् १८०८में ही प्रकाशित हो गया था। इनके विचार बिलकुल विलक्षण और साइमनके विचारोंसे विपरीत थे; परन्तु उनकी ओर उस समय किसीका ध्यान ही नहीं गया था। जब साइमनके दलके लोगोंका जोर घट गया तब लोग इनके सिद्धान्तोंकी ओर झुकने लगे। यद्यपि साइमन और फोरियर दोनों ही साम्यवादी थे परन्तु दोनोंके विचार और कार्यक्रम एक दूसरेसे बिलकुल विपरीत थे। सेण्ट साइमनके दलके लोग तो सब अधिकारोंको एक केन्द्रमें प्रतिष्ठित करके काम करना चाहते थे; पर फोरियरका मत था कि जहाँतक हो सके व्यक्तिगत स्वतंत्रतामें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न हो और राष्ट्रीय सत्ताके स्थानमें प्रान्तीय अथवा स्थानीय सत्ताकी वृद्धि हो। साइमन चाहते थे कि जितने काम हों वे सब राज्यके शासनमें हों, परन्तु फोरियर चाहते थे कि अलग अलग वर्ग अथवा स्थानिक संस्थाएँ बनें जो कि समस्त आन्तरिक कार्यों तथा प्रबन्ध-आदिके लिये बिलकुल स्वतंत्र हों; शासनके लिये बाकी जो और संस्थाएँ हों उनके कार्य और अधिकार आदि बहुत ही परिमित हों और वे संस्थाएँ गौण रहें। अपने इन वर्गोंका नाम उन्होंने Phalange रक्खा था।

फ्रांकोइस मेरी चार्ल्स फोरियरका जन्म सन् १७७२ में एक धनी व्यापारीके घरमें हुआ था। बाल्यावस्थामें ही उन्होंने अच्छी शिक्षाके अतिरिक्त बहुत कुछ व्यापार-सम्बधी ज्ञान तथा अनुभव भी प्राप्त कर लिया था और हालैण्ड तथा जरमनी आदि अनेक देशोंकी यात्रा भी

कर ली थी। पीछे इनकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई थी और इन्हें कुछ दिनोंतक जेलमें रहना पड़ा था। जेलसे छूटनेके उपरान्त दो वर्षतक इन्होंने फौजमें भी नौकरी की थी।

एक बार बचपनमें फोरियरने अपने पिताकी दूकानमें बिक्रीकी एक चीजके विषयमें ग्राहकसे सच सच बात कह दी, जिसके कारण पिताने इन्हें दण्ड दिया था। सत्ताइस वर्षकी अवस्थामें इन्हें स्वयं अपने निरीक्षणमें बहुत सा ऐसा चावल जलवा देना पड़ा था जो कि अधिक दाम लगनेकी आशासे रोक रक्खा गया था और इस प्रकार बहुत दिनोंतक रक्खे रहनेके कारण खानेके योग्य ही न रह गया था। इन दोनों घटनाओंका इनके हृदयपर बहुत प्रभाव पड़ा था जिसके कारण इन्होंने निश्चित कर लिया था कि जिस प्रकार हो सके ऐसे सामाजिक और व्यापारिक दोष दूर किए जाने चाहिए। और इसी लिये इन्होंने उन सब दोषोंको दूर करने तथा नई व्यवस्थाएँ ढूँढ़ निकालनेमें ही अपने जीवनका अधिकांश बिता डाला। इस कार्यमें उन्होंने जो दृढ़ता और स्वार्थत्याग दिखलाया था उसका जोड़ ढूँढ़ निकालना अवश्य ही बहुत कठिन है। अपने विचारोंको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये उन्होंने बहुत दिनोंतक अनेक प्रकारके कष्ट उठाए; परन्तु उन्हें कोई ऐसा धनी नहीं मिला जो इस काममें उन्हें किसी प्रकारकी आर्थिक सहायता देता। इसलिये अपने जीवन-कालमें उन्हें बहुत ही थोड़ी सफलता हुई। यहाँतक कि उनके ग्रन्थोंको पढ़ने और उनके सिद्धान्तोंको माननेवाले लोग भी बहुत ही थोड़े हुए।

लेकिन जब सेण्ट-साइमनके दलके लोगोंका जोर बिलकुल टूट गया तब लोग धीरे धीरे फोरियरके सिद्धान्तोंकी ओर प्रवृत्त होने लगे। बात यह थी कि साम्यके स्थूल सिद्धान्त तो लोगोंके दिलोंमें घर कर

ही चुके थे, अब उन्हें केवल एक आधारकी आवश्यकता थी। जब एक आधार टूट गया तब उन्होंने दूसरा आधार जा पकड़ा। यह आधार फोरियरके सिद्धान्त थे। फोरियरके जीवनकालमें ही उनके विचारोंका प्रचार करनेके लिये उनके थोड़ेसे अनुयायियोंने एक समाचारपत्र निकाला था और सन् १८३२ में वारसेल्सके निकट थोड़ीसी भूमि लेकर एक वर्ग (Phalange) भी स्थापित किया था; परन्तु उसमें तनिक भी सफलता नहीं हुई। अपना सारा जीवन बहुत ही सरलता और साधुतापूर्वक बिताकर और अपने गिनतीके अनुयायी छोड़कर सन् १८३७ में फोरियर स्वर्गगामी हुए।

धर्म, ईश्वर, सृष्टि और मनोविज्ञान आदिके सम्बन्धमें फोरियरके विचार बड़े ही विलक्षण थे। विचारोंके अनुसार उन्होंने यह सिद्धान्त स्थिर किया था कि समाजकी वर्त्तमान अशान्ति उसी समय मिट सकती है जब कि लोग वर्त्तमान सभ्यताको साष्टांग प्रणाम करके उससे अपना पीछा छुड़ा लें और समाजकी व्यवस्था इस प्रकारकी हो जाय जिसमें मानव-प्रकृतिको ईश्वरेच्छाके अनुकूल रहकर अपना काम करनेका पूरा पूरा अवसर मिले। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये ही उन्होंने अपने वर्गकी सृष्टि की थी। उनके सिद्धान्तके अनुसार वर्ग साधारणतः ऐसे होने चाहिए थे जिनमें चारसौ परिवार अथवा आठसौ स्त्री-पुरुष रहते, उन सबके रहनेके लिये एक अलग चौकोर जमीन होती, उस वर्गकी जितनी आवश्यकताएँ होतीं वे सब उसीमेंसे पूर्ण हो जातीं— उसे किसी दूसरे स्थान अथवा वर्गका मुखापेक्षी न होना पड़ता और अपनी भिन्न भिन्न प्रवृत्तियों और योग्यताओं आदिके अनुसार उसे अपनी उन्नति करनेकी पूरी पूरी स्वतंत्रता प्राप्त होती। अर्थात् वर्गकी आवश्यकताके अनुसार उसके अन्दर ही खेती-बारी, शिल्प और आमोद-

प्रमोद आदिका पूरा पूरा प्रबन्ध होता और उसीमें रहकर लोग अपनी अपनी उन्नति करते। इस व्यवस्थामें व्यक्तिगत स्वतंत्रताके साथ जिस योग्यतापूर्वक सार्वजनिक एकताका संयोग किया गया था उसके बिलकुल मौलिक और अभूतपूर्व होनेमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता।

फोरियरने यह भी व्यवस्था की थी कि प्रत्येक वर्गमें सात सात या नौ नौ आदमियोंकी चौबीससे बत्तीसतक टुकड़ियाँ रहें; और सारे वर्गके लोगोंके रहनेके लिये एक बहुत बड़ा सुन्दर और हवादार स्थान बने जिसमें लोग अपने इच्छानुसार अकेले या दूसरोंके साथ मिलकर रहें। इसमें सबसे बड़ा लाभ यह था कि न तो किसीपर स्वार्थी होनेका अभियोग लगाया जा सकता था और न कोई परवशताकी शिकायत कर सकता था। प्रत्येक वर्गके अधिकारियोंके चुनावकी भी व्यवस्था थी। फोरियरका यह भी विचार था कि सारे संसारमें इसी प्रकारके वर्ग स्थापित हो जायँ और सब मिलकर अपना एक संघ बना लें जिसका प्रधान अधिकारी समय समयपर चुन लिया जाया करे और यह प्रधान अधिकारी कुस्तुन्तुनियामें रहा करे।

वर्गकी सारी व्यवस्थामें स्वतंत्रताके सिद्धान्तका पूरा पूरा पालन किया गया था। यहाँतक कि स्त्री और पुरुष बहुत ही स्वतंत्रता और स्वेच्छापूर्वक प्रेम अथवा विवाहसम्बन्ध स्थापित अथवा विच्छिन्न कर सकते थे। काम काजकी यह व्यवस्था थी कि लोगोंकी रुचि और व्यवस्थाका पता लगाकर उन्हें काम सौंपा जाय और इस बातका भी अधिकार रहे कि वे जब चाहें तब अपना काम बदल सकें। जो काम बहुत ही कष्ट अथवा कुरुचि उत्पन्न करनेवाले थे उनकी व्यवस्था मशीनोंके द्वारा हो सकती थी। श्रमसे जो कुछ उत्पन्न होता उसके विभागकी भी अच्छी व्यवस्था थी। सारे लाभका कुछ निश्चित अंश

तो सब लोगोंमें समान रूपसे बँट सकता था और बाकीमेंसे $\frac{५}{१२}$ वाँ भाग शारीरिक श्रम करनेवालोंके लिये, $\frac{४}{१२}$ वाँ भाग पूँजीके लिये और $\frac{३}{१२}$ वाँ भाग मानसिक श्रम करनेवालोंके लिये था। आयका जो अंश पूँजीवालोंके लिये था वह ऐसे लोगोंको उचित सूदके रूपमें मिल सकता था जो वर्गको काम चलानेके लिये ऋणस्वरूप धन देते। मानसिक श्रम करनेवालोंकी सेवाओं और पुरस्कारों आदिके निर्णयकी भी उचित व्यवस्था थी। बहुत ही आवश्यक अथवा कठिन कार्यके लिये सबसे अधिक, उपयोगी कार्यके लिये उससे कम और सुख-साध्य कार्यके लिये सबसे कम पुरस्कार दिया जाता। लेकिन फिर भी श्रम करनेवालोंको कमसे कम इतना पुरस्कार अवश्य मिलता जिससे वे अपना निर्वाह करनेके उपरान्त समय पाकर पूँजीदार बन सकते। स्त्रियोंको पूरी आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त थी और पाँच बरसका बच्चा भी अपना अंश पानेका अधिकारी था।

तात्पर्य यह कि फोरियरकी यह व्यवस्था बिलकुल ही नई और बहुत ही उच्चश्रेणीकी थी। पर साथ ही उसमें कुछ दोष भी थे। अनुभव और विज्ञानसे मानव प्रकृति और सामाजिक विकासके नियमोंका अब तक जो कुछ पता लगा है, वर्गकी कई बातें कई अंशोंमें उसके बिलकुल विपरीत थीं। मनुष्यके अहंभावका उसमें बहुत ही थोड़ा ध्यान रक्खा गया था। संसारमें अबतक जितनी उन्नति हुई है वह मनुष्यके पशुभावको दमन करके ही हुई है। परन्तु फोरियरकी व्यवस्थामें इस पशुभावको बिलकुल ही खुल खेलनेकी स्वतंत्रता दी गई है। विशेषतः विवाहके सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें यह आक्षेप और भी ठीक उतरता है। इस व्यवस्थासे अधिक संभावना इसी बातकी है कि संसारमें शान्ति स्थापित होनेके बदले अबतकका सारा नियम और

क्रम बिगड़ जाय और समाजमें बड़ी भारी गड़बड़ी मच जाय; लेकिन फिर भी फोरियरके ग्रन्थों और लेखोंमें बहुतसी ऐसी बातें भरी पड़ी हैं जिनका बहुत कुछ सदुपयोग हो सकता है। आधुनिक व्यवस्थाके दोष उनमें बहुत अच्छी तरह दिखलाए गए हैं। यदि कभी साम्यवादका संसारमें पूरा पूरा प्रचार हो जाय तो उस समय स्थानीय संस्थाओंकी जो कुछ अवस्था होगी उसका खाका फोरियरने बहुत अच्छी तरह तैयार कर लिया है। व्यक्तिगत स्वतंत्रतापर भी वर्ग कोई आक्रमण नहीं कर सकता। क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिको इस बातका अधिकार प्राप्त होगा कि वह अपने इच्छानुसार जब चाहे तब संसारके किसी भागमें आ सकता है और अपने श्रम, बुद्धि अथवा पूँजीका उपयोग कर सकता है।

---

(३) लूइस ब्लैंक।

सेण्ट साइमन और फोरियरकी अधिकांश बातें प्रायः खयाली पुलाव ही थीं और उन लोगोंके जीवनकालमें कार्य रूपमें परिणत नहीं हो सकी थीं। जिस महात्माने फ्रान्सके जातीय जीवन और इतिहासके साथ साम्यवादके आन्दोलनको वास्तवमें सम्बद्ध कर दिया था उस महात्माका नाम लूइस ब्लैंक था, जिसका जन्म सन् १८११ में मेड्रड नगरमें वहाँके अर्थविभागके इन्स्पेक्टर जनरलके घरमें हुआ था। युवावस्थामें ब्लैंकने पेरिसके कई पत्रोंका सम्पादन किया था और तब एक बड़ा ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित किया था जिसका फ्रान्सके श्रमजीवियोंमें बहुत आदर हुआ था। व्यापार आदिकी प्रतियोगिताके दोष उस ग्रन्थमें बहुत अच्छी तरह दिखलाए गए थे और उन्हें दूर करनेके उपाय भी बतलाए गए थे। ब्लैंकका सिद्धान्त था कि

सब लोगोंको स्वतंत्रतापूर्वक मिलकर और भ्रातृभावपूर्वक नैतिक और ऐहिक उन्नति करनी चाहिए बल्कि बिना ऐसा किए किसी प्रकारकी उन्नति असम्भव है। उसका यह भी मत था कि बिना राजनीतिक सुधारके सामाजिक सुधार हो ही नहीं सकता—सामाजिक सुधार एक कार्य या सिद्धि है जिसका साधन राजनीतिक सुधार है। उचित और न्यायपूर्ण नियमोंकी सहायतासे श्रमअदिकी व्यवस्थाके ठीक ठीक उपाय ढूंढ़ निकालना ही यथेष्ट नहीं है वल्कि उसके साथ ही साथ सामाजिक सुधारके लिये राजनीतिक बलकी भी आवश्यकता है। इन्हीं सब कारणोंसे वह कहता था कि सफलता तभी हो सकती है जब कि राज्यका संगठन पूर्ण प्रतिनिधित्वके नियमोंके अनुसार हो। दरिद्र श्रमजीवियोंके उद्धारका प्रश्न इतना कठिन है कि उसकी मीमांसाके लिये राज्यकी सारी शक्तियोंकी आवश्यकता है। श्रमजीवियोंके लिये सबसे बड़ी आवश्यकता श्रमके साधनोंकी है और सरकारका कर्तव्य है कि वह उन लोगोंके लिये ऐसे साधन उपस्थित कर दे। ब्लैंकने 'राज्य' शब्दकी जो व्याख्या की थी वह बड़ी ही विलक्षण थी। उसने कहा था—" राज्य और कुछ नहीं, केवल गरीबोंका महाजन है।" ब्लैंक चाहता था कि प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्य ऐसे शिल्पसंघ और कारखानें स्थापित करे जो धीरे धीरे बिना किसीको हानि पहुँचाए निजी अथवा व्यक्तिगत कारखानोंका अन्त कर दे। इस कामके लिये राज्य साधन उपस्थित करे, उन कारखानों और संघोंके संगठनके लिये नियम बनावे और पहले वर्षके लिये अधिकारी नियुक्त कर दे। एक बार जब ऐसे कारखाने स्थापित हो जायँगे तब फिर वे सदा बिना किसीकी सहायताके बहुत ही व्यवस्थित रूपसे बराबर चलते रहेंगे और उन्नति करते जायँगे। लोग अपने लिये आप ही मैनेजर और डाइरे-

क्टर चुन लेंगे, आयका ठीक ठीक विभाग कर लेंगे और अपना काम बराबर बढ़ाते चलेंगे। भला ऐसी व्यवस्थामें किसी प्रकारका अत्याचार अथवा मनमानी कैसे हो सकती है? राज्य तो केवल कारखाने स्थापित करके और उनके लिये नियम बनाकर अलग हो जायगा और दूरसे बैठा बैठा उनकी निगरानी करता रहेगा। इस प्रकार व्यक्तियों संघों और कारखानोंकी पूरी स्वतंत्रता केवल बनी ही नहीं रहेगी, बल्कि उसे राज्यकी पूरी पूरी सहायता भी मिलती रहेगी। प्रतियोगिताके फलस्वरूप जो दरिद्रता फैलती और अत्याचार होता है उसे सर्वसाधारणका प्रतिनिधित्व करनेवाली सरकार आपसे आप दूर कर देगी।

श्रम और बुद्धिके पुरस्कारके विषयमें भी ब्लैंकके विचार बहुत ऊँचे थे। वह कहता था कि जो व्यक्ति अपने बुद्धिबलसे समाजकी जितनी बड़ी सेवा करेगा संसारमें आप ही आप उसका उतना ही अधिक आदर होगा। केवल धनसे उसकी सेवाओंका बदला नहीं चुकाया जा सकता। न्यूटनने जो इतना बड़ा आविष्कार किया था उसके बदलेमें उसे कौन कितना पुरस्कार दे सकता था? बुद्धिबलका उपयोग करके फल-सिद्धिके समय मनुष्यका जो समाधान होता है वही उसके श्रमका यथेष्ट प्रति-फल है। हाँ, फिर भी लोगोंको अधिक मानसिक श्रम करनेके कारण पुरस्कारस्वरूप अच्छी रकम दी जा सकती है। योग्यताके अनुसार कम या अधिक पुरस्कार देनेका सिद्धान्त ब्लैंकने केवल आरम्भमें स्वीकृत किया था और वह भी अस्थायी रूपसे और रियायतके तौर-पर, क्योंकि उन दिनों साम्यवादके बहुतसे विरोधी भी थे। सन् १८४८ वाले संस्करणमें, जब कि उसके सिद्धान्तोंने ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त कर लिया था, उसने यह रिआयत हटा ली थी। उस समय उसने लिखा था कि आजकल लोगोंको साम्यवादके विरुद्ध जो झूठी

ातें बतलाई जाती हैं उनके कारण लोगोंको अच्छे काम करनेके लिये वल अधिक वेतनके अतिरिक्त और किसी प्रकारका प्रोत्साहन या ालच नहीं होता, लेकिन आगे चलकर बिलकुल ही नई शिक्षाके ारण लोगोंके विचार बदल जायँगे और तब सब लोगोंकी मजदूरी रावर हो जायगी। यद्यपि इस समय संघ अलग अलग व्यक्तियोंकी निजी पूँजीमेंसे ऋण लेंगे और उसके बदलेमें उन्हें उचित सूद देंगे पर आगे चलकर जब कि स्वयं संघोंके पास यथेष्ट सार्वजनिक धन हो जायगा तब इस प्रकार अलग अलग लोगोंसे ऋण लेनेकी आवश्यकता न रह जायगी। उस समय सच पूछिए तो पूँजीवालोंके उस अत्याचा-रका नाम भी न रह जायगा जो कि आजकल देखनेमें आ रहा है।

सन् १८४८ की क्रान्ति और उपद्रवोंसे लोकमतानुसारी शासनके विकासमें महत्त्वपूर्ण सहायता मिली थी। प्राचीन और माध्यमिक कालमें केवल नागरिकोंको ही प्रतिनिधित्वके अधिकार प्राप्त थे। सभा-ओंमें नागरिक स्वयं उपस्थित होकर बोलते और मत देते थे। अब बड़े बड़े राज्योंमें मतदाताओंका क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है—नाग-रिकोंके अतिरिक्त और भी बहुतसे लोगोंको मत देनेका अधिकार प्राप्त हो गया है; और नागरिक लोक केवल चुने हुए प्रतिनिधियोंके द्वारा ही अपनी राजनीतिक शक्तिका प्रयोग कर सकते हैं। आधुनिक प्रति-निधि-शासनका यह विकास कई स्वरूप प्राप्त करनेके उपरान्त हुआ है। इसके लिये डच लोगोंको स्पेनवालोंके साथ लड़ना पड़ा था। अँगरेजोंको अपने ही देशमें सन् १६४२ और १६८८ में राजक्रा-न्तियाँ करनी पड़ी थीं और इसीके लिये सन् १७७६ में अमेरिकामें और १७८९ में फ्रान्समें राज्यक्रान्ति हुई थी। आरम्भमें जो झगड़े हुए थे उनमें जनसाधारणका बहुत ही थोड़ा हाथ था। श्रमजीवी

लोग तो पहले पहल इस झगड़ेमें, कमसे कम युरोपमें सन् १८४८ में पड़े थे। उस वर्ष सारे पश्चिमी और मध्य युरोपमें बहुतसे क्रान्तिकारक उपद्रव हुए थे। वीनाकी सन्धिके अनुसार युरोपके देशोंका जो विभाग हुआ था वह राजघरानोंके सुभीतेके अनुसार था। इस विभागके विरुद्ध तथा पुराने ढंगकी उन अनुत्तरदायी सरकारोंके विरुद्ध जो कि अपनी प्रजाओंके विचारों और इच्छाओं आदिका कुछ भी ध्यान न रखती थीं, जनसाधारणने पहले पहल सन् १८४८ में ही क्रान्तिकारक उत्पात किए थे।

उन दिनों फ्रान्समें प्रतिनिधिसत्तात्मक एकतंत्री राज्य था परन्तु प्रतिनिधित्वका क्षेत्र बहुत ही संकुचित था—मताधिकार कुछ चुने हुए लोगोंको ही प्राप्त था। फ्रान्समें जो उपद्रव हुए थे वे इसी शासनप्रणालीके विरुद्ध हुए थे। इस राज्यक्रान्तिके लिये पहलेसे कोई भारी तैयारी नहीं हुई थी। स्वयं जो लोग राज्यक्रान्ति चाहते थे अथवा जिन्होंने राज्यक्रान्ति की थी वे लोग भी अचानक इतना बड़ा उपद्रव उठता देखकर चकरा गए थे। लेकिन फिर भी राज्यक्रान्ति हो ही गई और उस राज्यक्रान्तिसे संसारकी उन्नतिमें बहुत बड़ी सहायता मिली; क्योंकि उसीका परिणाम यह हुआ कि संसारमें पहले पहल एक बहुत बड़े देशमें सार्वदेशिक मताधिकारके सिद्धान्तोंपर नवीन शासनकी सृष्टि हुई; और श्रमजीवियोंके दुःखसुखका ध्यान रखनेको सरकार अपना परम कर्तव्य समझने लगी। १८४८ वाली राज्यक्रान्तिमें साम्य लोकमतवादके पक्षसे ब्लैंकने बहुत बड़ा काम किया था। उस समय प्रायः सारे श्रमजीवी उसके हाथमें थे इसीलिये फ्रान्समें जो कामचलाऊ शासनव्यवस्था हुई थी उसमें ब्लैंकको भी एक पद मिला था। उस शासनमें उसके पक्षके और भी कई आदमी थे। लेकिन इतना

सब कुछ होने पर भी, परिस्थितिके इतना अनुकूल होनेपर भी वह कुछ अधिक काम न कर सका । जिस नए उद्देश्यकी सिद्धिके लिये वह कामचलाऊ शासनमें सम्मिलित हुआ था उसका कदाचित् अभीतक समय ही न आया था । व्लैंककी योजनाके अनुसार फ्रान्समें राज्यकी ओरसे कुछ जातीय कारखाने अवश्य खोल दिए गए थे परन्तु उनके सम्बन्धमें और जो जो कार्रवाइयाँ हुई थीं उनसे यही सिद्ध होता था कि सरकारने वे कारखाने व्लैंककी योजनाको केवल बदनाम करनेके लिये ही खोले थे । राज्यक्रान्तिके झगड़ोंके कारण जिन लोगोंके हाथसे काम-धंधा निकल गया था उन्हीं निकम्मे आदमियोंको जातीय कारखानों या शिल्पशालाओंमें अनुत्पादक श्रममें लगा दिया गया था । लेकिन व्लैंकका तात्पर्य यह था कि लोग उत्पादक कार्यमें लगाए जायँ और जो लोग उनमें सम्मिलित हों वे सदाचारी हों । इसके अतिरिक्त व्लैंकके जिन विरोधियोंने मजदूरोंको जातीय शिल्पशालाओंमें कामपर लगाया था उन्होंने अन्दर अन्दर इस उद्देश्यसे मजदूरोंको अपनी ओर मिला रक्खा था कि यदि साम्यवादी दलसे कभी कोई झगड़ा हो तो वे उस दलके लोगोंसे, अपने मालिकोंका पक्ष लेकर लड़ भी जायँ । तात्पर्य यह कि जातीय शिल्पशालाओंके संचालक भी और उनमें काम करनेवाले भी साम्यवाद तथा व्लैंकके विरोधी थे और यही कारण था कि व्लैंककी जातीय शिल्पशालाओंको कुछ भी सफलता न हुई । व्लैंकके प्रस्तावित कुछ संघोंको सरकारकी ओरसे कुछ आर्थिक सहायता अवश्य दी गई थी परन्तु एक तो वह रकम बहुत कम थी और दूसरे वह और और कामोंमें भी लगाई गई थी । बात यह थी कि सरकार व्लैंकके कामोंमें सफलता होने ही नहीं देना चाहती थी, केवल लोगोंको धोखेमें और शान्त रखनेके लिये ही

वह थोड़ा बहुत काम कर रही थी। इन जातीय शिल्पशालाओंके सफल न होनेका एक और कारण यह भी था कि उस समय उपद्रव और उत्पातके कारण सभी जगह अव्यवस्था और बहुत गड़बड़ी थी। वह समय ही ऐसा था जब कि न तो पुराने ढंगपर कोई कारबार चल सकता था और न नए ढंगपर ही। इतना होनेपर भी कुछ संघोंको अवश्य अच्छी सफलता हुई थी जिससे ब्लैंककी बुद्धिमत्ता और उसकी योजनाकी पुष्टि सिद्ध होती है।

सार्वदेशिक मताधिकारके सिद्धान्तपर नई शासनसभाका संगठन हो गया और मईमें उसका अधिवेशन हुआ। अस्थायी सरकारके कुछ लोगोंने साम्यप्रतिनिधित्व सम्बन्धी जो थोड़ा बहुत काम करना चाहा था उसे इस नई शासनसभाने बिलकुल नामंजूर कर दिया और जातीय शिल्पशालाएँ भी बन्द कर दीं। इसके बाद जूनमें पेरिसके दरिद्रों और भूखोंने फिर बलवा किया जिसे सरकारने फिर दबा दिया; लेकिन इस बलवेका उत्तरदायित्व ब्लैंकपर नहीं था और न साम्यके सिद्धान्तोंके साथ उन बलवा करनेवालोंकी सहानुभूति ही थी। यदि साम्यके साथ इस बलवेका कोई सम्बन्ध था तो वह केवल 'बादरायण' था क्योंकि साम्यका उद्देश्य दरिद्रोंका दुःख दूर करना है और दरिद्रोंने यह बलवा किया था।

---

(४) जोसेफ प्राउड्हन।

जोसेफ प्राउड्हनका जन्म सन् १८०९ में एक बहुत ही दरिद्र घरमें हुआ था। बाल्यावस्थामें वह गौएँ चराया करता था। उसने कुछ थोड़ीसी शिक्षा भी पाई थी। इसके बाद वह एक छापेखानेमें कम्पोजीटर और पीछे प्रूफसंशोधक हो गया था। वहीं धीरे धीरे

उसने हिब्रू, ग्रीक और लैटिन आदि भाषाएँ पढ़ लीं और इस प्रकार वह अच्छा विद्वान् हो गया। १८३९ में वह पेरिस चला गया। पेरिस उन दिनों क्रान्तिकारक साम्यवादियोंका अड्डा था। वहीं उसने साम्य-वादके बहुतसे सिद्धान्तोंका ज्ञान प्राप्त किया। सन् १८४० में उसने 'सम्पत्ति क्या है' नामक एक पुस्तक लिखी जिसमें उसने बतलाया था कि दूसरोंके चुराए हुए मालका नाम सम्पत्ति है। इसी विषयका एक लेख लिखनेके कारण उस पर मुकदमा भी चला था पर वह छूट गया। १८४६ में उसने एक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा जो साम्य-वादके सम्बन्धमें था। कुछ दिनोंतक इधर उधर घूमकर और कई तर-हके काम करके अन्तमें १८४७ में वह पेरिस चला गया और वहीं स्थायी रूपसे रहने लगा। यद्यपि १८४७ वाली राज्यक्रान्तिसे वह अप्रसन्न था लेकिन फिर भी वह उसमें सम्मिलित हो गया और कई समाचारपत्रों आदिमें बहुत ही जोरदार भाषामें साम्यसम्बन्धी नए नए सिद्धान्त प्रकाशित करने लगा। उसने प्रस्ताव किया था कि सूद अथवा किराएसे लोगोंको जो आय होती है उसका एक तृतीयांश सरकार करस्वरूप ले ले परन्तु यह प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ। उसने एक ऐसा बंक भी स्थापित करना चाहा था जो बिना सूदके लोगोंको ऋण देता, लेकिन इसमें भी उसे सफलता न हुई। साम्यसम्बन्धी बहुत ही उग्र विचार प्रकट करनेके अपराधमें उसे एक बार तीन बरसकी सजा भी हो गई थी। इसके बाद उसने एक ग्रन्थमें धर्मसं-स्थाओंपर भी बहुत आक्षेप किए थे जिसके कारण उसे ब्रूसेल्स भाग जाना पड़ा था। फ्रान्स लौटने पर उसका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया था लेकिन फिर भी वह बराबर ग्रन्थ और लेख लिखता जाता था। अन्तमें १८६५ में उसकी मृत्यु हो गई।

प्राउड्हनका आचरण बहुत ही शुद्ध और रहन सहन बहुत ही सादी थी। वह बहुत ही सीधा और सच्चा था। तत्कालीन फ्रान्सीसी साम्यवादका वह बहुत विरोधी था, क्योंकि एक तो उस फ्रान्सीसी साम्यवादके सिद्धान्त ऐसे थे जो कार्यरूपमें परिणत न हो सकते थे और दूसरे उससे अनीति और अनाचारकी वृद्धि होती थी। तो भी किसीके साथ उसका व्यक्तिगत राग या द्वेप नहीं था। आर्थिक विषयोंपर उसके विचार बहुत ही गूढ़ और तत्त्वपूर्ण होते थे। वह न्याय, स्वतंत्रता और साम्यका बहुत बड़ा पक्षपाती था। अपने कल्पित आदर्श समाजमें वह सबके लिये समान पुरस्कार रखना चाहता था। उसका यह भी सिद्धान्त था कि कभी वह समय भी आवेगा जब कि सब लोग बुद्धि, योग्यता और गुण आदिमें प्रायः समान हो जायँगे। सम्पत्तिके विषयमें तो उसका यह सिद्धान्त ही था कि यह चोरीका माल है। वह कहता था कि जिसके पास सम्पत्ति होती है वह विना किसी प्रकारका श्रम किए ही सब प्रकारका भोग करता है जोकि बहुत अनुचित है। उसका यह भी सिद्धान्त था कि आधुनिक सामाजिक व्यवस्था एकदमसे नहीं बदली जा सकती, उसका सुधार धीरे धीरे और बहुत दिनोंमें होगा। वह चाहता था कि साधारण सिद्धान्तोंका बराबर अवलम्बन होता रहे, कोई स्कीम न तैयार की जाय, धीरे धीरे सब सुधार आप ही हो जायगा। सूद और किराए आदिकी दरको वह बहुत घट देना चाहता था; और प्रत्येक मनुष्यको स्वतंत्रतापूर्वक अपनी सारी शक्तियोंका विकाश करनेका अवसर देना चाहता था। उसका यह भी मत था कि आगे चलकर किसी शासनव्यवस्था या संस्थाकी कोई आवश्यकताही नहीं रह जायगी। एक मनुष्यका दूसरे मनुष्यपर शासन करना अत्याचार है। सम्पत्तिके

सम्बन्धमें प्राउड्हनके विचार प्रायः ठीक वैसे ही थे जैसे कि पूँजीके सम्बन्धमें मार्क्सके थे। गुलामी जिस प्रकार हत्याके समान है—क्योंकि उससे मनुष्यके सारे सद्गुणोंका नाश हो जाता है—उसी प्रकार सम्पत्ति भी चोरीका माल है क्योंकि उसके द्वारा दूसरोंके श्रमसे उत्पन्न किया हुआ धन बिना किसी परिश्रमके किराए, सूद और मुनाफे आदिके रूपमें छीन लिया जाता है।

जून १८४८ में फ्रान्समें जो रक्तपात हुआ था उसके कारण साम्यवादका आन्दोलन प्रायः बिलकुल ठंढा पड़ गया; यहाँतक कि पेरिसमें भी उसकी विशेष चर्चा न रह गई। अच्छे अच्छे काम करनेवाले लोग या तो कैद हो गए और या तितर-बितर हो गए और बाकी लोगोंका उत्साह मंदा पड़ गया। शासनव्यवस्था भी कुछ ऐसी हो गई जिससे लोगोंके बहुत बड़े बड़े कष्ट कुछ कम हो गए। तीसरे नैपोलियनके समय फ्रान्समें बहुत कुछ शान्ति रही। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय महासभा स्थापित करनेमें बहुतसे फ्रान्सीसियोंने ही बहुत कुछ काम किया था; लेकिन उन दिनों फ्रान्स देशमें उस महासभाके आन्दोलनका भी कुछ प्रभाव दिखाई न पड़ता था।

---

(४) आरम्भिक अँगरेजी साम्यवाद ।



जिन दिनों फ्रान्समें साम्यवादका आन्दोलन हो रहा था उन्हीं दिनों इंग्लैण्डमें भी इस सम्बन्धमें कुछ आन्दोलन होता था; परन्तु वह आन्दोलन विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं था। इंग्लैण्डमें साम्यवादके सिद्धा-न्तोंका सबसे पहले प्रचार करनेवाला प्रसिद्ध महात्मा राबर्ट ओवेन था। ओवेनने पहले पहल जो कुछ काम किया उसके महत्त्वका अनुमान करनेके लिये सबसे पहले इस बातकी आवश्यकता है कि उसके जीवन-कालकी सामाजिक अवस्थाका ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय। अतः हम संक्षेपमें पहले उसी अवस्थाका वर्णन करते हैं।

उन दिनों देशके हिताहितके सम्बन्धमें, उसके स्थानिक अथवा राष्ट्रीय शासन आदिके सम्बन्धमें, श्रमजीवियोंको कुछ भी कहने सुन-नेका अधिकार न था। न तो उन्हें किसी प्रकारकी शिक्षा दी जाती थी और न उनके स्वास्थ्य आदिका कोई ध्यान रक्खा जाता था। खेतोंमें काम करनेवाले मजदूरोंको बहुत ही थोड़ी मजदूरी मिलती थी। नई नई मशीनों आदिके प्रचारके कारण बहुतसे कारीगर और दस्त-कार बिलकुल दरिद्र हो गए थे। कारखानेमें काम करनेवाले मजदू-रोंको प्रतिदिन बहुत अधिक समयतक काम करना पड़ता था। स्त्रियों और यहाँतक कि पाँच छः वर्षके बच्चोंसे भी काम लिया जाता था

और उन्हीं स्त्रियों और बच्चोंकी प्रतिद्वंद्विताके कारण वयस्क पुरुषोंको भी विवश होकर थोड़े वेतन पर ही काम करना पड़ता था। छोटे छोटे बच्चोंसे भी उतने ही समयतक काम लिया जाता था जितने समयतक वयस्क पुरुष काम करते थे। कभी कभी उन बच्चोंके साथ बहुत ही अत्याचारपूर्ण व्यवहार किया जाता था। इन्हीं सब कारणोंसे श्रमजीवी वर्गमें बहुत अधिक दरिद्रता और दुराचार फैल गया था और लोगोंका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था। उस समय इंग्लैण्डवालोंकी इस दरिद्रता और कष्टने एक बहुत ही भीषण जातीय प्रश्नका रूप धारण कर लिया था। इसी विकट जातीय प्रश्नको ओवेनने सबसे पहले देशके सामने विचारार्थ उपस्थित किया था।

राबर्ट ओवेनका जन्म सन् १७७१ में एक छोटे व्यापारीके घर हुआ था। बाल्यावस्थामें उसे कोई विशेष शिक्षा नहीं मिली थी। चौदह पन्द्रह वर्षकी अवस्थातक उसे इधर उधर कई फुटकर काम करने पड़े थे। इसके बाद वह मैञ्चेस्टर चला गया जहाँ उसकी उन्नति बहुत जल्दी जल्दी होने लगी। उन्नीस वर्षकी अवस्थामें वह एक सूत कातनेकी बहुत बड़ी मिलका मैनेजर हो गया जिसकी थोड़े ही समयमें उसने आश्चर्यजनक उन्नति कर दिखलाई। इसके बाद वह एक मिलका हिस्सेदार हो गया और कुछ दिनों बाद उसने ग्लासगोकी मिलके मालिककी लड़कीसे विवाह करके उस मिलमें साझा भी कर लिया और उसे बहुत अच्छे ढंगसे चलाना आरम्भ किया। उस मिलमें दो हजार आदमी काम करते थे जिनमेंसे एक चौथाई ऐसे बालक थे जो अनाथालयोंसे लाए गए थे। वे सब बहुत ही नीच श्रेणीके लोग थे। क्योंकि उच्च श्रेणीके लोग बहुत अधिक समयतक काम करना पसन्द नहीं करते थे। मिलके उन कर्मचारियोंमें चोरी,

शराबखोरी आदि अनेक दुर्गुण बहुत अधिक थे और उनकी शिक्षा और स्वास्थ्य आदिकी ओर कभी कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। ओवेनने उस समाजकी दशामें बहुत अधिक सुधार किया। उनके रहनेके स्थान साफ और हवादार करा दिए और उन्हें व्यवस्था, स्वच्छता और मितव्यय आदिकी शिक्षा दी। उसने एक भाण्डार भी खोल दिया जिसमें लोगोंको बहुत अच्छी चीजें प्रायः लागतके दामपर मिलती थीं; और मद्यकी बिक्री बहुत मर्यादित कर दी। छोटे बच्चोंकी शिक्षाका भी केवल अपने ही प्रान्तमें नहीं बल्कि सारे ग्रेटब्रिटेनमें उसने बहुत अच्छा प्रबन्ध किया। इन सब बातोंके कारण उसके प्रति सर्वसाधारणकी श्रद्धा और भक्ति बहुत बढ़ गई और मिलको बहुत मुनाफा भी होने लगा। लेकिन मिलके दूसरे हिस्सेदार उससे असन्तुष्ट रहते थे, क्योंकि उसके कई कार्य बहुत व्ययसाध्य होते थे। इसी लिये सन् १८१३ में उसने एक नया कारखाना स्थापित किया जिसमें कुछ ऐसे परोपकारी महात्मा हिस्सेदार हो गए जो अपनी पूँजीपर केवल पाँच रुपए सैकड़ा मुनाफा लेनेपर ही राजी हो गए थे।

हितकर हो। सन् १८१६ में उसने न्यूलैनार्कमें जो विद्यालय खोला था उसमें उसने अपने शिक्षासम्बन्धी विचारोंको प्रायः पूर्ण रूपसे परिणत कर दिखलाया था।

सन् १८१९ में इंग्लैण्डमें जिस समय कारखानोंके सम्बन्धमें एक नया कानून बननेवाला था उस समय वह उसका पूरा पक्षपाती था। परन्तु जब वह कानून पास हो गया तब उसे बहुत निराशा हुई। बड़े सरकारी कर्मचारियों और मंत्रियों आदिसे वह इसी सम्बन्धमें प्रायः भेंट और पत्रव्यवहार आदि किया करता था। न्यूलैनार्कमें जहाँ कि वह रहता था और जहाँ उसकी मिल थी प्रायः बड़े बड़े समाजसुधारक, राजनीतिज्ञ और राजकुलके लोग आया करते थे। उनमेंसे एक निकोलस भी था जो पीछे रूसका सम्राट् हुआ। वे सब लोग ओवेनके विद्यालयकी व्यवस्था और शिक्षाप्रणाली देखकर बहुत ही प्रसन्न होते थे। बालकों और वयस्क पुरुषोंमें आदर्श सदाचार देखनेमें आता था। मद्यपान, चोरी और परस्त्रीगमन आदिका कहीं नाम भी न था। मिलमें काम करनेवाले मजदूरों और ओवेनमें परस्पर पूर्ण सुहृद्भाव और सद्व्यवहार था। मिलके सब काम बहुत ही व्यवस्था और उत्तमतापूर्वक होते थे और हिस्सेदारोंको मुनाफा भी अच्छा मिलता था।

साम्यवादके सम्बन्धमें ओवेनका कार्य पहले पहल सन् १८१७ में आरम्भ हुआ था। उस समय दरिद्रोंके सम्बन्धमें प्रसिद्ध कानून (Poor Law) बनानेके लिये हाउस आफ कामन्सने एक समिति बनाई थी। उस समितिके पास ओवेनने कुछ लेख लिखकर भेजे थे। उन्हीं दिनों नैपोलियनके भीषण युद्धोंका अन्त हुआ था जिसके परिणामस्वरूप व्यापारकी दशा बहुत बिगड़ी हुई थी और देशमें

दरिद्रता बहुत बढ़ गई थी। उस समय इस दुर्दशाकी ओर सारे देशका ध्यान लगा हुआ था। इस दुर्दशाके युद्धसम्बन्धी कारणोंका अच्छी तरह वर्णन करनेके उपरान्त ओवेनने बतलाया था कि दरिद्रताका मुख्य कारण यह है कि मजदूरों और कारीगरोंको मशीनोंके कामका मुकाबला करना पड़ता है। इसलिये यह दरिद्रता तभी दूर हो सकती है जब कि सब लोग मिलकर काम करें और मशीनोंको प्रधानता न दी जाय। उसने यह भी बतलाया था कि हजार डेढ़ हजार एकड़ भूमिमें एक बड़ी चौकोर इमारत बनाई जाय जिसमें प्रायः बारह बारह सौ आदमियोंके वर्ग रक्खें जाय। इन सब लोगोंके लिये एक ही सार्वजनिक भोजनागार हो। प्रत्येक परिवारके रहनेके लिये अलग अलग कमरे हों और मातापिता अपने बालकोंको तीन वर्षकी अवस्थातक अपने पास रख सकें; इसके उपरान्त वे अपने वर्गके सार्वजनिक विद्यालयके सपुर्द कर दिए जायँ और अपने मातापितासे केवल भोजनके समय अथवा कुछ दूसरे विशिष्ट अवसरोंपर ही मिलने पावें। ये वर्ग चाहे धनवान् स्थापित करें चाहे म्यूनिसिपैलटियाँ स्थापित करें और चाहे राज्य स्थापित करें; परन्तु प्रत्येक अवस्थामें उसका निरीक्षण और प्रबन्ध बहुत ही योग्य तथा सदाचारी मनुष्योंके द्वारा हो। काम भी सब लोग मिलकर करें और उसका लाभ भी सब लोग मिलकर उठावें। आगे चलकर ओवेनने अपने इन विचारोंमें थोड़ा बहुत परिवर्त्तन भी किया था। उसका मत था कि पाँच सौ से लेकर तीन हजार आदमियोंतकका एक अच्छा काम करनेवाला समाज स्थापित हो सकता है। ऐसे समाजका मुख्य काम तो खेती बारी करना हो परन्तु साथ ही उसमें और भी अनेक आवश्यक और उपयोगी कार्योंकी व्यवस्था रहे।

साथमें कुछ अच्छी अच्छी मशीनें भी हों। वह वर्ग अपनी सारी आवश्यकताएँ यथासाध्य आप ही पूरी कर ले और किसी दूसरे वर्गकी अथवा बाहरी सहायताकी अपेक्षा न करे; उसमें सर्वोत्तम शिक्षाका प्रबन्ध रहे और बढ़िया मशीनोंकी सहायतासे अच्छी अच्छी चीजें तैयार हों। तात्पर्य यह कि नागरिक और ग्राम्य दोनों जीवनोंकी अच्छीसे अच्छी बातोंका उनमें समावेश किया गया था। उसका यह भी विचार था कि आगे चलकर ज्यों ज्यों इन वर्गोंकी संख्या बढ़ती जाय त्यों त्यों उनके दस दस, सौ सौ और हजार हजारके अलग समूह भी बनते जायँ और किसी समय सारे संसारमें ऐसे वर्ग स्थापित हो जायँ और वे सबके सब मिलकर अपना एक प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित कर लें।

दरिद्रता दूर करनेके उसने जो उपाय बतलाए थे उनके कारण लोग उसपर बहुत प्रसन्न हुए। टाइम्स और मार्निंग पोस्ट आदि अच्छे अच्छे समाचारपत्रों तथा देशके बड़े बड़े नेताओंने ओवेन और उसके उपायोंके सम्बन्धमें बहुत अच्छे विचार प्रकट किये थे। यहाँतक कि महारानी विक्टोरियाके पिता ड्यूक आफ केन्ट भी उसके बड़े मित्र हो गए थे। उन दिनों उसकी बातोंको सारा देश बड़े ध्यानसे सुनता था और सम्भव था कि उसके विचारों और कार्योंमें बहुत अच्छी सफलता होती। लेकिन इसी बीचमें लन्दनकी एक बहुत बड़ी सार्वजनिक सभामें उसने ईसाई धर्मके सभी प्रचलित स्वरूपोंपर बहुत अधिक आक्षेप किया जिसके कारण लोग उसे नास्तिक समझने लगे और उसे सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगे। परन्तु ओवेन अपनी धुनका पक्का था और वह चाहता था कि किसी प्रकार परीक्षाके लिये एक बार कहीं एक वर्ग स्थापित हो जाय। सन् १८२५ में काम्ब नामक

उसके एक शिष्यने ग्लासगोके निकट एक गाँवमें उसके विचारोंके अनुसार एक वर्ग स्थापित किया था और स्वयं आवेनने भी उसी वर्ष अमेरिकामें एक ऐसा ही वर्ग स्थापित किया था । लेकिन इन दोनों ही वर्गोंमें काम करनेवाले लोग अच्छे और समझदार नहीं थे इसलिये दो ही वर्ष बाद दोनों वर्ग टूट गए । इसी बीचमें हिस्सेदारोंसे झगड़ा होनेके कारण ओवेनने न्यूलैनार्क मिलसे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और वह अमेरिकासे लौटनेपर लन्दनमें ही रहने लगा । उस समयतक उसका बहुत कुछ धन उसके हाथोंसे निकल चुका था और अब वह केवल साम्यवादसम्बंधी आंदोलन करनेमें ही अपना सारा समय बिताता था । १८३२ में उसने सिक्कोंकी जगह पर एक नये प्रकारके नोट चलाए थे जो श्रमसम्बन्धी थे। पदार्थोंके विनिमयके समय आदान-प्रदानमें इन्हीं नोटोंका व्यवहार होता था । अँगरेजीके 'सोशलिज्म' शब्दका भी पहले पहल उसीने प्रचार किया था और उसने समस्त राष्ट्रोंकी समस्त जातियोंकी जो सभा स्थापित की थी उसीके वाद-विवादमें पहले पहल इस शब्दका प्रयोग होता था ।

ओवेनने धार्मिक सम्प्रदायोंपर तो आक्षेप किए ही थे परन्तु विवाहके सम्बन्धमें भी उसके सिद्धान्त बहुत कुछ शिथिल और दोषपूर्ण थे जिसके कारण लोग उससे बहुत चिढ़ गये थे। सन् १८२९ में दो स्थानोंपर दो और वर्ग स्थापित हुए थे जिनमेंसे एकको बहुत अच्छी सफलता हुई थी । परन्तु जिस जमीन्दारने वर्गके लिये अपनी जमीन दी थी उसने जूएमें अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी जिसके कारण तीन चार वर्ष बाद वह वर्ग ही टूट गया । दूसरे वर्गको कुछ भी सफलता नहीं हुई थी । ओवेनके इतने अधिक आन्दोलन और प्रयत्नका सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ था कि लोगोंका ध्यान सह-

योग (Co-operation) के सिद्धान्तोंकी ओर आकृष्ट हो गया था। परन्तु कुछ दिनोंके लिये वह आन्दोलन भी शिथिल पड़ गया। अपने अन्तिम जीवनमें ओवेनका आत्मवादपर दृढ़ विश्वास हो गया था। अन्तमें सन् १८५८ में ८७ वर्षकी अवस्थामें उसका शरीरान्त हो गया।

ओवेनको अपने वर्ग स्थापित करनेमें जो विफलता हुई थी उसके अनेक कारण थे। साम्यवादके प्रचारमें जो सिद्धान्तसम्बन्धी आन्तरिक कठिनाइयाँ थी उनपर उसका ध्यान नहीं गया था। इसके अतिरिक्त उसने धर्मपर भी अनेक आक्षेप किए थे और विवाहसम्बन्धी अनेक शिथिल विचार प्रकट किए थे। वह यह भी समझता था कि सारी सामाजिक व्यवस्था तुरंत ही परिवर्तित की जा सकेगी। पुरानी व्यवस्थाका क्षणभरमें अंत हो जायगा और ऐसी नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जायँगी जिनमें लोग बिलकुल निःस्वार्थ और समझदार हो जायँगे।

ओवेनने माल्थसके प्रजावृद्धिवाले सिद्धान्तका भी खंडन किया था। उसने बतलाया था कि संसारकी जनसंख्यामें अबतक चाहे कितनी ही अधिक वृद्धि क्यों न हुई हो परन्तु फिर भी नई नई मशीनों आदिके कारण संसारकी सम्पत्ति उस प्रजावृद्धिकी अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गई है। इसलिये प्रजोत्पत्ति रोकनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ साम्यके युक्तियुक्त सिद्धान्तोंके अनुसार लोगोंमें उस सम्पत्तिका उचित विभाग होना आवश्यक है। इस बातका भय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि संसारमें कभी वह समय भी आवेगा जब कि प्रजावृद्धिके कारण लोगोंको रहनेका स्थानतक न मिलेगा।

चाहे साम्यसम्बन्धी कार्योंमें ओवेनको यथेष्ट सफलता न हुई हो तौ भी यह मानना पड़ेगा कि सुधारसम्बन्धी अनेक कामोंमें वह

सबसे पहले नेता बना था। बहुत ही छोटे छोटे बच्चोंके लिये उसने इंग्लैण्डमें स्कूल स्थापित किए थे, कारखानोंमें काम करनेका समय घटवाया था, कारखानोंके सम्बन्धमें अनेक उपयोगी कानून बनवाए थे और सहयोग प्रथाका सबसे पहले आरम्भ किया था। यद्यपि वह सीधा, सच्चा और स्पष्टवादी था तौ भी उसमें कुछ व्यक्तिगत दोष अवश्य थे। उन्हीं दोषोंके कारण वह अपना उद्देश्य सिद्ध न कर सका था। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि आजन्म वह अपने उद्देश्योंकी सिद्धिमें उतनी तत्परता और अध्यवसायके साथ लगा रहा जितनी तत्परता और अध्यवसायके साथ अधिकांश लोग धन कमानेमें लगे रहते हैं।

सन् १८३२ में इंग्लैण्डमें जो राजनीतिक सुधार हुए थे उनका प्रायः वही परिणाम हुआ जो जुलाई १८३० वाली क्रान्तिका फ्रान्समें हुआ था। पूँजीदारों अथवा मध्यमवर्गके लोगोंके हाथमें अधिकार आ गया और उन लोगोंने श्रमजीवियोंको अलग करके अपना एक स्वतंत्र वर्ग बनाना आरम्भ किया। श्रमजीवी लोग इससे असन्तुष्ट होकर कुछ नए राजनीतिक सुधार माँगने लगे। वे कहते थे कि देशके सब लोगोंको मत देनेका अधिकार प्राप्त हो। केवल धनसम्पत्तिके विचारसे लोगोंको पार्लिमेन्टके सदस्य बनानेकी जो प्रथा है वह उठा दी जाय। सब लोगोंको प्रतिनिधित्वके समान अधिकार प्राप्त हों। यह आन्दोलन प्रायः १५—१६ वर्षतक रहकर ठंढा पड़ गया था। इन्हीं आन्दोलन-कारियोंकी बातोंका अप्रैल १८४८ में मारिस और उसके मित्रोंपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि उन्होंने सन् १८४८ में मार्निंग क्रानिकल समाचारपत्रमें लन्दनके दरिद्र श्रमजीवियोंकी अवस्थाका बहुत ही मर्मस्पर्शी वर्णन प्रकाशित किया था। इन्हीं दिनों किंग्स्लेके

कुछ प्रसिद्ध उपन्यासोंमें भी प्रतियोगिता आदिके दोष दिखलाए गए थे और साम्यके सिद्धान्तोंपर भी कुछ प्रकाश डाला गया था। परन्तु मारिस और किंग्स्ले आदिका सिद्धान्त था कि यदि सामाजिक सुधारोंके लिये ईसाई धर्मके मुख्य मुख्य तत्त्वोंसे सहायता ली जाय तो साम्यवादके सिद्धान्तोंका सहजमें ही प्रचार हो सकता है। अर्थात् वे लोग साम्यवादको धार्मिक स्वरूप देना चाहते थे और इसीलिये उनके साम्यवादका नाम 'ईसाई साम्यवाद' पड़ गया। उन लोगोंने उत्पादन तथा विभागके कामोंके लिये कुछ सहयोग समितियाँ भी स्थापित की थीं जिनमेंसे उत्पादक सहयोग समितियोंकी तो बहुत ही थोड़ी उन्नति हुई थी परन्तु माल बेचनेवाली सहयोग समितियोंने शीघ्र ही बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर ली थी।

५ जर्मन साम्यवाद।



सन् १८५२ में फ्रान्स और इंग्लैण्डके साम्यवादसम्बन्धी आन्दो-लन बिलकुल ठंढे पड़ गए और संसारके देखनेमें उनका कोई महत्त्व-पूर्ण परिणाम नहीं आया। हाँ, उसी समयसे जर्मन और रूस देशों अवश्य बड़े बड़े साम्यवादी नेता उठ खड़े हुए जिन्होंने संसार साम्यवादकी जड़ बहुत ही दृढ़तापूर्वक जमाने और उसे वर्तमान अव-स्थातक पहुँचानेमें बहुत बड़ी सहायता दी। यद्यपि सन् १८४ वाली क्रान्तिमें और उससे पहले भी जर्मन साम्यवादियोंने बहुत कु कार्य किया था परन्तु उनके जिन कार्योंने उनका नाम साम्यवाद इतिहासमें अमर कर दिया वे कार्य उनके द्वारा इस क्रान्तिके उपरान्त ही हुए थे, इसी लिए अबतक इस पुस्तकमें उनका वर्णन नहीं आय था। इस प्रकरणमें उन्हीं जर्मन साम्यवादियोंके कार्योंका उल्ले किया जायगा।

(१) लैंसेल।

प्रधान जर्मन साम्यवादियोंमें कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंजेल्स, लैसे और राडवर्टसके नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं। इनमेंसे फर्डिनेण्ड लैसेलका नाम और कार्य और भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसीने जर्म नीमें साम्य-प्रतिनिधित्व (Social Democracy) का आन्दोल आरम्भ किया था। उसका जन्म ब्रेस्ला नगरमें सन् १८२५ में ए

बहुत बड़े धनी व्यापारीके घरमें हुआ था। पिता उसे व्यापारमें लगाना चाहते थे परन्तु उसका चित्त उसमें न लगता था, अतः वह एक विश्वविद्यालयमें दर्शनशास्त्र तथा भाषा-विज्ञान आदिका अध्ययन करने लगा। राजनीतिका भी वह बहुत अच्छा ज्ञाता हो गया था। १८४५ में अध्ययन समाप्त करके वह कुछ दिनोंके लिये पेरिस चला गया था। वहाँसे लौटनेपर १८४६ में उसने एक ऐसी धनिक स्त्रीकी सहायता की थी जिसे उसके पतिने अपने घरसे निकाल दिया था। उस स्त्रीका नाम काउण्टेस हैजफेल्ट था। उसकी सहायताके लिये लैसेलको कानून भी पढ़ना पड़ा था। ३६ अदालतोंमें उस स्त्रीका मुकदमा लड़कर उसने उसके पतिके साथ उसका राजीनामा कराया और उसके भरण-पोषणके लिये सम्पत्ति दिलाई थी। इस कार्यमें प्रायः आठ वर्षतक उसे अनेक विपत्तियाँ और साथ ही बदनामियाँ भी सहनी पड़ी थीं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि उसने उस स्त्रीकी सहायता एक तो उसे कष्टसे छुड़ानेके लिये और दूसरे अपनी आर्थिक स्थितिके सुधारनेके लिये की थी। आरम्भमें यह ही अपने पाससे उसे कुछ धन दिया करता था; पर पीछे जब उसे जायदाद मिल गई तब वह पूर्व-निश्चयके अनुसार इसे प्रायः ६०० पाउण्ड वार्षिक देने लगी थी।

सन् १८४८ में ही वह कार्ल मार्क्स और एंजेल्स आदिके मतका अनुयायी हो गया था परन्तु उस समय उसके कार्य गौण और प्रान्तीय ही हुआ करते थे। उन्हीं दिनों एक बार उसे अधिकारियोंका विरोध करनेके अपराधमें छः मासकी सजा भी हो गई थी। उसी समय उसने ऐसे व्याख्यान तैयार किए थे जिन्होंने तत्कालीन बड़े बड़े विद्वानोंपर उसकी योग्यता अच्छी तरह प्रमाणित कर दी थी। परन्तु ये

व्याख्यान उस समय सर्वसाधारणमें दिए नहीं गए थे । उन्हीं व्याख्यानोंमें साम्य और राजनीतिके सम्बन्धमें उसके सबसे अच्छे विचार भरे हुए थे । उन्हींमें उसने यह बात भी स्पष्ट रूपसे कह दी थी कि मैं साम्य-प्रतिनिधित्ववाले प्रजातंत्रका कट्टर पक्षपाती हूँ । १८४८ वाले झगड़ोंमें सम्मिलित रहनेके कारण राज्यकी ओरसे पहले ही उसे बर्लिनमें रहनेकी मनाही हो चुकी थी; अतः १८५९ तक तो वह इधर उधर ही रहा परन्तु १८५९ में वह भेस बदलकर बर्लिन पहुँचा और वहाँ उसने उद्योग करके राजासे बर्लिनमें रहनेकी आज्ञा प्राप्त कर ली । उसी वर्ष उसने 'इटलीका युद्ध और प्रूशियाका उद्देश्य' नामक एक छोटीसी पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें उसने कहा था कि फ्रान्स और आस्ट्रियाके युद्धमें प्रूशियाको आस्ट्रियाकी रक्षा नहीं करनी चाहिए बल्कि फ्रान्सकी सहायता करनी चाहिए; क्यों कि जर्मनीमें विरोध बढ़ानेवाला और उसे दुर्बल करनेवाला आस्ट्रिया ही है । यदि फ्रान्स इस समय आस्ट्रियाका बल तोड़ देगा तो जर्मनीमें एकता हो जायगी और प्रूशियाका प्रभुत्व भी बढ़ जायगा । जब अन्तमें बिस्मार्कने यही काम किया था तब तो इसकी उपयोगिता सब लोगोंके समझमें आ गई थी; परन्तु जिस समय लैसेलने यह मत प्रकट किया था उस समयतक इस बातकी ओर किसीका ध्यान भी नहीं गया था । इससे सिद्ध होता है कि लैसेल कितना दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था ।

हम पहले कह आए हैं कि हैजफेल्टके मुकदमेके लिये लैसेलने कानूनका बहुत अच्छी तरह अध्ययन किया था। कानूनका यह अध्ययन पीछे उसके बहुत काम आया। इसीकी सहायतासे उसने १८६१ में एक ग्रन्थ प्रकाशित किया था जिसका विषय था—अर्जित अधिकारोंकी प्रणाली (System of Acquired Rights)। इसमें

उसने वहुत ही योग्यतापूर्वक यह दिखलाया था कि आरम्भसे अवतक अर्जित अधिकारोंकी वृद्धि और रक्षा आदिके सम्बन्धमें लोगोंके कैसे कैसे विचार रहे हैं और उनके लिये उन्होंने कैसे कैसे कानून आदि बनाए हैं। इस सम्बन्धमें उसने जो नवीन सिद्धान्त और विचार स्थिर किए थे वे बहुत बड़ी क्रान्ति उपस्थित करनेवाले थे। उनका यह ग्रन्थ कानूनके क्षेत्रमें उसके राजनीति, अर्थनीति, साम्य आदि अन्यान्य विषयोंके ग्रन्थोंकी अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ा चढ़ा हुआ माना जाता है। लेकिन अपने साम्यसम्बन्धी आन्दोलनमें उसने अपने इस ग्रन्थमें प्रतिपादित सिद्धान्तोंकी केवल एक ही अवसरपर सहायता ली थी।

अवतक लोग यही समझते थे कि लैसेलने दो वहुत ही विद्वत्ता-पूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं और एक असाधारण मुकदमेकी पैरवी करके उसे जीता है। पर अब उसके वे कार्य आरम्भ हुए जिन्होंने उसका नाम इतिहासमें अमर कर दिया। १८४८ वाली क्रान्तिमें उसने जो थोड़ा बहुत काम किया था उसीसे उसकी प्रवृत्ति, कार्य-प्रणाली और योग्यता आदिका पूरा पूरा पता लग जाता था। परन्तु अभीतक उसे अच्छी तरह काम करनेका कोई अवसर नहीं मिला था। अब संयोग-वश उसे एक अवसर मिल गया जिसका उसने पूरा पूरा सदुपयोग किया।

सन् १८६१ में राजा प्रथम विलियम प्रूशियाके राजसिंहासनपर बैठा और १८६२ में बिस्मार्क वहाँका प्रधान मंत्री बना। उस समय सारे जर्मनीमें नवीन जीवनका संचार हो रहा था। दार्शनिक विचारोंसे विमुख होकर जर्मन जाति अपने जातीय जीवनकी रक्षाकी चिन्तामें लगने लगी थी। सन् १८६१ में ही कुछ उदार-मत-वादी जर्मनोंने अपना एक नया दल खड़ा कर लिया था जो Progressvist कहलाने

लगा था। नए शासक और अधिकारी समझते थे कि जर्मनीकी इस कायापलटमें सबसे बड़ी सहायता प्रूशियाकी सेनासे मिलेगी। लेकिन जब उस सेनाकी नए सिरेसे व्यवस्था करनेका प्रश्न आया तब अधिकारियों और उन उदार-मतवादियोंमें भारी झगड़ा खड़ा हो गया। उदार-दलवालोंको बिस्मार्ककी नीति पसन्द नहीं थी इसलिये वे राज्यके कार्योंका विरोध करने और उनमें बाधा डालने लग गए। जिस समय प्रूशिया राज्य और उदार मतवादियोंमें यह भयंकर वैर-विरोध आरम्भ हुआ उसी समय बीचमें लैसेल पहुँच गया। उस समय उसने कई ऐसे व्याख्यान दिए और पुस्तिकाएँ प्रकाशित कीं जिनमें उदार दलवालोंकी भी भूल बतलाई गई थी और सरकारको भी काम करनेका नया मार्ग दिखलाया गया था। एक व्याख्यानमें उसने बतलाया था कि शासन-संस्था क्या है और उसका क्या स्वरूप होना चाहिए। उसने यह भी बतलाया था कि कि प्रूशिया राज्यके पास इस समय अच्छी सेना तैयार है, अतः केवल मौखिक विरोध और वाद-विवादका कोई फल नहीं हो सकता। यदि सरकारका सचमुच विरोध करना हो तो पहले देशकी राजनीतिक अवस्था स्पष्ट रूपसे बतला देनी चाहिए और चेम्बर (Chamber) से इस्तीफा दे देना चाहिए। क्योंकि ऐसी दशामें चेम्बरके सदस्य बने रहना इस बातको स्वीकृत करना है कि सरकार जो कुछ करती है वह नियमानुकूल है। यदि लोग चेम्बरसे अलग हो जायँगे तो सरकारको विवश होकर उनकी बात माननी पड़ेगी, क्योंकि सर्वसाधारणकी इच्छाके विरुद्ध कभी कोई सरकार ठहर ही नहीं सकती। इसके उपरान्त लैसेलने एक पुस्तिका छपवाई थी जिसमें यह बतलाया था कि मैं केवल सत्य और न्यायका पक्षपाती हूँ, 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' मेरा सिद्धान्त

नहीं है। और सत्य अथवा न्याय केवल लोकमतानुसारी शासनके पक्षमें ही रहेगा और अन्तमें जीत भी उसीकी होगी।

परन्तु लैसेलकी इन सब बातोंका सरकारकी कार्रवाइयोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह प्रूशियाकी चेम्बरोंकी सहमतिके बिना ही सेनाओंका पुनः संगठन करने लगी। उदार दल भी सरकारकी इस नीतिका बराबर विरोध करता रहा पर फल कुछ भी न हुआ। अन्तमें जब १८६६ में प्रूशियाने आस्ट्रियापर भारी विजय प्राप्त की तब लोगोंको बिस्मार्ककी नीतिकी उपयोगिता मालूम हो गई। लेकिन लैसेलसे सरकार भी असन्तुष्ट हो गई और उदारदल भी रुष्ट हो गया। अब लैसेल फिर अपने स्वतंत्र मार्गपर चलने लगा। १८६२ में उसने एक और व्याख्यान दिया जिसमें बतलाया था कि इतिहासका एक नया युग आरम्भ हो रहा है जिसमें श्रमजीवियोंकी प्रधानता रहेगी। इसके लिये उसे सरकारसे १५ पाउण्ड जुरमाना भी हुआ था। परन्तु सर्वसाधारणमें उसकी बहुत अधिक प्रतिष्टा तथा प्रसिद्धि हो गई और लोग सरकार तथा उदार-दलसे असन्तुष्ट हो गए। भला जो उदार-दल अथवा सरकार लोकमतानुसारी शासनके सिद्धान्तोंको स्वीकृत न करती उनसे लोग क्यों कर सन्तुष्ट रह सकते थे? अपने इस असन्तोषको प्रकट करनेके लिये कुछ लोगोंने लेप्सिक नगरमें एक सभा इस उद्देश्यसे स्थापित की थी कि श्रमजीवियोंकी एक बड़ी कांग्रेस की जाय। उस समय लैसेलने एक 'खुली चिट्ठी' प्रकाशित की जिसमें ऐसे राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सिद्धान्त बतलाए थे जो श्रमजीवियोंके लिये नया युग उपस्थित करनेमें पूर्ण रूपसे मार्ग-दर्शक थे। उसने बतलाया था कि श्रमजीवियोंको अपना एक स्वतंत्र राजनीतिक दल बनाना चाहिए, परन्तु राजनीतिक सुधारोंको गौण

और अपनी दशाके सुधारको प्रधान उद्देश्य बनाना चाहिए। आजकल मजदूरीकी जो प्रथा है वह लोगोंकी दशा सुधारनेमें बाधक होती है। सार्वदेशिक मताधिकारके सिद्धान्तपर शासन संस्था अथवा सरकारका संगठन होना चाहिए और उस सरकारको ऐसे समाज तथा कारखाने आदि स्थापित करने चाहिए जिनमें श्रमजीवियोंको अपने श्रमका पूरा पूरा प्रतिफल मिला करे। लेप्सिककी कमेटीने लैसेलके ये सब सिद्धान्त स्वीकृत कर लिए और उससे प्रार्थना की कि आप हमारी सभामें आकर व्याख्यान दें। तदनुसार लैसेलके व्याख्यान देनेपर सब लोगोंने प्रायः एक स्वरसे उसके पक्षमें वोट दिया। इसके उपरान्त दो दूसरे स्थानोंपर लैसेलने दो और व्याख्यान दिये और अपने विरोधी दलके लोगोंको पक्षमें करके उनसे अपने लिये वोट लिया। और तब उसने २३ मई १८६३ को अखिल जर्मन श्रमजीवी महासभाकी स्थापना की। इस सभाका केवल एक ही उद्देश था—सार्वदेशिक मताधिकार प्राप्त करना। लैसेल ही पहले पहल पाँच वर्षके लिये इस महासभाका सभापति चुन लिया गया। वह अबतक केवल अपने व्यक्तिगत विचार ही प्रकट किया करता था, परन्तु अब वह एक महासभाका सभापति और प्रतिनिधि हो गया था और उसने एक बिलकुल ही नया आन्दोलन आरम्भ कर दिया था। यद्यपि आरम्भमें इस महासभाके सदस्योंकी संख्या बहुत ही थोड़ी थी परन्तु फिर भी वह अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये, अस्वस्थ होनेपर भी, सिरतोड़ परिश्रम करता था। प्रायः तीन मासमें उसने दिनरात परिश्रम करके अर्थशास्त्रसम्बन्धी एक बहुत बड़ा ग्रन्थ भी तैयार किया था। उस ग्रन्थकी लेखशैली और वाक्य-रचनासे ही पता चलता है कि यह बहुत जल्दीमें लिखा गया है। इस प्रकार प्रायः दो वर्षतक बहुत अधिक परिश्रम

करनेके कारण उसका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। परन्तु विश्राम करनेसे पहले उसने एक बार देशमें घूम घूमकर श्रमजीवियोंकी दशाका ज्ञान प्राप्त करना और उनपर अपने विचार प्रकट करना निश्चित किया। जहाँ जहाँ वह गया वहाँ वहाँ राजाओंका सा उसका सम्मान हुआ। स्त्रियाँ और बच्चेतक भीड़ चीरते हुए उसके चरणोंतक पहुँचते थे और श्रद्धापूर्वक अभिवादन करते थे। कारण यह था कि लैसेलने उन श्रमजीवियोंमें जागृति उत्पन्न की थी, उन श्रमजीवियोंमें नवीन जीवनका संचार किया था जो इधर कई शताब्दियोंसे दुर्दशा भोगते भोगते अपने उद्धारकी ओरसे बिलकुल निराश हो गए थे। जर्मनीके उच्च राजनीतिक क्षेत्रमें बराबर एक पर एक अनेक परिवर्तन हुए थे, अनेक शत्रु और विजेता आए और थोड़े थोड़े दिनोंके बाद चले गए थे, परन्तु बेचारे श्रमजीवियोंके कष्टोंकी ओर कभी किसीका ध्यान ही नहीं गया था। उन सब शत्रुओं और विजेताओंके सुखकी सामग्री इन्हीं श्रमजीवियोंको एकत्र करके देनी पड़ती थी और स्वयं कष्ट और दुर्दशामें अपना जीवन बिताना पड़ता था। उनपर बराबर नए नए अत्याचार होते थे, उन्हें बराबर ऐसे ऐसे युद्धोंमें सम्मिलित होना पड़ता था जिनमें उनका तनिक भी स्वार्थ न होता था। परन्तु लैसेलकी कृपासे वे समझने लगे थे कि हमारी निराशाकी घोर अन्धकारपूर्ण रातका अन्त हो चला है; आशाके प्रभातके शुभ लक्षण उन्हें दिखाई पड़ने लग गए थे, उनके दुःखी हृदयकी पुकार संसारके कानोंतक पहुँचने लगी थी। इस लिये उन लोगोंका लैसेलको देवतातुल्य मानना ठीक ही था। लेकिन आगे चलकर एक ऐसी निन्दनीय और शोकजनक घटना हो गई जिसके कारण लोग अधिक दिनोंतक लैसेलके नेतृत्वका भोग न कर सके और जिसमें लैसेलने मूर्खतापूर्वक अपने प्राण दे दिए।

णाम यह होता था कि श्रमजीवियोंपर अनेक प्रकारके अत्याचार होते थे और वे लोग सदा बड़े कष्टमें रहते थे। यह अवस्था बराबर कई शताब्दियोंतक बनी रही; और बीच-बीचमें उसमें अनेक नई शाखाएँ भी निकलती गईं जिससे धनवानोंके अधिकार और दरिद्रोंके कष्ट बढ़ते गए। इस बीचमें अनेक नए नए पदार्थों, देशों और मार्गोंका आविष्कार भी हुआ। इधर अनेक राजनीतिक परिवर्त्तन भी हुए जिनके परिणाम-स्वरूप (युरोपमें) सामन्त शासनका अन्त हो गया और प्रत्येक देशमें एक अखिल-देशीय गवर्नमेन्ट स्थापित हो गई। उस गवर्नमेन्टने न्याय और सम्पत्ति-रक्षाकी व्यवस्था की और गमनागमनके लिये अच्छे साधन और मार्ग तैयार किए। इसके उपरान्त तरह तरहकी नई मशीनें आदि बनने लगीं जिनसे देशके शिल्प और आर्थिक अवस्थामें बड़ी भारी क्रान्ति हो गई और फलतः अनेक राजनीतिक परिवर्त्तन भी हुए। नई नई मशीनें, बड़े बड़े कारखाने, श्रमका विभाग, सस्ते माल और सारे संसारमें उनकी खपत—आदि सब बातें एक ही विशाल व्यवस्थाके अंग थीं। माल बहुत ज्यादा तैयार होने लगा जिससे उसका दाम बहुत उतर गया। जब चीजें सस्ती हो गईं तब उनकी खपत भी बहुत बढ़ गई और जब खपत बढ़ी तब माल और भी ज्यादा तैयार होने लगा। जो लोग पूँजीदार और शिल्पसंसारके कर्त्ता-धर्त्ता थे वे ही अब राजनीतिक संसारमें भी कर्त्ताधर्त्ता हो गए। उनकी कार्रवाइयोंसे यह बात प्रकट हो ... ये लोग ...

राजनीतिक और सामाजिक अधिकारोंकी कसौटी मान लिया। उन्होंने मर्यादित मताधिकार स्थापित किया और अनेक प्रकारके उपाय करके सर्वसाधारणको अपना मत प्रकट करनेसे रोक दिया और करका सारा बोझ श्रमजीवियोंपर डाल दिया।

लैसेल कहता है कि २४ फर्वरी १८४८ को एक नए युगका आरम्भ हुआ। उसदिन फ्रान्समें राज्यक्रान्ति आरम्भ हुई जिसके परिणामस्वरूप अस्थायी शासनमें श्रमजीवियोंको भी सम्मिलित किया गया। उस शासनने इस बातकी घोषणा कर दी कि राज्यका उद्देश्य श्रमजीवियोंकी दशा सुधारना है। साथ ही उसने प्रत्यक्ष और सार्वदेशिक मताधिकारकी भी व्यवस्था की और २१ वर्ष अथवा इससे अधिक अवस्थाके प्रत्येक नागरिकको, विना उसकी आर्थिक अवस्थाका विचार किए, मत देकर राजनीतिक क्षेत्रमें सम्मिलित होनेका अधिकार दिया। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि आगे चलकर नए समाजका संगठन भी श्रमजीवी ही करेंगे और उसका शासन भी उन्हींके हाथमें रहेगा। जहाँतक हम लोग मानवसमाजकी किसी प्रकारकी सेवा करते हैं वहाँतक हम सब लोग श्रमजीवी हैं, इसलिये सारी मानव-जातिको हम श्रमजीवी कह सकते हैं। उसका जो कुछ उद्देश्य है वह सारी मानवजातिका उद्देश्य है, उसकी स्वतंत्रता स्वयं मानवजातिकी स्वतंत्रता है और उसका शासन सारी मानवजातिका शासन है। इस उद्देश्यकी सिद्धिका उपाय यह है कि सब लोगोंको समान रूपसे प्रत्यक्ष मत देनेका अधिकार प्राप्त हो। इस व्यवस्थामें कुछ दोष भी निकलेंगे पर उन दोषोंका परिहार आगे चलकर स्वयं उसी व्यवस्थासे हो जायगा। यह एक ऐसा नश्तर है जो अपने किए हुए घावको आप ही भर देगा। जहाँ सार्वदेशिक मतदानके द्वारा ही सारा शासनकार्य होता है

णाम यह होता था कि श्रमजीवियोंपर अनेक प्रकारके अत्याचार होते थे और वे लोग सदा बड़े कष्टमें रहते थे। यह अवस्था बराबर कई शताब्दियोंतक बनी रही; और बीच-बीचमें उसमें अनेक नई शाखाएँ भी निकलती गईं जिससे धनवानोंके अधिकार और दरिद्रोंके कष्ट बढ़ते गए। इस बीचमें अनेक नए नए पदार्थों, देशों और मार्गोंका आविष्कार भी हुआ। इधर अनेक राजनीतिक परिवर्त्तन भी हुए जिनके परिणाम-स्वरूप (युरोपमें) सामन्त शासनका अन्त हो गया और प्रत्येक देशमें एक अखिल-देशीय गवर्नमेन्ट स्थापित हो गई। उस गवर्नमेन्टने न्याय और सम्पत्ति-रक्षाकी व्यवस्था की और गमनागमनके लिये अच्छे साधन और मार्ग तैयार किए। इसके उपरान्त तरह तरहकी नई मशीनें आदि बनने लगीं जिनसे देशके शिल्प और आर्थिक अवस्थामें बड़ी भारी क्रान्ति हो गई और फलतः अनेक राजनीतिक परिवर्त्तन भी हुए। नई नई मशीनें, बड़े बड़े कारखाने, श्रमका विभाग, सस्ते माल और सारे संसारमें उनकी खपत—आदि सब बातें एक ही विशाल व्यवस्थाके अंग थीं। माल बहुत ज्यादा तैयार होने लगा जिससे उसका दाम बहुत उतर गया। जब चीजें सस्ती हो गईं तब उनकी खपत भी बहुत बढ़ गई और जब खपत बढ़ी तब माल और भी ज्यादा तैयार होने लगा। जो लोग पूँजीदार और शिल्पसंसारके कर्त्ता-धर्त्ता थे वे ही अब राजनीतिक संसारमें भी कर्त्ताधर्त्ता हो गए। उनकी कार्रवाइयोंसे यह बात प्रकट हो गई कि वे लोग जो कुछ करते हैं वह केवल धनिकवर्गके हितका ध्यान रखकर ही करते हैं, इसलिये दूसरे वर्गको, जो दरिद्र था, विवश होकर धनिकवर्गका विरोध करना पड़ा। धनिकवर्गने भी अपने पूर्वजोंकी ही भाँति केवल अपने लाभके लिये अपने राजनीतिक बलका प्रयोग किया और केवल धनको

भिन्न हैं। उदार दलका मत है कि राज्यका केवल यही कर्तव्य है कि वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सम्पत्तिकी रक्षा करे। अर्थात् उसका काम उस पहरेदारका सा है जो रातके समय चोरों और डाकुओंसे लोगोंके धन और प्राणकी रक्षा करता है। लेकिन लैसेलके विचार ऐसे संकुचित नहीं हैं। वह आगस्ट बोएकके इस मतकी पुष्टि करता है कि—"राज्यसम्बन्धी अपने विचारको विस्तृत करके हमें यह विश्वास करना चाहिए कि राज्य एक ऐसी संस्था है जिसमें मनुष्यत्वके समस्त गुण विकसित होकर प्रत्यक्ष होने चाहिएँ।"

लैसेल कहता है कि आरम्भमें मानवजाति बहुत ही दुःखी, अज्ञान, दरिद्र, दुर्बल और परतंत्र थी। अपनी उस अवस्थासे निकलनेके लिये उसने अबतक जो प्रयत्न किए उन्हीं प्रयत्नोंके लेखेका नाम इतिहास है। यदि सब लोग एक दूसरेसे दूर रहकर अलग अलग उस आरम्भिक कष्टपूर्ण स्थितिसे मुक्त होनेका प्रयत्न करते तो वे कुछ भी उन्नति न कर सकते। राज्यका यह कर्तव्य है कि व्यक्तिशः लोग जिस स्वतंत्रता, सभ्यता और शक्तितक नहीं पहुँच सकते उस स्वतंत्रता, सभ्यता और शक्तितक उन्हें पहुँचावे और मानव-जीवनके उद्देश्यको सिद्ध करनेमें समर्थ बनावे। लोगोंमें जो त्रुटियाँ हों उन्हें राज्य दूर करे और वास्तविक उन्नति करनेमें उन्हें सहायता दे। आजकलके अनेक विचारशील और विद्वान् इस तत्त्वको मानने लगे हैं। और यह बात भी आजकल प्रायः सर्वमान्य हो रही है कि आधुनिक राज्य केवल लड़ने-भिड़ने और कर उगाहनेवाली मशीनें हैं। इसी लिये लैसेलका मत था कि राज्यको केवल यही नहीं चाहिए कि वह लोगोंको पूर्ण स्वतंत्र रहने दे, बल्कि उन्हें स्वतंत्र और उन्नत कर देना भी उसका मुख्य कर्तव्य है।

वहाँ प्रजाके गुण और दोष भी प्रत्यक्ष हो जाते हैं। आगे चलकर दोषोंका परिहार और गुणोंकी वृद्धि होने लगती है। इसलिये सब लोगोंको मताधिकारका राजनीतिक शस्त्र सदा अपने पास रखना चाहिए और यदि यह शस्त्र अपने पास न हो तो उसे प्राप्त करनेके लिये अपनी सारी शक्तियाँ लगा देनी चाहिए। हमें इस बातकी आशंका न करनी चाहिए कि मत देनेका अधिकार प्राप्त करके लोग अपनी शक्तिका दुरुपयोग करेंगे। बात यह है कि संसार एक बार देख चुका है कि जब एक वर्ग—धनिक वर्ग—ने केवल अपनी ही उन्नतिका ध्यान रक्खा तब मानवजातिका कुछ भी कल्याण न हुआ—उसका बहुत बड़ा अंश बड़े कष्टमें पड़ गया। शरीरके केवल एक अंगकी पुष्टिसे सारे अंगोंकी पुष्टि नहीं हो सकती, केवल एक पक्षका एकान्त कल्याण शेष पक्षोंके लिये बहुत ही हानिकारक होता है। बल्कि आगे चलकर स्वयं उस पक्षका भी भारी अहित होता है। इसलिये सब लोग समझ जायँगे कि हमारा कल्याण तभी हो सकता है जब कि हम सबकी उन्नतिका प्रयत्न करें। जिसे थोड़ीसी भी समझ होगी वह अब समझ लेगा कि हम व्यक्तिशः अलग होकर अपनी दशामें बहुत ही थोड़ा सुधार कर सकते हैं। अधिक कल्याण सबके मिलकर एक हो जानेसे ही हो सकता है। इसलिये उनका व्यक्तिगत हित कभी किसीका विरोधी न होगा बल्कि समस्त मानव-जातिकी उन्नतिका कारण होगा और सदा स्वतंत्रता, सभ्यता और उच्चतम विचारोंके अनुकूल रहेगा। इतनी बातें समझा कर अन्तमें लैसेलने श्रमजीवियोंसे कहा है कि आगे चलकर जो इमारत खड़ी होगी उसके आधार तुम्हीं लोग हो।

राज्यके सम्बन्धमें लैसेलके जो विचार और सिद्धान्त हैं वे भी बड़े ही विलक्षण और उदार-दलवालोंके विचारों और सिद्धान्तोंसे बिलकुल

भिन्न हैं। उदार दलका मत है कि राज्यका केवल यही कर्तव्य है कि वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सम्पत्तिकी रक्षा करे। अर्थात् उसका काम उस पहरेदारका सा है जो रातके समय चोरों और डाकुओंसे लोगोंके धन और प्राणकी रक्षा करता है। लेकिन लैसेलके विचार ऐसे संकुचित नहीं हैं। वह आगस्ट बोएकके इस मतकी पुष्टि करता है कि—"राज्यसम्बन्धी अपने विचारको विस्तृत करके हमें यह विश्वास करना चाहिए कि राज्य एक ऐसी संस्था है जिसमें मनुष्यत्वके समस्त गुण विकसित होकर प्रत्यक्ष होने चाहिएँ।"

लैसेल कहता है कि आरम्भमें मानवजाति बहुत ही दुःखी, अज्ञान, दरिद्र, दुर्बल और परतंत्र थी। अपनी उस अवस्थासे निकलनेके लिये उसने अबतक जो प्रयत्न किए उन्हीं प्रयत्नोंके लेखेका नाम इतिहास है। यदि सब लोग एक दूसरेसे दूर रहकर अलग अलग उस आरम्भिक कष्टपूर्ण स्थितिसे मुक्त होनेका प्रयत्न करते तो वे कुछ भी उन्नति न कर सकते। राज्यका यह कर्तव्य है कि व्यक्तिशः लोग जिस स्वतंत्रता, सभ्यता और शक्तितक नहीं पहुँच सकते उस स्वतंत्रता, सभ्यता और शक्तितक उन्हें पहुँचावे और मानव-जीवनके उद्देश्यको सिद्ध करनेमें समर्थ बनावे। लोगोंमें जो त्रुटियाँ हों उन्हें राज्य दूर करे और वास्तविक उन्नति करनेमें उन्हें सहायता दे। आजकलके अनेक विचारशील और विद्वान् इस तत्त्वको मानने लगे हैं। और यह बात भी आजकल प्रायः सर्वमान्य हो रही है कि आधुनिक राज्य केवल लड़ने-भिड़ने और कर उगाहनेवाली मशीनें हैं। इसी लिये लैसेलका मत था कि राज्यको केवल यही नहीं चाहिए कि वह लोगोंको पूर्ण स्वतंत्र रहने दे, बल्कि उन्हें स्वतंत्र और उन्नत कर देना भी उसका मुख्य कर्तव्य है।

मजदूरीकी आधुनिक निन्दनीय व्यवस्थाका भी लैसेल बहुत बड़ा विरोधी था। इस विषयमें मार्क्सके सिद्धान्त और उसके सिद्धान्तमें केवल इतना ही अन्तर था कि मार्क्सने तो उस 'अतिरिक्त मूल्य'* पर ज्यादह जोर दिया था जो पूँजीदारोंके हाथ लगता था और लैसेलने उपज या आयके उस थोड़े अंशपर जोर दिया था जो कि श्रमजीवियोंको मिलता है। इस सम्बन्धमें लैसेलका यह मत था कि मजदूरी घटाकर प्रायः उतनी ही कम रक्खी जाती है जितनीमें कि आदमीका कठिनतासे निर्वाह हो सके। जितनीमें एक आदमी अथवा एक परिवारका कठिनतासे उदर-निर्वाह हो सकता है उतनीसे अधिक मजदूरी नहीं दी जाती। मजदूरोंकी वास्तविक मजदूरीका मान प्रायः इतना ही रहता है; यदि वह कुछ घटता या बढ़ता भी है तो बहुत कम। उसमें कोई विशेष स्थायी वृद्धि तो इसलिये नहीं हो सकती कि उससे श्रमजीवियोंकी दशा सुधर जायगी जिसका परिणाम यह होगा कि वे खूब विवाह करके प्रजोत्पत्ति करने लगेंगे; इस प्रजोत्पत्तिके कारण श्रमजीवियोंकी संख्या बढ़ जायगी जिससे श्रमका मूल्य घट जायगा और मजदूरी फिर अपनी पहली जगह पर आ जायगी अथवा उससे भी कम हो जायगी। और निर्वाहके लिये जितनी मजदूरी आवश्यक है उतनीसे कम वह इसलिये नहीं हो सकती कि उसके परिणाम-स्वरूप लोग देश छोड़कर विदेश चले जायँगे या विवाह करना छोड़ देंगे। इसका फल यह होगा कि श्रमजीवियोंकी संख्या घट जायगी, मजदूरी मँहगी हो जायगी और उसकी दर फिर बढ़कर अपनी पहली जगहपर आ जायगी।

---

* सम्पत्तिशास्त्रमें 'अतिरिक्त मूल्य' किसी पदार्थके मूल्यके उस अंशको कहते हैं जो उसकी लागतके अतिरिक्त मुनाफे या लाभका होता है। इसका विशेष विवरण हमारी 'सम्पत्ति-विज्ञान' नामक पुस्तकमें देखिए।

लैसेल आगे चलकर बतलाता है कि इन्हीं सब कारणोंसे मजदूरों-को श्रमकी उपजका केवल उतना ही अंश दिया जाता है जितना कि उनके निर्वाहके लिये आवश्यक होता है और बाकी जो अंश बचता है वह सबका सब पूँजीदारके हिस्सेमें आ जाता है। अतः यह मजदूरीके निन्दनीय नियमका ही परिणाम है कि मजदूर लोग अपनी बढ़ती हुई उपजके लाभोंसे वंचित रक्खे जाते हैं। इंग्लैण्ड, फ्रान्स और जर्मनीके आरम्भिक कालके अर्थशास्त्रज्ञोंका भी ठीक यही मत था, और लैसेलने इस बातको स्वीकृत भी किया है। लेकिन आजकलके अर्थशास्त्रज्ञ इस बात-को पूर्णरूपसे सत्य नहीं मानते। वे कहते हैं कि ज्यों ज्यों श्रमजीवियोंमें व्यवस्था और शिक्षाका प्रचार होता जायगा और समाजमें नीतिमत्ता तथा सभ्यता बढ़ती जायगी त्यों त्यों इस सिद्धान्तका अंशतः खंडन होता जायगा और इस निन्दनीय नियममें सुधार होता जायगा। आजकल प्रतियोगिताकी जो वृद्धि हो रही है वह भी कुछ अंशोंमें इस सिद्धान्त-का खंडन करती है। इस आक्षेपकी बातें जितनी ठीक हैं स्वयं आक्षेप उतना ठीक नहीं है, क्योंकि लैसेलने जो कुछ लिखा था वह अपने समयकी अवस्था देखकर लिखा था। आगे चलकर समयके परिवर्त्तनसे उस व्यवस्थामें कुछ फेरफार हो गया, यह दूसरी बात है। इसके अति-रिक्त इस आक्षेपके उत्तरमें यह भी कहा जा सकता है कि श्रमजीवि-योंमें ज्यों ज्यों शिक्षा और व्यवस्थाका प्रचार होता जायगा त्यों त्यों पूँजीके महत्त्व आदिमें भी परिवर्त्तन होता जायगा, अथवा वह व्यक्ति-गत अधिकारसे निकलकर राष्ट्रके अधिकारमें चली जायगी। व्यापा-रिक समष्टियों, सहयोग समितियों और कारखानोंके सम्बन्धके कानू-नोंकी वृद्धिके कारण पूँजी बराबर व्यक्तिगत अधिकारसे निकलकर समाजके अधिकारमें आ रही है। ज्यों ज्यों इनकी वृद्धि होती जायगी

त्यों त्यों व्यक्तिगत पूँजीके पैर उखड़ते जायँगे—पूँजीका युग समाप्त होता जायगा। अतः हम कह सकते हैं कि जिन बातोंके आधारपर लैसेलके मतका खंडन किया जाता है वे बातें वास्तवमें साम्यवादके सिद्धान्तोंके प्रचारके लक्षण हैं। इसीलिये लैसेलका मत था कि जिन अवस्थाओंमें मजदूरीवाला निन्दनीय नियम प्रचलित रहता हो वे अवस्थाएँ ही दूर कर दी जायँ; अर्थात् आजकल श्रम और पूँजीका जो पारस्परिक सम्बन्ध है वह सम्बन्ध ही तोड़ दिया जाय। उसके आन्दोलनका सबसे बड़ा उद्देश्य यह था कि ऐसी व्यवस्था की जाय जो इस दोपको जड़से ही नष्ट कर दे। उसका विचार था कि ऐसे उत्पादक समाज स्थापित किए जायँ जो पूँजीदारोंका भी काम करें और मजदूरोंका भी; और तब फिर मजदूरोंको उपजका पूरा पूरा फल मिला करेगा। इस प्रकार श्रमजीवी और पूँजीदारका भेद मिट जायगा—उन दोनोंमें कोई अन्तर ही न रह जायगा। स्वयं मजदूर ही उत्पादक बन जायगा और उसके श्रमकी उपजसे जो कुछ लाभ होगा वह सबका सब उसीको पुरस्कार अथवा मजदूरीके रूपमें मिल जायगा।

उन दिनों जर्मनीके शूल्ज डेलिश नामक एक उदारमतवादीने अपने देशमें बहुतसी सहयोग समितियाँ स्थापित की थीं। लैसेल ऐसी सहयोग समितियोंका विरोधी था। वह कहता था कि इन समितियोंसे श्रमजीवियोंके सारे वर्गका कोई विशेप उपकार नहीं हो सकता। हाँ, छोटे छोटे दस्तकारोंको धन तथा कच्चे मालसे सहायता देकर ये समितियाँ अवश्य कुछ लाभ पहुँचा सकती हैं, परन्तु हाथकी दस्तकारी पुराने ढंगकी है और आजकलकी बड़ी बड़ी मशीनों और भारी भारी कारखानोंके जमानेमें वह दस्तकारी नहीं ठहर सकती। और फिर पुराने ढंगके दस्तकारोंको सहायता देकर उनका रोजगार बढ़ाना भी

तो दुर्दशाकी ही वृद्धि करना है। सहयोग समितियाँ प्राय: तैयार माल ही बेचती हैं, इसलिये साम्यवादका मुख्य उद्देश्य उनसे सिद्ध नहीं हो सकता। न तो वे माल तैयार कर सकती हैं और न वे उपजका कोई अंश श्रमजीवियोंको दिलवा सकती हैं। यदि उनसे कोई लाभ हो सकता है तो केवल यही कि वे लोगोंके हाथ कुछ किफायतसे माल बेच सकती हैं। लेकिन इस सस्तीका परिणाम भी बुरा होगा कि जिस मानमें श्रमजीवियोंको चीजें सस्ती मिलेंगी उसी मानमें उनका वेतन भी घट जायगा; क्योंकि जितने वेतनमें उनका निर्वाह हो सकता होगा उतनेसे अधिक वेतन तो उन्हें मिलेगा ही नहीं। अत: सहयोग समितियाँ स्थापित करनेमें जितना परिश्रम किया जायगा वह सब व्यर्थ ही होगा।

हाँ, यदि स्वतंत्र श्रमजीवी और कारीगर आदि मिलकर ऐसी समितियाँ स्थापित करें जो बड़े बड़े कारखाने चला सकें तो उनसे अवश्य लाभ होगा। उनमें पूँजी भी श्रमजीवियोंकी ही लगनी चाहिए और उसका लाभ भी श्रमजीवियोंको ही होना चाहिए। लेकिन जब एक ओर तो हम यह देखते हैं कि बड़े बड़े कारखाने स्थापित करनेमें लाखों रुपयोंकी आवश्यकता होती है और दूसरी ओर देखते हैं कि श्रमजीवियोंके पास कानी कौड़ी भी नहीं है तब स्वभावत: यह प्रश्न उठता है कि उतनी पूँजी आवे कहाँसे? श्रमजीवियोंके लिये इतनी पूँजी केवल राज्य ही लगा सकता है और राज्यको ही यह सारी पूँजी लगानी चाहिए। क्योंकि राज्यका सदासे यही कर्त्तव्य रहा है कि वह प्रजाके सुख और उन्नतिके लिये अपनी ओरसे कोई बात उठा न रक्खे। इस प्रकार लैसेलका मुख्य उद्देश्य यह था कि राज्यकी साखपर उत्पादक समितियाँ स्थापित की जायँ। अपने इस कथनकी पुष्टिमें

वह यह भी कहता था कि राज्य अब भी अपनी जमानतपर नहरें और रेलें बनवाता, बंक तथा डाकखाने आदि स्थापित कराता और इसी प्रकारके और अनेक ऐसे औद्योगिक कार्य कराता है जिनसे धनिकवर्गको बहुत कुछ लाभ पहुँचता है। और इस प्रकारकी राजकीय सहायताके विरुद्ध कभी कोई चूँ भी नहीं करता। लेकिन समझमें नहीं आता कि जब जनसाधारण और श्रमजीवियोंकी उन्नतिमें इस प्रकार सहायता देनेका प्रश्न उठता है तब लोग क्यों आसमान सिरपर उठा लेते हैं। लैसेलका अनुमान था कि सारे प्रूशिया राज्यमें इस प्रकारकी उत्पादक समितियाँ स्थापित करनेमें अधिकसे अधिक डेढ़ करोड़ पाउण्डकी आवश्यकता होगी। लेकिन राज्यको यह सब धन अपने पाससे नहीं लगाना पड़ेगा, उसे केवल इसके लिये मिलनेवाले ऋणकी जमानत कर देनी पड़ेगी और समितियोंके संचालनके लिये उचित नियम बना देने पड़ेंगे। उसे बीच बीचमें इस बातका भी ध्यान रखना पड़ेगा कि लोग समितियोंके धनका किसी प्रकारका दुरुपयोग तो नहीं करते हैं। लेकिन इससे अधिक उसे कोई विशेष शासन-कार्य नहीं करना चाहिए और अपने आन्तरिक प्रवन्धके लिये समितियोंको बिलकुल स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए, वे अपने बाकी सब काम आप ही कर लेंगी। हाँ, सबसे बढ़कर बात यह है कि जो राज्य इस प्रकारकी समितियोंकी स्थापना और व्यवस्था करे, वह लोकमतानुसारी राज्य होना चाहिए और उसके पदाधिकारी सार्वदेशिक मत-दानके अनुसार चुने जाने चाहिए।

लैसेल यह भी समझता था कि केवल इस प्रकारकी उत्पादक समितियाँ स्थापित कर देनेसे ही सारे देशकी सामाजिक और आर्थिक दशा नहीं सुधर जायगी; इन सब बातोंके लिये कई पीढ़ियोंतक निर-

न्तर परिश्रम करनेकी आवश्यकता होगी। इन समितियोंको तो वह भावी क्रान्तिका मूल मात्र समझता था। उसका मत था कि पहले बड़े बड़े नगरोंमें ऐसी समितियाँ स्थापित की जायँ जिनमें श्रमजीवी लोग आप ही आप आकर सम्मिलित होने लग जायँगे। जो जो शिल्प एक दूसरेपर निर्भर करते होंगे उन सबका एक संघ बन जायगा और उनको आर्थिक हानिसे बचानेके लिये बीमा करनेवाले संघ बन जायँगे। इस प्रकारकी व्यवस्थामें प्रतियोगिता और उसके भयंकर परिणामोंकी कोई आशंका न रह जायगी और धीरे धीरे देशके समस्त शिल्प और व्यापार आदि एक ही मुख्य शरीरके भिन्न भिन्न अंग बन जायँगे। यही व्यवस्था बढ़कर सारे संसारमें फैल जायगी। तात्पर्य यह कि लैसेलने आरम्भमें उसी समष्टिवादके सिद्धान्तोंका प्रचार किया था जिनपर बादमें मार्क्स और राड्बर्टसने बहुत जोर दिया था। उसने एक स्थानपर कहा भी है—"आजकल जो श्रमविभाग देखनेमें आता है वह वास्तवमें सार्वजनिक श्रम ही है—समाजके सब लोग मिलकर उत्पादनका कार्य करते हैं। आवश्यकता केवल इस बातकी है कि उत्पादनके इस स्वरूपको जरा बहुत अच्छी तरह समझ लिया जाय। आजकल उत्पादनके काममें जो व्यक्तिगत पूँजी लगानेकी प्रथा है वह प्रथा उठा दी जाय। इस दशामें उत्पादन तो सार्वजनिक रह ही जायगा, बस उसमें पूँजी भी सार्वजनिक लगा दी जाय और उत्पादनसे जो कुछ लाभ हो वह उन्हीं श्रमजीवियोंमें बाँट दिया जाय जो कि उसके पूँजीदार भी होंगे।"

शुल्जडेलिशके विरुद्ध लैसेलने जो कुछ लिखा है उसमें उसने अपने सिद्धान्तोंका अच्छा वर्णन किया है। उसने बतलाया है कि उन्नति या अवनति किसी विशिष्ट व्यक्तिके प्रयत्नों और कार्योंका प-

रिणाम नहीं होती, वह सदा समाजके प्रयत्नों और कार्योंसे होती है। जो अर्थशास्त्रज्ञ यह कहते हैं कि दरिद्र समाजके लोग व्यक्तिशः स्वयं ही अपनी दुर्दशाके कारण होते हैं वे बड़ी भूल करते हैं। वास्तवमें किसी व्यक्तिगत कार्यसे व्यक्ति या समाज दरिद्र नहीं होता; सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ उसे दरिद्र और दुःखी कर देती हैं, और इन परिस्थितियोंपर व्यक्तिशः उसका कोई वश नहीं होता। अपने इस मतकी पुष्टिमें उसने अनेक ऐतिहासिक घटनाओंको प्रमाण-स्वरूप उपस्थित किया है। सन् १८७६ में इंग्लैण्डके निवासियोंका प्रधान उद्यम खेती-बारी करना ही था, परन्तु अमेरिकाकी प्रतियोगिताके कारण इंग्लैण्डकी कृपिको बहुत हानि पहुँचने लगी। अमेरिकासे सस्ता अन्न आने लगा जिसके कारण इंग्लैण्डके अन्नका भाव बहुत गिर गया। इसी बीचमें कई बार वर्षा आदिके अभाव अथवा अतिवृष्टिके कारण इंग्लैण्डकी फसल भी खराब हो गई जिसके कारण इंग्लैंण्डमें हाहाकार मच गया। बहुतसे कृपकोंको अपने पल्लेसे लगान देना पड़ा जिसके कारण वे बिलकुल बरबाद हो गए। खेती-बारीके कम हो जानेके कारण श्रमजीवियोंकी भी दुर्दशा बहुत बढ़ गई। इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ कि इंग्लैण्डके सभी निवासी बड़ी विपत्तिमें पड़ गए। ये सबकी सब बातें आयर्लैण्डमें भी हुई थीं तिसपर विशेषतः यह थी कि वहाँके निवासी अपनी राजनीतिक दुर्दशाके कारण और भी दुःखी थे। अतः यह आर्थिक हाहाकार भीषण राजनीतिक हाहाकारके रूपमें परिणत हो गया। व्यक्तिशः तो इस हाहाकारका कोई उत्तरदायी था ही नहीं, तब फिर इन लाखों आदमियोंके कष्टका कौन उत्तरदायी माना जाय? इस प्रकारके अनर्थ प्रायः सभी देशोंमें समय समयपर हुआ करते हैं। आजकल शिल्प और

व्यवसाय आदिमें जो भीषण प्रतियोगिता होती है उसका यह अवश्यम्भावी और अनिवार्य परिणाम है । जो राजनीतिज्ञ और शासक ऐसे अवसरोंपर प्रजाकी कोई सहायता नहीं करते, निश्चय कर लेना चाहिए कि वे अपने कर्त्तव्यको बिल्कुल नहीं समझते । साम्यवादियोंका यह एक बहुत ही प्रशंसनीय कार्य है कि वे यथासाध्य ऐसे अनर्थोंको रोकनेका प्रयत्न करते हैं और कष्टपीड़ितोंको सामाजिक अथवा साम्य-सम्बन्धी सहायता देकर उनके कष्ट घटानेका उद्योग करते हैं ।

आगे चलकर लैसेलने यह भी बतलाया है कि पूँजीकी सृष्टि ऐतिहासिक परिस्थितियोंके कारण हुई है । हम उसकी वृद्धिके कारणोंका पता लगाते हुए यह बात समझ सकते हैं कि यदि किसी प्रकार उन परिस्थितियोंको परिवर्त्तित कर दिया जाय तो इस पूँजीदारीकी प्रथाका और उसके साथ उन कष्टोंका भी जो उसके परिणामस्वरूप होते हैं, अन्त कर सकते हैं । इसी बातको दूसरे शब्दोंमें हम इस प्रकार कह सकते हैं कि पूँजीकी सृष्टि अनेक ऐसी आर्थिक, सामाजिक और कानूनी अवस्थाओंके कारण हुई है जो एक बहुत बड़े और क्रमशः होनेवाले ऐतिहासिक विकासका परिणाम हैं । शूल्जके सिद्धान्तोंके खंडनमें लैसेलने जो ग्रन्थ लिखा है उसमें उसने इन आर्थिक, सामाजिक और कानूनी अवस्थाओंका बहुत विस्तारके साथ वर्णन किया है । उन अवस्थाओंका संक्षिप्त रूप इस प्रकार हो सकता है—

(१) बड़े बड़े कारखानों और शिल्पों आदिके सम्बन्धमें श्रमका विभाग ।

(२) सारे संसारके बड़े बड़े देशोंमें विनिमयके अभिप्रायसे बेचनेके लिये उत्पादनकी प्रथा ।

(३) अबाध्य प्रतियोगिता ।

(४) श्रमके साधनोंका (मशीनों आदिका) एक ऐसे विशिष्ट वर्गके हाथमें होना जो कि—

(५) स्वतंत्र श्रमजीवियोंको केवल मजदूरी देकर बाकी अतिरिक्त मूल्य स्वयं अपने पास रख लेते हैं। इस प्रकार इस विशिष्ट वर्गके लोग स्वयं अपने श्रमसे संपत्ति नहीं प्राप्त करते बल्कि दूसरोंके अंशका अपहरण करके सम्पन्न बनते हैं।

इस प्रकार पूँजी एक ऐसी स्वतंत्र, कार्यकारिणी और स्वयंवर्द्धमान शक्ति बन गई है जो स्वयं अपने उत्पादकको ही पीड़ित करती है। रुपएको रुपया खींचता है। प्राचीन कालका वह श्रम जो अपहृत हुआ है और जिसने धनका रूप धारण कर लिया है, वर्त्तमान कालके श्रमको पीसे डालता है। इस प्रकार आजकल मुरदे मानों जिन्दोंको अपने जालमें फँसा रहे हैं। श्रमके साधन (मशीन आदि) स्वयं तो स्वतंत्र हो गए हैं और श्रमजीवियोंको हटाकर उनके स्थानपर स्वयं अधिकार कर बैठे हैं। इस प्रकार उन निर्जीव साधनोंने सजीव श्रमजीवियोंको बिलकुल निर्जीव कर दिया है और स्वयं, पूँजीका रूप धारण करके उत्पादनके सजीव साधन बन गए हैं। इस प्रकारका रूपक खड़ा करके लैसेलने पूँजीके कारण होनेवाले अनर्थोंका बहुत ही विशद रूपसे वर्णन किया है। इस पूँजीके सम्बन्धमें कार्ल मार्क्सने और भी अधिक विस्तारके साथ लिखा है जो कि आगेके प्रकरणमें दिया गया है, अतः यहाँ इस सम्बन्धमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

लैसेल और मार्क्सके दलके साम्यवादी 'पूँजी' शब्दसे जो अभिप्राय लेते हैं उसके सम्बन्धमें इस अवसरपर एक बात बतला देना बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है। वह यह है कि वे लोग पूँजीका

शुद्ध आर्थिक अर्थ ही नहीं लेते, वे केवल उस धनको ही पूँजी नहीं कहते जो आगे चलकर उत्पादनके काममें लगाया जाता है; पूँजीसे उन लोगोंका तात्पर्य उस सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थासे है जिसमें प्रधान शक्ति पूँजीदारोंके हाथमें रहती है। वर्त्तमान आर्थिक और कानूनी अवस्थाओंमें यही आर्थिक तत्त्व काम करता है और अनेक दूसरी अवस्थाओंकी सृष्टि करता है।

प्रायः सभी सामाजिक व्यवस्थाओं और ऐतिहासिक युगोंमें पूँजीका काम प्रायः एकसा ही रहता है। पूँजी या सम्पत्तिका वह काम यह है कि उसका व्यवहार और अधिक पूँजी या सम्पत्ति उत्पन्न करनेमें होता है। परन्तु जिन ऐतिहासिक, कानूनी और राजनीतिक अवस्थाओंमें पूँजी अपना यह काम करती है, वे व्यवस्थाएँ अवश्य एक दूसरीसे भिन्न होती हैं, और साथ ही वे औद्योगिक स्वरूप भी परस्पर एक दूसरेसे भिन्न होते हैं जिनमें उस पूँजीका व्यवहार अथवा प्रयोग होता है।

साम्यवादके जो विरोधी यह कहते हैं कि साम्यवादी पूँजीका बिलकुल नाश कर देना चाहते हैं वे या तो नासमझ हैं और या जानबूझकर साम्यवादके सम्बन्धमें भ्रम उत्पन्न करते हैं। साम्यवादियोंका कभी यह उद्देश्य नहीं है कि पूँजीका नाश कर दिया जाय, उनका मुख्य उद्देश्य उसे सामाजिक कल्याणके लिये और भी अधिक उपयोगी बनाना है और इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये वे पूँजीको केवल सारे समाजके अधिकारमें रखना चाहते हैं। यदि वे कुछ नष्ट करना चाहते हैं तो वह केवल प्रचलित व्यवस्था है जिसके अनुसार पूँजीपर केवल एक विशिष्ट वर्गका अधिकार रहता है। अतः स्पष्टताके लिये 'पूँजी' शब्दके बदले 'पूँजीदारीकी प्रथा' कहना ही अधिक उत्तम होगा।

शूल्जने व्यष्टिको ही सब प्रकारकी उन्नति अथवा अवनतिका मूल कारण माना है और व्यष्टिके ही सुधार और उन्नतिसे वह सामाजिक सुधार और उन्नति करना चाहता है। उसका यह सिद्धान्त एकपक्षीय और एकांगी है। इसी लिये उसके इस सिद्धान्तके विरोधमें लैसेलने अपने साम्य अथवा समष्टिवादका प्रतिपादन किया है। परन्तु जिस प्रकार हम शूल्जके समष्टिवादको एकांगी कह सकते हैं उसी प्रकार लैसेलके समष्टिवादको भी एकांगी कह सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आजकल सारे सभ्य जगतमें जो आर्थिक हाहाकार मचा हुआ है वह ऐसी परिस्थितियों और अवस्थाओंके कारण है जिन-पर व्यक्तिशः किसीका वश नहीं है। परन्तु इसके साथ ही कुछ बातें ऐसी भी हैं जो आर्थिक कल्याणके लिये केवल व्यष्टिसे ही सम्बन्ध रखती हैं। यदि समाजके सभी लोगोंमें अध्यवसाय और मितव्ययिता आदि गुण हों और सभी लोग परिश्रमी और कार्यकुशल हों तो आर्थिक दृष्टिसे सारे समाजका बहुत कुछ कल्याण हो सकता है। अतः सामाजिक हितके विचारसे वे ही सिद्धान्त सबसे अधिक मान्य हो सकते हैं जिनमें समष्टि और व्यष्टि दोनोंके उत्तरदायित्व और कर्त्तव्यका ध्यान रक्खा जाय। क्योंकि सामाजिक कल्याणके लिये दोनोंका ही समान महत्त्व है और अन्वेषणका कार्य दोनों ही पक्षोंकी स्थितिके विचारसे आरम्भ किया जा सकता है।

लैसेलका मत था कि शूल्जकी जो सहयोग समितियाँ लोगोंको ऋण और कच्चा माल देनेके लिये बनाई जायँगी उनसे केवल दस्तकारोंको ही लाभ पहुँचेगा; परन्तु ज्यों ज्यों बड़े कारखानोंकी वृद्धि होती जायगी त्यों त्यों इन दस्तकारोंकी संख्या घटती जायगी। इस पर प्रश्न किया जा सकता है कि पारस्परिक सहायताके इन्हीं ढंगोंका बहुसंख्यक

श्रमजीवियोंके कल्याणके लिये क्यों न व्यवहार किया जाय और उनकी भी समितियाँ क्यों न स्थापित की जायँ ? यह बात ठीक है कि ऐसी समितियाँ श्रमजीवियोंको अधिक नहीं परन्तु थोड़ा ही लाभ पहुँचावेंगीं, लेकिन केवल इसीलिये समितियोंके इस सिद्धान्तका क्यों यहीं अन्त कर दिया जाय ?

समाजके आर्थिक कल्याणके लिये सहयोगके सिद्धान्तका पालन कहीं न कहींसे अवश्य होना चाहिए। स्वभावतः और बहुत ही उचित ढंगसे इसका आरम्भ इसी प्रकारकी समितियोंकी स्थापनासे होता है; और बहुत ही थोड़ी कठिनाइयाँ पार करनेके उपरान्त आगे चलकर इसकी वृद्धि भी होती है। भावी उन्नतिके लिये श्रमजीवियोंको जिस पूँजी तथा अनुभवकी आवश्यकता होती है उसकी प्राप्ति भी उन्हें ऐसी समितियोंसे होती है। यह तो कोई कह ही नहीं सकता कि इस प्रणालीका विकास अमुक सीमातक पहुँचकर रुक जायगा। साम्यवादका अन्तिम उद्देश्य यह है कि सभी आर्थिक बातोंपर समाजका पूरा पूरा अधिकार हो जाय, सो उस उद्देश्यकी सिद्धिका इन समितियोंसे बहुत अच्छा आरम्भ हो सकता है। यदि इस वादविवादके झगड़ेमें लैसेलने कुछ अधिक सूक्ष्म विचारसे काम लिया होता तो वह समझ लेता कि जितनी सामाजिक संस्थाएँ अथवा संगठन हैं अथवा हो सकते हैं उन सबमें कुछ न कुछ सुधार, कुछ न कुछ परिवर्त्तन और कुछ न कुछ परिवर्द्धनकी अवश्य आवश्यकता होती है।

शूल्जने समाजके आर्थिक कल्याणके लिये जो उपाय बतलाए हैं उनके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वे कोई ऐसे यंत्र नहीं हैं जिनसे चटपट अभीष्टसिद्धि हो जाय; उनसे आर्थिक कल्याण और सुधारका आरम्भ मात्र होता है। और यही बात लैसेलकी

समितियोंके विषयमें भी कही जा सकती है। दोनों एक ऐसे मूलतत्त्वका प्रतिपादन करते हैं जो आगे चलकर बहुत कुछ विकसित हो सकता है। दोनों प्रकारकी व्यवस्थाओंमें श्रमजीवी अपने हितके लिये, अपनी ही पूँजी लगाकर शिल्प आदि सम्बन्धी कार्यका अपनी ही देखरेखमें आरम्भ कर सकते हैं; और इस प्रकार अपने श्रमका पूरा पूरा लाभ उठा सकते हैं। शूल्जकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें लैसेलकी यह आपत्ति है कि उससे लोगोंको केवल सस्ते मूल्यपर चीजें मिल सका करेंगी और जनसंख्याकी जल्दी जल्दी वृद्धि होगी; परन्तु ठीक यही आपत्ति लैसेलकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें भी की जा सकती है। हम कह सकते हैं कि दोनों ही अवस्थाओंमें जीवन-निर्वाहकी आवश्यक सामग्री अधिक मानमें और सस्ते दामपर मिल सकेगी; और दोनों ही दशाओंमें जनसंख्या बहुत जल्दी जल्दी बढ़ सकेगी। हम यह भी अनुमान कर सकते हैं कि ज्यों ज्यों जनसंख्या बढ़ेगी त्यों त्यों श्रम बढ़ता जायगा और उससे होनेवाला उत्पादन अथवा लाभ भी बढ़ता जायगा, और यह लाभ सभी श्रमजीवियोंको होगा। और फिर शूल्जकी व्यवस्थामें एक और बड़ा लाभ होगा जो कि लैसेलकी व्यवस्थामें न हो सकेगा। वह लाभ यह है कि जब श्रमजीवी अपने ही परिश्रमसे पूँजी एकत्र कर लेंगे और अनुभव प्राप्त कर लेंगे तब वे उन अनेक समस्याओंकी मीमांसा करनेके योग्य हो जायँगे जो कि प्रजावृद्धि अथवा दूसरे कारणोंसे उपस्थित होंगी और जिनकी मीमांसाकी योग्यता बहुत दिनोंकी सामाजिक सुव्यवस्थाके कारण ही प्राप्त हो सकती है।

यदि लैसेल और [illegible] : कोई [illegible] है
तो वह स्वयं लैसेलके ही [illegible] है कि [illegible]

राज्यकी सहायताकी आवश्यकता होगी और शूल्जकी व्यवस्थामें लोगोंको अपने पैरोंपर आप ही खड़े होना पड़ेगा । परन्तु प्रश्न हो सकता है कि क्या ये दोनों बातें एक दूसरीसे अलग हैं ? उस समय यह प्रश्न सारे जर्मनोंके मनमें उठा था और वे इसका समुचित उत्तर पानेके लिये तरह तरहकी जाँच करने लगे थे । उनकी जाँचका परिणाम भी बहुत लाभदायक हुआ । लैसेल और शूल्जके सिद्धान्तोंमें घोर वाद विवाद सन् १८६४ में हुआ था, और इसके ठीक इक्कीस वर्ष बाद सन् १८८५ में शूल्जके सिद्धान्तोंपर स्थापित केवल जर्मनीमें जितनी समितियाँ थीं उनके पास डेढ़ करोड़ पाउण्ड मूलधन था जो कि उन समितियोंने स्वयं अपने अध्यवसायसे उत्पन्न और एकत्र किया था । पाठकोंको स्मरण होगा कि लैसेल अपनी व्यवस्थाके अनुसार समितियाँ स्थापित करनेके लिये ठीक इतनी ही रकमकी सरकारसे सहायता चाहता था । ऐसी दशामें यदि श्रमजीवियोंकी उत्पादक समितियोंको सफलता न हो तो हम लैसेलके सुरमें सुर मिलाकर यह नहीं कह सकते कि उनकी विफलताका कारण पूँजीका अभाव है; और केवल राज्यकी सहायतासे चलनेवाली उत्पादक समितियाँ ही श्रमजीवियोंके निस्तारका एक मात्र उपाय नहीं है ।

इतनी आलोचनाके उपरान्त पाठकोंको कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यकता न रह गई होगी कि लैसेलकी राजकीय सहायतावाली व्यवस्था सर्वांशमें ठीक नहीं थी । जर्मनीकी जिस सरकारका सार्वदेशिक मताधिकारके सिद्धान्तपर संगठन हुआ था उस जर्मन सरकारने समितियाँ स्थापित करनेके लिये वह ऋण नहीं दिया जो लैसेल उससे लेना चाहता था; और इस सम्बन्धमें उसका सारा आन्दोलन, सारा प्रयत्न विफल हुआ । कहा जा सकता है कि इस विफलताके दो

कारण थे। एक तो यह कि शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई; नहीं तो सम्भव था उसे अपने प्रयत्नमें सफलता हो जाती, और दूसरे यह कि प्रायः उसी समयसे जर्मन साम्यवादियोंने, उपयुक्त समयसे पहले ही ऐसे ढंगसे सार्वभौम आन्दोलनमें योग दिया जो कदाचित् उनके राष्ट्रीय हितका विरोधी था, और इसीलिये जर्मनीके सम्राट् तथा प्रधान मंत्रीकी उनके कार्यों और विचारोंके साथ सहानुभूति न रह गई। हमें यहाँ यह भी बतलानेकी आवश्यकता नहीं है कि जर्मनीके साम्यलोकमत-वादियोंका आचरण कितना ही नम्र और कितना ही सहनशील क्यों न होता परन्तु फिर भी जर्मन सरकारके लिये यह बात कहाँतक असम्भव थी कि वह लैसेलके माँगे हुए ऋणकी जमानत कर देती। यद्यपि सन् १८७५ में जर्मन साम्यलोकमतवादियोंने गोथा-प्रोग्राममें भी लैसे-लकी व्यवस्थाको स्थान दिया था तथापि इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि स्वयं वे ही साम्यलोकमतवादी लैसेलकी व्यवस्थाको कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं समझते थे। क्योंकि आगे चलकर कुछ दिनों बाद जब उन लोगोंने १८९१ में एर्फर्टका प्रोग्राम स्वीकृत किया था तब उसमें लैसेलकी व्यवस्थाको कोई स्थान नहीं मिला था—उसका पूरा पूरा बहिष्कार किया गया था। तात्पर्य यह कि इस समय हम जिस दृष्टिसे लैसेलकी व्यवस्थाका विचार कर रहे हैं उस दृष्टिसे हम कह सकते हैं कि लैसेलकी व्यवस्था या आन्दोलनको कुछ भी सफलता नहीं प्राप्त हुई थी। साथ ही यदि हम यह कहें कि अनुभवसे उसकी व्यवस्था अनुपयोगी या निरर्थक सिद्ध हुई तो हमारा यह कहना भी ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि आजतक कभी किसी देशकी सरकारने उस व्यवस्थाके अनुसार अच्छी तरह कोई कार्य भी नहीं किया।

अनेक और नेताओंकी तरह लैसेल भी अपने विचारोंको कार्यरू-पमें परिणत नहीं कर सका था, परन्तु इतना अवश्य है, कि उसके

विचारों और कार्योंके अनेक शुभ परिणाम हुए। शिलरने एक स्थानपर कहा है कि संसारका जो इतिहास हमारे सामने उपस्थित होता है उसके अनुसार हमें समझ लेना चाहिए कि भिन्न भिन्न कार्योंके सम्बन्धमें संसारने क्या फैसला किया। परन्तु उसके इस कथनको हम पूर्ण रूपसे सत्य नहीं मान सकते। क्योंकि इस बातके माननेके लिये कभी कोई तैयार न होगा कि आजतक संसारमें जितनी बातोंको सफलता प्राप्त हुई वे सभी बातें शुभ थीं और जितनी बातोंको विफलता प्राप्त हुई वे सबकी सब अशुभ, बुरी या दोषपूर्ण थीं। अथवा कोई यह नहीं कह सकता कि जो बात जितनी ही अच्छी या बुरी हो उसे उतनी ही सफलता अथवा विफलता होती है। लैसेल और शूल्जके झगड़नेका विचार करते हुए दोनोंके कार्योंके सम्बन्धमें हम संक्षेपसे केवल इतना ही कह सकते हैं कि सन् १८८५ में शूल्जके सिद्धान्तोंपर स्थापित जर्मनीमें जितनी समितियाँ थीं उनकी पूँजी डेढ़ करोड़ पाउण्ड थी और उनके सदस्योंकी संख्या डेढ़ लाख थी; और सन् १८९० में लैसेल द्वारा प्रचलित साम्यलोकमतवादका जो चुनाव जर्मनीमें हुआ था उसमें उस पक्षके १,४२,७०-०० वोट आए थे। दोनोंने ही बहुत बड़े बड़े काम किए थे और भविष्यमें उनकी बहुत अधिक सफलताकी सम्भावना की जा सकती है। अन्यान्य दूसरी बातोंकी तरह, इस बातमें भी इतिहासने सिद्ध कर दिया कि उक्त दोनों विरोधियोंने एक दूसरेकी बातोंको जितना निरर्थक बतलाया था वे वास्तवमें उतना निरर्थक नहीं थीं, बल्कि उसकी अपेक्षा कहीं अधिक उपयोगी थीं।

लैसेल और शूल्जके विरोधके सम्बन्धमें अब और अधिक कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इस झगड़ेकी अपेक्षा अधिक

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लैसेलके मुख्य मुख्य सिद्धान्तों और उपदेशोंपर विचार किया जाय। लैसेलका मुख्य उद्देश्य यह था कि लोकमतवादकी प्रधानता हो जाय, केवल बल ही सब कुछ न रह जाय, उसके मुकाबलेमें सत्यका भी यथेष्ट आदर हो, श्रमजीवियोंके मतके अनुसार वैज्ञानिक रीतिसे और सार्वदेशिक मताधिकारके सिद्धान्तोंपर एक ऐसे राज्यका संगठन हो जो सब लोगोंको पूर्ण स्वतंत्र, सभ्य, नीतिमान् और उन्नत करने तथा अन्यान्य उन्नत तथा शुभ विचारोंको विकसित करनेमें पूरी पूरी सहायता देकर स्वयं श्रेष्ठतम राज्य कहलानेके योग्य हो। और सबसे बड़ी बात यह थी कि वह इस लोकमतवादको साम्यलोकमतवाद बनाना चाहता था जिसमें राजनीतिक विचारोंको गौण तथा सामाजिक विचारोंको मुख्य स्थान मिले। क्योंकि केवल ऐसे ही साम्यलोकमतानुसारी राज्यमें यह सम्भव था कि सामाजिक प्रश्नोंकी मीमांसाके लिये, दरिद्र श्रमजीवियोंके आर्थिक कल्याणके लिये, ऐसा ऋण मिलता जिससे उत्पादक-समितियाँ स्थापित की जा सकतीं। लेकिन यह सारा काम एक बहुत बड़े सामाजिक प्रश्नकी मीमांसाका आरम्भ मात्र था, क्योंकि इस प्रश्नकी पूरी पूरी मीमांसाके लिये समस्त श्रमजीवियोंका पूरा पूरा उद्धार करनेके लिये, लगातर कई पीढ़ियोंतक कठिन परिश्रम करनेकी आवश्यकता है।

एक ओर तो यह उच्च आदर्श रखिए और दूसरी ओर वह जर्मन साम्राज्य रखिए जो गत युरोपीय महायुद्धके समयतक था, और तब इन दोनोंका मुकाबला कीजिए। महायुद्धसे पहलेवाले जर्मनीमें सेना और पुलिसका ही सबसे अधिक प्रभुत्व था और सबसे अधिक समझदारोंका जो श्रमजीवी वर्ग था वह तत्कालीन शासन प्रणालीसे बहुत ही असन्तुष्ट था। यह बात बड़े बड़े अर्थशास्त्रज्ञों और राजनीतिज्ञोंके

विचार करनेके योग्य है कि जो जर्मन जाति संसारमें सबसे अधिक शिक्षित और विचारशील मानी जाती है उस जर्मन जातिके श्रमजीवियोंको अपनी उन्नति और सुधारके लिये विवश होकर साम्यलोकमतवादी दलमें सम्मिलित होना पड़ा। उस समयतक केवल जर्मनीसे ही क्या संसारके किसी राज्यसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह श्रमजीवियोंके सुधारका कोई उपयुक्त प्रयत्न करेगा, क्योंकि उस समयतक सभी राज्य एक दूसरेको नष्ट करनेके लिये नए नए उपाय निकाल रहे थे। लेकिन यदि यह भी मान लिया जाय कि उस समय कोई राज्य या राजा साम्यवादके सिद्धान्तोंके अनुसार श्रमजीवियोंकी दशा सुधारनेका प्रयत्न करता तो भी उसे पूरी पूरी सफलता न हो सकती; क्योंकि श्रमजीवियोंके वर्त्तमान कष्टोंके जो कारण हैं वे मानव प्रकृतिमें दृढ़तापूर्वक अपनी जड़ जमा चुके हैं, और जबतक लोग अपने वर्त्तमान दैनिक, जीवनक्रम तथा विचारों आदिमें बहुत बड़ा परिवर्त्तन करनेके लिये तैयार न हो जायँ तबतक किसी प्रकारके सुधार या उन्नतिकी आशा नहीं की जा सकती। तात्पर्य यह कि अबतककी परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी थीं जो इस सुधारके मार्गमें बहुत बड़ी बाधाएँ उपस्थित करती थीं। परन्तु रूसकी बोल्शेविक सत्ता इस विषयमें धन्यवादकी पात्र हो सकती है जिसने सबसे पहले इस मार्गमें पैर बढ़ाया। इस सत्ताके विषयमें विशेष बातें आगे चलकर एक स्वतंत्र प्रकरणमें दी गई हैं अतः यहाँ उस सम्बन्धमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जिस मानव-प्रकृतिमें श्रमजीवियोंकी दुर्दशाके कारण दृढ़तापूर्वक अपनी जड़ जमा चुके हैं वही मानव-प्रकृति इस समय अनेक राजसत्ताओंको बोल्शेविक सत्ताके साथ शत्रुता करनेपर विवश कर रही है। दूसरी

और अधिकांश देशोंके श्रमजीवियोंकी बोल्शेविक सत्ताके साथ सहानुभूति हो रही है और वे अपने अपने देशमें प्रचलित राजसत्ताके विरुद्ध अनेक प्रकारके उपक्रम कर रहे हैं। उधर रूसको भी दम मारनेकी फुरसत नहीं मिल रही है और इधर दूसरे युरोपीय देशोंकी स्थिति भी डाँवाडोल है। इसलिये निश्चित रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि ऊँट किस करवट बैठेगा। तौ भी युरोपकी वर्तमान स्थिति देखकर बहुतसे विचारशील यही अनुमान करते हैं कि अब वह समय दूर नहीं है जब कि संसारकी समस्त बातोंमें लोकमतका ही प्रभुत्व रहेगा। हमें केवल यही समझकर संसारके समस्त उलट-फेरोंको देखते रहना चाहिए कि—"ईश्वर जो कुछ करता है वह अच्छा ही करता है।"

(२) राड्वर्टस।

बहुतसे लोग यह समझते हैं कि साम्यवादके जितने सिद्धान्त हैं वे सब घोर क्रान्तिकारक भावोंसे पूर्ण हैं और अबतक उन सिद्धान्तोंके जितने प्रचारक हुए हैं वे सब अराजक, विद्रोही और क्रान्तिकारक हैं। परन्तु राड्वर्टसकी प्रत्येक बात, प्रत्येक सिद्धान्त और प्रत्येक कार्य ऐसे लोगोंकी बातोंका अक्षरशः खण्डन करता है। राड्वर्टस प्रूशियाका एक अच्छा कानूनदाँ और जमींदार था। उसके विचार बहुत ही शान्त थे और क्रान्तिकी कौन कहे वह साधारण आन्दोलनको भी नापसन्द करता था। उसके उपदेशों और सिद्धान्तोंमें सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह साम्यवादके तत्त्वोंका प्रसार केवल राष्ट्रीय ढंगपर और राष्ट्रकी देखभालमें ही कराना चाहता था। लेकिन इतना होनेपर भी साम्यवादका वह इतना कट्टर पक्षपाती और प्रचारक था कि बिना उसके कार्यों और सिद्धान्तोंके उल्लेखके साम्यवादका कोई वर्णन पूर्ण हो ही नहीं सकता।

कार्ल जान राड्बर्टसका जन्म १२ अगस्त सन् १८०५ को ग्रीफ्सवाल्ड नगरमें हुआ था। उसका पिता उसी नगरके विश्वविद्यालयका प्रोफेसर था। राड्बर्टसने गाटिंजन और बर्लिनमें कानूनका अध्ययन करनेके उपरान्त कई प्रकारके कानूनी पेशे किए थे। पीछेसे अनेक देशोंमें भ्रमण करनेके उपरान्त उसने पोमेरानिया प्रान्तमें एक बड़ी जमींदारी खरीद ली थी। १८३६ से वह स्थायी रूपसे अपनी जमींदारीमें रहने लगा और तबसे उसने अपने जीवनका अधिकांश आर्थिक तथा अन्याय उपयोगी विषयोंके अध्ययन में ही बिताया। कभी कभी वह स्थानीय और प्रान्तीय राजनीतिक कार्योंमें भी सम्मिलित हो जाया करता था।

मार्च १८४८ वाली क्रान्तिके उपरान्त राड्बर्टस एक प्रान्तकी ओरसे प्रूशियाकी राष्ट्रीय सभा (Prussian National Assembly) का सदस्य चुना गया था और १४ दिनोंतक उसने धर्म तथा शिक्षा-विभागके मन्त्रीका भी काम किया था। सन् १८४९ में बर्लिन नगरकी ओरसे वह राज्यकी सेकेण्ड चेम्बर (Second Chamber) का सदस्य चुना गया था। इसके कुछ ही दिनों बाद युरोपके अन्यान्य देशोंकी तरह प्रूशियाका क्रान्तिकारक आन्दोलन भी राज्यकी ओरसे दबा दिया गया और राड्बर्टसने सार्वजनिक कार्योंसे अपना हाथ खींच लिया। जब प्रूशियामें यह व्यवस्था होनेको थी कि सार्वजनिक चुनाव करनेवाले लोग तीन वर्गोंमें विभक्त किए जायँ तब राड्बर्टसने लोगोंको इस बातकी सम्मति दी थी कि वे इस विषयमें किसी ओरसे भी मत न दें। इसके उपरान्त उसने केवल एक बार फिर सार्वजनिक कार्योंमें सम्मिलित होनेका प्रयत्न किया था। वह पहली उत्तर जर्मन डाएट (North German Diet) का सदस्य होना चाहता था परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं हुई।

एक बार लैसेलके साथ उसका कुछ पत्रव्यवहार हुआ था जो बहुत ही मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण था। एक बार उसने अनुदार साम्यवादी रुडाल्फ मेयर और लैसेलके मुख्य अनुयायी हैसेन क्लेवरकी सहायतासे एक साम्यवादी दल संगठित करना चाहा था परन्तु इसमें भी उसे सफलता नहीं हुई। वह बहुत ही शान्त प्रकृतिका मनुष्य था इसलिये न तो वह किसी प्रकारका आन्दोलन करना चाहता था और न उसमें वे गुण ही थे जो किसी आन्दोलनकारीमें आवश्यक होते हैं। उसका विश्वास था कि बलपूर्वक भीषण परिवर्तन करके समाजकी कभी उन्नति नहीं की जा सकती। बहुत दिनोंमें धीरे धीरे विकसित होनेके उपरान्त समाज आप ही उन्नत हो जायगा। जर्मनीके श्रमजीवियोंको वह सदा यही उपदेश दिया करता था कि तुम कभी किसी राजनीतिक दलमें न मिलो बल्कि अपना एक ऐसा स्वतंत्र दल बनाओ जिसके उद्देश्य शुद्ध सामाजिक हों। ८ दिसम्बर १८७५ को उसका देहान्त हो गया।

राड्बर्टसके सिद्धान्त साम्यवादी, राष्ट्रीय और एकतंत्री थे। वह जर्मनसाम्यलोकमतवादी दलके केवल आर्थिक सिद्धान्तों और विचारोंको ही मानता था; परन्तु उन सिद्धान्तों और विचारोंको कार्यरूपमें परिणत करनेके उसके ढंग बिलकुल स्वतंत्र थे। राष्ट्रकी सहायतासे लैसेल जो उत्पादक समितियाँ स्थापित करना चाहता था उन्हें वह पसन्द न करता था। वह कहता था कि यह सम्भव है कि किसी जमानेमें साम्यवादियोंका प्रजातंत्र स्थापित हो जाय परन्तु स्वयं अपने देशके लिये वह सबसे अधिक उपयुक्त यही समझता था कि वहाँ सदा जर्मन-सम्राट्का शासन बना रहे। उसे यह भी आशा थी कि आवश्यकता पड़नेपर जर्मन-सम्राट्से ही साम्यवादी सम्राट्के सब काम

निकल जायँगे। वह सच्चा देशहितैषी था और अपने साम्राज्यकी भावी उन्नतिका उसे बहुत अभिमान था।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ ऐडम स्मिथ और रिकार्डोने अर्थशास्त्रसम्बन्धी जो सिद्धान्त स्थिर किए थे उन्हीं सिद्धान्तोंको राड्वर्टसने अपने विचारोंका मुख्य आधार बनाया था और अन्यान्य साम्यवादियोंकी तरह वह भी बराबर यही मानता था कि केवल श्रम ही मूल्यका साधन और मान है। वह यह भी समझता था कि किराए, मुनाफे और मजदूरी आदिके रूपमें जो कुछ धन लोगोंको मिलता है वह सब उसी राष्ट्रीय आयका अंग है जो आय सारे समाजके श्रमके कारण होती है। इसलिये यह कभी कहा ही नहीं जा सकता कि श्रमजीवियोंको जो मजदूरी दी जाती है वह पूँजीमेंसे ही दी जाती है। मजदूरलोगोंके परिश्रमके कारण जो राष्ट्रीय आय होती है, उस आयका केवल कुछ अंश उन्हें मजदूरीके रूपमें मिलता है। इस प्रकार मजदूरीकी समस्याकी सहजमें ही मीमांसा हो जाती है, परन्तु इस प्रथाका सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह होता है कि जमींदारों और पूँजीदारोंके अधिकारमें जमीन और पूँजी चली जाती है जिसके कारण श्रमजीवियोंको विवश होकर अपने श्रमके फलका बड़ा अंश उन जमींदारों और पूँजीदारोंमें बाँट देना पड़ता है जो किसी प्रकारका श्रम नहीं करते; और स्वयं श्रमजीवियोंके पल्ले केवल उतना अंश पड़ता है जिनमेंसे उनका निर्वाह मात्र होता है। इसीके कारण व्यापारिक संसारमें हाहाकार मचता है और सर्वसाधारणमें दरिद्रता फैलती है। श्रमका उत्पादन तो दिन-पर दिन बढ़ता जाता है परन्तु श्रमजीवियोंको सदा उसका केवल उतना ही अंश मिलता है जितनेमें उनका निर्वाह मात्र होता है। अर्थात् पूँजीदारोंको दिनपर दिन राष्ट्रीय आयका अधिक अंश मिलता

है और श्रमजीवियोंका अंश अपेक्षाकृत कम होता जाता है। परन्तु यही श्रमजीवी या उत्पादक तैयार मालके खरीदनेवाले भी होते हैं; और राष्ट्रीय आयमें उनका अंश दिनपर दिन अपेक्षाकृत घटता जाता है इसलिये तैयार माल खरीदनेकी उनकी शक्ति भी कम होती जाती है। माल तैयार तो ज्यादा होता जाता है पर उसकी खपत उतना नहीं बढ़ती। उस दशामें मालका बनना घटने लगता है जिससे लोगोंको मजदूरीका काम भी कम मिलता है और श्रमजीवियोंकी क्रय करनेकी शक्ति और भी घट जाती है। अतः व्यापारिक संसारमें हाहाकार और सर्वसाधारणमें दरिद्रताका प्रसार इसके आवश्यक परिणाम हैं। उधर श्रम न करनेवाले पूँजीदारों और जमींदारोंकी क्रय करनेकी शक्ति तो बराबर बढ़ती जाती है परन्तु उन लोगोंके पास पहलेसे ही सब सामान आवश्यकतासे अधिक होते हैं इसलिये वे केवल शौक और ऐश आरामकी चीजें ही ज्यादा खरीदते हैं जिसके कारण उन्हीं चीजोंका उत्पादन बढ़ता जाता है।

सामाजिक विकासके सम्बन्धमें राड्बर्टसका मत था कि उसके तीन युग होते हैं। एक तो प्राचीन युग था जिसमें गुलाम ही सम्पत्ति समझे जाते थे; दूसरा वर्तमान युग जिसमें जमीन और पूँजी व्यक्तिगत सम्पत्ति है; और तीसरा वह भावी युग जिसमें लोग केवल अपने श्रमके अनुसार सम्पत्तिके अधिकारी होंगे। मनुष्य जातिका उद्देश्य एक ऐसा समाज स्थापित करना है जो पंचायती सिद्धान्तोंके आधारपर संगठित हो। उसी समाजमें यह सम्भव होगा कि प्रत्येक मनुष्यको उसके श्रमके अनुसार पुरस्कार मिले। इस भारी समाज या राज्यमें जमीन और पूँजी जातीय सम्पत्ति हो जायगी और समस्त जातीय उत्पादन सारे राष्ट्रकी अधीनतामें आ जायगा और सब लोगोंको उनके

श्रमके अनुसार पुरस्कार मिलेगा। इस कामके लिये बहुतसे राष्ट्रीय कर्मचारियोंकी आवश्यकता होगी। परन्तु यह युग अभी बहुत दूर है और कमसे कम पाँच सौ वर्षोंमें उपस्थित होगा।

अपने शान्तिपूर्ण विचारों और पदमर्यादा आदिके कारण राड्बर्टस उन सब आन्दोलनोंका बहुत बड़ा विरोधी था जो चटपट कोई नया युग स्थापित करना चाहते थे। उसने सामाजिक परिवर्त्तनोंके जो उपाय बतलाए हैं उनमें पूँजीदारों और जमींदारोंके वर्त्तमान हितोंका पूरा पूरा ध्यान रखा है। एक स्थानपर उसने कहा है कि इन दोनों वर्गोंके पास इस समय जो कुछ उपस्थित है वह सब उन्हींके पास रहने दिया जाय। परन्तु भविष्यमें दिनपर दिन बढ़नेवाले उत्पादनसे जो कुछ लाभ या आय हो उसके अधिकारी केवल श्रम करनेवाले ही हों। इस कामके लिये राज्यको यह निश्चित कर देना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य प्रति दिन कितने घंटोंतक और कितना काम करे; और उसे कितना पुरस्कार मिले। पुरस्कारके द्रव्यपर बीच बीचमें विचार भी होता रहना चाहिए और ज्यों ज्यों उत्पादन बढ़ता जाय त्यों त्यों पुरस्कार भी बराबर बढ़ना चाहिए। राड्बर्टस चाहता था कि राज्य इसी प्रकारके उपायोंसे प्रतियोगिताके दोष दूर करके सामाजिक युग उपस्थित करे। प्रतियोगिताके होनेवाले भयंकर परिणामोंका भी उसने बहुत ही शान्तिपूर्वक अच्छा वर्णन किया है और उन्हें दूर करनेका यह उपाय बतलाया है कि राज्य ही उत्पादन और वितरणका काम उत्तरोत्तर अपने हाथमें लेता जाय; और अन्तमें वह युग उपस्थित करे जिसमें साम्यवादके सिद्धान्तोंका पूरा पूरा पालन किया जाय। श्रम ही मूल्यका साधन है इसलिये श्रमजीवी ही सारी सम्पत्तिके स्वामी बनें। तात्पर्य यह कि अनेक आर्थिक विषयोंमें उसके सि

और लैसेलके सिद्धान्तोंसे विलकुल मिलते जुलते हैं परन्तु उन सिद्धान्तोंको कार्यरूपमें परिणत करनेका उसका ढंग विलकुल स्वतंत्र है।

राड्बर्टस यह तो अवश्य समझता था कि प्रूशिया या जर्मनी राज्य मेरे सिद्धातोंको कार्यरूपमें परिणत करेगा; परन्तु विचारपूर्वक देखनेसे पता चलेगा कि यदि राज्य उसकी बातोंको मान लेता और उनके अनुसार कार्य करने लगता तौ भी बहुत दिनोंमें उसका जो परिणाम होता वह विशेप सन्तोपजनक न होता। इसके अतिरिक्त उन्हीं दिनों जर्मनीवालोंने अनेक नए राजनीतिक अधिकार प्राप्त किए थे; और इस वातकी कभी आशा नहीं की जा सकती थी कि वे उन अधिकारोंका प्रयोग अपनी सामाजिक दशा सुधारनेके लिये न करेंगे। और फिर सबसे बड़ी वात यह है कि जो सामाजिक विकास बहुत ही धीरे धीरे बहुतसे राजकीय कर्मचारियोंकी देखरेखमें हो वह कभी अच्छा नहीं समझा जा सकता।

इधर हालमें जर्मनीमें अर्थशास्त्रसम्वन्धी जिन नए सिद्धान्तोंका प्रचार हुआ है उनपर राड्बर्टसके विचारोंका बहुत अधिक प्रभाव है। अर्थशास्त्रके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंकी उसने जो आलोचनाएँ की थीं उनके कारण उन सिद्धान्तोंमें अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे। इन्हीं सब बातोंके कारण बहुतसे लोग उसे सच्चे वैज्ञानिक साम्यवादका मुख्य संस्थापक मानते हैं।

---

(३) कार्लमार्क्स।

इस वातको सब लोग निर्विवाद रूपसे मानते हैं कि साम्यसम्वन्धी सिद्धान्तोंका प्रचार करनेमें सबसे बड़ा काम कार्लमार्क्सने किया है। आजकल जिस 'वैज्ञानिक और क्रान्तिकारक' साम्यवादका संसारके

प्रायः समस्त देशोंमें कुछ न कुछ प्रचार है और जो साम्यवाद बहुत ही गूढ़ और विकट समझा जाता है उसके प्रचारक दो आदमी थे—एक तो कार्लमार्क्स और दूसरे उसके सहयोगी और प्रधान सहायक एंजेल्स। मार्क्सका जन्म १८१८ में एक यहूदी वकीलके घरमें हुआ था; लेकिन जब मार्क्सकी अवस्था छः वर्षकी थी तभी उसके माता-पिता ईसाई हो गए थे। एक तो मार्क्समें पहलेसे ही अनेक दैवप्रदत्त गुण थे, दूसरे उसे शिक्षा भी यथेष्ट मिली थी; इस लिये शीघ्र ही मार्क्सने वह सारी शिक्षा प्राप्त कर ली जो जर्मनीमें प्राप्त की जा सकती थी। अपने पिताको सन्तुष्ट करनेके लिये यद्यपि उसने कानून भी अध्ययन किया था परन्तु उसकी प्रवृत्ति इतिहास और दर्शनकी ओर विशेष रूपसे थी, इसी लिये वह अपना अधिकांश समय इन्हीं विषयोंके अध्ययनमें लगाता था। वह प्रसिद्ध दार्शनिक हेगेलका पक्का शिष्य था और उसके सिद्धान्तोंको बहुत अच्छी तरह समझता था। १८४१ में उसे दर्शनशास्त्रसम्बन्धी एक निबन्ध लिखनेके कारण डाक्टरकी उपाधि मिली थी।

मार्क्सके विचार क्रान्तिकारक थे इसलिये वह जर्मन विद्वानोंके ढंगपर काम न कर सकता था और प्रूशियाकी राजनीतिक अवस्था ऐसी थी कि वह उस देशके जातीय जीवनके अंशका भी कोई काम स्वतंत्रतापूर्वक नहीं कर सकता था। इस लिये वह विवश होकर विरोधी दलमें सम्मिलित हो गया और कोलोनके एक ऐसे पत्रके सम्पादकीय विभागमें काम करने लग गया जो प्रजासत्तात्मक शासन-पद्धतिका कट्टर पक्षपाती था। उन दिनों उसने प्रूशियाकी तत्कालीन शासन-पद्धतिका घोर विरोध किया था। थोड़े ही दिनोंमें प्रूशियाकी

सरकार उस पत्रको बन्द करनेके लिये कटिबद्ध हो गई; तब उसने उसका सम्पादन छोड़ दिया ।

१८४३ में मार्क्सने एक प्रतिष्ठित और उच्च कुलकी परम गुणवती रमणीसे विवाह कर लिया और पेरिसमें जाकर अड्डा जमा दिया । वहीं उसने साम्यके सिद्धान्तोंका अध्ययन आरम्भ किया और उन्हींके प्रचारमें अपना सारा जीवन बिताना निश्चित किया । वहाँके बड़े बड़े साम्यवादियोंके साथ उसकी घनिष्ट मित्रता हो गई । प्राउड्हनके साथ आर्थिक विषयोंमें वादविवाद करनेमें वह प्रायः सारी रात बिता दिया करता था । जो लोग जर्मनीसे राजद्रोहके अपराधमें निकाल दिए गए थे उनके साथ भी उसकी गहरी दोस्ती थी । वहीं १८४४ में प्रसिद्ध साम्यवादी फ्रेडरिक एन्जेल्ससे भी उसकी भेंट हुई थी । बहुत शीघ्र साम्यसम्बन्धी दोनोंके विचार पूर्णरूपसे एक दूसरेसे मिल गए और तबसे प्रायः चालीस वर्षतक दोनों बराबर एक जी होकर काम करते रहे ।

१८४५ में प्रूशिया राज्यके कहनेसे फ्रान्सकी सरकारने मार्क्सको पेरिससे निकाल दिया । वह ब्रसेल्स चला गया और तीन वर्षतक वहीं रहा । १८४५ में एंजेल्सने अपना वह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया था जिसमें श्रमजीवियोंकी दरिद्रताके कारण आदि बतलाए गए थे । लेकिन उसके इस ग्रन्थकी ओर किसीका ध्यान न गया था । १८४७ में मार्क्स और एंजेल्सने मिलकर साम्यसम्बन्धी कुछ ऐसे विचार प्रकट किए जिनसे प्रायः सभी देशोंमें खलबली मच गई । ये विचार श्रमजीवियोंकी दशाके सुधारनेके सम्बन्धमें थे । उन्हीं दिनों लन्दनमें साम्यवादियोंकी सभा स्थापित हुई थी जिसका ध्यान मार्क्सके उच्च और नवीन मार्गदर्शक सिद्धान्तोंकी ओर आकृष्ट हुआ । मार्क्स और एंजेलके परामर्शसे उस सभाका नए सिरेसे संगठन हुआ

और उसका नाम कम्यूनीस्ट लीग (Communist League) रक्खा गया। इसी सम्बन्धमें एक महासभा भी हुई थी जिसने १८४७ में कम्यूनिस्ट दलका वह प्रसिद्ध घोषणापत्र तैयार किया था जो क्रान्तिकारक साम्यवादका सबसे पहला और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घोषणापत्र था और जिसमें उन्नीसवीं शताब्दीका सारा ज्ञान और सारी विद्वत्ता लगा दी गई थी । यह घोषणापत्र पश्चिमी युरोपकी प्रायः समस्त भाषाओंमें प्रकाशित हुआ था। इस घोषणापत्रकी मुख्य बातें इस प्रकार थीं—

(१) जमीनपर किसीका स्वामित्व न रहने देना—जमीनको जायदाद बनानेका रिवाज उठा देना और भूमिका सार्वजनिक कार्योंमें उपयोग कराना।

(२) भारी और उत्तरोत्तर वर्द्धमान आय-कर लगाना।

(३) उत्तराधिकारकी प्रथाका सर्वांशमें लोप कर देना।

(४) परदेसियों और बलवाइयोंकी सम्पत्ति जब्त कर लेना।

(५) व्यापार व्यवसाय आदिके लिये आवश्यक सब प्रकारका देनलेन केवल राज्यसे रखना जिसके लिये एक राष्ट्रीय बैंक खोला जाय। इस बैंककी सारी पूँजी राज्यकी हो और इसके सिवा किसी बैंकको ऐसे कामोंके लिये उधार देने या अमानत जमा करनेका अधिकार न हो।

(६) डाक, तार आदि समाचार भेजनेके तथा माल आदि भेजनेके साधनोंको एक मात्र राज्यकी सम्पत्ति बनवाना।

(७) राज्याधिकृत कारखानों और उत्पत्तिके साधनोंका विस्तार, कृषियोग्य पड़ती भूमिमें खेती-बारी कराना और सब प्रकारकी कृषि-योग्य भूमिकी उन्नति कराना।

(८) परिश्रमको सबका समान रूपसे आवश्यक और अनिवार्य

कर्तव्य कर देना; उद्योग-धन्धों, विशेषकर कृषिकी रक्षाके लिये औ-द्योगिक समुदाय खड़े करना।

(९) कृषि और शिल्पको एकमें मिला देना—उन्हें अलग अलग व्यवसाय न मानकर एक ही व्यवसायके अंग मानना।

(१०) स्कूलोंमें बालकोंको बिना शुल्क शिक्षा दिलाना और कारखानोंमें उनसे काम लेनेको कानून बनाकर बन्द कर देना।

१८४८ वाले क्रांतिकारक उपद्रवोंके समय मार्क्स अपने एंजेल्स और उल्फ आदि अनेक साथियोंके सहित फिर जर्मनी पहुँच गया और समाचारपत्रके द्वारा परम उन्नत प्रजासत्तात्मक शासनपद्धतिके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करने लगा। दूसरे ही वर्ष वह लन्दनमें जा रहा और वहीं रहकर उसने आर्थिक अवस्था और क्रान्तिके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करने आरम्भ किए। १८५९ में उसने आर्थिक अवस्थाके सम्बन्धमें एक ग्रन्थ प्रकाशित किया जो प्रायः सबका सब उसके पूँजीसम्बन्धी दूसरे प्रसिद्ध ग्रन्थ Das Kapital में जो १८६७ में प्रकाशित हुआ, सम्मिलित हो गया था। बहुत अधिक श्रम करनेके कारण वह वृद्धावस्थामें प्रायः रोगी रहने लगा था। १४ मार्च १८८३ को लन्दनमें उसका देहान्त हो गया। उसने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ Das Kapital का पहला ही खंड अपने जीवनकालमें प्रकाशित किया था, अतः उसकी हस्तलिखित प्रति तथा नोटोंकी सहायतासे उसके मित्र एंजेल्सने उस ग्रन्थका दूसरा और तीसरा खण्ड भी उसकी मृत्युके उपरान्त प्रकाशित कराया; परन्तु, इन दोनों खण्डोंमें वह बात नहीं आई जो पहले खण्डमें थी। प्रायः पचास वर्षोंतक दरिद्र श्रमजीवियोंकी सेवा करनेके उपरान्त १८९५ में एंजेल्सका भी देहान्त हो गया।

अब हम पहले संक्षेपमें यह बतला देना चाहते हैं कि जर्मनीमें साम्यवादका आरम्भ और प्रचार किन कारणोंसे हुआ। १८४० में जब राजा चतुर्थ विलियम प्रूशियाके राजसिंहासनपर बैठा तब जर्मन उदारदलकी बहुत वृद्धि और उन्नति हुई। अबतक जर्मन लोग हेगेलके कोरे दार्शनिक विचारोंमें डूबे रहा करते थे; परन्तु अब धीरे धीरे उनका ध्यान ध्यान दर्शन-शास्त्रकी ओरसे हटने लग गया था और वे ऐहिक विषयोंकी ओर प्रवृत्त होने लगे थे। अब लोग यह सोचने लग गए थे कि इस संसारमें मनुष्यका कल्याण किन बातोंसे होता है और जातीय दृष्टिसे हमारी किस प्रकार उन्नति हो सकती है। अबतक जो ध्यान परमार्थिक विषयोंकी ओर लगा हुआ था वह ऐहिक विषयों तथा मानव-जातिके कल्याणकी ओर लग गया। लोग यह भी समझने लग गए थे कि एक वर्गको अपने अधीन तथा दरिद्र बनाकर दूसरा वर्ग अपना हितसाधन तथा आनन्दमंगल कर रहा है। फ्रान्सीसी राज्यक्रान्तिके गुण और लाभ भी जर्मनीके बड़े बड़े विचारशीलोंकी समझमें आ गए थे और फ्रान्सीसी साम्यवादकी ओर उनकी प्रवृत्ति हो चली थी। विशेषतः पेरिसमें रहनेवाले देशनिर्वासित जर्मन साम्यवादके और भी अधिक पक्षपाती हो गए थे, क्योंकि उन्होंने अच्छी तरह देख लिया था कि यह नया वाद एक बहुत बड़े कष्ट-पीड़ित वर्गके कष्ट दूर करनेके लिये खड़ा हुआ है। इसीलिये मार्क्स और उसके साथियोंके लिये साम्यवाद ही सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक धर्म बन गया था। लेकिन उन लोगोंने यह भी देख लिया था कि अबतक इस सम्बन्धमें जितने सिद्धान्तोंका प्रचार हुआ है वे वैज्ञानिक आधार पर स्थित नहीं हैं। इसीलिये उन्होंने अपने दो उद्देश्य स्थिर किए। एक तो साम्यवादको वैज्ञानिक स्वरूप देना और

दूसरे परम प्रभावशील क्रान्तिकारक ढंगसे सारे युरोपमें उसका प्रचार करना ।

मार्क्सके दलके साम्यवादियोंका मुख्य लक्ष्य पदार्थोंका 'अतिरिक्त मूल्य' है । इस सिद्धान्तका तात्पर्य यह है कि कारखानेदार मजदूरोंसे चीजें तैयार कराते हैं और उसके बदलेमें उन्हें उतना ही वेतन देते हैं जितनेमें बड़ी कठिनतासे उनका निर्वाह होता है; और तब किसी चीजको तैयार करनेमें जितनी लागत लगती है उससे कहीं अधिक उसका दाम रक्खा जाता है । लागत तो मजदूरोंके हिस्सेमें पड़ती है और मूल्यका बाकी अंश मुनाफेके रूपमें पूँजी लगानेवाले कारखानेदार स्वयं ले लेते हैं । इस प्रकार वे दूसरोंके श्रम और दरिद्रताका अनुचित रूपसे लाभ उठाते हैं । सन् १८३२ में ओवेनके दलके कुछ लोगोंने श्रमसम्बन्धी एक नए प्रकारके नोट चलाकर इस अतिरिक्त मूल्यका अपहरण रोकनेके लिये एक व्यवस्था की थी परन्तु उसमें सफलता नहीं हुई थी ।

मार्क्सने बहुत ही योग्यता और विद्वत्तापूर्वक अनेक युक्तियोंसे बहुत विस्तारके साथ इस बातका वर्णन किया है कि मूल्यका मूल श्रम ही है । राड्बर्टस और प्राउड्हनने भी यही सिद्धान्त माना था । लेकिन मार्क्सने इस विषयमें राड्बर्टसका अनुकरण नहीं किया था बल्कि उसके विचार बिलकुल मौलिक और स्वतंत्र थे और उसने अतिरिक्त मूल्यका बड़े विस्तारके साथ वर्णन और प्रयोग किया । यही सिद्धान्त साम्य-दर्शनका प्रधान आधार है । यद्यपि मार्क्सने बहुत अधिक टीका टिप्पणी केवल पूँजीके सम्बन्धमें की है परन्तु अप्रत्यक्ष रूपसे उसकी सारी बातें साम्यवादके सम्बन्धमें ही हैं। उसने पूँजीका वह ऐतिहासिक विकास बतलाया है जो प्राकृतिक नियमोंके अनुसार

अबतक हुआ है और अनिवार्य रूपसे जिसकी प्रवृत्ति साम्यवादके सिद्धान्तोंकी ओर ही है। अर्थात् धीरे धीरे पूँजीके सम्बन्धमें जो परिवर्त्तन होंगे वे साम्यवादके सिद्धान्तोंके बिलकुल अनुकूल ही होंगे। मार्क्सका उद्देश्य सदा यही बतलाना रहा है कि आधुनिक कालमें आर्थिक गति कैसी है। आजकल जितनी आर्थिक बातें हैं वे सब पूँजीके ही अधीन हैं। पहले तो पूँजीकी सृष्टि हुई, तब वृद्धि हुई और अब धीरे धीरे उसका महत्त्व घटने लगा है जिससे सिद्ध होता है कि भविष्यमें साम्यवादके सिद्धान्तोंकी विजय होगी—पूँजी राष्ट्रकी सम्पत्ति हो जायगी। इसीलिये मार्क्सके दलके लोग पुराने साम्यवादियोंकी तरह समाजकी पुनःरचनाकी कोई नई व्यवस्था नहीं निकालते बल्कि ऐसे नए आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्तोंका प्रचार करते हैं जिनकी सत्यता आर्थिक और सामाजिक विकासके इतिहाससे सिद्ध होती है। उनके मतसे पूँजीका विकास इस प्रकार होता जायगा कि आप ही आप उसपरसे व्यक्तिगत अधिकार उठता जायगा और वह राष्ट्रके अधिकारमें आती जायगी।

आजकल पूँजीकी प्रधानता है—सारे संसारमें मानों पूँजीका ही राज्य है। लोग अपनी अपनी पूँजी लगाकर बड़े बड़े कारखाने चलाते हैं जिनमें स्वतंत्र श्रमजीवी काम करते हैं। उन श्रमजीवियोंकी परतंत्रता केवल एक बातमें है—वे अपने मालिकोंसे निश्चित वेतन पाते हैं। लेकिन यह एक बात भी कुछ कम नहीं है। इन स्वतंत्र मजदूरोंका कार्य प्रायः वही होता है जो किसी जमानेमें कुछ समाजोंमें दासों या गुलामोंका होता था। इस पूँजीवाली प्रथासे दो प्रकारके लोगोंकी वृद्धि होती है। इससे एक ओर तो पूँजी लगानेवालोंका दल बढ़ता है जो अपने कारखानों और पूँजीके द्वारा दूसरोंके श्रमसे लाभ

उठाते हैं, और दूसरी ओर उन दरिद्र श्रमजीवियोंका दल बढ़ता है जो नाम मात्रको तो स्वतंत्र रहते हैं पर जिनके पास न तो जमीन होती है और न पूँजी होती है। ऐसे लोगोंके पास किसी चीजको उत्पन्न करनेका कोई साधन नहीं होता और उन्हें केवल अपनी मजदूरी पर ही निर्भर करना पड़ता है। पूँजीदारोंका सबसे बड़ा उद्देश्य केवल यही रहता है कि जिस तरह हो मुनाफेकी रकम जमा करके अपना धन बढ़ाया जाय। यह धन उसी मुनाफेसे बढ़ता है जिसे साम्यवादी 'अतिरिक्त मूल्य' कहते हैं। पूँजीकी सहायतासे द्रव्य उपार्जित करनेकी प्रथाका जो इतिहास है वह और कुछ नहीं केवल अतिरिक्त मूल्यके अपहरण और संग्रहका ही इतिहास है। पूँजीवाली प्रथाको ही समझ लेना मानों अतिरिक्त मूल्यके सम्बन्धकी सब बातोंका ज्ञान प्राप्त कर लेना है। इसीलिये मार्क्सने सबसे पहले मूल्यके प्रश्नको ही उठाया है। इस सम्बन्धमें उसका वक्तव्य संक्षेपमें इस प्रकार है—

जिन समाजोंमें पूँजीकी सहायतासे उत्पादनकी प्रथा प्रचलित है वे समाज बहुत संम्पन्न हैं और उनकी सम्पन्नता इसीसे सिद्ध होती है कि उनके पास अनेक प्रकारकी सामग्रियोंका बहुत बड़ा संग्रह होता है। पहली बात तो यह है कि सामग्री एक ऐसा बाह्य पदार्थ है जिससे मनुष्यकी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। उसकी इसी उपयोगिताके कारण उसका मूल्य होता है। यही मूल्य आगे चलकर सम्पत्तिका उपकरण होता है; उसका सामाजिक रूप चाहे जो कुछ हो। आधुनिक समाजोंमें बाजारोंकी माँग पूरी करनेके लिये सामग्री उत्पन्न की जाती है—उसका विनिमय होता है, इसीलिये उस सामग्रीका जो उपयोग-मूल्य होता है वह विनिमय-मूल्यका रूप धारण कर

लेता है। विनिमय-मूल्यका तात्पर्य उस मूल्य या 'कीमत' से है जिसपर वह सामग्री बाजारोंमें बिकती है। उपयोग-मूल्यके विचारसे भिन्न भिन्न पदार्थोंका परस्पर जिस हिसाबसे विनिमय होता है उसी हिसाबसे उन पदार्थोंका विनिमय-मूल्य या कीमत होती है। लेकिन बाजारोंमें जिस हिसाबसे अनेक पदार्थोंका परस्पर विनियम होता है वह हिसाब एक दूसरेसे बहुत भिन्न होता है। यह बात नहीं है कि मन भर चाँदी, मनभर रूई और मनभर भूसेका परस्पर विनिमय हो सके। मन भर विनिमयके लिये सम्भव है कि आधसेर चाँदीसे ही काम चल जाय और मनभर भूसा तोलेभर चाँदीके बदलेमें ही मिल जाय। इसलिये इस बातकी आवश्यकता होती है कि प्रत्येक पदार्थमें एक सामान्य गुण हो जिसका विचार रखकर उन पदार्थोंका परस्पर विनिमय हो सके। यदि सब पदार्थोंमें कोई सामान्य गुण न होगा तो उनकी पारस्परिक तुलना या विनिमय ही न हो सकेगा। लेकिन सामग्रियोंमें बहुत भिन्न भिन्न भौतिक द्रव्य होते हैं और उन सबमें कोई ऐसा सामान्य गुण नहीं होता जो सबमें उपस्थित हो। विनिमयके कामके लिये भूसा भी उतना ही उपयोगी है जितना कि सोना है; हाँ, वह सामग्री प्रचुर परिमाणमें होनी चाहिए। भूसा देकर सोना लिया जा सकता है, परन्तु सेरभर सोना लेनेके लिये हमें शायद सैंकड़ों-हजारों मन भूसेकी आवश्यकता होगी। इसीलिये सामग्रीके प्रचुर परिमाणमें होनेकी आवश्यकता है।

जिन भौतिक गुणोंके कारण सामग्रियाँ उपयोगी होती हैं उन सब गुणोंका विचार हम केवल इसीलिये नहीं करते कि उन गुणोंमेंसे एक भी गुण ऐसा नहीं होता जो सब सामग्रियोंमेंसे समान रूपसे

पाया जाय । हाँ, एक बात अवश्य ऐसी होती है जो सब पदार्थोंमें समान रूपसे पाई जाती है । संसारकी सभी सामग्रियाँ मानव-श्रमके कारण उत्पन्न होती हैं और मानव-श्रम ही उन्हें उपयोगमें आनेयोग्य बनाता है । इसी मानव-श्रमके कारण सामग्रियोंका मूल्य होता है । जिस सामग्रीको प्रस्तुत करनेमें मनुष्यको जितना ही श्रम करना पड़ता है उसका उतना ही मूल्य होता है । अतः यह सिद्ध हुआ कि श्रमके कारण ही सामग्रीका मूल्य होता है और श्रमके हिसाबसे ही उस मूल्यमें कमी या बेशी होती है । एक बात और है । अधिक बलवान्, चतुर अथवा योग्य कारीगर दिन भरमें बीस थालियाँ तैयार कर लेता है, परन्तु एक दुर्बल अथवा अयोग्य कारीगर दिन भरमें केवल चार ही थालियाँ बनाता है । अतः श्रमका अनुमान करनेके लिये हमें सारे समाजकी औसत योग्यता और औसत श्रम तथा समयके अनुसार पड़ता बैठाना पड़ता है ।

पूँजी लगाकर माल तैयार करने और उसे बेचकर लाभ उठानेके लिये तीन बातोंकी आवश्यकता होती है । एक तो ऐसे वर्गकी आवश्यकता होती है जो पूँजी लगावे और उत्पादनके सब साधनोंको केवल अपने ही अधिकारमें रक्खे । दूसरे एक ऐसे वर्गकी आवश्यकता होती है जो श्रम करे । इस वर्गके लोग होते तो स्वतंत्र ही हैं परन्तु उनके पास द्रव्य-उत्पादनके साधन बिल्कुल नहीं होते । और तीसरे एक ऐसी व्यवस्थाकी आवश्यकता होती है जिसके अनुसार उत्पादित द्रव्यका संसारके बाजारोंमें विनिमय हो सके । परन्तु यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि पूँजीकी सहायतासे धन कमानेकी यह प्रथा कब और कैसे चली, पूँजी लगानेवाला वर्ग कैसे उत्पन्न हुआ, श्रमजीवी लोग उत्पादनके साधनोंसे कैसे वंचित किए गए और सारे संसारमें विनिमयका बाजार कैसे खुला ?

पूँजी लगाकर धन कमानेमें इंग्लैण्ड प्रायः और सब देशोंसे चढ़ा-बढ़ा है; इसीलिये मार्क्सने उसी इंग्लैण्डके इतिहासका दृष्टान्त देते हुए यह बतलाया है कि अनेक प्रकारसे विकसित और विस्तृत होती हुई यह वर्त्तमान अवस्था उपस्थित हुई है। मध्य युगमें जो कारीगर या कृषक होते थे वे अपने उत्पादनके तत्कालीन साधनोंके आप ही स्वामी होते थे। जुलाहा अपने करघेका मालिक होता था, लोहार अपनी भट्टी और औजारोंका मालिक होता था। उन लोगोंको या तो स्वयं अपनी आवश्यकताएँ पूरी करनेके लिये पदार्थ उत्पन्न करने पड़ते थे अथवा अपने प्रान्तके सरदार या सामन्तकी आवश्यकताएँ पूरी करनेके लिये। जो तैयार माल स्वयं कारीगरों या कृषकोंकी तथा सरदारोंकी आवश्यकताएँ पूरी करनेके उपरान्त बच रहता था केवल वही माल दूसरे बाजारोंमें बिकनेके लिये जाता था। ऐसा माल प्रायः कम और घटिया हुआ करता था। लेकिन मध्य युगके अन्तमें परिस्थिति बिलकुल बदल गई। सामन्त-प्रथाका अन्त हो गया और अमेरिका तथा भारतके मार्गोंका आविष्कार हुआ। यद्यपि सामन्तोंके घराने नष्ट हो गए थे, पर फिर भी उनमेंके आदमी बचे हुए थे। कुछ तो उन आदमियोंने अपने पुराने संस्कारों तथा जीविका-निर्वाहके विचारसे दुर्बलोंको दबाया, कुछ पुराने काश्तकारोंकी जमीनोंमें भेड़-बकरियोंके लिये चरियाँ बन गईं और सबसे बढ़कर बात यह हुई कि जमीनका बन्दोबस्त बिलकुल व्यापारी ढंगसे होने लगा। इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ कि कृषकोंके हाथसे जमीन निकल गई, बहुतसे लोगोंकी सम्पत्ति छिन गई और उनके जीविकाके पुराने साधन नष्ट हो गए। वे सब लोग विवश होकर या तो आवारागर्दी करने लगे और या शहरोंमें जा रहे। इस प्रकार आधुनिक दरिद्र श्रमजीवी वर्गकी सृष्टि हुई।

एक ओर यह वर्ग जितना ही दरिद्र होने लगा दूसरी ओर एक वर्ग उतना ही सम्पन्न होने लगा। गुलामोंको खरीदने और बेचनेका व्यवसाय होने लगा, अमेरिका तथा भारतके धनका अपहरण होने लगा और लूट-पाट तथा मार-काट करके दूसरोंकी जमीनें छीनी जाने लगीं। इससे पूँजीदारोंका वर्ग बढ़ने और सम्पन्न होने लगा। नए नए देशोंका आविष्कार होनेके कारण सारे संसारमें मालकी बिक्री होने लगी जिसके परिणाम-स्वरूप इंग्लैण्डके शिल्प और व्यापारकी बहुत वृद्धिमें तरह तरहकी मशीनों और भापके इंजिनके आविष्कारसे और भी सहायता मिली और अट्ठारहवीं शताब्दीके अन्तमें इंग्लैण्डमें बहुत बड़े बड़े कारखाने स्थापित करनेकी प्रथा चल पड़ी। शिल्प-संसारमें बड़ी भारी क्रान्ति हो गई और पूँजीकी सहायतासे द्रव्य उत्पन्न करनेकी प्रथा पराकाष्ठातक पहुँच गई। यहाँ हमें इस बातका स्मरण रखना चाहिए कि पूँजीदारोंका आरम्भसे अबतक सबसे बड़ा उद्देश्य यही रहा है कि जिस प्रकार हो अतिरिक्त मूल्यका संग्रह करके, मुनाफा बढ़ाकर, धन एकत्र किया जाय। अब हमें केवल यह देखना बाकी रह गया कि यह अतिरिक्त मूल्य किस प्रकार प्राप्त किया जाता है

पूँजीकी सहायतासे द्रव्य उत्पन्न करनेकी जो प्रथा है उसका प्रधान अंग विनिमय है। यदि इस विनिमयमें उतने ही मूल्यकी कोई चीज दी जाय जितने मूल्यकी दूसरी चीज बदलेमें मिलती है तब तो अतिरिक्त मूल्यका कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। लेकिन अतिरिक्त मूल्य होता अवश्य है जिससे सिद्ध होता है कि विनिमय-कार्यमें कोई बात अवश्य ऐसी है जिसके कारण एक पक्ष घाटेमें और दूसरा पक्ष मुनाफेमें रहता है। यह मुनाफेमें रहनेवाला पक्ष पूँजीदारोंका है और घाटेमें रहनेवाला पक्ष श्रमजीवियोंका है। अतः सिद्ध होता है कि पूँजीदार

श्रमके बदलेमें श्रमजीवीको जो कुछ देता है उसकी अपेक्षा उस कार्यका मूल्य कुछ अधिक होता है जो कि पूँजीदारके लिये श्रमजीवी करता है। बात यह है कि श्रमजीवियोंके पास केवल अपने शारीरिक श्रमके अतिरिक्त द्रव्य उत्पादन करनेका और कोई साधन नहीं होता। अतः वह ऐसे पूँजीदारके पास जाकर कुछ निश्चित समयतक श्रम करता है जिसके पास उत्पादनके साधन प्रस्तुत होते हैं। इस प्रकार वह मानों अपना श्रम बेचकर उसका मूल्य लेता है। इसी मूल्यको हम मजदूरी कहते हैं। यह मजदूरी प्रायः उतनी ही होती है जितनीमें उसका निर्वाह होता है। लेकिन पूँजीदार किसी श्रमजीवीको जो कुछ देता है उससे अधिक मूल्यका काम वह उसके बदलेमें करा लेता है। जिस कामके लिये किसी मजदूरको महीनेमें १०) रु० मिलते हैं वही काम वास्तवमें मालिकके लिये १२) अथवा १५) का होता है। यही अधिक मूल्य अतिरिक्त मूल्य होता है जिसका संग्रह करके पूँजीदार धनवान् बनता है। तात्पर्य यह कि श्रमका जो कुछ मूल्य होता है वह सबका सब श्रमजीवीको नहीं मिल जाता, उसका कुछ अंश उसे दिया जाता है और कुछ अंश पूँजीदार स्वयं ले लेता है। इसी अतिरिक्त मूल्यके अपहरणपर मार्क्सने सबसे ज्यादः जोर दिया है।

इस अतिरिक्त श्रमसे लाभ उठानेकी प्रथा बहुत पुरानी है। जिन दिनों लोग दास रखते थे उन दिनों भी यह प्रथा किसी न किसी रूपमें प्रचलित थी; और जब सामन्तोंका प्रभुत्व हुआ तब भी यह प्रथा प्रचलित थी। और आजकल भी यह प्रचलित ही है, परन्तु उसका रूप कुछ परिवर्तित हो गया है। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि फल सबका एक ही है। न तो पहले ही लोग इसे दूषित समझते थे और न अब ही यह निन्दनीय मानी जाती है। जिसके पास श्रम

अथवा उत्पादनके साधन न हों वह या तो इस नए ढंगके दासत्वको स्वीकृत करे और या भूखों मरे, उसके लिये तीसरा कोई उपाय है ही नहीं।

पूँजीदार इसी अतिरिक्त मूल्यको उचित और अनुचित सब उपायोंसे संगृहीत करनेके प्रयत्नमें लगे रहते हैं। इन अनुचित उपायोंका वर्णन मार्क्सने अपने ग्रन्थके पहले खण्डमें सैकड़ों पृष्ठोंमें बहुत अधिक विस्तारके साथ किया है और साथ साथ अनेक इतिहासवेत्ताओं तथा सरकारी रिपोर्टोंके वचन भी प्रमाण-स्वरूप उद्धृत किए हैं। उसका यह वर्णन बड़ा ही हृदयविदारक और रोमाञ्चकारी है और अँगरेजी शिल्पकलाकी उन्नतिके इतिहासके लिये बड़ा भारी कलंक है। जिस अँगरेजी शिल्पीय. तथा आर्थिक विभूतिकी संसारमें इतनी प्रशंसा होती है उसीका दूसरा घोर अन्धकारपूर्ण पक्ष मार्क्सका उक्त वर्णन है। उसमें यह बतलाया गया है कि श्रमजीवियोंसे प्रतिदिन कितने अधिक समयतक काम लिया जाता था; छोटे छोटे बच्चों और स्त्रियोंके धनका किस निर्दयताके साथ अपहरण किया जाता था, उनके स्वास्थ्य आदिकी ओरसे किस प्रकार उपेक्षा की जाती थी, आदि आदि। *पूँजीदार लोग उत्पादनका व्यय घटाकर अपना लाभ बढ़ानेके लिये* सब प्रकारके ईश्वरीय तथा मानव-नियमोंको बुरी तरह पददलित करते थे। कारखानोंके सम्बन्धमें इंग्लैण्डमें अबतक जो अनेक नियम बने हैं वे सब कारखानेदारोंके इन अनुचित कृत्योंके साक्षी हैं। इस सम्बन्धमें सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि श्रमजीवियोंका शारीरिक और नैतिक नाश रोकनेके लिये जो कानून बनाए जाते थे उनका ये कारखानेदार घोर विरोध किया करते थे और यथासाध्य उन्हें पास होनेसे रोकते थे अथवा उनके बन्धनोंको शिथिल करनेका प्रयत्न करते थे।

अब हम इस पूँजीदारीकी प्रथाका कुछ और विस्तृत वर्णन करते हैं। पुराने जमानेमें हरएक आदमी अपना छोटा कारखाना अलग रखता था। उस कारखानेपर और उसमें बननेवाली चीजोंपर उसका पूरा पूरा अधिकार होता था; क्योंकि वह सब चीजें अपनी ही सामग्री, अपने ही औजारों और अपने ही श्रमसे तयार करता था। लेकिन आजकलकी प्रथा इससे बिलकुल भिन्न है। इस प्रथाकी सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि उत्पादनका काम तो ऐसे कारखानोंमें होता है जिनमें सब लोग मिलकर काम करते हैं; लेकिन उसमें जो कुछ उपज होती है वह व्यक्तिगत सम्पत्ति हो जाती है। कारखानेमें पूँजी लगानेवाला उस उपजका मालिक बन बैठता है। उत्पादन तो समष्टिके द्वारा होता है पर उसपर अधिकार व्यष्टिका होता है। प्राचीनकालमें जो उपज होती थी वह व्यष्टिके श्रमका फल होती थी, परन्तु आधुनिक कालमें जो उपज होती है वह दूसरे व्यक्तियोंके समुदायके श्रमका फल होती है। पूँजीदारीके इतिहासमें आदिसे अन्ततक बराबर यही विरोध देखनेमें आता है; और यही विरोध आधुनिक कालके समस्त दुःखों और कष्टोंका मूल कारण है और ज्यों ज्यों संसारमें इस प्रथाका प्रसार होता जायगा त्यों त्यों यह विरोध और उसके साथ दुःख, कष्ट और दरिद्रता बढ़ती जायगी।

अब जरा इस दूषित प्रथाका वह परिणाम देखिए जो समाजपर पड़ता है। धनका अपहरण करनेवाले पूँजीदार तो अमीर होते जाते हैं और श्रमजीवी दरिद्र होते जाते हैं, और इन्हीं दोनोंका वर्ग आजकल संसारमें मुख्य है। इसका एक और विलक्षण परिणाम यह भी है कि जहाँ एक ओर कारखानेमें बहुत अच्छी व्यवस्था देखनेमें आती है वहाँ कारखानेके बाहर—सारे संसारमें, प्रतियोगिताकी भयंकर अराजकता

दिखाई पड़ती है। दूसरोंके श्रमसे उत्पन्न होनेवाले धनका अपहरण करनेवाले ये पूंजीदार कभी इस बातका ध्यान नहीं रखते कि बाजारमें इस समय किस या कैसी चीजकी मांग है, उन्हें केवल इसी बातकी चिन्ता रहती है कि जिस प्रकार हो बाजारमें हमारी ही चीजोंकी सबसे अधिक बिक्री हो। हर एक पूँजीदार उन्हीं चीजोंसे बाजार भर देता है जिसमें वह अपना सबसे अधिक लाभ देखता है और मिलावट, रिश्वत या षड्यंत्र आदि अनेक प्रकारके दूषित उपायोंसे अपने दूसरे सहयोगी व्यापारियोंको दबानेकी चेष्टा करता है। इस प्रकार सदा एक ऐसा आर्थिक और व्यापारिक समर छिड़ा रहता है जो समाजके लिये बहुत ही हानिकारक होता है। ज्यों ज्यों पूँजीदारीकी प्रथा बढ़ती जाती है त्यों त्यों मशीनोंमें भी अनेक प्रकारके सुधार होते जाते हैं और उनमें पूर्णता आती जाती है; क्योंकि पूँजीदार यदि अपनी मशीनोंमें सुधार और उन्नति न करें तो वे दूसरोंके सामने प्रतियोगितामें ठहर नहीं सकते। उधर ज्यों ज्यों मशीनोंमें सुधार होता जाता है त्यों त्यों इधर श्रम और श्रमजीवियोंकी आवश्यकता घटती जाती है जिसका फल यह होता है कि श्रमजीवी बेकार होते जाते हैं और उनके भूखों मरनेकी नौबत आती जाती है। लेकिन श्रमजीवियोंकी यह दुर्दशा पूँजीदारोंके और भी अधिक सन्तोषका कारण होती है, क्योंकि उनका हित तो केवल इसीमें है कि बहुतसे ऐसे मजदूर सदा तैयार बैठे रहें जिनके पास कोई काम न हो; और जब बाजारमें तेजी आवे और अधिक मजदूरोंकी आवश्यकता हो तब उन बेकार मजदूरोंसे, थोड़ी मजदूरी देकर काम लिया जाय।

एक बात और है। ज्यों ज्यों मशीनोंमें उन्नति होती जाती है त्यों त्यों माल भी बहुत अधिक तैयार होता जाता है और बाजारकी माँगसे

बढ़ जाता है। जो माल तैयार होता है उसका बाजारकी माँगसे अधिक होना बहुत ही स्वाभाविक और अनिवार्य है। इसका एक कारण है। मालकी बिक्री तो समाजमें ही होती है, पर हम समाजमें ऐसे लोगोंकी संख्या बराबर बढ़ाते जाते हैं जिन्हें केवल उतनी ही मजदूरी मिलती है जितनेमें कठिनतासे उनका उदर-पोषण हो सके। और जहाँ समाजमें अधिकांश संख्या ऐसे ही आदमियोंकी हो जिन्हें केवल पेटभर भोजन मिलता हो और जो दूसरी फाल्तू चीजें खरीदनेमें नितान्त असमर्थ हों वहाँ तरह तरहके तैयार मालकी बिक्री क्या होगी ? पूँजीदारीकी प्रथामें यह एक दूसरा विलक्षण विरोध है कि जहाँ एक ओर वह बाजारकी माँगको कम करती है वहाँ दूसरी ओर वह उसी माँगको अच्छे और बुरे सभी उपायोंसे बढ़ानेके लिये तैयार रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि गोदामके गोदाम ऐसे तैयार मालसे भर जाते हैं जिन्हें बाजारमें कोई पूछता भी नहीं*। माल तो बिकता नहीं, और व्यापारिक संसारमें हाहाकार मच जाता है। एक वर्ग घोर दरिद्रताका कष्ट भोगे और दूसरे वर्गमें बहुत अधिक धन रहनेपर भी हाहाकार मचे। इसीलिये फोरियर कहा करता था कि आजकल संसारमें जो हाहाकार मचा हुआ है वह धनकी बहुत अधिक प्रचुरताके कारण ही है।

---

* इस बातका सबसे अच्छा प्रमाण गत युरोपीय महायुद्धके समय मिला था। ४–५ वर्षोंतक युद्धकालमें युरोपके कारखानोंमें बहुत ही कम माल तैयार हुआ था और बाजारोंमें इतने दिनोंतक वही माल बिका था जो गोदामोंमें भरा हुआ था। माल मँहगा अवश्य हो गया था परन्तु दूसरे कारणोंसे। नहीं तो मालके बहुत अधिक मानमें तैयार रहनेमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं किया जा सकता।

व्यापारिक संसारमें यह हाहाकार प्रायः बीच बीचमें मचा करता है और प्रत्येक बारका हाहाकार पहली बारके हाहाकारकी अपेक्षा अधिक भीषण होता है। अब तो यह नौबत आगई है कि यह हाहाकार प्रायः स्थायी हो गया है। सारा संसार धनके अनुचित और विषम विभागके कारण कष्ट भोग रहा है। इस प्रकार यह व्यवस्था अपने ही आन्तरिक नियमोंके अधीन होकर चल रही है। उत्पादन दिनपर दिन बड़े बड़े धन-कुबेरोंके हाथमें चला जा रहा है, जिनकी अधीनतामें दरिद्र श्रमजीवियोंकी अक्षौहिणी सेनाएँ काम करती हैं। लेकिन दिन पर दिन संसारमें कष्ट और हाहाकारकी जो वृद्धि होती जाती है उससे सिद्ध होता है कि ये पूँजीदार, व्यापारिक और शिल्प-संसारका शासन करनेकी तनिक भी योग्यता नहीं रखते—इस कामके लिये वे बिल्कुल ही असमर्थ हैं। सच तो यह है कि पूँजीदारोंकी प्रथाने उत्पादक शक्तियोंको जो स्वरूप दिया है उसी स्वरूपके विरुद्ध स्वयं उत्पादक शक्तियाँ भीषण विद्रोह कर रही हैं।

यह बात आपसे आप सिद्ध हो जाती है कि सामाजिक उत्पादन और उनका विषम विभाग कभी मेल नहीं खा सकता। संसार ऐसी व्यवस्थामें सुखी नहीं रह सकता जिसमें उत्पादन तो जन-समुदाय करे और लाभ उठावे एक विशिष्ट वर्ग। बहुत दिनोंके विकट अनुभवसे अब लोगोंको यह बात मालूम हो गई है कि लोकमतवाद ही सर्वश्रेष्ठ वाद है और लोकमतानुसारी शासन ही सबसे अच्छा शासन है। उत्पादन जन-समुदायके द्वारा हो, इसमें भी किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। लोकमतवादके अनुसार राजनीतिक सत्ता सर्व साधारणके हाथमें आ जाती है और उन्हें समाजके सारे आर्थिक कार्योंपर पूरा पूरा अधिकार प्राप्त हो जाता है। उस व्यवस्थामें व्यक्तिगत पूँजी समा-

जके हाथमें आ जाती है और समाज अपने हितके विचारसे जिस प्रकार चाहता है उस प्रकार पूँजी तथा उत्पादन आदिकी व्यवस्था करता है । इस प्रकार समाज केवल मनमानी शक्तिके प्रयोगकी सहायतासे नहीं बल्कि सामाजिक विकासके प्राकृतिक नियमोंके अनुसार चलकर एक सुखपूर्ण स्थितितक पहुँच जाता है। उसके इस स्थितितक पहुँचनेके कारण समाज-विकासके आन्तरिक नियम हुआ करते हैं, व्यक्तिगत इच्छा या उद्देश्यका उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । यह विकास क्रमशः आपसे आप होता है; इसे कोई रोक भी नहीं सकता। हाँ, यदि सामाजिक विकासकी इन प्रवृत्तियोंको समझकर लोग उनके मार्गके विघ्न दूर करके विकासमें सहायता देने लगें तो उन्नति बहुत शीघ्र और सहजमें हो जाती है ।

अतिरिक्त मूल्यका अपहरण करनेके सम्बन्धमें अबतक जो जो बातें हुई हैं वे सब बातें अब उलटी या नष्ट नहीं की जा सकतीं । अब यह कदापि सम्भव नहीं है कि बड़े बड़े कारखाने तोड़ दिये जायँ और पहलेकी तरह ही लोग अपने अपने कारखाने अलग कायम करें। उपजमें अतिरिक्त मूल्य होता ही है, इसलिये पूँजीदार वह अतिरिक्त मूल्य अवश्य लेगा । लेकिन यही अतिरिक्त मूल्य पूँजीदारीका आदि भी है, मध्य भी है और अन्त भी है । इसी अतिरिक्त मूल्यके कारण पूँजीदारीका आरम्भ हुआ, इसीके कारण उसकी इतनी उन्नति हुई और इसीके कारण उसका नाश होगा । जो अतिरिक्त मूल्य किसी समय पूँजीदारीके कलेवरका पोषण करता था वही अब उसके लिये विष हो रहा है। शताब्दियोंसे होनेवाले ऐतिहासिक विकासका यही मूलमंत्र है।

आप प्रश्न कर सकते हैं कि पूँजीदारीकी प्रथाका अन्त हो जानेके उपरान्त जो समय आवेगा उस समयके लिये मार्क्सके दलके लोग कौनसी

व्यवस्था बतलाते हैं ? अथवा उस समय नया समाज कौनसा रूप धारण करेगा ? लेकिन मार्क्सके अबतक जितने ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें इन सब बातोंका कोई विशेष उल्लेख नहीं है । जो कुछ थोड़ा बहुत उल्लेख है वह इस प्रकार है:—"हमें स्वतंत्र मनुष्योंके एक ऐसे समुदायका अनुमान करना चाहिए जिसके पास सम्पत्तिके ऐसे साधन हों जिनपर सारे समुदायका समान अधिकार हो और जो अपनी व्यक्तिगत श्रमसम्बन्धी शक्तियोंको सामाजिक शक्तियोंके रूपमें उपस्थित करें । उस समय सारा समुदाय जो कुछ उत्पन्न करेगा वह 'सामाजिक उपज' समझा जायगा । उस उपजका कुछ अंश तो पुनः उत्पादनके काममें लगा दिया जायगा और उसपर समुदायका अधिकार रहेगा और शेष अंश समुदायके लोगोंके भरण-पोषण आदिके काममें लगाया जायगा । इसलिये वह अंश समुदायके सब लोगोंमें बाँट दिया जायगा ।" आगे चलकर मार्क्सने यह भी बतलाया है कि परिस्थिति, व्यवस्था और कार्य आदिके भेदसे उपजके इस विभागमें कुछ परिवर्तन भी होंगे और लोगोंको उनके श्रम करनेके समयके हिसाबसे उपजका अंश मिला करेगा ।

पूँजी आदिके सम्बन्धमें मार्क्सके विचारोंके साथ राज्यके सम्बन्धमें उसके परम मित्र और सहयोगी एंजेलसके विचार भी जान लेने योग्य हैं । एंजेल्सका मत है कि जब राजनीतिक शक्ति सर्व साधारणके हाथमें आ जायगी और उत्पादनके साधन राज्यकी सम्पत्ति हो जायँगे तब राज्यकी स्थिति ही न रह जायगी । प्राचीन कालमें (और कदाचित् आजकल भी) राज्य और कुछ नहीं केवल ऐसे धन हरण करनेवालोंका समुदाय था जो उन स्थितियोंको बनाए रखता था जिनमें वह सुभीतेके साथ धन हरण कर सकता था । यों चाहे कहनेके लिये

धन हरण करनेवाला शासकवर्ग सारे समाजका प्रतिनिधि बन जाय परन्तु वह वास्तवमें अपने ही वर्गका प्रतिनिधि था, सर्वसाधारणके हितका उसे कभी कोई विशेष ध्यान नहीं रहता था। लेकिन अन्तमें जब राज्य सारे समाजका वास्तविक प्रतिनिधि बन जायगा तब फिर वह आप ही अनावश्यक और निरर्थक हो जायगा। जिस समाजमें कोई प्रजावर्ग, वर्गीय शासन या उत्पादनकी अराजकता न हो और व्यक्तिगत अस्तित्व बनाए रखनेके लिये होनेवाले झगड़े-बखेड़े आदि दूर कर दिए गए हों उस समाजमें फिर राज्य जैसी दमनकारक शक्तिकी क्या आवश्यकता है? उस दशामें मनुष्योंपर होनेवाला शासन उठ जायगा और केवल पदार्थों तथा उन्हें उत्पन्न करनेके साधनों आदि पर ही शासन रह जायगा। राज्य तोड़ नहीं दिया जायगा बल्कि वह आप ही आप मर जायगा।

तात्पर्य्य यह कि मार्क्सका साम्यसम्बन्धी सिद्धान्त क्रान्तिकारक है और वह कहता है कि यह क्रान्ति आपसे आप सामाजिक विकासके सिद्धान्तोंके अनुसार होगी। यह सामाजिक और ऐतिहासिक विकास आपसे आप वर्त्तमान सामाजिक अवस्थाको बदल देगा और वह समय ला देगा जब कि साम्यके सिद्धान्तोंका सारे संसारमें पूर्ण रूपसे प्रचार दिखाई देने लगेगा। मार्क्सने पूँजीका बहुत ही विशद इतिहास तैयार किया है और यह सिद्धान्त निकाला है कि सब प्रकारकी सम्पत्तिका मूल श्रम है, इस श्रमके बदलेमें श्रम करनेवालेको निर्वाह मात्रके लिये मजदूरी मिलती है और उसका शेष अंश पूँजीदार हड़प कर जाता है। लेकिन मार्क्सने श्रमकी जो व्याख्या की है वह बहुत ही संकुचित है। वह श्रमसे केवल शारीरिक श्रमका अर्थ लेता है। प्राचीन कालमें जब कि व्यापारक्षेत्र बहुत ही संकीर्ण तथा

औजार आदि बिल्कुल मामूली और सादे होते थे मार्क्सकी यह व्याख्या ठीक होती थी; परन्तु आजकल जब कि व्यापार-क्षेत्र बहुत अधिक विस्तीर्ण हो गया है, नित्य नई नई मशीनें तैयार होती हैं, प्रतियोगिता बहुत अधिक बढ़ गई है और बड़े बड़े कारखानोंकी व्यवस्था, मालकी बिक्री तथा मशीनोंका आविष्कार और उनमें सुधार करनेके लिये बहुत अधिक मानसिक श्रम, योग्यता, बुद्धिमत्ता और साहस आदिकी आवश्यकता होती है, उसकी यह व्याख्या तथा केवल शारीरिक श्रमका इतना महत्त्व समुचित नहीं जान पड़ता। और फिर पूँजीदार केवल पूँजी लगाकर ही अतिरिक्त मूल्यका अपहरण नहीं कर लेता, उसे अपने कारखानेका प्रबन्ध और संचालन करनेके लिये भी तो बहुत अधिक श्रम तथा योग्यताकी आवश्यकता होती है। अतः मार्क्सकी बातें सभी अंशोंमें, कमसे कम आजकल, बिल्कुल ठीक नहीं मानी जा सकतीं। आजकल, चाहे किसी विशिष्ट वर्गमें ही क्यों न हो, संसारमें जो इतनी अधिक सम्पन्नता दिखाई पड़ती है उसका मूल कारण उन्हीं आरम्भिक पूँजीदारोंका परिश्रम है। फिर युरोपके प्राचीन हानिकारक सामन्त-कुलका अन्त भी तो इन्हीं पूँजीदारोंने किया था। अतः केवल आर्थिक ही नहीं बल्कि सामाजिक और औद्योगिक दृष्टिसे भी पूँजीदारोंने आरम्भसे अबतक बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य्य किए हैं, श्रमजीवियोंका महत्त्व उनके सामने गौण है।

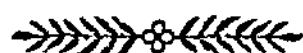
लेकिन फिर भी इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि मार्क्सने दरिद्र श्रमजीवियोंको उनकी दशा समझाने तथा उनमें जागृति उत्पन्न करनेका बहुत बड़ा काम किया है और संसारमें एक नवीन सुखपूर्ण युग लानेका प्रयत्न किया है। उसके विचार अवश्य

राज्यक्रान्तिकारक थे, परन्तु इसमें उसका दोप नहीं है । वह एक ऐसे देश और ऐसे समयमें उत्पन्न हुआ था जिसमें स्वतंत्र और मौलिक विचारोंवाले लोग विना क्रान्तिकारक हुए रह ही नहीं सकते थे। मार्क्समें सबसे बड़ा गुण यह था कि वह अपने सिद्धान्तोंके प्रचारके सम्बन्धमें कभी किसी शक्तिके सामने नहीं दबा। भीषण विरोध और विकट परिस्थितियोंमें भी वह बराबर दृढ़तापूर्वक अपने कार्यमें लगा रहा। लोगोंके कुछ कहने सुननेकी उसने कभी कोई परवाह नहीं की। जिन सिद्धान्तोंको उसने सत्य समझा उनके प्रचारमें, तथा मानवजातिका कल्याण करनेमें, उसने अपना सारा जीवन बहुत ही प्रशंसनीय तथा आदरणीय रूपमें बिता दिया । यदि वह साम्यवादके झगड़ोंमें न पड़ता तो बहुत ही सम्भव था कि वह अपनी योग्यताके कारण प्रूशिया राज्यका सर्वोच्च राजकीय पद प्राप्त कर लेता । परन्तु अपने स्वार्थका उसको कभी स्वप्नमें भी ध्यान नहीं हुआ । उसने देशनिर्वासन स्वीकृत किया परन्तु स्वेच्छाचारिताके शासनके आगे सिर झुकाना अथवा दरिद्रोंकी दशा सुधारनेका काम छोड़ना मंजूर नहीं किया। आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक आदि विषयोंके ज्ञान, दार्शनिक विचार और साहित्यिक योग्यता आदि बातोंमें वह उन्नीसवीं शताब्दीके किसी विचारशीलसे कम नहीं था। साम्यवाद ,तथा औद्योगिक क्रान्तिके सम्बन्धमें उसके विचार चाहे ठीक हों और चाहे भ्रमपूर्ण हों, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसने संसारके सामने जो जो प्रश्न उपस्थित किए हैं उनपर बहुत दिनोंतक बड़े बड़े अर्थशास्त्रज्ञोंका ध्यान आकृष्ट होता रहेगा ।

मार्क्सका ध्यान जीवन भर दो आन्दोलनोंकी ओर लगा रहा। एक तो सार्वभौम या अन्तर्राष्ट्रीय संगठनकी ओर और दूसरे जर्मन साम्य

लोकमतवादकी ओर । इसमेंसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठनका विचार तो उसी-का आरम्भ किया हुआ था; पर जर्मन साम्यलोकमतवादका आरम्भ लैसेलने किया था । तो भी मार्क्सके कारण ही उसके आन्दोलनने मानों जड़ पकड़ी थी । इन दोनोंका विस्तृत विवरण आगेके प्रकरणोंमें दिया जायगा ।

६ सार्वभौम संगठन।



इतिहासके आरम्भसे अबतक बराबर यही देखनेमें आता है कि देशों, समाजों और राष्ट्रोंके सार्वभौम या अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध बराबर बढ़ते जाते हैं। आजकलकी भाँति प्राचीन कालमें भी यही होता था कि बड़े बड़े विचार और बड़े बड़े आन्दोलन किसी एक ही देशकी सीमाके अन्दर बद्ध नहीं रहते थे। पहली बात तो यह है कि सारी युरोपीय सभ्यताका उद्गम एक ही है और दूसरी बात यह है कि प्रायः सारे युरोपवासियोंका धर्म भी एक ही है। ऐसी दशामें युरोपके इतिहासमें अबतक जितनी बड़ी बड़ी बातें हुई उन सबने सार्वभौम रूप धारण किया था। इसका परिणाम भी बहुत ही शुभ हुआ। सार्वभौमताके इस भावने लोगोंका जातीय द्वेष बहुतसे अंशोंमें दूर कर दिया और जिन सिद्धान्तों तथा स्वार्थोंके कारण जातियाँ एक दूसरीसे अलग रहती थीं उनकी अपेक्षा अधिक गूढ़ सिद्धान्तों और स्वार्थोंके बन्धनसे बाँधकर उन्हें एक कर दिया।

सोलहवीं शताब्दीमें जो भयंकर धार्मिक उपद्रव हुए थे उनमें बहुतसे जर्मन स्वयं अपने ही देशवासियोंका विरोध करनेके लिये स्वीडन और फ्रान्सवालोंके साथ मिल गए थे। अठारहवीं शताब्दीमें जब कि ज्ञानका बहुत कुछ प्रसार हो चुका था फ्रान्सीसी राज्यक्रान्तिके समय अन्यान्य देशोंके लोगोंमें भी देशहितैषिताका भाव जाग्रत हो आया

रखानोंका युरोप तथा अमेरिका आदिके कारखानेदारों और मजदूरों आदिपर जो विकट और नाशक प्रभाव पड़ेगा उसका सहजमें ही अनुमान किया जा सकता है। बहुतसे देशोंके कारखानेदारोंने प्रतियोगिताके भयंकर परिणामोंसे बचनेके लिये या तो व्यापारसम्बन्धी संरक्षण नीतिका अवलम्बन किया है या आपसमें मिलकर और बड़ी बड़ी समितियाँ आदि स्थापित करके अपने बचावके अनेक उपाय किए हैं। भला ऐसे आदर्श और उदाहरण देखकर मजदूर भी अपने हितोंकी रक्षाके लिये किसी प्रकारका सार्वभौम संगठन क्यों न करते ?

अनेक देशोंमें ऐसा हुआ है कि कुछ मजदूरोंने अपने वर्गके दूसरे लोगोंकी दशा सुधारनेका कुछ उद्योग किया और उनके इसी अपराधके कारण उस देशकी सरकारने उन्हें अपने देशसे निर्वासित कर दिया। दूसरे देशोंमें जाकर वे ऐसे लोगोंसे मिल गए जो स्वयं उन्हींकी तरह अपने अपने देशसे निर्वासित होकर वहाँ आए थे। और उन लोगोंमें स्वयं उसी देशके कुछ ऐसे लोग आ मिले जिनमें मजदूरोंकी दशा सुधारनेके अपराधमें ही वहाँकी सरकार अनेक प्रकारके कष्ट देती थी। बहुतसे ऐसे ही लोगोंने मिलकर अपने कष्ट देनेवाले मालिकों और राजकर्मचारियोंके प्रयत्नोंको व्यर्थ करनेके लिये मजदूरोंके सार्वभौम संगठनका प्रयत्न आरम्भ किया था। इस श्रमजीवियोंकी सुप्रसिद्ध महासभा (International Association of Working Men) के जन्मदाता भिन्न भिन्न देशोंके निर्वासित थोड़ेसे ऐसे ही लोग थे।

सन् १८३६ में थोड़ेसे निर्वासित जर्मनोंने पेरिसमें एक गुप्त सभा स्थापित की थी जिसका नाम उन्होंने League of the just

(न्यायवालोंकी महासभा) रक्खा। इस सभाका उद्देश्य यह था कि श्रमजीवियोंके ऐसे स्वतंत्र वर्ग स्थापित किए जायँ जो अपनी ही पूँजी-से बड़े बड़े कारखाने चलावें और अपनी सारी व्यवस्था आप ही करें। १८३९ में पेरिसमें एक उपद्रव हुआ था जिसमें इस सभाके लोग भी सम्मिलित थे। इसीलिये उन लोगोंको वहाँकी सरकारके भयसे भागकर लन्दन जाना पड़ा। वहाँ उनकी भेंट उत्तरीय युरोपकी कई जातियोंके कुछ ऐसे मजदूरोंसे हो गई जो जर्मन भाषा समझते थे इ-सलिये उस लीगने स्वभावतः सार्वभौमिक रूप धारण करना आरम्भ किया। लीगके स्वरूपमें केवल इतना ही परिवर्त्तन नहीं हुआ बल्कि उसके सदस्य यह बात भी अच्छी तरह समझने लग गए कि वर्त्तमान परिस्थितियोंमें हम लोगोंका मुख्य कर्त्तव्य यह नहीं है कि हम किसी प्रकारका षड्यंत्र रचें अथवा क्रान्तिकारक उपद्रव करें। हमारा सबसे अधिक कल्याण इसीमें है कि हम श्रमजीवियोंकी शक्तिके सार्वभौम संगठनका उद्योग करें और सब देशोंके मजदूरोंको उनकी वास्तविक दुरवस्थासे परिचित करावें। इस लीगके सदस्योंका मुख्य सिद्धान्त यह था कि—'सब लोग आपसमें भाई भाई हैं।' मार्क्सके विचारोंसे अवगत होकर उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था कि दरिद्र श्रमजी-वियोंकी दशाका सुधार स्वयं उनकी आन्तरिक अवस्थाओं और विका-सके इतिहासका ज्ञान प्राप्त करनेसे ही हो सकता है। इस सुधारके लिये बहुत बड़ी क्रान्तिकी अवश्य आवश्यकता है लेकिन वह क्रान्ति ऐसी होनी चाहिए जो सामाजिक विकासकी नैसर्गिक प्रवृत्तियोंके बि-लकुल अनुकूल हो। वे लोग इस तत्त्वको भी बहुत अच्छी तरह सम-झ गए थे कि सारा सामाजिक संगठन केवल आर्थिक बातोंके ही अधीन है, अतः सामाजिक क्रान्तिके लिये सबसे बड़ी आवश्यकता

इस बातकी है कि आर्थिक बातों और व्यवस्थाओंमें परिवर्त्तन किया जाय। पीछे इन लोगोंने मार्क्ससे पत्रव्यवहार आरम्भ कर दिया और उसके परामर्शसे सन् १८४७ में लन्दनमें श्रमजीवियोंकी एक बड़ी कांग्रेस हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि लीगका फिरसे संगठन हुआ और उसका नाम Communist League (वर्गवादियोंकी सभा) रक्खा गया। इस लीगका सबसे पहला उद्देश्य यह था कि पूँजीदारोंका शासन नष्ट कर दिया जाय, दरिद्र श्रमजीवियोंका प्रभुत्व स्थापित किया जाय, वह पुराना समाज नष्ट कर दिया जाय जिसमें जाति और वर्ग आदिके भेदके कारण बहुत अधिक द्वेष फैला हुआ है और ऐसा नया समाज स्थापित किया जाय जिसमें न तो किसी प्रकारका जातिभेद हो और न जिसमें किसीके पास कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति हो।

इस लीगने मार्क्स और एंजेल्ससे प्रार्थना की थी कि आप लोग कृपा करके हमारे घोषणापत्रके लिये कुछ सिद्धान्त निश्चित कर दें और मार्क्स तथा एंजेल्सने तदनुसार उस घोषणापत्रका खाका तैयार कर दिया था। यह घोषणापत्र फर्वरी १८४८ वाली क्रान्तिसे थोड़े ही दिनों पहले प्रकाशित हुआ था। पाँचवें प्रकरणमें जहाँ मार्क्सके सिद्धान्त दिए गए हैं वहीं यह घोषणापत्र भी दिया जा चुका है, अतः उसे दोबारा यहाँ देनेकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि उस घोषणापत्रमें मार्क्सके सिद्धान्तोंका भयंकर रूपसे परिवर्द्धन किया गया है और उसमें एक युवक क्रान्तिकारक दलका पूरा पूरा जोश भरा हुआ है। ऐसी दशामें यदि उस घोषणापत्रमें सब बातोंका उदारता और शान्तिपूर्वक पूरा पूरा विचार न किया गया हो तो हमें आश्चर्य न करना चाहिए। तौ भी उस

घोषणापत्रमें जो बातें कही गई हैं उनके समर्थनके लिये उसके लेख-कोंके पास यथेष्ट उत्तर और प्रमाण हैं। इन लोगोंपर यह आक्षेप किया जाता है कि ये व्यक्तिगत सम्पत्तिका नाश कर देना चाहते हैं। इसके उत्तरमें ये कहते हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्तिका तो पहलेसे ही नाश हो चुका है, क्योंकि इस समय भी श्रमजीवी अपने श्रमका पूरा पूरा लाभ नहीं उठा सकते। हम व्यक्तिगत सम्पत्तिका नाश नहीं करना चाहते बल्कि उस प्रथाका नाश करना चाहते हैं जिसके अनु-सार आजकलके पूँजीदार श्रमजीवियोंके श्रमका अपहरण करते हैं। यदि कोई यह आक्षेप करे कि वे लोग पारिवारिक व्यवस्थाका नाश करना चाहते हैं तो इसके उत्तरमें ये कहते हैं कि अब परिवारमें रक्खा ही क्या है? कारखानोंमें काम करनेके लिये स्त्रियों और बच्चोंतकको ले जाकर और वेश्यावृत्ति तथा दुराचार आदिका प्रचार करके आप लोगोंने पहले ही परिवारका अन्त कर दिया है। अगर कोई यह कहता है कि इन लोगोंने देशहितैषिताके भाव ही नष्ट कर दिए हैं तो उसको भी वे इसी प्रकारका उत्तर देते हैं। वे कहते हैं कि श्रमजीवियोंका तो अब कोई अपना देश ही नहीं रह गया; स्वयं अपनी जन्मभूमिमें उन्हें किसी प्रकारका अधिकार ही प्राप्त नहीं है और वे पेट पालनेके लिये दूसरे देशोंमें मारे मारे फिरते हैं। इस अवसरपर हमें इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि यह घोषणापत्र एक ऐसे समयमें लिखा गया था जिससे थोड़े ही दिनों पहले प्रायः सारे युरोप और इंग्लैण्डमें श्रमजीवियोंकी दुरवस्था और उसके कारणोंकी जाँच हो चुकी थी और जिसके परिणामस्वरूप ऐसे ऐसे रहस्योंका पता लगा था जिनसे प्रत्येक सहृदय मनुष्य दुःख और क्रोधके मारे पागल हो जाता था। यह घोषणापत्र ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विचार-

णीय है, क्यों कि वह सबसे पहली अन्तर्राष्ट्रीय महासभाके द्वारा प्रकाशित किया गया था। इसके अतिरिक्त वह उन्नीसवीं शताब्दीकी अनेक महत्त्वपूर्ण उक्तियोंमेंसे एक है; इस विचारसे भी वह कम आदरणीय नहीं है। इस घोपणापत्रका आदर भी सारे संसारमें यथेष्ट हुआ था। एंजेल्सके कथनानुसार फर्वरी १८४८ वाली क्रान्तिसे कुछ ही सप्ताह पहले यह घोपणापत्र लन्दनमें छपनेके लिये दिया गया था। थोड़े ही दिनोंमें इस घोपणापत्रकी प्रतियाँ सारे संसारमें बँट गईं और प्रायः सभी देशोंकी भाषाओंमें उसके अनुवाद हो गए। अबतक अनेक देशोंमें श्रमजीवियोंके अन्दोलनके लिये यह घोपणापत्र मार्गदर्शकका काम देता है। कुछ दिनों बाद उसका 'सब लोग आपसमें भाई भाई हैं' वाला मूलमंत्र बदल गया और उसके बदलेमें उन्होंने 'समस्त देशोंके दरिद्र श्रमजीवी मिलकर एक हो जायँ' को अपना मूल सिद्धान्त बनाया जिससे श्रमजीवियोंवाले इस झगड़ेका सार्वभौम स्वरूप बहुत अच्छी तरह प्रकट होता था। थोड़े ही दिनों बाद सारे संसारमें यह शोर मच गया कि समस्त देशोंके दरिद्र श्रमजीवी मिलकर एक हो जायँ; और तबसे आज तक यह शोर बरावर जारी है।

सन् १८४८ में फ्रान्स, इटली, जर्मनी, आस्ट्रिया और हंगरीके निवासियोंने पुराने ढंगकी राजनीतिक व्यवस्थाओं और संस्थाओंके विरुद्ध विद्रोह किया था। इस विद्रोहके कारण एक ओर तो लीगके कामोंमें कुछ विघ्न पड़ा था; क्योंकि उन दिनों जो घटनाएँ हो रही थीं उनपर उस दुर्बल लीगका कुछ वश नहीं चलता था। लेकिन दूसरी ओर इस विद्रोहके कारण लीगके सदस्योंको एक अच्छा अवसर मिल गया था। उस विद्रोहके समय वे लोग अपनी जन्मभूमिमें पहुँच गए और जर्मनीके अनेक भागोंमें उन लोगोंने लोकमतवादक

बहुत कुछ प्रभुत्व स्थापित कर दिया। लेकिन फिर भी सब देशोंकी सरकारोंने उस विद्रोहका दमन कर ही लिया। इस दमनके उपरान्त लोग स्पष्ट रूपसे यह बात समझने लग गए कि अब कुछ दिनोंके लिये प्रभावशाली क्रान्तिका अवसर फिर हाथसे निकल गया। उसके उपरान्त ही एक अभूतपूर्व औद्योगिक सुख-समृद्धिका युग आरम्भ हुआ। पूँजीदारीकी प्रथाने और भी विस्तृत रूप धारण करना आरम्भ किया जिससे पूर्ण रूपसे सिद्ध हो गया कि दरिद्र श्रमजीवियोंके हितसाधनके लिये यह समय अनुकूल नहीं है। उस समय मार्क्स और उसके दलके लोग कहने लगे कि जिस समय पूँजीदारीकी प्रथा उन्नतिशील सामाजिक विकासमें बाधक होने लगेगी और जिस समय उसमें स्वयं विकसित और उन्नत होनेकी शक्ति न रह जायगी केवल उसी समय उसके विरुद्ध सफलतापूर्वक प्रयत्न हो सकेगा। इसीलिये मार्क्स अध्ययन करनेके लिये लन्दन चला गया। सन् १८५२ में श्रमजीवियोंकी पहली सार्वभौम महासभा बन्द हो गई और अच्छे अच्छे विचारशील समझने लग गए कि अब इस आन्दोलनका सदाके लिये अन्त हो गया।

यद्यपि सन् १८४९ में भिन्न भिन्न देशोंकी सरकारोंने विद्रोहका दमन कर लिया था लेकिन फिर भी विद्रोहकालमें जो बड़े बड़े विकट प्रश्न उठ खड़े हुए थे उनका कुछ भी निपटारा न हो सकता था। हुआ केवल यही था कि वे प्रश्न कुछ समयके लिये स्थगितसे हो गए थे। थोड़े ही वर्षों बाद युरोपवाले फिर पुराने ढंगकी राजनीतिक व्यवस्थाओंसे घबराने लग गए। सन् १८५९ में आस्ट्रियाके विरुद्ध इटली उठ खड़ा हुआ; प्रूशियाके उदारदलवाले मंत्रिमंडलसे भिड़ गए; और बिस्मार्क और उसके राजाने निश्चित कर लिया कि यदि सारे जर्मनी-

को एक करके उसका पुनःसंगठन करनेके काममें कोई बाधा पड़े तो उस बाधाको दूर करनेके लिये प्रूशियाकी सेना सदा तैयार रहनी चाहिए। ये सब व्यापार एक नई उन्नतिके भिन्न भिन्न लक्षण थे। इसी प्रकारकी अनेक घटनाएँ फ्रान्स, स्पेन और पूर्वीय युरोपमें भी हुई थीं जिनसे सिद्ध होता था कि युरोपकी सभी जातियोंमें एक ही तत्त्व काम कर रहा है; और यही काम युरोपीय राजनीतिज्ञोंके विचारोंको पूरा नहीं होने देता था। १८४८ के बाद सभी देशोंकी सरकारोंको विवश होकर उन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार राजनीतिक सुधार करने पड़ते थे जो लोगोंने विद्रोहकालमें स्थिर किए थे।

यद्यपि ऊपरसे देखनेपर इन सामाजिक प्रश्नोंका ऊपर बतलाए हुए राजनीतिक व्यापारोंके साथ कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं दिखलाई पड़ता, लेकिन फिर भी सामाजिक प्रश्नोंके पुनः उठनेसे यह बात सिद्ध होती थी कि युरोपमें एक ऐसे नए जीवनका संचार हो रहा है जिसका किसी प्रकार दमन नहीं किया जा सकता। लैसेलने जर्मनीमें साम्यलोकमतवादकी स्थापना की और मार्क्सकी देखरेखमें और भी उत्तमतापूर्वक सार्वभौम संगठनका आन्दोलन आरम्भ हुआ। ये दोनों बातें इस बातका स्पष्ट प्रमाण थीं कि युरोपके सभी उन्नत देशोंके श्रमजीवी मानव-जातिकी नैतिक और आर्थिक उन्नतिके काममें अधिक तत्परतासे कटिबद्ध हो गए हैं। अब हम उस आन्दोलनकी उन्नतिका इतिहास बतलाते हैं जिसे सार्वभौम (International) कहते हैं।

सन् १८६२ में लन्दनमें जो सार्वभौम प्रदर्शिनी हुई थी उसीने लोगोंको श्रमजीवियोंकी सार्वभौम महासभा (International Association of Working Men) की स्थापनाका पहले पहल अवसर दिया। फ्रान्सके श्रमजीवियोंने प्रदर्शिनीमें अपने देशके सम्रा-

ट्की स्वीकृति और आर्थिक सहायता पाकर एक डेपुटेशन भेजा था। उस समय पेरिसके बड़े बड़े समाचारपत्रोंने भी इस कामके साथ सहानुभूति दिखलाई थी और कहा था कि इस डेपुटेशनके लोग प्रदर्शिनीमें जाकर केवल शिल्पकलासम्बन्धी असंख्य नई बातें ही नहीं देख आवेंगे बल्कि बहुत दिनोंसे फ्रान्स और इंग्लैण्डमें जो मनमुटाव चला आता है वह भी दूर कर आवेंगे। इन फ्रान्सीसी प्रतिनिधियों-की उनके कुछ अँगरेज भाइयोंने एक दावत भी की थी जिसमें दोनों ओरसे इस आशयके विचार प्रकट किये गए थे कि सभी देशोंके श्रमजीवियोंके हित बिलकुल एकसे हैं और उनके साधन तथा वृद्धिमें सब लोगोंको मिलकर सहायक होना चाहिए। दूसरे वर्ष फ्रान्सीसी श्रमजीवियोंका एक दूसरा डेपुटेशन इंग्लैण्ड गया। उन्हीं दिनों पौलेण्डवालोंने नेपोलियनके विरुद्ध विद्रोह किया था। नेपोलियन चाहता था कि पश्चिमी शक्तियाँ भी पौलेण्डमें हस्तक्षेप करनेके पक्षमें सम्मति प्रकट करें, इसी लिये वह इस बार भी डेपुटेशनके जानेके पक्षमें था। इस बार डेपुटेशनवालोंने इंग्लैण्ड जाकर यह इच्छा प्रकट की कि पोलैण्डमें शान्ति स्थापित की जाय और पूँजीके विरुद्ध श्रमजीवियोंका हित साधन करनेके लिये महासभाएँ की जायँ। पहले प्रायः एक वर्षतक तो इस विषयमें कुछ भी निश्चित न हुआ, पर एक वर्ष बाद २८ सितम्बर सन् १८६४ को लन्दनमें समस्त जातियोंके श्रमजीवियोंकी एक बहुत बड़ी सभा प्रोफेसर बीस्लीके सभापतित्वमें हुई जिसमें कार्ल मार्क्स भी उपस्थित था। इस सभामें नई महासभाका स्वरूप और उद्देश्य आदि निश्चित करनेके लिये भिन्न भिन्न जातियोंके ५० प्रतिनिधियोंकी एक समिति बनाई जिसमें प्रायः आधे सदस्य अँगरेज थे। जो महासभा सारे संसारको हिला देनेके लिये स्थापित होनेको

थी उसकी उपसमितिकी पहली बैठकमें केवल तीन पौण्ड चन्दा आया था।

महासभाका स्वरूप, उद्देश्य और कार्यप्रणाली आदि निश्चित करनेका काम सबसे पहले मेजिनीके सपुर्द किया गया था। लेकिन उस सुप्रसिद्ध इटालियन देशभक्तके विचार और काम करनेके ढंग श्रमजीवियोंकी सार्वभौम महासभा स्थापित करनेके कामके लिये उपयुक्त नहीं थे। उसने जो नियम आदि बनाए थे वे केवल ऐसे राजनैतिक षड्यंत्रके लिये ही उपयुक्त थे जिसका सञ्चालन एक बलवान् अधिकारीके द्वारा होता और जिसमें उसने अपना सारा जीवन व्यतीत किया था। जातिगत द्वेषका वह बहुत बड़ा विरोधी था और आर्थिक विषयोंमें उसके विचार बहुत ही शिथिल थे। परन्तु मार्क्सकी श्रमजीवियोंके बहुत बढ़े चढ़े आन्दोलनके साथ पूरी पूरी सहानुभूति थी। बल्कि सच पूछिए तो उसीने वह आन्दोलन खड़ा किया और बढ़ाया था; इसलिये प्रस्तावित महासभाके नियम आदि बनानेका काम उसीको सौंपा गया। उसने जो प्रारम्भिक भाषण और नियम आदि तैयार किए थे उन्हें कमेटीके सब सदस्योंने एकमत होकर स्वीकृत कर लिया था।

मार्क्सने जो प्रारंम्भिक भाषण तैयार किया था उसमें तीन बातोंपर बहुत जोर दिया था। पहली बात तो उसने यह बतलाई थी कि यद्यपि सन् १८४८ से लेकर अबतक शिल्पकला तथा जातीय सम्पत्तिमें बहुत अधिक वृद्धि हुई है तथापि सर्वसाधारणके कष्टोंमें अबतक कुछ भी कमी नहीं हुई। दूसरी बात यह थी कि यद्यपि श्रमजीवियोंने लड़-झगड़कर यह तो तै करा लिया है कि हम प्रति दिन दस घंटेसे अधिक काम न करेंगे जिससे कारखानेदारोंको आर्थिक दृष्टिसे बहुत

कुछ धक्का पहुँचा है लेकिन फिर भी माल तैयार करने और बेचनेमें जो प्रतियोगिता हो रही है उसका नियमन सामाजिक शासनके द्वारा होना चाहिए। तीसरी बात यह थी कि थोड़ेसे साहसी श्रमजीवियोंने उत्पादक समितियाँ स्थापित करके यह बात प्रमाणित कर दी है कि बिना पूँजीदार मालिकोंके भी बिलकुल आजकलके ढंगपर बहुत बड़े बड़े कारखाने स्थापित किए और चलाए जा सकते हैं; और गुलामीकी प्रथाकी तरह मजदूरीकी प्रथा भी केवल बीचकी एक संयोजक अवस्था है जिसका सम्मिलित श्रमके सामने नष्ट हो जाना अवश्यम्भावी है। यह सम्मिलित श्रमकी प्रथा एक ऐसी प्रथा है जो श्रमजीवियोंको बहुत ही चतुर, प्रसन्न और सन्तुष्ट कर देती है।

श्रमजीवी जितनी ही अधिक संख्यामें मिलेंगे उन्हें उतनी ही अधिक सफलता होगी, परन्तु केवल समितियाँ स्थापित करनेसे ही सारा काम नहीं हो सकता। यह काम अन्तर्राष्ट्रीय संगठनका है कि वह ऐसा संघ स्थापित करे जो पूरी पूरी सफलता प्राप्त कर सके; और इस कामके लिये श्रमजीवियोंको सार्वभौम अथवा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिको अपने हाथमें लेना चाहिए, अपनी अपनी सरकारोंकी राजनीतिपर पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए और पारस्परिक, व्यक्तिगत अथवा जातीय व्यवहारोंमें नीतिके साधारण नियमोंका पालन करना चाहिए। इस प्रकारकी नीतिके अवलम्बनका प्रयत्न करना ही मानों श्रमजीवियोंके निस्तारका प्रयत्न करना है। इसके लिये अवश्यक है कि—
" समस्त देशोंके दरिद्र श्रमजीवी मिलकर एक हो जायँ।"

सार्वभौम महासभाके नियमोंके आरम्भमें ही सार्वभौम साम्यवादके सब मुख्य मुख्य सिद्धान्त दे दिए गए थे। उसमें यह बतलाया गया था कि पराए श्रम और धनका अपहरण करनेवाले पूँजीदार

जीवननिर्वाहके समस्त साधनों—अर्थात् श्रमके उपकरणों—को अपने अधिकारमें रखकर आर्थिक दृष्टिसे श्रमजीवियोंको अपना गुलाम बना लेते हैं। यही बात सब प्रकारके सामाजिक कष्टों, मानसिक अवनति और राजनीतिक पराधीनताका कारण है। श्रमजीवियोंके आर्थिक निस्तारका जो उद्देश्य है वह और सब उद्देश्योंसे बड़ा है; समस्त राजनैतिक आन्दोलनोंको उसके बाद स्थान मिलना चाहिए। श्रमजीवियोंके निस्तारका यह प्रश्न न तो स्थानिक है और न राष्ट्रीय, बल्कि यह एक सामाजिक प्रश्न है जिसकी मीमांसाके लिये समस्त उन्नत जातियोंको मिलकर प्रयत्न करना चाहिए। इन्हीं सब कारणोंसे श्रमजीवियोंकी सार्वभौम महासभा स्थापित की गई है। यह सभा कहती है;—

"जितनी सभाएँ या जितने व्यक्ति इस महासभामें सम्मिलित होते हैं वे पारस्परिक व्यवहारके लिये तथा दूसरे बाहरी आदमियोंके साथ व्यवहार करनेके लिये बिना उनके वर्ण, धर्म अथवा जातीयताका विचार किए सत्य, न्याय और नीतिका सदा पूरा पूरा ध्यान रखना मंजूर करते हैं। जिन्हें कोई अधिकार न हो उनका कोई कर्त्तव्य भी न होना चाहिए; और जिन्हें अधिकार दिए जायँ उनके कुछ कर्त्तव्य भी अवश्य होने चाहिए।"

महासभाकी नियमावलीमें इसी प्रकारके आरम्भिक उच्च विचार दिए गए थे। अब लोगोंका यही कर्त्तव्य रह गया था कि वे उन विचारोंको परिवर्द्धित करें। चाहे कोई इन विचारोंको सत्य और कार्यरूपमें परिणत होनेके योग्य समझे और चाहे न समझे परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मार्क्सने उन विचारोंको बहुत ही योग्यता तथा विद्वत्तापूर्वक सर्वसाधारणके सामने उपस्थित किया था। जिस बुद्धिमत्ता

और विद्वत्तापूर्वक यह इतना बड़ा आन्दोलन आरम्भ किया गया था उसकी उपमा संसारके इतिहासमें बहुत ही कम मिलेगी। सार्वभौम या अन्तर्राष्ट्रीय महासभाकी स्थापना इसलिये की गई थी कि श्रमजीवियोंकी समस्त सभाओं आदिका एक केन्द्र स्थापित हो जाय और वे सब एक दूसरीको सहायता और परामर्श दें। इन सब सभा-समितियोंका केवल यही उद्देश्य था कि जिस प्रकार हो सके श्रमजीवियोंकी रक्षा, उन्नति तथा निस्तार किया जाय। उक्त महासभाका यह उद्देश्य कदापि नहीं था कि वह दूसरी सभाओंपर केवल हुकूमत चलावे। वह श्रमजीवियोंका कल्याण करने, उन्हें सब प्रकारकी बातें बतलाने, काम करनेके नए नए मार्ग सुझाने और उनमें एकता उत्पन्न करनेके लिये स्थापित हुई थी। उसकी शर्त्त केवल यही थी कि जो सभाएँ उसमें सम्मिलित हों वे अपनी आन्तरिक अवस्था बिलकुल ठीक रक्खें।

एक प्रधान काउन्सिल नियुक्त की गई थी जिसका मुख्य स्थान लन्दन रक्खा गया था। इस काउन्सिलके सभापति, कोषाध्यक्ष और प्रधान मंत्री तीनों सदा अँगरेज रहनेको थे और प्रत्येक जाति या राष्ट्रको इस बातका अधिकार था कि वह अपना एक प्रतिनिधि मंत्री काउन्सिलमें रक्खे। प्रधान काउन्सिलका यह कर्त्तव्य था कि वह प्रतिवर्ष कांग्रेसोंके अधिवेशन करे और महासभाके सब कामोंकी देखरेख करे; परन्तु स्थानिक सभाओंको इस बातका पूरा पूरा अधिकार था कि वे अपने स्थानीय कार्योंका जैसा चाहें वैसा प्रबन्ध करें। श्रमजीवियोंमें और भी एकता उत्पन्न करनेके लिये इस बातकी सिफारिश की गई थी कि भिन्न भिन्न देशोंके श्रमजीवी अपनी अपनी जातीय महासभाएँ स्थापित करें।

जिस प्रकार इस महासभाके संस्थापकोंमेंसे मार्क्स मुख्य था उसी प्रकार वह उसके संचालकोंमें भी प्रधान रहा। उसने महासभाके आरम्भिक भाषण और नियमों आदिमें जिन बातों और सिद्धांतोंका वर्णन किया था; बादकी कांग्रेसोंमें प्रधानतः उन्हीं बातों और सिद्धान्तोंपर वाद-विवाद हुआ करता था। यद्यपि उन कांग्रेसोंमें प्राउड्हन, ब्लैंक्वी और बकुनिन आदिके दलोंके लोग भी सम्मिलित रहते थे परन्तु अधिकांश लोगोंकी प्रवृत्ति मार्क्सके विचारोंकी ओर ही रहती थी।

पहले यह विचार किया गया था कि महासभाके संगठनकी अन्तिम व्यवस्था करनेके लिये सन् १८६५ में ब्रुसेल्स नगरमें पहली कांग्रेस की जाय। परन्तु बेल्जियमकी सरकारने इस कांग्रेसको होनेसे रोक दिया जिसके कारण काउन्सिलको लन्दनमें ही एक कान्फरेन्स करके सन्तुष्ट होना पड़ा। सितम्बर १८६६ में जनेवा नगरमें पहली कांग्रेस हुई जिसमें ६० प्रतिनिधि उपस्थित थे। उसी कांग्रेसमें मार्क्सके बनाए हुए नियम और अनेक प्रस्ताव स्वीकृत हुए। एक प्रस्ताव यह भी था कि प्रतिदिन काम करनेका समय धीरे धीरे घटाकर आठ घंटे तक लानेके लिये आन्दोलन किया जाय। इसके अतिरिक्त उस कांग्रेसने ऐसी औद्योगिक तथा साधारण शिक्षाकी बहुत विस्तृत व्यवस्था बतलाई थी जो श्रमजीवियोंकी उन्नति करके उन्हें निम्नवर्गसे मध्यम वर्गमें पहुँचा सके। साम्यवादके सिद्धान्त भी बहुत ही सरल भाषामें उपस्थित किए गए थे। श्रमके सम्बन्धमें सार्वभौम महासभाने केवल मोटे मोटे सिद्धान्त बतला दिए थे और कहा था कि सब लोगोंको स्वतंत्रतापूर्वक मिलकर एक हो जाना चाहिए। और इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये पूँजीदारों और ज़मींदारोंके हाथकी राजकीय शक्ति श्रमजीवियोंके हाथमें आ जानी चाहिए। इस कांग्रेसमें फ्रान्सीसी प्रतिनि-

ायोंने प्रस्ताव किया था कि महासभामेंसे वे पढ़े-लिखे दरिद्र निकाल
ए जायँ जो श्रमजीवी नहीं हैं; क्योंकि उनके अनेक आन्दोलनोंसे
हुत कुछ उपद्रव होते हैं। यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया
ता तो श्रमजीवियोंके बहुत बड़े बड़े नेता भी महासभासे अलग हो
ते क्योंकि वे दरिद्र होनेपर भी श्रमजीवी नहीं थे। इसलिये यह
ताव स्वीकृत न हुआ।

सन् १८६७ में लासेन नगरमें दूसरी कांग्रेस हुई जिसने साम्य-
दसम्बन्धी बहुतसे नए सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया। उस कांग्रे-
ं निश्चित हुआ था कि रेल, तार, डाक आदि गमनागमन और
व्यवहारके सब साधन राज्यकी सम्पत्ति बना दिए जायँ जिसमें बहुत
ो बड़ी कम्पनियोंका उन परका एकान्त अधिकार नष्ट हो जाय;
ाकि इसी एकान्त अधिकारके कारण बहुतसे श्रमजीवियोंको परा-
ा होना पड़ता है और उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रतामें बाधा पड़ती
कांग्रेसने यह भी कहा था कि सहयोग समितियाँ स्थापित की
ं और मजदूरी बढ़ानेके लिये प्रयत्न हों; और साथ ही इस बात
बहुत जोर दिया गया था कि जो सहयोग समितियाँ स्थापित हों
स ढंगसे अपना काम न चलावें कि जिसमें उनके सदस्योंका एक
स्वतंत्र वर्ग बन जाय और उसके कारण एक और निम्नतम तथा
त्तम वर्गकी सृष्टि हो जाय। तात्पर्य यह कि समितियोंमें छोटेसे
और दरिद्रसे दरिद्र लोग भी सम्मिलित किए जायँ और उनकी
तिक उन्नति की जाय; क्योंकि सामाजिक उन्नति तभी हो सकती है
कि सारा समाज मिलकर न्यायपूर्वक सबकी उन्नतिका प्रयत्न करे।

सितम्बर १८६८ में ब्रूसेल्स नगरमें जो तीसरी कांग्रेस हुई थी
ं साम्यके सिद्धान्तोंको और भी परिवर्द्धित करके उनपर विशेष

प्रकाश डाला गया था । इस कांग्रेसमें युरोपके सभी बड़े बड़े देशोंके प्रायः सौ प्रतिनिधि उपस्थित थे । उसमें निश्चित हुआ था कि खानें, जंगल, जमीन और गमनागमन तथा पत्रव्यवहार आदिके समस्त साधन या तो समाजकी और या लोकमतानुसारी राज्यकी सम्पत्ति हो जायँ; और तब वह राज्य उन सबको श्रमजीवियोंकी ऐसी समितियोंके सपुर्द कर दे जो समाजकी इच्छाके अनुसार सबके हितके लिये उचित रीतिसे उनका उपयोग करें। यह भी निश्चित हुआ था कि ऐसी व्यवस्था हो जाय कि जो लोग उत्पादन कार्य्यके लिये मशीनें आदि चाहते हों वे सहयोग समितियोंके ही द्वारा अथवा उनमें सम्मिलित होकर मशीनें प्राप्त कर सकें और सहयोग समितियाँ एक दूसरीकी साखपर काम करें। इस कांग्रेसने हड़तालों तथा शिक्षाके सम्बन्धमें भी अच्छी व्यवस्थाएँ तैयार की थीं और इस बातपर बहुत जोर दिया था कि लोगोंको वैज्ञानिक तथा औद्योगिक शिक्षा देनेके लिये इस बातकी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि उनका काम करनेका समय घटा दिया जाय । उसमें एक यह प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ था कि—"लोकमतवादके अनुसार स्थापित प्रत्येक समिति इस बातको नामंजूर करती है कि पूँजीदारोंको किराए, सूद मुनाफे या और किसी रूपमें दूसरोंके श्रम अथवा धनके अपहरणका अधिकार है । श्रमजीवियोंको अपनी सब बातोंपर पूरा पूरा अधिकार होना चाहिए और अपने श्रमका पूरा पूरा पुरस्कार मिलना चाहिए । "

उन्हीं दिनों फ्रान्स और जर्मनीमें कुछ झगड़ा होनेको था इसलिये कांग्रेसने भावी युद्धका घोर विरोध किया था और कहा था कि यदि युद्ध छिड़ जाय तो समस्त श्रमजीवी सार्वदेशिक हड़ताल करें ।

१८६९ में बेसेल नगरमें जो चौथी कांग्रेस हुई थी उसमें प्रायः पहलेकी ही कांग्रेसोंके सब प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे। उसमें एक नया

प्रस्ताव यह था कि उत्तराधिकारकी प्रथा नष्ट कर दी जाय, परन्तु यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका। क्योंकि ३२ प्रतिनिधि इस प्रथाको नष्ट करनेके पक्षमें थे, परन्तु २३ उसके विरुद्ध थे और १७ ने इस सम्बन्धमें मत देनेसे इन्कार कर दिया था।

इन कांग्रेसोंको युरोपमें अपना उद्देश्य सिद्ध करनेमें बहुत बड़ी सफलता प्राप्त हुई थी। १८६६ में शेफिल्ड नगरमें अँगरेजी-व्यापार-संघों (English Trade Unions) के प्रतिनिधियोंकी एक कान्फरेन्स हुई थी जिसने व्यापारसंघोंसे इस बातकी बहुत जोर देकर सिफारिश की थी कि वे सार्वभौम महासभाके साथ सम्बद्ध हो जायँ। सार्वभौम महासभाने भी युरोपसे, इंग्लैण्डमें श्रमजीवियोंका आना रोककर इन अँगरेजी व्यापारसंघोंको बहुत अधिक सहायता दी थी। १८६७ में पेरिसके कसेरोंने इसी महासभाके उद्देश्योंकी सिद्धिके लिये काम बन्द कर दिया था। १८६८ में दक्षिण जर्मनीके श्रमजीवियोंकी १२२ समितियोंके सदस्योंने नूरेम्बर्ग नगरमें एकत्र होकर अन्तर्राष्ट्रीय महासभाके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित किया था। १८७० में कैमेरनने कहा था कि मैं ऐसे आठ लाख अमेरिकन श्रमजीवियोंका प्रतिनिधि हूँ जिन्होंने महासभाके सिद्धान्त स्वीकृत कर लिए हैं। पूर्वमें पोलैण्ड और हंगरीतक महासभाका बहुत अधिक प्रभाव था। सभी देशोंकी अनेक सभाएँ उसके साथ सम्बद्ध थीं और पश्चिम युरोपके प्रत्येक देशमें उसके उद्देश्योंकी सिद्धिके लिये अनेक समाचारपत्र प्रकाशित होते थे। युरोपके दूसरे समाचारपत्र भी महासभाके आन्दोलनोंके सम्बन्धमें बराबर बहुत कुछ लिखा करते थे। यहाँतक कि ब्रूसेल्सकी कांग्रेसके सम्बन्धमें लन्दनके 'टाइम्स' पत्रमें चार मुख्य लेख प्रकाशित हुए थे। लोगोंको यह भी सन्देह था कि युरो-

पमें जितने क्रान्तिकारक आन्दोलन और उपद्रव होते हैं उन सबका महासभाके साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध होता है। इस प्रकार सामाजिक क्रान्तिके कार्योंके सम्बन्धमें सारे युरोपमें उसकी बहुत अधिक प्रसिद्धि, या यों समझिए कि वदनामी, हो गई थी। लोगोंमें उसका जितना प्रभुत्व अथवा जितनी मर्यादा थी वह उसकी वास्तविक शक्तिके विचारसे नहीं थी वल्कि उसके उच्च, विस्तृत और क्रान्तिकारक उद्देश्योंके विचारसे थी। यह सब कुछ था परन्तु महासभाका संगठन कुछ शिथिलसा था और उसकी आर्थिक अवस्था बहुत ही हीन थी। युरोपके संघ और समितियाँ, महासभाको सहायता देनेके विचारसे कम और उससे सहायता लेनेके विचारसे अधिक सम्बद्ध होती थीं।

१८७० में सार्वभौम महासभाने पेरिसमें कांग्रेस करनेका विचार किया था परन्तु फ्रान्स-जर्मन-युद्धके कारण वह विचार पूरा न हो सका; पर तौ भी इस युद्धके कारण महासभाको और भी अच्छी तरह अपने सिद्धान्त संसारके सामने उपस्थित करनेका अवसर मिला। १८६६ में आस्ट्रियाके साथ जर्मनीका जो युद्ध हुआ था उसकी निन्दा महासभाने बहुत जोरोंसे की थी; और इस बार फ्रान्स तथा जर्मनीकी सम्बद्ध सभाओं और लन्दनकी काउन्सिलमें फिर युद्धका विरोध किया गया था। महासभाके जर्मन सदस्योंने आल्सेस और लोरेनको जर्मनीके साथ मिला लेनेका भी विरोध किया था जिसके कारण वे जर्मन अधिकारियोंके कोपभाजन बने थे। अवश्य ही भावी सुदिनोंका यह एक बहुत अच्छा लक्षण था कि श्रमजीवी लोकमतने युद्धोंका इस प्रकार साहसपूर्वक विरोध किया था। इस घटनासे हम इस बातकी आशा कर सकते हैं कि ज्यों ज्यों देशोंके शासकोंतक

लोकमतकी पहुँच होगी त्यों त्यों युद्धकी सम्भावना कम होती जायगी और फिर युद्धके सम्बन्धमें कुछ कहने सुननेका सबसे अधिक अधिकार केवल श्रमजीवियोंको ही है। क्योंकि युद्धकालमें सबसे अधिक कष्ट भी इन्हीं लोगोंको पहुँचता है और सबसे अधिक बोझ भी इन्हीं लोगोंपर पड़ता है; परन्तु जब युद्धमें विजय होती है तब उनका किसी प्रकारका लाभ नहीं होता।

सन् १८७१ में पेरिसके कुछ श्रमजीवियोंके एक वर्गने विद्रोह करके पेरिस नगरके कुल शासन-कार्योंपर अपना अधिकार जमाना चाहा था। यद्यपि उस विद्रोहका मुख्य उद्देश्य यही था कि साम्यवादके सिद्धान्तोंके अनुसार पेरिसमें स्थानिक स्वराज्य स्थापित किया जाय परन्तु साथ ही उसमें आर्थिक कष्ट देनेवाले धनिक वर्गको भी दबाना निश्चित किया गया था। तात्पर्य यह कि वह वर्ग (Commune) अपना वह राजनीतिक स्वरूप धारण करना चाहता था जो कि स्वराज्यभोगी श्रमजीवियोंके शासनके विकासके लिये आवश्यक था। उन दिनों फ्रान्सीसी साम्राज्यके पतनके उपरान्त धनिकवर्गने कुल शासनकार्य अपने हाथमें ले लिया था और दरिद्रवर्ग उसके अत्याचारोंसे विकल हो उठा था। इन्हीं अत्याचारोंसे अपनी रक्षा करनेके लिये उसने सिर उठाया था परन्तु इस कार्यमें उसे सफलता नहीं हुई और वह दबा दिया गया। कुछ लोगोंका विश्वास है कि सार्वभौम महासभाकी उत्तेजनासे ही दरिद्र वर्गने उपद्रव किया था परन्तु यह बात वास्तवमें ठीक नहीं है। अवश्य ही महासभाके कुछ फ्रान्सीसी सदस्य उस उपद्रवमें सम्मिलित हुए थे परन्तु उन्होंने यह काम स्वयं अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्वपर किया था। हाँ इस उपद्रवके शान्त हो जानेपर कार्ल मार्क्सने काउन्सिलकी ओरसे एक घोषणापत्र निका-

लकर उसके कार्योंकी प्रशंसा अवश्य की थी। उस समय श्रमजीवियोंके वर्ग (Commune) ने यदि कोई काम किया था तो यही किया था कि फ्रान्समें किसी नियमित शासनप्रणालीके अभावमें शासनकार्य अपने हाथमें लेनेका उद्योग किया था और उसका यह कार्य किसी प्रकार निन्दनीय नहीं कहा जा सकता। यह बात दूसरी है कि प्रबल धनिकवर्गके कारण दरिद्रोंको अपने कार्यमें सफलता न हो।

यहाँसे मानों सार्वभौम महासभाका अन्त आरम्भ हुआ। इधर स्वयं इंग्लैण्डमें व्यापारसंघ उससे उदासीन होने लगे और उधर जर्मन साम्यवादियोंमें आपसमें ही फूट उत्पन्न हो गई। इसके अतिरिक्त उन साम्यवादियोंके पास धन भी नहीं रह गया था और पुलिस भी उन्हें बहुत तंग करने लग गई थी। साथ ही स्वयं महासभामें ही कुछ ऐसे लोग सम्मिलित हो गए थे जो आगे चलकर उसके नाशके कारण हुए थे। सन् १८६९ में प्रसिद्ध अराजक और विद्रोही बकुनिन अपने बहुतसे साथियों सहित आकर महासभामें सम्मिलित हो गया था। आरम्भसे ही उसने अपना एक छोटासा दल बना लिया था जो सभी बातोंमें मार्क्सके बड़े दलका विरोधी रहता था। यह बात नहीं थी कि मार्क्स स्वयं ही सब अधिकार प्राप्त करना चाहता था परन्तु वह अराजकों और विद्रोहियोंके सिद्धान्तों और विचारोंका विरोधी था, अतः उन दोनोंमें झगड़ा हो जाना बिलकुल अनिवार्य था। यह झगड़ा सितम्बर १८७२ में हेग कांग्रेसमें हुआ था। उस समय वहाँ सब मिलाकर ६५ प्रतिनिधि उपस्थित थे। कुछ वादविवादके उपरान्त मार्क्सने अराजक दलको कांग्रेससे निकाल दिया और काउन्सिलका मुख्य स्थान न्यूयार्क स्थिर किया। अमस्टरडममें एक सभा करनेके उपरान्त उस वर्ष कांग्रेसने अपना काम समाप्त किया। उस सभामें

मार्क्सका एक महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुआ था जिसमें उसने बतलाया था कि अठारहवीं शताब्दीमें हेग नगरमें बड़े बड़े राजा महाराजा एकत्र होकर अपने राजकुलके हितसाधनके लिये वादविवाद किया करते थे। उसी हेग नगरमें आज हम लोगोंने एकत्र होकर श्रमजीवियोंके हित-साधनपर वादविवाद किया है। इन दोनों परस्परविरोधी वादविवादोंसे सिद्ध होता है कि संसारकी प्रवृत्ति किस ओर है। अपने व्याख्यानमें उसने यह बात स्वीकृत की थी कि अमेरिका, इंग्लैण्ड और हालैण्ड आदि कुछ देश अवश्य ऐसे हैं जिनमें श्रमजीवी लोग शान्तिपूर्ण उपायोंसे अपना उद्देश्य सिद्ध कर सकते हैं; परन्तु युरोपके अधिकांश देश ऐसे ही हैं जिनमें बिना राज्यक्रान्ति किये कुछ हो ही नहीं सकता। अतः यदि समय मिले तो हम लोगोंको बलप्रयोग करनेसे भी नहीं चूकना चाहिए। मार्क्सके इस कथनसे सिद्ध होता है कि जिन अवसरोंपर शान्तिपूर्ण उपायोंसे काम चल सकता हो उन अव-सरोंपर वह शान्तिपूर्ण उपाय करना ही अधिक उत्तम समझता था। परन्तु आवश्यकता पड़नेपर वह बलप्रयोग करनेके पक्षमें भी था।

काउन्सिलका लन्दनसे उठकर न्यूयार्क जाना ही मानों महासभाके अन्तका आरम्भ हो गया। न्यूयार्क जानेके उपरान्त महासभा सन् १८७३ में जनेवा नगरमें केवल एक कांग्रेस और कर सकी और तब वह शान्त हो गई। उन्हीं दिनों अपने आपको स्वराज्यवादी कहने-वाले बकुनिनके अनुयायियोंने अनेक प्रकारके उपद्रव आरम्भ कर दिए जैसा कि आगे चलकर 'अराजकता-वाद' वाले प्रकरणमें बतलाया जायगा। इस दलके लोगोंका यही सिद्धान्त है कि सारे संसारमें वर्ग स्थापित करके उन्हींका शासन चलानेके लिए आजकलकी समस्त शासनप्रणालियाँ नष्ट कर दी जानी चाहिए। अपने इस उद्देश्यकी सि-

द्धिके लिये १८७३ में दक्षिण स्पेनमें इस दलके लोगोंने भीषण विद्रोह किया था और वहाँके चार नगरोंमें अपना नए ढंगका शासन स्थापित करके एक स्थानपर स्पेनके बेड़ेके कुछ जहाजोंपर भी अधिकार कर लिया था। बड़ी कठिनतासे सेनाने यह विद्रोह शान्त किया। इसके बाद १८७९ तक ज्यों त्यों करके इन स्वराज्यवादियोंका अस्तित्व बना रहा और तब नष्ट हो गया।

यदि आरम्भसे अन्ततक सार्वभौम महासभाके समस्त कार्योंपर दृष्टि डाली जाय तो पता चलेगा कि उसे अपने उद्देश्योंमें कुछ साधारण सी ही सफलता हुई थी। उसके उद्देश्य अवश्य उच्च थे परन्तु उन उद्देश्योंकी सिद्धिके लिये वह समय अनुकूल नहीं था। भिन्न भिन्न देशोंमें लाखों करोड़ों ऐसे श्रमजीवी थे जिनकी सामाजिक उन्नतिकी अवस्था एक दूसरीसे भिन्न थी, जो एक दूसरेकी भाषासे अनभिज्ञ थे और जिन्हें उदरनिर्वाहके लिये श्रम करनेसे ही बहुत थोड़ी फुरसत मिलती थी। उन सबकी दशा सुधारनेके लिये इस बातकी बहुत बड़ी आवश्यकता थी कि उनमें अच्छे साहित्यका प्रचार किया जाय और बहुतसे लोग घूम घूमकर उन्हें, अपनी दशा और साम्यवादके सिद्धान्तोंका परिचय करावें। इस कामके लिये बहुत अधिक धनकी आवश्यकता थी जिसका महासभाके पास बहुत अभाव था। परन्तु इसके साथ ही एक बात और थी। उन दिनों सारे युरोपमें श्रमजीवियोंकी जो दुर्दशा थी उसके सुधारके लिये कुछ न कुछ प्रयत्न भी बहुत ही आवश्यक था। महासभाने वह प्रयत्न आरम्भ किया था, परन्तु पहलेसे ही उसने अपना कार्य्यक्षेत्र बहुत विस्तृत कर दिया था और कदाचित् उसका प्रयत्न उपयुक्त समयसे कुछ पहले भी आरम्भ हुआ था, इसीलिये उसे सफलता नहीं हुई। तौ भी महासभाने सबसे

बड़ा काम यह किया कि श्रमजीवियोंमें एक विशेष प्रकारकी जागृति उत्पन्न कर दी, उन्हें अपनी दुर्दशाका बहुत कुछ परिचय करा दिया और उनका ध्यान हवाई किले बाँधनेकी ओरसे हटाकर ऐसे विचारों और उपायोंकी ओर लगा दिया जो कार्य्यरूपमें परिणत हो सकते थे। परन्तु हम इतना कहे बिना नहीं रह सकते कि उसने कुछ ऐसे क्रान्तिकारक उपायोंका भी आरम्भ कर दिया था जिनके लिये उपयुक्त समय तबतक न आया था। जो हो, महासभाको अपने कार्योंमें पूरी सफलता नहीं हो सकी और शीघ्र ही उसका अन्त हो गया।

यदि इतना बड़ा आन्दोलन आरम्भ होते ही उन्नतिके मार्गमें एक कदम आगे बढ़ जाय तो यह उसके लिये गौरवकी ही बात है। परन्तु सार्वभौम महासभा एक कदमसे भी कुछ ज्यादा बढ़ गई थी। उसने संसारके सामने एक बहुत बड़ा उद्देश्य उपस्थित किया था। वह उद्देश्य था करोड़ों दरिद्र श्रमजीवियोंका दुःख दूर करना। इस प्रकार उसने एक बहुत ही इतिहासप्रसिद्ध महत्त्व प्राप्त किया था और ऐसे कार्य किए थे कि जिनसे प्रत्येक राज्य और मनुष्य कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकता है। उसीके प्रयत्नोंका यह फल था कि मार्क्स और उसके साथियोंके विचार सारे संसारमें फैल गए। जिन राज्योंमें सामाजिक क्रान्तिका बहुत अधिक भय था और जो राज्य सार्वभौम महासभाके सिद्धान्तोंके अत्यन्त विरोधी थे उन्हें भी अब महासभाके उठाए हुए प्रश्नोंपर विवश होकर विचार करना पड़ रहा है। यह एक ऐसा आन्दोलन है जो बिना अपना उद्देश्य सिद्ध किए कभी ठंढा नहीं पड़ेगा और बराबर संसारका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता रहेगा।

यद्यपि सार्वभौम महासभाका अन्त हो गया था परन्तु जिन शक्तियोंकी उसने सृष्टि की थी वे अबतक जीवित थीं। जिन सिद्धान्तोंका

उसने प्रचार किया था उनपर अवतक लोग विचार करते थे । उसने संसारके सामने अनेक ऐसे प्रश्न और सिद्धान्त उपस्थित किए थे जो मनन करने योग्य थे, जिनके अनुसार अनुभव प्राप्त करके कार्य करना आवश्यक था और जिनके द्वारा एक बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण तथा उपयोगी व्यवस्था की जा सकती थी और संसारको दृढ विश्वास है कि शीघ्र ही कोई ऐसी व्यवस्था होगी । यदि उसके आन्दोलनको, उसके महत्त्वका ध्यान रखते हुए, यथेष्ट सफलता प्राप्त न हुई हो तौ हमें हतोत्साह न होना चाहिए क्योंकि जो लोग बहुत बड़े बड़े कार्योंका आरम्भ करते हैं उन्हें पहले प्रायः अँधेरेमें ही बालकोंकी तरह भटकना पड़ता है । एक पीढ़ीको जो विफलता होती है वही प्रायः दूसरी पीढ़ीको सफलताका मार्ग दिखलाती है । अतः हमें इस बातसे दुःखी न होना चाहिए कि महासभाको बहुत थोड़ी सफलता हुई, बल्कि हमें इस बातका दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि उसने श्रमजीवियोंको जो शिक्षाएँ दी हैं वे आगे चलकर उनके बड़े काम आवेंगी ।

यदि सच पूछिए तो सार्वभौम महासभारूपी चन्द्रमाको कुछ समयके लिये केवल ग्रहण लगा था; लेकिन संसारके भिन्न भिन्न भागोंमें जितनी साम्यवादी सभाएँ थी वे अपने आन्दोलनके सार्वभौम स्वरूपको बहुत अच्छी तरह समझती थीं । यद्यपि उन सबका एकमें संगठन नहीं हुआ था तौ भी उन सबके उद्देश्य और आकांक्षाएँ एक ही थीं और उनमें पारस्परिक सहानुभूति भी पूरी पूरी थी । वे सब अपने आपको एक ही शरीरके अंग समझती थीं और अपना काम बराबर करती चलती थीं । यही कारण था कि आगे चलकर भिन्न भिन्न देशोंमें जो कांग्रेसें हुई उन सबमें सार्वभौम आन्दोलनके कामको मुख्य स्थान मिला था । इस प्रकारकी कांग्रेसोंमें पहले पहले सबसे

बड़ी कांग्रेस सन् १८८९ में पेरिस नगरमें हुई थी। कुछ व्यक्तिगत झगड़ोंके कारण इस कांग्रेसमें दो दल हो गए थे जिन्होंने अलग अलग अपने अधिवेशन किए थे। एक दल तो मार्क्सके अनुयायियोंका था जो अपने सिद्धान्तोंपर दृढतापूर्वक अड़े हुए थे और दूसरा दल ऐसे प्रतिनिधियोंका था जो अपने सिद्धान्तोंके कट्टर पालक न थे और हर एक लोकमतवादी दलमें सम्मिलित न हो सकते थे। मार्क्सकी कांग्रेसमें भिन्न भिन्न सभ्य देशोंके प्रायः ४०० और दूसरी कांग्रेसमें प्रायः ६०० प्रतिनिधि उपस्थित थे। इन दोनों ही कांग्रेसोंने समष्टिवादका समर्थन किया था और श्रमजीवियोंके कल्याणके लिये अनेक उपायोंपर बहुत जोर दिया था। इसके उपरान्त सन् १८९१ में ब्रूसेल्स नगरमें, सन् १८९३ में ज्यूरिच नगरमें और सन् १८९६ में लन्दन नगरमें सार्वभौम कांग्रेसें हुई थीं; परन्तु ब्रुसेल्स और लन्दनकी कांग्रेसोंमें बहुतसे अराजक प्रतिनिधियोंके सम्मिलित हो जानेके कारण कुछ अव्यवस्था भी हो गई थी।

जो संसार श्रमजीवियोंकी सार्वभौम महासभासे एक बार भयभीत हो चुका था उसी संसारमें जब दोबारा राष्ट्रोंकी सार्वभौम महासभाका प्रस्ताव उपस्थित हुआ तब उसमें और भी अधिक घबराहट फैलना स्वाभाविक ही था। सन् १८८९ में स्वीजरलैण्डकी सरकारने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि जिन जिन देशोंमें परस्पर औद्योगिक प्रतियोगिता चल रही है उन उन देशोंकी सरकारें मिलकर श्रमजीवियोंकी अवस्था आदिका विचार करनेके लिये एक सार्वभौम कान्फरेन्स करें। सन् १८९० के आरम्भमें ही युवक जर्मनसम्राट्ने भी इस प्रस्तावका समर्थन कर दिया और अन्तमें एक कान्फरेन्स हो ही गई। यद्यपि जर्मन-सम्राट्ने जो विषय विचारार्थ उपस्थित किए थे वे श्रम-

जीवियोंकी सार्वभौम महासभाके विचारणीय विषयोंके कुछ अंश ही थे तौ भी उस कान्फरेन्ससे बड़ा काम हुआ । उसमें जिन विषयोंपर विचार किया गया था उनमेंसे मुख्य ये थे—रविवारके दिन मजदूरोंको छुट्टी दी जाय और स्त्रियों तथा बच्चोंसे कठिन काम न लिए जायँ । लोगोंने इस कान्फरेन्ससे जो आशा की थी यद्यपि वह आशा ठीक ठीक पूरी नहीं उतरी तौ भी इसमें सन्देह नहीं कि उसीके प्रभावके कारण अनेक सभ्य देशोंमें श्रमजीवियोंकी रक्षाके लिये अनेक नए कानून बनने लग गए । सबसे बड़ी बात यह हुई कि सब देशोंके राज्य अच्छी तरह यह समझ गए कि सभी देशोंमें श्रमजीवियोंकी कुछ ऐसी शिकायतें हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । तभीसे श्रमजीवियोंकी दशाका बहुत कुछ सुधार आरम्भ हो गया और सभ्य देशोंके राजकीय चुनावोंपर श्रमजीवियोंके विचारोंका भी बहुत कुछ प्रभाव पड़ने लगा । यह प्रभाव दिन पर दिन बराबर बढ़ता जाता है और आशा होती है कि कुछ ही समयमें श्रमजीवी लोग राजकीय शासन तथा सामाजिक व्यवस्था आदिमें अपना पूरा पूरा प्रभुत्व स्थापित कर लेंगे ।

---

७ जर्मन साम्यलोकमतवाद।



कुछ ही दिनों पहले जर्मन-साम्राज्यके भिन्न भिन्न राज्योंमें परस्पर बड़ा गहरा द्वेष था। यह द्वेष कुछ तो राजनीतिक कारणोंसे था और कुछ धार्मिक कारणोंसे। धार्मिक झगड़ोंके लिये जर्मनीके राज्योंको एक वार लगातार तीस वर्षतक परस्पर युद्ध करना पड़ा था। उस युद्धके कारण जर्मनीकी जो आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक क्षति हुई थी उसकी पूर्ति बहुत दिनों बादतक न हो सकी थी। इसी घरके झगड़ेके कारण बाहरवालोंको जर्मनीके आन्तरिक कार्योंमें भी हस्तक्षेप करनेका अवसर मिलता था और वे तरह तरहसे उसे सताया करते थे। पश्चिमी युरोपमें अपना प्रभुत्व बनाए रखनेके लिये कई पीढ़ियोंतक फ्रान्सवालोंकी बराबर यही नीति बनी रही थी कि जिस प्रकार हो जर्मनीके पारस्परिक वैर-विरोधको नष्ट न होने दिया जाय और जहाँतक हो सके उसे बढ़ाया जाय। परन्तु पीछे फ्रेडरिक दि ग्रेटने बहुतसी लड़ाइयाँ जीतीं; लेसिन, शिलर और गोथे आदि बड़े बड़े लेखकों और कान्ट, फिश, शेलिंग और हेगेल आदि बड़े बड़े दार्शनिकोंने उच्च कोटिके विचारोंसे पूर्ण अनेक ग्रन्थ लिखे जिन्हें पढ़-कर जर्मनीमें बहुत कुछ जान आई और सन् १८१३ में जर्मनी लड़-भिड़कर स्वतंत्र हो गया। तभीसे जर्मनीमें राष्ट्रीय भाव जाग्रत होने

लगे। जर्मनीने दूसरोंसे तो अपना छुटकारा करा लिया था परन्तु घरके झगड़ोंने तबतक उसका पीछा नहीं छोड़ा था। इसके अतिरिक्त शिल्पकला आदिमें भी वह इंग्लैण्ड और फ्रान्ससे बहुत पीछे था।

अपने ऊपरसे फ्रान्सीसियोंका प्रभुत्व हटाकर भी जर्मन लोग सुखी न हो सके। उन्होंने देखा कि हमने देशको स्वतंत्र करनेके लिये अपना जो रक्त बहाया था और जो धन व्यय किया था वह सब व्यर्थ गया। विजयके शुभ फलोंसे केवल जर्मन राजा लोग ही लाभ उठाते थे। देशका आन्तरिक शासन पुराने ही ढंगका था और उसमें पुराने दोष ज्योंके त्यों उपस्थित थे। राइन प्रान्तमें अवश्य बहुत कुछ राजनीतिक सुधार हुए थे परन्तु वे सब सुधार जर्मनोंके पुश्तैनी दुश्मन फ्रान्सीसियोंके किए हुए थे; और जर्मन लोग उन सुधारोंको नष्ट करनेका साहस न कर सकते थे। ऐसी परिस्थितियोंमें विचारशील जर्मनोंका चिन्तित और असन्तुष्ट रहना बहुत ही स्वाभाविक था। सबसे पहले तो उनके घरमें ही फूट थी, दूसरे उनका देश बहुत दुर्बल था। तिसपर राजा लोग मनमाना अत्याचार करते थे और उन्नतिके मार्गमें अनेक बाधाएँ खड़ी कर देते थे। परन्तु दूसरी ओर अनेक देशहितैषी लेखकों तथा दार्शनिकोंने उच्च कोटिके साहित्यका प्रचार करके जर्मनोंमें एक नए जीवनका संचार कर दिया था और उनमें अनेक उच्चाकांक्षाएँ उत्पन्न कर दी थीं। ऐसी दशामें कोई देशहितैषी अपने देशकी दुर्दशाओंको कहाँतक चुपचाप देख सकता था ? यही कारण था कि सन् १८४८ में जो अनेक क्रान्तिकारक उपद्रव हुए थे, उनमें बहुत अधिक जर्मन भी सम्मिलित हो गए थे। वीना और बर्लिन दोनों स्थानोंमें कुछ समयके लिये मानों पुराना तख्त उलट दिया गया था और फ्रैंक फोर्टमें एक जातीय पार्लीमेन्टका अधिवेशन हुआ था।

परन्तु उस समयतक भी जर्मन सुधारकोंमें एकता नहीं हुई थी। उनके उद्देश्य स्पष्ट नहीं थे और उन्हें कोई अच्छा सहारा भी न था। इसी लिये जिस समय उदार दलके लोग विचार करनेमें ही मग्न थे उसी समय राज्यकी सैनिक शक्तिने उन्हें दवा दिया। सन् १८४८ का अन्त होनेसे पहले ही बर्लिन और वीनामें फिर पुरानी सत्ता स्थापित हो गई।

अब फिर जर्मनीमें मानों घोर अन्धकार छा गया। पार्लीमेन्टें तोड़ दी गईं और जो लोग उपद्रवमें सम्मिलित हुए थे वे या तो मार डाले गए और या जेल भेज दिए गए। उसी समय बहुतसे लोग भागकर दूसरे देशोंमें भी चले गए। सन् १८४८ में केवल स्वीजरलैण्डमें जर्मनीसे भागकर आए हुए ११००० आदमी थे जिनमेंसे अधिकांश बादमें अमेरिका चले गए। इतना सब कुछ होनेपर भी जर्मनीके शासकोंने समझ लिया कि लोगोंके विचार बदले नहीं जा सकते और कुछ न कुछ उदारतासे काम लेना आवश्यक है। इसीलिये प्राचीन सामन्त-प्रथाका बहुत कुछ अन्त कर दिया गया था। मध्यम और श्रमजीवी वर्गके लोगोंमें एक नई जीवनी शक्ति आ गई थी जो अपना काम करनेके लिये केवल उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा कर रही थी। कुछ ही वर्षों बाद वह अवसर आ गया जब कि वे शक्तियाँ काम करने लगीं जिन्होंने शीघ्र ही जर्मनीको सबसे अधिक बलवान्, सबसे अधिक सम्पन्न और सबसे अधिक शिक्षित बना दिया। उस समय सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि धनिक और श्रमजीवी दोनों वर्ग कहाँतक एक साथ रहकर काम कर सकते हैं। जर्मन-साम्यमतवादी अपने देशके उदारदलवालोंपर सदा यह आक्षेप करते हैं कि तुम लोग राज्यकी दमनकारक नीतिका कभी दृढ़तापूर्वक विरोध नहीं करते। उनका

यह भी कहना है कि सन् १८४८ वाले क्रान्तिकारक झगड़ोंमें जर्मन उदारमतवादियोंने कभी श्रमजीवियोंका विश्वास नहीं किया और जब जब अवसर मिला तब तब दरिद्र श्रमजीवियों और लोकमतवादी नीतिका पक्ष छोड़कर राज्यकी दमनकारक नीतिका ही समर्थन किया और इस प्रकार उन्नतिके मार्गमें बाधा डाली। यह एक ऐसा विकट और पेचीला प्रश्न है जिसका ठीक ठीक उत्तर तभी दिया जा सकता है जब कि जर्मनीके इतिहासकी सब बातोंका बहुत सूक्ष्म रूपसे विचार किया जाय।

फ्रान्स और इंग्लैण्ड दोनों ही देशोंमें मध्यम वर्गकी जीत हुई थी, परन्तु मध्यम वर्गका शासन जिस औद्योगिक क्रान्तिका अवश्यम्भावी परिणाम होता है जर्मनीमें वह औद्योगिक क्रान्ति फ्रान्स और इंग्लैण्डमें होनेके बहुत दिनों बाद हुई थी। सन् १८४८ में जर्मनीका मध्यम वर्ग मानों अपनी बाल्यावस्थामें ही था। न तो उसमें पूरी समझ ही थी और न उसके पास ऐसे साधन ही थे जिनसे वह लोकमतवादकी सहायतासे सरकारकी प्रतिघातक नीतिको दबा सकता। परन्तु जर्मनीके श्रमजीवी वर्गने अपने फ्रान्सीसी भाइयोंका अनुकरण करना चाहा था और वह क्रान्तिकारक उपद्रव करनेके लिये बिलकुल तैयार हो गया था, इसी लिये उसने अपने देशके सभी समझदारोंको भयभीत कर दिया था और क्रान्तिकारक उपद्रव करके अपनी उन्नतिके मार्गमें स्वयं ही एक बाधा खड़ी कर ली थी। इसमें सन्देह नहीं कि जो लोग क्रान्तिकारक झगड़े करनेके लिये कटिबद्ध होंगे उनकी कभी न कभी उन उदारमतवादियोंसे अवश्य खटक जायगी—उदारमतवादी अपने मार्गपर चलेंगे और क्रान्तिकारक अपने लिये अलग नया मार्ग बनावेंगे। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उपयुक्त समयके आ-

नेसे पहले ही दोनों दल अपना सम्बन्ध तोड़ लें और एक दूसरेसे अलग हो जायँ। जब कि दोनोंको एक ही शत्रुका मुकाबला करना है तब यही उत्तम है कि जहाँतक सम्भव हो वहाँतक दोनों दल साथ रहकर एक ही मार्गपर चलें।

अभाग्यवश जर्मन उदारमतवादी और लोकमतवादी मिलकर अधिक समयतक काम न कर सके। आरम्भमें ही वे दोनों एक दूसरेसे अलग हो गए और उनका यह अलग होना बहुतसे अंशोंमें अनिवार्य था। उदारमतवादियोंका मुख्य उद्देश्य यह था कि देशमें सब लोगोंको चुनावके सम्बन्धमें मत देनेका अधिकार प्राप्त हो जाय; परन्तु कमसे कम उन दिनों जर्मनीकी अवस्था ऐसी थी कि यदि सब लोगोंको आमतौरपर मत देनेका अधिकार प्राप्त हो जाता तो उससे अनुदार-दल ही अधिक बलवान् बन जाता। क्योंकि उस दशामें प्रायः वे ही देहाती और कृषक अधिक मतदाता होते जो पूर्णरूपसे सरकारकी दमनकारक नीतिसे दबे हुए थे; और जो नागरिक उस नीतिके जालसे बचे हुए थे वे संख्यामें बहुत ही थोड़े रह जाते। यही बात उदारदलवालोंको मंजूर न थी। वे लोग श्रमजीवियों और उनके नेताओंके साथ अधिक उत्तम व्यवहार न करते थे और न उनका विशेष आदर ही करना चाहते थे। वे उन्हें अपने अधीन रखकर उनसे काम लेना चाहते थे; और यदि श्रमजीवी इस प्रकार दबकर उनके साथ काम न करना चाहते तो वे उन्हें अलग कर देनेके लिये भी तैयार थे।

श्रमजीवी लोग उदारमतवादियोंका उपेक्षापूर्ण व्यवहार सहन न कर सकते थे। इसीलिये वे लैसेलकी शरणमें चले गए। इस घटनाका जो परिणाम हुआ हम उसका वर्णन संक्षेपमें पहले ही कर चुके हैं। ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों उदारमतवादियों और लोकमतवा-

दियोंका विरोध बराबर बढ़ता ही गया और अन्तमें लोकमतवादी श्रमजीवी साम्यलोकमतवादी बन गए । इस विरोधसे जर्मनीके राजनीतिक विकासको बहुत हानि पहुँची । एक ओर तो इसका परिणाम यह हुआ कि जर्मन मध्यम वर्गने कभी दृढ़तापूर्वक इस बातका उद्योग नहीं किया कि लोकमतवादके सिद्धान्तोंपर एक स्वतंत्र जर्मनसाम्राज्यकी स्थापना हो। वह बराबर अनेक कारणोंसे इसी बातका प्रयत्न करता रहा कि अधिकारियोंके साथ हमारी किसी प्रकार खटपट न हो. परन्तु साम्यवादी कहते थे कि मध्यमवर्ग केवल अपने ऐहिक लाभकी इच्छासे ही हमारे लोकमतवादी आदर्शोंको नष्ट कर रहा है । दूसरी ओर श्रमजीवियोंने यह देखा कि मध्यमवर्ग (जो ऐतिहासिक विकासके प्राकृतिक नियमोंके कारण ही सही, कुछ समयके लिये उनका नेता बन गया था) हमारे साथ उपेक्षाका व्यवहार कर रहा है । इसलिये वे लैसेल और कार्ल मार्क्स जैसे नेताओंके क्रान्तिकारक विचारोंकी ओर प्रवृत्त हो गये । इस प्रकार एक क्रान्तिकारक दलकी सृष्टि हो गई जिसका जर्मन जीवनके साथ कोई घनिष्ट सम्बन्ध न था। परिणाम यह हुआ कि ये दोनों दल तो ज्योंके त्यों रह गए और इन दोनोंके झगड़ेसे दमनकारक शासकोंने लाभ उठाया ।

अब हम कुछ बातें श्रमजीवियोंकी उस सार्वदेशिक समितिके सम्बन्धमें बतलाते हैं जिसे सन् १८६३ में लैसेलने स्थापित किया था। सन् १८६४ में लैसेलकी मृत्युके समय उस समितिके सदस्योंकी संख्या ४६१० थी। यद्यपि यह संख्या बहुत ही थोड़ी थी, लेकिन फिर भी हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि उस समयतक समितिको स्थापित हुए केवल १५ महिने हुए थे । लैसेलने अपने उत्तराधिकारपत्रमें लिख दिया था कि मेरे बाद इस समितिका सभा-

ति वर्नहार्ड वेकर हो; परन्तु वेकर उस पदके लिये बिलकुल ही
ायोग्य था। समितिकी स्थापनाके समय यही उत्तम समझा गया
ा कि सभापतिको कुछ विशिष्ट अधिकार दिए जायँ और वह
ो कुछ कहे वही कियाँ जाय। यह व्यवस्था उसी समयतकके
ये ठीक हो सकती थी जिस समयतक लैसेल जीवित था।
सकी मृत्युके उपरान्त उस पदके लिये कोई उपयुक्त मनुष्य ढूँढ़
ाकालना सहज काम नहीं था। उस समितिके जितने सभासद थे वे
ाधारण श्रमजीवी ही थे और उनमें कोई योग्य अथवा अनुभवी
नुष्य नहीं था, इसीलिये लैसेलको एक बहुत ही संकुचित क्षेत्रमेंसे
भापति चुनना पड़ा था उसके साथियोंमेंसे सबसे अधिक योग्य वान
ज़र नामक एक युवक था। परन्तु वह इतना बदनाम था कि कुछ
मयतक जर्मन श्रमजीवी उसके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध रख-
ा बराबर इंकार करते रहे। वेकरने सभापति बनकर कोई काम
द्धिमत्तापूर्वक नहीं किया। लैसेलकी मित्र 'काउण्टेस हैज फेल्ट' अपने
कामोंमें लगी रही। समितिके कामोंमें बहुत गड़बड़ी मच गई
र उसके नेता परस्पर एक दूसरेको ईर्ष्या और सन्देहकी दृष्टिसे दे-
े लग गए। उस समय जर्मन श्रमजीवियोंकी अवस्था ही ऐसी थी
उनसे और किसी प्रकारके सव्यवहार अथवा सुप्रबन्धकी आशा
नहीं की जा सकती थी। स्थानीय अथवा राष्ट्रीय किसी प्रकारके शा-
में न तो कोई उन्हें पूछता था और न उन्हें कुछ अनुभव ही था।
तोंसे सभाओं आदिमें स्वतंत्रतापूर्वक बोलनेकी कौन कहे, इधर
र घूमने तककी भी उन्हें आज्ञा नहीं थी। कोई ऐसा नेता भी
था जिसपर वे पूरा पूरा विश्वास करते। सामाजिक और राजनी-
 आदि क्षेत्रोंकी सभी बातोंसे वे बिलकुल अनजान थे। ऐसी

गिरी हुई दशामें उन्हें अपने लिये ऐसी नीति स्थिर करनी पड़ी थ जो उनके हित और आदर्शके लिये उपयुक्त होती । उन्हें मिलक काम करनेका ढंग सीखना था और विश्वसनीय नेता ढूँढ़ निकालने थे

उन दिनों कारखानों आदिमें श्रमजीवियोंकी जो दुर्दशा थी उसक भी थोड़ासा वर्णन सुन लीजिए। पुरुषोंकी कौन कहे स्त्रियों औ बच्चोंतकको प्रति दिन १५ घण्टे काम करना पड़ता था। औद्योगिक क्रान्तिके कारण दिनपर दिन मशीनोंका प्रचार बढ़ता जाता था जिसके कारण मजदूरोंकी माँग घटती जाती थी। इस माँगके घटनेके कारण उनके कष्ट भी स्वभावतः बढ़ते जाते थे। इंग्लैण्डकी उन्नत मशीनोंके कामके आगे जर्मनीकी हाथकी दस्तकारी भी दबती जाती थी और मशीनोंवाले कारखानोंकी भी दुर्दशा होती जाती थी। उस समय जर्मन श्रमजीवी मानों घोर अन्धकारमें पड़े हुए थे। न तो कोई उनका मार्गदर्शक था और न उन्हें अपने उद्धारकी कोई आशा थी। जो पढ़ेलिखे और समझदार उनके नेता बन सकते थे वे प्रायः दमन-कारक शासकों और अधिकारियोंके वर्गमें पहलेसे ही मिले हुए थे। यही कारण था कि लैसेलको, जो बहुत उद्योगी था और जिसके व्याख्यान बहुत ओजस्वी होते थे, जर्मन श्रमजीवियोंमें जागृति उत्पन्न करनेमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था। ऐसी दशामें यदि बेकरको सफलता नहीं हुई तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। वह थोड़े ही समयतक सभापति रहा और उसके बाद टाल्के नामक एक योग्य और उद्योगी व्यक्ति समितिका सभापति बनाया गया। परन्तु उसके सभापति बननेके समय समितिकी अवस्था अच्छी नहीं थी। उस समय उसके कोशमें दस बारह रुपएसे अधिक नहीं थे। यदि आर्थिक अवस्था ही किसी सभा-समितिकी सफलताकी क-

सौटी हो तो हम कह सकते हैं कि लैसेल द्वारा स्थापित समितिमें कुछ दम ही नहीं था।

समितिके प्रारम्भिक कालमें एक सबसे अच्छी बात यह हुई थी कि सन् १८६४ के अन्तमें उसकी ओरसे श्वेजरने एक समाचारपत्र निकाला था जिसमें समय समयपर मार्क्स और एंजेल्स आदिके लेख भी निकला करते थे। परन्तु यहाँ भी समितिकी कम्बख्तीने उसका पीछा न छोड़ा। श्वेजरने बिस्मार्कसम्बन्धी एक लेखमालामें कुछ ऐसे विचार प्रकट किए थे जो मार्क्स और एंजेलसको पसन्द नहीं थे; अतः उन लोगोंने उस पत्रके साथका सम्बन्ध खुले आम त्याग दिया। लैसेलकी तरह श्वेजर भी इस बातके लिये तैयार था कि यदि समय पड़े तो साम्यलोकमतवादके हितके विचारसे अनुदार दलवालोंके साथ भी मेल कर लिया जाय। लेकिन मार्क्स और एंजेल्स इस बातको पसन्द नहीं करते थे। वे चाहते थे कि हम लोगोंकी तरह श्वेजर भी सामन्त तथा दमनकारक दलका घोर विरोध करे। परन्तु श्वेजरका यह कहना था कि मैं निर्वासित लोगोंकी अपेक्षा प्रूशियाकी आन्तरिक अवस्थाका अधिक ध्यान रखता हूँ इसलिये किसी प्रकारकी नीति स्थिर करनेका मुझे विशेष अधिकार है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो जान पड़ेगा कि एक बड़े ही विकट समयमें जर्मनीमें श्वेजरने ही अपने पत्रमें लेख आदि लिखकर समितिकी बहुत अच्छी सेवा करनेके साथ साथ साम्यवादके सिद्धान्तोंका भी बहुत कुछ प्रचार किया था।

उन दिनों जर्मनीकी राजनीतिक अवस्था बहुत ही अनिश्चित और अस्थिर थी। उस अस्थिर दशामें समितिका कुछ कार्य कर निकलना बहुत ही कठिन था, क्योंकि उसके सभी सदस्य बिलकुल अनुभवी

थे। जर्मनीकी दशा ठिकाने लानेके लिये विस्मार्कने आस्ट्रियाको प
जित करनेके उपरान्त सन् १८६६ में उत्तर जर्मनसंघ स्था
किया। सार्वदेशिक मताधिकारके सिद्धान्तोंपर स्थापित उत्तर-जर्म
डाएट (पार्लिमेन्ट) का पहले पहल सन् १८६७ में अधिवेशन हु
और उसी वर्ष लैसेल द्वारा स्थापित समितिका श्वेजर सभापति चु
गया। अव जर्मन साम्यलोकमतवादियोंके सामने यह प्रश्न उपस्थि
था कि नई शासक-व्यवस्थाके साथ किस प्रकारका सम्बन्ध रक्
जाय। इस विषयमें कुछ कहनेसे पहले हम साम्यलोकमतवादियों
कुछ मुख्य मुख्य बातें वतला देना चाहते हैं। श्रमजीवियोंकी सा
देशिक समितिके अधिकांश सदस्य और सञ्चालक प्रायः प्रूशिया औ
उत्तरजर्मनीके ही निवासी थे। इसी बीचमें सेक्सनी तथा दक्षिण ज
नीमें श्रमजीवियोंका एक नया दल खड़ा हो गया था जिसने श्वेजर
सिद्धान्तों और कार्योंका घोर विरोध किया था। सन् १८६० के वा
जर्मनीमें जो जागृति बढ़ रही थी उसके परिणामस्वरूप श्रमजीविये
की अनेक सभाएँ और समितियाँ स्थापित हो गई थीं। बहुत सम्भ
था कि खुले आम केवल राजनीतिक उद्देश्यसे सभाएँ और समिति
आदि स्थापित करना सरकारकी दृष्टिमें आपत्तिजनक होता और उस
संचालकोंपर कोई विपत्ति आती इसलिये इन समितियोंने अपने ऐ
नाम रक्खे जिनसे सिद्ध होता था कि वे श्रमजीवियोंमें केवल शिक्ष
प्रचार करनेवाली हैं। इन समितियोंमेंसे कुछ तो अवश्य लैसेलके पक्ष
चली गई थीं परन्तु उनमेंसे अधिकांश उससे अलग ही रहीं। अधि
कांश समितियोंका उद्देश्य आर्थिक होनेकी अपेक्षा राजनीतिक अथव
शिक्षासम्बन्धी ही अधिक होता था। बल्कि यदि यह कहा जाय तो
और भी अधिक उपयुक्त होगा कि उनके कोई निश्चित उद्देश्य नहीं

थे और वे अपनी कोई नीति स्थिर करनेके लिये इधर उधर भटक रही थीं। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि सेक्सनी तथा जर्मनीके श्रमजीवियोंमें प्रूशियाका बढ़ता हुआ प्रभुत्व देखकर उसके प्रति घृणा उत्पन्न हो गई थी।

लैसेलकी समितिकी स्थापनाके थोड़े ही दिनों बाद सन् १८६३ में फ्रैंकफोर्ट नगरमें श्रमजीवियोंकी अनेक समितियोंका एक संघ (Union) स्थापित हुआ था जिसका मुख्य उद्देश्य यह था कि लैसेल और उसकी समितिका विरोध किया जाय और उन दोनोंका प्रभुत्व न बढ़ने दिया जाय। परन्तु समितियोंका संघ जल्दी जल्दी लोकमतवादकी ओर और लोकमतवादकी ओरसे साम्यवादकी ओर बढ़ने लगा। संघकी यह प्रवृत्ति विल्हम लेप्कनेक्ट और आगष्ट बेबलके प्रयत्नोंके कारण हुई थी। जर्मनीके १८४८ वाले क्रान्तिकारक उपद्रवोंमें लेप्कनेक्टने बहुत कुछ काम किया था। वह उन लोगोंमेंसे था जो इन्हीं क्रान्तिकारक उपद्रवोंके कारण जर्मनीसे निकाल दिए गए थे और लन्दनमें कार्लमार्क्सके पास रहकर उसके सार्वभौम क्रान्तिकारक साम्यवादके कट्टर पक्षपाती हो गए थे। वह लैसेलकी समितिमें भी सम्मिलित हो गया था परन्तु लैसेल उसका विश्वास नहीं करता था। उसका मित्र आगष्ट बेबल एक श्रमजीवी था। बेबलके मातापिता उसके बचपनमें ही मर गए थे और उसने खैराती स्कूलोंमें थोड़ी बहुत शिक्षा पाई थी। परन्तु पीछे उसने स्वयं परिश्रम करके अपना ज्ञान बहुत कुछ बढ़ा लिया था और अपनी बुद्धिमत्ता और सच्चरित्रता आदिके कारण अपने साथियोंपर बहुत कुछ प्रभाव जमा लिया था। इसके उपरान्त शीघ्र ही वह जर्मन श्रमजीवियोंके संघोंका एक नेता बन गया था।

आरम्भमें वेवलके विचार कट्टर सुधारकोंकेसे थे और लैसेलके साम्यवादसम्बन्धी आन्दोलनके साथ उसकी कुछ भी सहानुभूति नहीं थी। उसका विश्वास था कि यह आन्दोलन वही रूप धारण कर रहा है जो केवल प्रूशियाकी राष्ट्रीयताके लिये उपयुक्त हो। परन्तु जो लोग समझदार होते हैं उनके लिये कट्टर सुधारकोंके दलसे निकलकर साम्यवादियोंके दलमें पहुँचनेमें अधिक विलम्ब नहीं लगता। इस लिये वह कुछ ही वर्षोंमें साम्यलोकमतवादी बन गया और समितियाँ भी बराबर उसीका अनुकरण करती गई। उनके मुख्य मुख्य सदस्योंने शीघ्र ही यह बतला दिया कि हम सार्वदेशिक मताधिकार चाहते हैं। सन् १८६५ में स्टटगार्ट नगरमें समितियोंके संघका जो अधिवेशन हुआ था उसमें निश्चित हुआ था कि देशमें सब लोगोंको मत देनेका अधिकार प्राप्त हो। सन् १८६६ में सेक्सनीके शेम्निज नगरमें श्रमजीवियोंकी समितिका एक अधिवेशन हुआ था जिसने एक प्रोग्राम स्थिर किया था। राजनीतिक दृष्टिसे यह प्रोग्राम बिलकुल लोकमतवादके सिद्धान्तोंके अनुकूल था और आर्थिक दृष्टिसे वह साम्यवादके सिद्धान्तोंसे बहुत कुछ मिलता जुलता था। सन् १८६८ में नूरम्बर्गमें संघकी जो महासभा हुई थी उसमें बहुमतसे सार्वभौम महासभाके सिद्धान्त स्वीकृत किए गए थे। सन् १८६९ में ऐसेनेक नगरकी बहुत बड़ी कांग्रेसमें साम्यलोकमतवादी श्रमजीवियोंका एक स्वतंत्र दल खड़ा हो गया और उसी वर्ष बेसेल नगरकी सार्वभौम कांग्रेसमें कुछ प्रतिनिधि भी भेजे गए थे। कुछ थोड़ेसे उदारमतवादियोंने जो संघ साम्यलोकमतवादका विरोध करनेके लिये स्थापित किया था वही संघ इस प्रकार ऐसा मार्ग तैयार करने लगा जिसका अनुसरण करके श्रमजीवी लोग साम्यलोकमतवादी बनते गए।

इस प्रकार जर्मनीमें साम्यवादियोंके दो दल खड़े हो गए। एक दल तो लैसेल और उसकी समितिका था जिसके अधिकांश सदस्य प्रूशियानिवासी थे। और दूसरा ऐसेनेक दल था जिसके समर्थक सेक्सनी और दक्षिणी जर्मनमें थे। उत्तर जर्मन-पार्लिमेण्टमें दोनों ही दलोंके प्रतिनिधि रक्खे गए थे। एक बार तो उस पार्लिमेण्टमें ६ साम्यवादी एक साथ बैठे थे! उन लोगोंका एक समाचारपत्र भी था जिसके द्वारा वे अपने विचार जर्मन प्रजातक पँहुँचाते थे। साम्यवादियोंका यह महत्त्व बिस्मार्ककी कृपासे ही हुआ था; परन्तु वे लोग उसके प्रति कृतज्ञता नहीं प्रकट करते थे। जिन लोगोंने सन् १८४५ में क्रान्तिकारक उपद्रव किए थे और जिनका मुख्य आदर्श यह था कि सर्वसाधारणकी स्वतंत्र इच्छा और प्रवृत्तिके अनुसार जर्मनीमें एकता की जाय उन लोगोंको बिस्मार्कका काम, चाहे वह सार्वदेशिक मताधिकारके सिद्धान्तोंके अनुसार ही क्यों न हो, क्योंकर पसन्द आता? उत्तरजर्मनसंघसे श्वेजर बहुत ही नाराज था, लेकिन फिर भी विवश होकर उसे उस संघके साथ ही रहकर काम करना पड़ता था। वह उत्तर-जर्मन-पार्लिमेण्टमें साम्यलोकमतवादियोंको भी बराबर सम्मिलित रखना चाहता था, क्योंकि वह समझता था कि यदि हम सरकारके कायाका विरोध करनेके लिये अपना कोई राजनीतिक दल बनाए रखना चाहते हों तो वह साम्यलोकमतवादियोंके द्वारा ही बना रह सकेगा। यही कारण था कि वह इच्छा न रहने पर भी उत्तरजर्मनसंघके साथ रहकर काम करता था।

उधर लेप्कनेकटकी समझमें उत्तरजर्मनसंघ एक ऐसी दमनकारक और अन्यायी संस्था था जो बिलकुल नष्ट कर देने योग्य था। वह स्वयं सम्मिलित होकर उस संघको अधिक बलवान् नहीं बनाना चा-

हता था, इसलिये उसने पार्लिमेण्टके कानून आदि बनानेके कामोंमें सम्मिलित होनेका घोर विरोध किया। उसकी समझमें विस्मार्कके काम ऐसे थे जो जर्मनीमें विभाग, मतभेद और दुर्बलता उत्पन्न करनेवाले और उसे दूसरोंका गुलाम बनानेवाले थे।

सन् १८७०–७१ वाले फ्रान्स-जर्मन-युद्धके समय लोगोंमें देशहितैपिता और देशरक्षाका जो भाव उत्पन्न हुआ था उसक सामने साम्यवादका आन्दोलन कुछ समयके लिये बिलकुल दब गया। युद्ध आरम्भ होनेके समय जब पार्लिमेण्टमें युद्ध-ऋणका प्रश्न उपस्थित हुआ तब लेप्कनेक्ट और वेवलने उसके सम्बन्धमें किसी प्रकारका मत नहीं दिया। वे लोग प्रूशिया और नेपोलियनकी नीतिका समान निरादर करते थे। कुछ दूसरे साम्यवादियोंने, जिनमें श्वेजर भी सम्मिलित था, युद्ध-ऋणके पक्षमें सम्मति दी; क्योंकि उन लोगोंका विश्वास था कि यदि नेपोलियनकी जीत हो जायगी तो उससे फ्रान्समें साम्यवादी श्रमजीवी दवा दिए जायँगे, युरोपमें फ्रान्सीसी सैनिकोंका सिक्का जम जायगा और जर्मनीमें बहुत अनर्थ मच जायगा। परन्तु फ्रान्सीसी साम्राज्यके पतनके उपरान्त सभी साम्यवादियोंने दूसरे युद्ध-ऋणका विरोध किया और कहा कि फ्रान्सकी कोई जमीन विना लिए हुए ही जहाँतक जल्दी हो सके वहाँके प्रजातंत्रके साथ संधि कर ली जाय। परन्तु इस प्रकारके विचारोंको न तो जर्मनीकी सरकारने ही पसन्द किया और न प्रजाने ही। साम्यवादियोंके कई नेता जेल भेज दिए गए जिससे साम्यवादका आन्दोलन कुछ दब गया। सन् १८७१ में जर्मन रेशटैग (पार्लिमेंण्ट) का जो पहला चुनाव हुआ था उसमें साम्यवादियोंके केवल १०२००० वोट आए थे और केवल २ प्रतिनिधि चुने गए थे।

इसके थोड़े ही दिनों बाद श्वेजरने प्रकाशित किया कि अब मैं श्रमजीवियोंकी सार्वदेशिक समितिके नेतृत्वसे अलग होना चाहता हूँ। पार्लिमेण्टके सार्वजनिक चुनावमें वह हार गया था और समितिके सभापतिके पदपर अधिक समयतक नहीं ठहर सकता था। उधर प्रूशियाकी पुलिस उसे बहुत तंग करती थी और न्यायालयोंमें उसपर अनेक अभियोग चलते थे; और इधर स्वयं उसके दलके ही लोग उसके कामोंमें अनेक प्रकारके विघ्न डालते थे। दूसरी ओरसे ऐसेनेक दल भी उसका घोर विरोध करता था। समितिके नेतृत्वके कामके लिये उसे अपना बहुत कुछ समय और धन भी लगाना पड़ता था। इन सब बातोंके कारण वह सम्मितिके नेतृत्वसे विरक्त हो गया था इसलिये वह उससे अलग हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि समितिके सब काम उसने बड़ी ही योग्यतापूर्वक और प्रशंसनीय रूपसे चलाए थे। १८७५ में स्वीजरलैण्डमें उसका देहान्त हो गया।

उधर सन् १८७१ में पेरिसके श्रमजीवियोंने कम्यूनवाला भयंकर उपद्रव आरम्भ किया था। उन श्रमजीवियों और उनके कार्योंके साथ सहानुभूति प्रकट करनेके लिये जर्मनीके अनेक बड़े बड़े नगरोंमें जर्मन श्रमजीवियोंकी कई बहुत बड़ी सभाएँ हुई। उस समय रेश्टैगमें बेबलने एक व्याख्यान दिया था जिसमें इस आशयके भी कुछ वाक्य थे—"निश्चित समझिए कि सारे युरोपके दरिद्र और वे सब लोग जिनके हृदयमें स्वतंत्रताका भाव है पेरिसकी ओर टक लगाए देख रहे हैं। यदि इस समय पेरिसके श्रमजीवी दबा भी लिए जायँ तौ भी मैं आपको स्मरण दिलाता हूँ कि पेरिसमें इस समय जो झगड़ा हो रहा है वह एक बहुत छोटा और आरम्भिक झगड़ा है। और २०–२५ अथवा ३०–४० वर्षोंमें ही वह समय आ जायगा जब

कि पेरिसके दरिद्रोंकी तरह सारे युरोपके दरिद्र यह कहते हुए युद्ध आरम्भ कर देंगे कि छोटे छोटे झोपड़ोंतकमें शान्ति स्थापित की जाय और दरिद्रता तथा वेकारीका अन्त किया जाय।" बेवलकी यह भविष्यद्वाणी आजकल युरोपमें सत्य होती हुई दिखलाई पड़ती है।

जब जर्मन राष्ट्रपरसे १८७१ वाला युद्धज्वर उतर गया तब साम्यवादका आन्दोलन फिरसे आरम्भ हुआ। सन् १८७४ वाले चुनावमें ३४०००० आदमियोंने साम्यवादियोंके पक्षमें वोट दिए और कुल मिलकर ९ मेम्बर चुने।

सन् १८६२ में जबसे लैसेलने पहले पहल साम्यवादसम्बन्धी कार्य्य आरम्भ किया था तभीसे जर्मन-पुलिस साम्यवादके आन्दोलनके प्रति पग पगपर शत्रुता प्रकट करती थी। उसके नेता पकड़कर जेल भेज दिए जाते थे, सभाएँ तोड़ दी जाती थीं, उनके अधिवेशन रोक दिए जाते थे और समाचारपत्र आदि बन्द कर दिए जाते थे। इस प्रकार साम्यवादियोंके विचार प्रकट करनेके साधन घटाकर बहुत ही कम कर दिए गए थे। इस प्रकारके कठिन अनुभवसे साम्यवादी नेताओंने समझ लिया कि इस समय हम सबलोगोंके मिलकर एक हो जानेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। इस एकतामें श्वेजर बहुत बड़ा बाधक था। परन्तु १८७१ में जब वह लैसेल दलके नेतृत्वसे अलग हो गया तब एकता स्थापित होनेमें कोई बाधा न रह गई। उसके स्थानपर हैसेनक्लेवर नामक एक व्यक्ति समितिका सभापति चुना गया। उस समय समितिके सदस्य यह भी समझने लग गए थे कि आरम्भमें सभापतिको मार्गप्रदर्शनके कार्यके लिये जो विशिष्ट अधिकार दिए गए थे अब उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। सब लोग यह भी चाहते थे कि लैसेल और ऐसे-

नेक दलोंमें एकता हो जाय और इसीके लिये वे प्रयत्न भी करते थे। बात यह थी कि दोनोंके उद्देश्य भी समान ही थे और दोनोंको एक ही शत्रुके मुकाबलेमें समान परिस्थितियोंमें काम करना पड़ता था। पहलेकी पारस्परिक शत्रुताका विचार तत्कालीन कठिनाइयोंके सामने दब गया। ऐसी अवस्थामें दोनों दलोंमें मेल होना बहुत सहज हो गया। सन् १८७५ में गोथा नगरमें जो कांग्रेस हुई थी उसमें दोनों दल मिलकर एक हो गए थे। उस कांग्रेसमें २५००० सदस्य उपस्थित थे जिनमेंसे ९००० मार्क्सके दलके और १६००० लैसेलके दलके थे। दोनों दलोंके सम्मिलित हो जानेपर जो एक दल बना था उसने अपना नाम 'जर्मनसाम्यवादी श्रमजीवियोंका दल' रक्खा और एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रोग्राम तैयार किया था जिसका आशय इस प्रकार है—

"(१) सब प्रकारकी सम्पत्ति और सभ्यता आदिका मूल कारण श्रम ही है और सब प्रकारके उपयोगी कार्य केवल समाजके ही द्वारा होते हैं, इसलिये जितनी उपज हो वह सब समाजको अर्थात् उसके सब लोगोंको मिलनी चाहिए। श्रमके सब लोग ऋणी हैं अतः सब लोगोंको उसकी उपजमेंसे अपनी उचित आवश्यकताओंके अनुसार अपना अंश प्राप्त करनेका समान अधिकार है।

"इस समय समाजमें जो व्यवस्था है उसके अनुसार श्रमके समस्त साधनोंपर केवल पूँजीदारोंका ही अधिकार है। इस अधिकारके कारण श्रमजीवियोंका वर्ग बिलकुल पराधीन हो जाता है और उनकी यही पराधीनता सब प्रकारके दुःख और दासत्वका मूल कारण है।

"श्रमजीवियोंके उद्धारके लिये आवश्यक है कि श्रमके समस्त साधनोंपर सारे समाजका समान अधिकार हो जाय और श्रमसे जो

कुछ उपज हो, सारे समाजके कल्याणके लिये उसका भी सब लोगोंमें न्यायपूर्वक और ठीक ठीक विभाग हो ।

"श्रमजीवियोंको अपने उद्धारके लिये केवल आप ही प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि और जितने वर्ग हैं वे सब श्रमजीवियोंको दबानेका ही प्रयत्न करते हैं ।

"(२) इन्हीं सब बातोंका ध्यान रखकर जर्मनसाम्यवादी श्रमजीवियोंका दल चाहता है कि सब प्रकारके वैध उपायोंसे एक ऐसा स्वतंत्र राज्य और समाज स्थापित किया जाय जो मजदूरी देकर श्रम कराना रोक दे, सब प्रकारके अपहरणका अन्त कर दे और सारे सामाजिक तथा राजनीतिक असाम्य या असामंजस्यको दूर कर दे ।

"जर्मन साम्यवादी श्रमजीवियोंका दल यद्यपि आरम्भमें जातीय सीमाओंके अन्दर ही अपना कार्य आरम्भ करता है तौ भी वह श्रम-सम्बन्धी आन्दोलनकी सार्वभौमतासे परिचित है और इस प्रकार सब लोगोंमें भ्रातृभाव उत्पन्न करनेके लिये जो कर्त्तव्य आवश्यक हों उन सबका पालन करनेके लिये वह तैयार है ।

"सामाजिक प्रश्नोंकी मीमांसाके लिये यह दल चाहता है कि ऐसी सामाजिक उत्पादक समितियाँ स्थापित की जायँ जिन्हें राज्यसे सहा-यता मिले और जिनके सब काम श्रमजीवियोंके लोकमतके अनुसार हों। शिल्प तथा कृषि दोनोंके लिये इस ढंगसे उत्पादक समितियाँ स्थापित की जायँ कि आगे चलकर सारे श्रमपर समाजका पूरा पूरा अधिकार हो जाय और उनका सङ्गठन तथा संचालन साम्यवादके सिद्धान्तोंके अनुसार होने लगे ।

"जर्मनसाम्यवादी श्रमजीवियोंका दल चाहता है कि जो राज्य स्थापित हो उसका आधार इस प्रकार हो;—

"१—राज्य तथा स्थानिक संस्थाओंके चुनाव और दूसरे कामोंके लिये २० वर्षकी अवस्थासे अधिक प्रत्येक नागरिकको समान और प्रत्यक्ष रूपसे प्रतिनिधि चुनने और मत देनेका अधिकार प्राप्त हो और लोगोंके लिये मत देना आवश्यक हो और साथ ही यह काम गुप्त रूपसे हो। चुनाव या मत देनेके लिये रविवार या और कोई छुट्टीका दिन रक्खा जाय।

"२—कानून बनानेका काम प्रजा प्रत्यक्ष रूपसे करे और युद्ध तथा शान्तिके प्रश्नोंका निर्णय भी वही करे।

"३—सैनिक सेवा सब लोगोंका कर्त्तव्य हो। आजकल राज्योंमें जो स्थायी सेनाएँ रहती हैं उनके बदलेमें एक सार्वजनिक सेना रहे।

"४—समाचारपत्रों, संघों और सभाओं आदिके सम्बन्धके कानून और साधारणतः वे सब कानून जो विचारों अथवा अन्वेषण आदिकी स्वतंत्रतामें बाधक हों बिलकुल तोड़ दिए जायँ।

"५—न्यायका काम प्रजाके हाथमें हो और न्याय प्राप्त करनेके लिये किसीको एक पैसा भी खरचना न पड़े।

"६—राज्य सब लोगोंको समान रूपसे शिक्षा देनेका प्रयत्न करे। शिक्षा अनिवार्य्य हो जाय और सार्वजनिक विद्यालयोंमें मुफ्त शिक्षा दी जाया करे। किसीके धर्मसे कोई सरोकार न रक्खा जाय।

"प्रस्तुत समाजमें साम्यवादी श्रमजीवियोंका दल चाहता है कि:—

"(१) ऊपर जो बातें कही गई हैं उनका ध्यान रखते हुए सब लोगोंके राजनीतिक अधिकार और स्वतंत्रताएँ जहाँतक अधिक बढ़ाई जासकें वहाँतक बढ़ाई जायँ।

"(२) आजकल राज्यकी ओरसे लोगोंपर जो कर लगते हैं

और विशेषतः ऐसे अप्रत्यक्ष कर जिनसे लोगोंको कष्ट पहुँचता है बिलकुल उठा दिए जायँ और उनके बदलेमें राज्य अथवा वर्गके लिये केवल एक ही ऐसा आय-कर लगाया जाय जो बराबर बढ़ता जाय।

"(३) कोई काम करनेके लिये लोगोंको आपसमें मिलकर एक होनेका पूरा पूरा अधिकार प्राप्त हो।

"(४) समाजकी आवश्यकताओंके अनुसार उचित रूपसे निश्चित कर दिया जाय कि प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन कितने समयतक काम करना पड़ेगा। रविवारके दिन श्रम करनेकी मनाही कर दी जाय।

"(५) बच्चोंको श्रम करनेकी मनाही कर दी जाय और स्त्रियोंके लिये भी ऐसे श्रमकी मनाही कर दी जाय जो स्वास्थ्य अथवा नैतिक आचरणकी दृष्टिसे हानिकारक हो।

"(६) श्रमजीवियोंके जीवन और स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये कानून बन जायँ। श्रमजीवियोंके रहनेके मकानोंकी पूरी पूरी सफाई की जाय और अच्छी तरह उनकी देखरेख हो। खानों और कारखानों आदिका निरीक्षण ऐसे अधिकारी करें जो स्वयं श्रमजीवियोंके द्वारा चुने गए हों। एक ऐसा कानून बने जिससे मजदूरोंसे काम करनेवालोंके उत्तरदायित्व पूरी तरहसे निश्चित हो जायँ।

"(७) जेलखानोंमें कैदियोंसे भी उचित और नियमित श्रम कराया जाय।

"(८) श्रमजीवियोंके कोशमें जो कुछ धन आदि हो उसपर श्रमजीवियोंका पूरा पूरा अधिकार हो।"

जब यह दोनों दल मिलकर एक हो गए तब जर्मन साम्यलोकमतवादकी उन्नतिका एक नया युग आरम्भ हुआ। सन् १८७७ के

चुनावमें इस दलवालोंके प्रायः ५००००० वोट आए और रेश्टैग या पार्लिमेण्टके लिये १२ सदस्य चुने गए। इस सन्तोपजनक परिणामका मुख्य कारण यह था कि उन दिनों साम्यवादके सिद्धान्तोंके प्रचारकी बहुत अच्छी व्यवस्था थी। अनेक विद्वान् और परिश्रमी उपदेशक जर्मनीके प्रत्येक नगरमें घूम घूमकर इस नए वादके सिद्धान्तोंका प्रचार करते थे। तिसपर उन्हें अनेक बड़े बड़े समाचारपत्रों, पुस्तकों और सभाओं आदिके द्वारा बहुत बड़ी सहायता मिलती थी। तात्पर्य यह कि लोगोंमें प्रचार करनेके जितने साधन और उपाय थे वे सब काममें लाए जाते थे। जर्मनीके प्रायः सभी बड़े बड़े नगरोंमें लोगोंको इस बातकी आशंका होने लगी थी कि साम्यलोकमतवादियोंका यह नया दल बहुत ही शीघ्र सबसे अधिक बलवान् हा जायगा।

साम्यवादका इतना अधिक प्रचार और उन्नति देखकर जर्मन शासकोंके मनमें बड़ा भारी खटका पैदा हुआ। उन्होंने एक विशिष्ट कानून बनाकर इस नए आन्दोलनको दबाना निश्चित किया। ऊपर साम्यलोकमतवादियोंका जो प्रोग्राम दिया गया है, यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो, उसमें केवल यही बतलाया गया था कि शान्तिपूर्वक परिवर्त्तन आदि करते हुए किस प्रकार प्रस्तुत राज्यप्रणालीके चंगुलसे निकलकर लोकमतवादके सिद्धान्तोंपर नई राज्यप्रणाली स्थापित की जा सकती है। उसमें अराजकता अथवा विद्रोहका कोई भाव नहीं था। यह बात हम पहले ही बतला चुके हैं कि मार्क्सके साम्यवादका मुख्य सिद्धान्त ही यह था कि संसारमें यकी स्थापना केवल सामाजिक विकासकी आन्तरिक प्रवृत्तियों पर ही निर्भर करती है; परन्तु यदि सब लोग बुद्धिमत्ता और प्रयत्नपूर्वक मिलकर काम करने लगें तो काम कुछ जल्दी भी हो सकता है। जर्मनीमें लोग मिलजुलकर यह काम करने लग

गए थे; परन्तु उनका व्यवहार कुछ उग्र हो चला था और इस बातकी आशंका थी कि कहीं उनका बल क्रान्तिकारक स्वरूप न धारण कर ले। अतः जर्मनसरकारके लिये साम्यवादके आन्दोलनको दवानेका प्रयत्न करना आवश्यक हो गया था। इसी बीचम सन् १८७८ में होडेल और नोविलिंग नामके दो व्यक्तियोंने जर्मन-सम्राट्की हत्या करनेका प्रयत्न किया जिसके कारण जर्मनसरकारको साम्यवादियोंके विरुद्ध कानून बनानेका एक अच्छा बहाना मिल गया। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि ये दोनों आदमी बहुत ही थोड़ी समझ रखते थे, साम्यलोकमतवादी दलके साथ उनका कोई विशेष सम्बन्ध न था और वे केवल साम्यसम्बन्धी सिद्धान्तोंसे ही उत्तेजित होकर यह मूर्खता कर बैठे थे; परन्तु फिर भी उनकी मूर्खताका परिणाम सारे साम्यवादियोंको भोगना पड़ा। यहाँ हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि साम्यलोकमतवादी दलका कभी यह उद्देश्य नहीं था कि इस प्रकारकी हत्याएँ की जायँ और ऐसे कार्योंका उसपर कोई उत्तरदायित्व नहीं था।

पहले जब होडेलने जर्मन-सम्राट्के प्राण लेनेका प्रयत्न किया था तब रेश्टैगमें साम्यवादियोंको दबानेके लिये एक बिल उपस्थित किया था; परन्तु वह बिल रेश्टैगने अस्वीकृत कर दिया। जब दोबारा नोविलिंगने वही प्रयत्न किया तब सरकारने रेश्टैगको तोड़ दिया और प्रजासे अपील की जिसका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश प्रजा इस विशिष्ट कानूनको पास करनेके पक्षमें हो गई। उस समय साम्यवादियोंका जोर फिर घट गया और नए सार्वजनिक चुनावमें उनके बोट ४९३००० से घटकर ४३७००० ही रह गए। नई रेश्टैगने साम्यवादियोंके विरुद्ध कई कड़े कानून जल्दी जल्दी पास कर डाले। प्रसंगवश यहाँ यह भी बतला देना आवश्यक जान पड़ता

है कि साम्यवाद तथा उसके विरुद्ध बननेवाले कानूनोंके सम्बन्धमें जर्मनीके तत्कालीन मंत्री प्रिंस बिस्मार्कके भाव कैसे थे । साम्यवादियोंकी बातोंपर वह बहुत ही उदारतापूर्वक विचार करता था क्योंकि देशमें होनेवाले सभी नए सामाजिक और आर्थिक आन्दोलनोंके सम्बन्धमें पूरा ज्ञान प्राप्त करना वह अपना मुख्य कर्त्तव्य समझता था। १७ सितम्बर सन् १८७८ को रेश्टैगकी बैठकमें उसने लैसेलके प्रति अपनी बहुत कुछ श्रद्धा और सहानुभूति प्रकट की थी। उन दिनों कुछ ऐसी अफवाहें भी उड़ी थीं कि बिस्मार्क आजकल अन्दर ही अन्दर लैसेलके साथ मिल गया है। ऐसी बातोंका खण्डन करते हुए बिस्मार्कने लैसेलकी निःस्वार्थ वृत्ति और सच्ची देशहितैषिताकी बहुत प्रशंसा की थी। वह लैसेलकी राजकीय सहायतासे चलनेवाली उत्पादक समितियोंकी स्कीम भी पसन्द करता था और समझता था कि कमसे कम परीक्षाके लिये इस प्रकारकी समितियाँ स्थापित करना राज्यका कर्त्तव्य है।

१७ सितम्बर १८७८ को बिस्मार्कने रेश्टैगमें जो भाषण किया था उसमें उसने बतलाया था कि साम्यलोकमतवादके साथ हमारे द्रोह करनेके क्या कारण हैं। उसने कहा था कि इस नए दलके दो प्रधानों बेबल या लेप्कनेक्टमेंसे, किसी एकने इसी रेश्टैगकी बैठकमें खुले आम पेरिसके कम्यूनके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की थी। तभीसे मैंने समझ लिया कि साम्यलोकमतवादियोंका दल राज्यका शत्रु है अतः उससे बचनेके लिये हमें कोई उपाय करना चाहिए। जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं बेबलने ही रेश्टैगमें इसी प्रकारकी कुछ आपत्तिजनक बातें कही थीं और लेप्कनेक्टके भी प्रायः ऐसे ही विचार थे। बात यह थी कि उन दिनों प्रायः सभी जर्मन साम्यलोक-

मतवादियोंके भाव, विचार और विश्वास आदि इसी प्रकारके हो रहे थे। साम्यलोकमतवादी सचमुच जर्मनीकी तत्कालीन शासनप्रणालीके शत्रु हो रहे थे और अपनी यह शत्रुता प्रकट करनेमें आगा पीछा न करते थे। ऐसी दशामें सरकारका उनके विरुद्ध हो जाना कुछ अनुचित नहीं था।

बिस्मार्कने जिस योग्यता और परिश्रमसे जर्मनीमें एकता स्थापित करके उसे युरोपकी प्रधान शक्तियोंमें स्थान दिलाया था उसका वर्णन करनेकी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ सहकर उसने जो इमारत खड़ी की थी उसके दो शत्रु उसे दिखलाई पड़ रहे थे। ये दोनों शत्रु Black International और Red international (साम्यलोकमतवादी) यही दो साम्यवादी दल थे इन दोनों शत्रुओंको बिस्मार्कने अपनी स्वाभाविक दमन-नीतिसे दबानेका प्रयत्न किया। यद्यपि उसका यह प्रयत्न किसी स्वतंत्र और सभ्य राजनीतिज्ञके लिये उपयुक्त नहीं था परन्तु तौ भी उसने अपनी देशहितैषितासे प्रेरित होकर और अपनी परिस्थितियोंके कारण विवश होकर इस प्रकारका प्रयत्न किया था। उधर साम्यलोकमतवादी बराबर बहुत दिनोंसे यही देखते चले आ रहे थे कि बिस्मार्ककी श्रेणीके लोग बराबर हमें दबाते और अनेक प्रकारके कष्ट देते चले आ रहे हैं। वे लोग मारे क्रोधके सामाजिक दुर्दशासे बाहर निकलकर अपना एक स्वतंत्र दल संगठित कर चुके थे और चाहते थे कि राज्यद्वारा इस प्रकारके पीड़नका शीघ्र ही सदाके लिये अन्त हो जाय।

इस प्रकारके पारस्परिक विरोधके समय अक्टूबर १८७८ में साम्यवादियोंके विरुद्ध अनेक कानून बनकर प्रचलित हो गए। साम्यवादी सभाएँ और समाचारपत्र आदि तुरन्त बन्द कर दिए गए और दलका

संगठन तोड़ दिया गया। तात्पर्य यह कि उन दिनों यदि साम्यवादियोंके लिये स्वतंत्रतापूर्वक कुछ बोलनेका कोई स्थान था तो वह स्थान रेस्टैगका भवन ही था और यदि उनका कोई संगठन था तो वह रेस्टैगमें उनके प्रतिनिधि सदस्योंका दल था। पुलिस जगह जगहसे साम्यलोकमतवादी आन्दोलनकारियोंको हटा रही थी और उन्हें तरह तरहसे तंग करती थी। कुछ समयके लिये साम्यलोकमतवादियोंमें बहुत कुछ खलबली, और कुछ अंशोंमें निराशा भी फैल गई थी। लेकिन शीघ्र ही उन लोगोंने समझ लिया कि हमारी एकता और शक्ति किसी विशिष्ट संगठनपर ही नहीं निर्भर करती। यदि श्रमजीवियोंमें इतनी बुद्धि हो कि वे अपनी दुरवस्था और उससे बचनेके उपाय मात्र समझ लें तो बस इतनेसे ही हमारा काम हो जायगा; और तब हमारा संघ किसी प्रकारके दमनकारक कानूनके तोड़े न टूट सकेगा।

सितम्बर १८७९ से साम्यलोकमतवादियोंने ज्यूरिच नगरसे अपना एक मुख्यपत्र निकालना आरम्भ किया जिसका सम्पादन सन् १८८० से बहुत ही योग्यतापूर्वक बर्नस्टेनके द्वारा होने लगा। प्रति सप्ताह इस पत्रकी हजारों प्रतियाँ जर्मनी भेजी जाती थीं और पुलिसके लाख जोर लगानेपर भी साम्यलोकमतवादियोंमें उसका प्रचार किसी प्रकार न रुक सकता था। सन् १८८८ में उस समाचारपत्रका कार्य्यालय लन्दन चला गया और जब सन् १८९० में जर्मनीमें साम्यवादियोंके विरुद्ध सब कानून तोड़ दिए गए तबतक बराबर वहीं छपता रहा। बिस्मार्कने साम्यवादको दबानेका जो प्रयत्न किया था उसमें उसे कोई विशेष और स्थायी सफलता नहीं हुई थी। यद्यपि कानूनोंके प्रचलित होनेके बाद १८८१ वाले पहले चुनावमें इस दलवालोंके केवल ३१२००० ही वोट आए थे परन्तु शीघ्र ही उनकी

संख्या बहुत कुछ बढ़ चली। १८८४ के चुनावमें यह संख्या बढ़कर ५४९००० और १८८७ में ७६३००० हो गई थी। और सन् १८९० में जब कि साम्यलोकमतवादियोंके १४२-७०'०० वोट आए थे तब तो वह दल जर्मन-साम्राज्यके समस्त दूसरे दलोंसे बलवान् हो गया था। साम्यलोकमतवादियोंकी इसी वृद्धिने मानों बिस्मार्ककी दमनकारक नीतिका अन्त कर दिया था और तब फिर साम्यवादियोंके विरुद्ध कानून दोहराए नहीं गए। साम्यविरोधी कानूनोंके पास होनेके समयसे अबतक साम्यलोकमतवादी मतदाताओंकी संख्या बढ़कर तिगुनी हो गई थी। बिस्मार्कके साथ साम्यवादियोंका जो यह झगड़ा हुआ था उस झगड़ेमें साम्यवादियोंकी मानों इस प्रकार जीत हो गई। उस समय साम्यलोकमतवादियोंमें कोई दिखौआ संगठन नहीं था बल्कि उनमें उद्देश्यों और भावोंका एक ऐसा सच्चा और प्रभावशाली संगठन था जिसकी उपमा श्रमजीवियोंके आन्दोलनके इतिहासमें कहीं नहीं मिलती। उन्होंने उस पहले नेपोलियनतकका दृढ़तापूर्वक मुकाबला किया था जिसके हाथमें एक बहुत बड़े आधुनिक राज्यकी सारी शक्तियाँ थीं और जो बड़े बड़े समाचार-पत्रों तथा दूसरे सभी उपायोंसे इस आन्दोलनको बदनाम करनेका प्रयत्न किया करता था। इसके अतिरिक्त इस दलने कभी कोई उपद्रव भी नहीं किया था। उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया था कि कोई बहुत बड़ा काम करनेके लिये मनुष्यों अथवा दलोंमें जिन अनेक उच्च गुणोंकी आवश्यकता होती है वे सब हममें मौजूद हैं। जर्मनीके साम्यलोकमतवादियोंका आन्दोलन आजकल भी बहुत महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ आन्दोलनोंमेंसे एक है और यही साम्यलोकमतवादी दल इस समय वहाँका सबसे बड़ा और प्रभावशाली दल है। २४ मार्च सन्

१९१६ को यह दल दो भागोंमें विभक्त हो गया था उनमेंसे एकका नाम साम्यलोकमतवादी (Social Democrat) और दूसरेका नाम साम्यलोकमतवादी श्रमजीवियोंका संघ (Social Democratic Labour Union) है। पहला मार्च १९१८ को जर्मनीकी रेश्टैगमें साम्यलोकमतवादियोंके ८४ और साम्यलोकमतवादी श्रमजीवियोंके संघके २५ प्रतिनिधि थे। इधर जबसे जर्मनीमें प्रजातंत्र स्थापित हुआ है तबसे ये दोनों दल और भी अधिक बलवान् तथा प्रभावशाली हो गए हैं।

जब साम्यविरोधी कानूनोंका अन्त हो गया तब साम्यलोकमतवादियोंने अपनी आन्तरिक व्यवस्था ठीक कर लेना आवश्यक समझा। सन् १८९० में एक बहुत ही सीधी सादी सभा संगठित की गई, लन्दनसे छपनेवाला समाचारपत्र बन्द कर दिया गया और बर्लिनका एक पत्र उस दलका मुख्य पत्र बनाया गया। सन् १९९१ में एर्फर्ट नगरमें साम्यलोकमतवादियोंकी एक बहुत बड़ी सभा हुई जिसमें एक नया प्रोग्राम तैयार किया गया। यह प्रोग्राम कई बातोंमें गोथावाले प्रोग्रामसे भी बहुत बढ़ा चढ़ा था और उसमें साम्यलोकमतवादके सारे सिद्धान्तोंका बहुत ही उत्तमतापूर्वक समावेश था। उस प्रोग्रामकी मुख्य मुख्य बातें यहाँपर पाठकोंके मनोविनोदके लिये दे दी जाती हैं:—

"धनवानोंका धन दिनपर दिन बढ़ता जाता है जिसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि छोटे छोटे काम करनेवालोंके हाथसे सब कारबार निकलता जाता है। उत्पादनके साधन उनके हाथसे छिनते जाते हैं जिसके कारण वे बराबर दरिद्र होते जाते हैं; और उत्पादनके उन साधनोंपर बहुत ही थोड़ेसे पूँजीदारों और बड़े बड़े जमींदारोंका पूरा पूरा अधिकार होता जाता है।

"उत्पादनके साधनोंपर एक ही वर्गका एकान्त अधिकार होता जाता है जिसके कारण छोटे छोटे कारखाने तो टूटते जाते हैं और बहुत बड़ी बड़ी मशीनोंवाले कारखाने बढ़ते जाते हैं जिनसे मानव-श्रमकी उत्पादक शक्ति बहुत भीषण रूपसे बढ़ रही है। लेकिन इस परिवर्त्तनके जितने लाभ हैं वे सब पूँजीदारों और बड़े जमींदारोंको ही होते हैं। छोटे छोटे दरिद्र व्यापारियों, कारीगरों और किसानोंके लिये उनका केवल यही परिणाम होता है कि उनके अस्तित्व मिटनेकी आशंका, कष्ट, दासत्व, अवनति और अपहरण आदिकी बराबर वृद्धि होती जाती है।

" दरिद्रों और बेकारोंकी संख्या दिनपर दिन बराबर बढ़ती जाती है और अपहारक तथा अपहृतके बीचका अन्तर, धनवानों तथा दरिद्रों-का झगड़ा भी दिनपर दिन बराबर बढ़ता जाता है जिसके कारण सभी औद्योगिक देशोंके आधुनिक समाजोंमें दो ऐसे दल खड़े हो गए हैं जो दूसरेके साथ बराबर शत्रुताका व्यवहार करते हैं।

" आजकल पूँजीके द्वारा उत्पादनकी प्रथा भी बराबर बढ़ती जाती है जिसके कारण धनवानों और दरिद्रोंका झगड़ा भी बढ़ता है और समाजकी शान्ति भी भंग होनेकी आशंका बढ़ती जाती है। साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि उत्पादक शक्तियाँ आधुनिक समाजकी आवश्यकताओंसे कहीं अधिक हो गई हैं और उत्पादनके साधनोंपर जो व्यक्तिगत अधिकार है उसके कारण उन साधनोंका ठीक ठीक व्यवहार और उन्नति नहीं हो सकती।

" प्राचीन कालमें सम्पत्तिपर व्यक्तिगत अधिकार केवल इसीलिये होता था कि उत्पादकका उत्पन्न वस्तुपर जो अधिकार है वह निश्चित और स्थायी हो जाय। परन्तु आजकल उन साधनोंपर जो व्यक्तिगत

अधिकार है उससे लोग अनुचित लाभ उठाते हैं और कृषकों, कारीगरों और छोटे छोटे व्यवसायियोंके धन अथवा अंशका अपहरण करते हैं। उत्पादनके साधनोंपर इस व्यक्तिगत अधिकारका एक और बुरा परिणाम यह होता है कि श्रमजीवियोंके श्रमसे जो कुछ उत्पन्न होता है वह काम न करनेवालों, पूँजीदारों और बड़े बड़े जमीनदारोंके अधिकारमें चला जाता है । यदि समाजके हितके विचारसे व्यक्तिगत सम्पत्ति और उत्पादनके समस्त साधनों (जैसे जमीन, खानें, कच्चा माल, औजार, मशीनें, गमनागमनके साधन आदि) पर सारे समाजका अधिकार कर दिया जाय और सारी व्यक्तिगत उपजको सामाजिक उपज बना दिया जाय तो उससे उपज भी बहुत कुछ बढ़ सकती है और सामाजिक श्रमकी जो उपज बराबर बढ़ती जाती है वह आजकलकी तरह अपहृत वर्गके दुःखों और कष्टोंका कारण न रह जाय बल्कि उससे सारे समाजका बहुत ही उत्कृष्ट कल्याण हो और उसके समस्त अंगोंकी उन्नति और पुष्टि होने लगे ।

"इस सामाजिक परिवर्त्तनसे केवल दरिद्रोंका ही उद्धार नहीं होगा बल्कि वर्त्तमान व्यवस्थासे कष्ट पानेवाली सारी मानवजातिका उद्धार हो जायगा । परन्तु सामाजिक परिवर्त्तनका यह काम केवल श्रमजीवियोंके द्वारा ही हो सकता है क्योंकि चाहे दूसरे समस्त वर्गोंमें परस्पर हितका कितना ही अधिक विरोध क्यों न हो परन्तु फिर भी वे सब वर्ग इस विचारसे एक हैं कि उनमें उत्पादनके साधनोंपर व्यक्तिगत अधिकार रहे और उन सबका एक ही उद्देश्य यह है कि जिस प्रकार हो सके वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था नष्ट न होने दी जाय ।

"श्रमजीवियों और अपहरण करनेवाले पूँजीदारोंमें जो झगड़ा है वह अवश्य ही राजनीतिक है । क्योंकि विना राजनीतिक अधिकार

प्राप्त किए श्रमजीवी वर्ग अपना आर्थिक संगठन नहीं कर सकता है। जबतक उसे राजनीतिक अधिकार न प्राप्त हो जायँ तबतक वह उत्पादनके साधनोंपर व्यक्तिगत अधिकार हटाकर उनपर सामाजिक अधिकार स्थापित ही नहीं कर सकता।

"साम्यलोकमतवादी दलका मुख्य कार्य यह है कि श्रमजीवियोंके इस झगड़ेको ऐसा स्वरूप दे जिसमें वह सजीव और पूर्णरूपसे गठित हो जाय। साथ ही इस दलका यह भी उद्देश्य है कि श्रमजीवियोंको बराबर यह बतलाया जाय कि उनका अन्तिम और अनिवार्य उद्देश्य क्या है।

"जिन देशोंमें पूँजीकी सहायतासे द्रव्य उत्पन्न करनेकी प्रथा प्रचलित है उन सब देशोंके श्रमजीवियोंके हित बिलकुल एकसे हैं। संसारके उत्पादन और व्यापारके बहुत अधिक बढ़ जानेके कारण प्रत्येक देशके श्रमजीवियोंकी दशा दूसरे देशोंके श्रमजीवियोंकी दशापर निर्भर करती जाती है, अतः श्रमजीविवर्गके उद्धारका काम ऐसा है जिसमें सभी सभ्यदेशोंके श्रमजीवियोंका समान हित है। इन सब बातोंका ध्यान रखकर जर्मनीका साम्यलोकमतवादी दल यह समझता और घोषणा करता है कि हम समस्त दूसरे देशोंके श्रमजीवियोंके साथी हैं और हम सब लोग एक हैं।

"इसलिये जर्मनीका साम्यलोकमतवादी दल यह नहीं चाहता कि किसी विशिष्ट वर्गको कुछ अधिकार दिए जायँ, बल्कि वह चाहता है कि सब प्रकारके वर्गोंके शासनका और स्वयं वर्गोंका अन्त कर दिया जाय और बिना स्त्री पुरुष अथवा कुल आदिका विचार किए सब लोगोंके अधिकार और कर्त्तव्य बिलकुल एक समान कर दिए जायँ। इन्हीं विचारोंके कारण यह दल आधुनिक समाजमें केवल श्रमजीवि-

प्राप्त किए श्रमजीवी वर्ग अपना आर्थिक संगठन नहीं कर सकता है। जबतक उसे राजनीतिक अधिकार न प्राप्त हो जायँ तबतक वह उत्पादनके साधनोंपर व्यक्तिगत अधिकार हटाकर उनपर सामाजिक अधिकार स्थापित ही नहीं कर सकता।

"साम्यलोकमतवादी दलका मुख्य कार्य यह है कि श्रमजीवियोंके इस झगड़ेको ऐसा स्वरूप दे जिसमें वह सजीव और पूर्णरूपसे गठित हो जाय। साथ ही इस दलका यह भी उद्देश्य है कि श्रमजीवियोंको बराबर यह बतलाया जाय कि उनका अन्तिम और अनिवार्य उद्देश्य क्या है।

"जिन देशोंमें पूँजीकी सहायतासे द्रव्य उत्पन्न करनेकी प्रथा प्रचलित है उन सब देशोंके श्रमजीवियोंके हित बिलकुल एकसे हैं। संसारके उत्पादन और व्यापारके बहुत अधिक बढ़ जानेके कारण प्रत्येक देशके श्रमजीवियोंकी दशा दूसरे देशोंके श्रमजीवियोंकी दशापर निर्भर करती जाती है, अतः श्रमजीविवर्गके उद्धारका काम ऐसा है जिसमें सभी सभ्यदेशोंके श्रमजीवियोंका समान हित है। इन सब बातोंका ध्यान रखकर जर्मनीका साम्यलोकमतवादी दल यह समझता और घोषणा करता है कि हम समस्त दूसरे देशोंके श्रमजीवियोंके साथी हैं और हम सब लोग एक हैं।

"इसलिये जर्मनीका साम्यलोकमतवादी दल यह नहीं चाहता कि किसी विशिष्ट वर्गको कुछ अधिकार दिए जायँ, बल्कि वह चाहता है कि सब प्रकारके वर्गोंके शासनका और स्वयं वर्गोंका अन्त कर दिया जाय और बिना स्त्री पुरुष अथवा कुल आदिका विचार किए सब ...ोंके अधिकार और कर्त्तव्य बिलकुल एक समान कर दिए जायँ। ... विचारोंके कारण यह दल आधुनिक समाजमें केवल श्रमजीवि-

योंके अपहरण और उनपर होनेवाले अत्याचारोंके लिये ही नहीं लड़ता बल्कि सब प्रकारके अपहरण और अत्याचारोंको दूर करनेके लिये लड़ता है, चाहे वह अपहरण और अत्याचार किसी वर्ग, दल, लिंग, अथवा जातिके प्रति क्यों न हो।

"इन्हीं सब सिद्धान्तोंके कारण जर्मनीका साम्यलोकमतवादी दल अब यह चाहता है:—

"(१) साम्राज्यके १० वर्षसे अधिक अवस्थावाले समस्त पुरुषों और स्त्रियोंको वोट अथवा गोलीके द्वारा प्रत्यक्ष मत देनेका समान अधिकार प्राप्त हो जाय। चुनावकी व्यवस्था ऐसी हो जिसमें सब प्रान्तोंको अपनी जनसंख्याके अनुसार प्रतिनिधि चुननेका अधिकार हो और जबतक यह व्यवस्था न हो सके तबतक प्रत्येक मनुष्य-गणनाके उपरान्त प्रतिनिधि सभाकी बैठकोंका बराबर हर बार ठीक ठीक बँटवारा या विभाग हुआ करे। कानून आदि बनानेवाली सभाओंके लिये जो लोग प्रतिनिधि चुने जायँ वे केवल दो वर्ष तक अपने पदपर रह सकें। चुनाव केवल छुट्टीके दिन हुआ करे। प्रतिनिधियोंको वेतन-स्वरूप कुछ धन मिला करे। राजनीतिक अधिकारोंकी जितनी मर्यादाएँ हैं वे सब नष्ट कर दी जायँ।

"(२) कानून बनानेका काम सारी प्रजा प्रत्यक्ष रूपसे करे; अर्थात् सब लोगोंको किसी प्रकारके कानूनका प्रस्ताव करनेका पूरा पूरा अधिकार रहे, और प्रत्येक कानूनके विषयमें सब लोगोंकी सम्मति ली जाया करे। साम्राज्य, राज्य, प्रान्त और वर्गमें सब लोगोंको स्व-राज्यके अधिकार प्राप्त हों। राज्यके अधिकारियोंका चुनाव प्रजाद्वारा हो और वे प्रजाके सामने उत्तरदायी हों। कर आदि प्रतिवर्ष स्वीकृत हों।

"(३) सब लोगोंको सैनिक कार्योंकी शिक्षा दी जाय। देशमें स्थायी सेनाओंके बदले स्वयं प्रजाकी सेना रहे। युद्ध और शान्ति आदिका निर्णय प्रजाके प्रतिनिधि करें। दूसरी जातियों अथवा राष्ट्रोंके साथ जो झगड़े हों उन सबका निर्णय पंचायत द्वारा हो।

"(४) स्वतंत्रतापूर्वक विचार प्रकट करने, लोगोंमें एकता फैलाने अथवा सभाएँ आदि करनेमें जितने कानून बाधक हों अथवा जो कानून इन सब बातोंको दबाना चाहते हों वे सबके सब तोड़ दिए जायँ।

"(५) सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत बातोंमें जो कानून मरदों-के मुकाबलेमें स्त्रियोंको कुछ कम अधिकार देते अथवा उन्हें घाटेमें रखते हों वे सब कानून तोड़ दिए जायँ।

"(६) धर्म बिलकुल व्यक्तिगत विषय रक्खा जाय। किसी प्रकारके धार्मिक कार्यके लिये सार्वजनिक कोशसे कुछ भी धन न लगाया जाय। जितनी धार्मिक सभाएँ है वे सब प्राइवेट सभाएँ स-मझी जायँ और पूरी स्वतंत्रताके साथ अपनी आन्तरिक व्यवस्था करें।

"(७) विद्यालयोंमें किसी प्रकारकी धार्मिक शिक्षाकी व्यवस्था न की जाय। सार्वजनिक विद्यालयोंमें विद्यार्थियोंका उपस्थित होना अनिवार्य हो और उनमें शिक्षा अथवा शिक्षणके साधनों आदिके लिये किसी प्रकारकी फीस आदि न ली जाय। जो स्त्रियाँ अथवा पुरुष अपनी योग्यता अथवा बुद्धिके कारण और अधिक शिक्षा प्राप्त करनेके योग्य हों उन्हें भी सब प्रकारकी उच्च शिक्षा मुफ्त दी जाय।

"(८) न्यायकी व्यवस्था और कानूनी सम्मति बिलकुल मुफ्त हो जाय, अर्थात् इन बातोंके लिये किसीको कुछ देना न पड़े। न्यायका

काम प्रजा द्वारा चुने हुए जज करें। फौजदारीके मुकदमोंमें अपील हो सके। यदि किसी निरपराध व्यक्तिपर किसी प्रकारका अभियोग लगाया जाय अथवा उसे किसी प्रकारका दंड दिया जाय और पीछेसे उसकी निरपराधिता सिद्ध हो जाय तो उसे हर्जाना मिला करे। फाँसीकी सजा बिलकुल उठा दी जाय।

"(९) सब प्रकारके रोगियोंकी चिकित्सा बिलकुल मुफ्त हो और मुरदे मुफ्तमें गाड़े (या जलाए) जायँ।

"(१०) जहाँतक उचित हो सार्वजनिक कार्योंमें व्यय करनेके लिये आमदनी और सम्पत्तिपर ऐसे कर लगाए जायँ जो बराबर बढ़ते जायँ। अपनी आय तथा सम्पत्तिका लेखा तैयार करना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य रहे। धनके मान और रिश्तेके विचारसे उत्तराधिकार सम्बन्धी कर लगाया जाय। वे सब अप्रत्यक्ष कर, चुंगियाँ आदि हटा दी जायँ जो किसी छोटेसे वर्गके हितके विचारसे लगाई गई हों और जिनसे समष्टिके हितकी हानि होती हो।

श्रमजीवियोंके वर्गकी रक्षाके लिये जर्मनीका साम्यलोकमतवादी दल चाहता है कि:—

"(१) निम्नलिखित आधारोंपर श्रमजीवियोंकी रक्षाके लिये एक अच्छा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कानून बनना चाहिए:—

(क) प्रतिदिन काम करनेका समय निश्चित कर दिया जाय जो आठ घंटोंसे अधिक न हो।

(ख) १४ वर्षसे कम अवस्थावाले बालकोंके लिये द्रव्य-उत्पादक श्रमकी मनाही कर दी जाय।

(ग) केवल उन विशिष्ट उद्योगों अथवा शिल्पोंको छोड़ कर जिनका अपने स्वाभाविक कारणों अथवा सार्वज-

निक कल्याणके उद्देश्यसे रातके समय होना आवश्यक हो, शेष सब कार्योंके रातके समय करनेकी मनाही हो जाय।

(घ) प्रत्येक श्रमजीवीको प्रतिसप्ताह लगातार कमसे कम ३६ घण्टोंतक विश्राम करनेका समय मिले।

(ङ) श्रमके बदलेमें केवल नकदी दी जाय, माल या जिन्स देनेकी प्रथा उठा दी जाय।

"(२) सब प्रकारके औद्योगिक कारखानों और नगर तथा देहात्तोंमें श्रमजीवियोंकी दशाकी अवस्थाओंकी जाँच करने और उन्हें बिलकुल ठीक रखनेके लिये राज्यकी ओरसे एक विभाग खोला जाय। प्रत्येक जिलेमें इस विभागके कर्म्मचारी रहें और इस सम्बन्धमें सभाएँ बनें। श्रमजीवियोंके स्वास्थ्यसुधारकी पूरी पूरी व्यवस्था की जाय।

"(३) खेतोंमें काम करनेवाले मजदूर और नौकर भी कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंके बिलकुल समान समझे जायँ। नौकरोंके सम्बन्धमें अलग अलग जितने नियम हों वे सब तोड़ दिए जायँ।

"(४) एकता और संगठन आदिके उद्देश्यसे लोगोंको अपनी सभाएँ और समितियाँ आदि स्थापित करनेका पूरा और निश्चित अधिकार प्राप्त हो।

"(५) समस्त श्रमजीवियोंके बीमेका भार साम्राज्य अपने ऊपर ले और अपने शासनके काममें मजदूरोंको पूरा पूरा सहयोगी बनावे।"

यदि हम इस प्रोग्रामको ध्यानपूर्वक देखें तो हमें जान पड़ेगा कि इसका अन्तिम उद्देश्य समष्टिवाद है जो एक विस्तृत ऐतिहासिक

विकासके उपरान्त सामने आवेगा । परन्तु इस उद्देश्यकी सिद्धि तभी हो सकती है जब कि समस्त देशोंके श्रमजीवी संगठित होकर बुद्धिमत्तापूर्वक इसका साधन करें । बीसों पचीसों वर्षतक साम्यलोकमतवादियोंने निरन्तर विचार करनेके उपरान्त जो सिद्धान्त स्थिर किए थे, उक्त प्रोग्राम उन सब सिद्धान्तोंका सार है । उसमें श्रमजीवियोंके विचारों और हितों तथा सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रोंमें उनकी आकांक्षाओं और आदर्शोंका पूरा पूरा समावेश है । यद्यपि मार्क्सके ' अतिरिक्त मूल्य ' वाले सिद्धान्तोंका इस प्रोग्राममें कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है परन्तु फिर भी उसकी अनेक बातोंका मूल आधार मार्क्स और उसके साथियोंके वही सिद्धान्त हैं । सन् १८६३ से १८९० तकके जर्मन साम्यलोकमतवादका यह संक्षिप्त इतिहास है । इस थोड़ेसे समयमें अनेक परिवर्त्तन हुए और साम्यलोकमतवादियोंको अनेक प्राकारके कष्ट झेलने पड़े परन्तु अन्तमें उन्होंने सफलता प्राप्त कर ही ली । आरम्भमें वह दल बहुत ही तुच्छ और दुर्बल था और जर्मनीकी सरकारने समय समयपर उसे दबानेके लिये अपनी ओरसे कोई बात उठा नहीं रक्खी थी । परन्तु लोकमत कभी दबाया नहीं जा सकता; इसीलिये जर्मन साम्यलोकमतवाद भी न दब सका और अन्तमें उसकी विजय हुई । अनेक कठिनाइयाँ झेलनेके कारण जर्मन साम्यलोकमतवादी दलमें व्यवस्था, धैर्य, शान्ति और संयम आदि अनेक गुण आ गए हैं । उसके मोस्ट और हैसेलमेन आदि सदस्योंने इस बातके लिये बहुत जोर लगाया था कि लोग विद्रोहात्मक उपायोंसे सरकारका विरोध करें; परन्तु बहुमतने कभी यह बात मंजूर नहीं की । बल्कि उसने मोस्ट और हैसेलमेनको ही शान्तिपूर्ण उपायोंसे काम करनेको कहा और जब उन लोगोंने दलकी यह बात नहीं मानी,

-तब अन्तमें वे उसमेंसे निकाल भी दिए गए। जर्मन साम्यलोकमत-वादी दलमें अनेक बार विद्रोहात्मक विचार फैलानेके प्रयत्न किए गए परन्तु कभी कोई प्रयत्न सफल न हुआ। यदि कभी कोई थोड़ी-बहुत सफलता हुई भी तो केवल उन्हीं अवस्थाओंमें हुई जब कि जर्मन-पुलि-ससे मिले हुई कुछ लोगोंने केवल जर्मन-पुलिसके दुष्ट उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये कोई उद्योग किया। इसके अतिरिक्त इस दलने अपनेमेंसे उन लोगोंको भी निकाल दिया जो सच्चे हृदयसे काम करना नहीं जानते थे; बल्कि प्रतिष्ठाप्राप्ति आदि अनेक दूषित उद्देश्योंसे आकर उसमें सम्मिलित हो गए थे। और सबसे बड़ी विलक्षणता यह थी कि इस दलको इतनी उन्नत अवस्थातक पहुँचानेमें किसी बहुत अधिक योग्य अथवा विद्वान्‌ने कोई सहायता नहीं दी थी। इस आन्दोलनको जन्म देनेवाले मार्क्स और लैसेलको छोड़कर उसकी उन्नति और वृद्धि करनेवाले सभी लोग साधारण योग्यता, विद्या और बुद्धिके थे। इससे सिद्ध होता है कि कि दो महात्माओंने जो बीज बोया था उसे सींचने और पौधा लगाकर फल तैयार करनेका सारा काम जर्मनीके दरिद्र श्रमजीवियोंने ही किया था।

किसी दूसरे अच्छे मार्गदर्शकके अभावमें जर्मन श्रमजीवियोंके लिये नेतृत्वका सारा काम इसी साम्यलोकमतवादी दलने किया है। श्रम-जीवियोंको और सब तरफ या तो घोर अन्धकार दिखाई देता था और या विकट शत्रु मिलते थे। यदि उन्हें कहींसे कोई उचित और उपयुक्त परामर्श मिल सकता था तो वह केवल इस दलसे। समय-समयपर जर्मन श्रमजीवियोंने जो अनेक हड़तालें की थीं उन्हें सबसे अच्छी सलाह साम्यलोकमतवादी नेताओंसे ही मिली थी। इन नेता-ओंने भी शीघ्र ही यह बात समझ ली कि श्रमजीवियोंमें जागृति उत्पन्न

करनेमें इन्हीं हड़तालोंसे सबसे अधिक सहायता मिलती है। इस कामके लिये जर्मन साम्यलोकमतवादियोंने बहुत कुछ स्वार्थत्याग भी किया था। सन् १८७२ में लेपुजिग नगरमें लेप्कनेक्ट और वेवलको जब २ वर्षकी सजा हो गई थी तब उन्होंने कहा था कि हम लोग इस बातसे प्रसन्न हैं कि जर्मनीमें साम्यमतवादका अच्छा प्रचार करनेके कारण हम यह दण्ड भोगने जा रहे हैं। उनका मुकदमा दो सप्ताह तक होता रहा। इस बीचमें उन लोगोंने अपने पक्षके समर्थनमें जो कुछ कहा उससे साम्यवादके सम्बन्धमें बहुतसे लोगोंका पक्षपात और दूर हो गया और साम्यवादके सत्य सिद्धान्तोंका बहुतसे जर्मनोंपर भारी प्रभाव पड़ा। इसी प्रकारकी एक और घटना उल्लेखयोग्य है। जर्मनीमें आगस्टहेन्श नामका एक साधारण श्रमजीवी था जो छापेखानेमें कम्पोजीटरका काम करता था। उसने अनेक अवसरोंपर बहुत अधिक परिश्रम करके वर्लिन नगरमें साम्यलोकमतवादी दलके लिये बहुतसे वोट एकत्र किए थे। इसके अतिरिक्त उसने साम्य तथा साम्यलोकमतवादके सिद्धान्तोंके प्रचारमें भी बहुत अधिक सहायता दी थी। उन दिनों मजदूरोंके काम करनेके स्थान प्रायः बहुत ही गन्दे, अँधेरे और बदबूदार हुआ करते थे जिसके कारण बहुतसे काम करनेवालोंको क्षयरोग हो जाया करता था। हेन्शको भी यही रोग हो गया था और इसीमें उसके प्राण भी निकले थे। १० मार्च १८७८ को वर्लिन नगरमें उसकी जो रत्थी निकली थी उसके साथ हजारों श्रमजीवी थे। जिस रास्तेसे वह रत्थी गई थी उस रास्तेके सब मकानोंकी छतों और खिड़कियोंपर काले झंडे लगे थे; और सारा रास्ता लाखों ऐसे आदमियोंसे भरा था जो हेन्शके प्रति अपना आदरभाव प्रकट करनेके लिये घंटोंतक नंगे सिर खड़े रह गए थे। एक साधारण

कम्पोजीटरकी रथीके समय इतनी धूमधाम होना यह बतलाता है कि जर्मन लोगोंमें साम्यलोकमतवादके सिद्धान्तों और उनके प्रचारकोंका कितना आदर है ।

जर्मन-साम्यमतवादने अबतक जितने काम किए हैं उनमें सबसे बड़ा काम यह किया है कि जर्मनीके मजदूरोंको संयमी, मितव्ययी, परिश्रमी और कानूनको माननेवाला बना दिया है और उनमें अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये स्वार्थत्यागका भाव भर दिया है । इस दलके प्रोग्राम और सिद्धान्तोंमें इधर अनेक परिवर्त्तन और सुधार हुए हैं और आगे चलकर और भी अनेक सुधार तथा परिवर्त्तन होंगे। क्योंकि यह आन्दोलन सजीव है और उसके सञ्चालक समझदार हैं । ज्यों ज्यों समय बीतता जायगा त्यों त्यों नई नई आवश्यकताएँ उत्पन्न होती जायँगी और उन आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिये नए नए उपाय और कार्य भी होते रहेंगे ।

---

८ रूसकी क्रान्ति।



आजसे प्रायः दो वर्ष पहलेतक रूस देश राजनीतिक दृष्टिसे समस्त युरोपियन राज्योंसे प्रायः एक शताब्दी पिछड़ा हुआ था। उसमें नम्रसे नम्र उदारमतवादियोंसे लेकर कट्टरसे कट्टर अराजकतक बराबर यही चाहते थे कि राज्यका नए सिरसे संगठन हो और उस संगठनमें सम्मति और सहायता आदि देनेका सर्वसाधारणको भी कुछ अधिकार प्राप्त हो। शासनकार्यमें केवल एकतंत्रताकी ही प्रधानता न रहे और उसके सम्बन्धमें प्रजासे भी कुछ पूछ लिया जाया करे। जो लोग इस प्रकारका राजनीतिक सुधार चाहते थे उनमेंसे बहुतसे लोग ऐसे थे जो जर्मनी तथा फ्रान्सके साम्यलोकमतवादी सिद्धान्तों और कार्यों आदिसे परिचित थे और मार्क्स तथा प्राउड्हनके ग्रन्थ पढ़ चुके थे। रूसराज्यमें बहुत हालतक एक ओर तो एकतंत्री शासन और धर्माधिकारियोंकी ऐसी तूती बोलती थी जो युरोपीय ढंगकी होनेकी अपेक्षा अधिकतर एशियाई ढंगकी ही थी और दूसरी ओर ऐसे ऐसे भीषण राजद्रोही अराजक और निहलिस्ट थे जो इस बातकी आशा करते थे कि कल ही एक आदर्श राज्य स्थापित किया जा सकता है। वह आदर्श राज्य कोई मामूली राज्य नहीं था बल्कि एक ऐसा राज्य था जिसके विषयमें अधिकांश साम्य-

वादियोंका बहुत दिनोंसे यही सिद्धान्त था कि बहुत कुछ परिवर्त्तन और विकासके उपरान्त बहुत दिनोंपर कहीं जाकर इसकी स्थापना होगी। इंग्लैण्डमें मैग्नाचार्टा (Magna Charta) मिलनेके समयसे लेकर सन् १९११ वाले पार्लिमेन्ट एक्टके पास होनेके समय तककी कई शताब्दियोंमें स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिये जो झगड़ा होता रहा, रूसका साम्यवादी आन्दोलन भी बहुत कुछ उसी झगड़ेके समान है।

सब लोग जानते हैं कि रूस एक बहुत बड़ा देश है; उसमें अनेक प्रान्त और अनेक जातियाँ हैं। उन सबका मुख्य शासन करनेवाला जार कहलाता था। जबसे रूस एक ही शासक जारके हाथमें गया तबसे उसकी बहुत कुछ उन्नति और रक्षा हुई। तातारों, तुर्कों, पोलों और स्वीडोंके भीषण आक्रमणोंसे रूसी प्रजाकी रक्षा बराबर जारोंने ही की। यदि रूसमें जारके द्वारा शासन करनेकी प्रथा न होती तो उस देशकी भी वही दशा होती जो इधर बहुत दिनोंसे पोलैण्डकी दशा होती आ रही थी। जिसे जो प्रान्त मिलता वह उसीको दबा बैठता जिसके कारण रूस देश और रूसी जाति बहुत दुर्बल हो जाती और अराजकता तथा सामन्तोंके स्वार्थके कारण उसका बुरी तरह नाश हो जाता। अन्यान्य देशोंके राजाओंकी तरह रूसके दृढ़ और निर्दय जारोंने भी भिन्न भिन्न राजाओं और सरदारोंको दबाकर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। प्रभुत्व स्थापित करनेवाले उन जारोंमें महान् पीटर (Peter the Great) सरीखे साहसी और उद्योगी पुरुष भी थे, जिन्होंने पुराने ढंगके रूसियोंको नई पश्चिमी सभ्यताके मार्गपर लगानेके लिये मारपीट करनेकी कौन कहे हत्याएँ तक करनेमें कोई आनाकानी नहीं की। सरदार लोग तो जारोंके

विरुद्ध सिर उठानेमें असमर्थ थे ही; परन्तु धर्म्माधिकारियोंमें भी सिर उठानेकी शक्ति नहीं थी और न वे सिर उठाना चाहते ही थे। शासकोंका विरोध करना वे बिलकुल जानते ही न थे। अब रह गए कृषक जो गणनामें भी नहीं आ सकते थे; क्योंकि उनके हाथमें कोई राजनीतिक अधिकार था ही नहीं। हाँ, जब कभी वे बहुत निराश अथवा दुखी हो जाते थे तब कहीं थोड़ा बहुत उपद्रव कर बैठते थे।

इन्हीं सब परिस्थितियोंके कारण रूसमें एक ऐसा निरंकुश और एकतंत्री शासन स्थापित हो गया था जिसकी समता सारे युरोपमें कहीं नहीं थी। उसी शासनने भयंकर और शक्तिशाली शत्रुओंसे बराबर रूसी जातिकी रक्षा की थी और हर पीढ़ीमें अपने देशकी कुछ न कुछ सीमा बढ़ाई थी। यही शासन रूसके जातीय जीवनका केन्द्र था और इसीके द्वारा बहुतसे अंशोंमें प्रजाकी आवश्यकताएँ और आकाक्षाएँ पूरी हुआ करती थीं। ये सब बातें इतने विस्तारसे इसीलिये कही गई हैं कि जबतक हम अच्छी तरह यह न समझ लें कि जार द्वारा शासनकी प्रथाने रूस देशके लिये कौन कौनसे महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं तबतक हम यह नहीं समझ सकते कि रूसी प्रजापर जारोंका इतना प्रभुत्व क्यों था और इतने दिनोंतक वह क्योंकर स्थायी बना रहा। रूसके जारोंके अधिकार अवश्य अनियंत्रित हुआ करते थे; परन्तु एक अप्रत्यक्ष मार्गसे उन अधिकारोंका बहुत कुछ नियंत्रण भी हो जाता था। जारकी आज्ञाओंका पालन करनेके लिये जो अधिकारी और कर्मचारी नियुक्त होते थे वे उन आज्ञाओंका ठीक ठीक पालन कभी होने ही न देते थे। ऐसे ही कर्मचारी और अधिकारी रूसकी राजधानीसे लेकर उसकी समस्त अन्तिम सीमाओंतक फैले हुए थे। वे आज्ञाओंके पालनमें बहुत विलम्ब कर देते थे, उनका सक्रिय प्रति-

रोध करते थे, उनके विषयमें अपनी ओरसे नई नई बातें बतलाते थे और कभी कभी झूठमूठ यह भी कह दिया करते थे कि उन आज्ञाओंका पालन हो गया । तात्पर्य यह कि एकतंत्री राजा अथवा राज्यके नौकर, साधारणतः जितने प्रकारके छल और कपट आदि किया करते हैं वे सब छल कपट रूसी अधिकारियोंके बाएँ हाथके खेल थे और उन्हींके द्वारा वे या तो अपने मालिककी इच्छा पूर्ण नहीं होने देते थे, या उसे निरर्थक बना देते थे और या उसे किसी दूसरे मार्ग अथवा स्वरूपमें परिवर्तित कर देते थे।

यह तो हुई शासक और कर्मचरियोंकी बात । अब जरा प्रजावर्गकी बात सुनिए । न तो वहाँके शिल्पकारोंमें कोई जातीय जीवन था और न उन नागरिकोंमें जिनकी संख्या ही बहुत थोड़ी थी । रूसकी अधिकांश प्रजा केवल खेती-बारी करके ही अपना पेट पालती और छोटे छोटे गाँवोंमें ही रहकर अपने दिन बिताती थी । हमारे देशकी पंचायतोंसे मिलती-जुलती एक संस्था रूसमें भी है जिसे मीर कहते हैं । इसे हमारे हिन्दू संयुक्त परिवारका कुछ परिवर्त्तित और परिवर्द्धित रूप ही समझना चाहिए । रूसी गाँवोंके समस्त निवासियोंके हित और उत्तरदायित्व बिलकुल एक होते थे । प्रत्येक गाँवमें एक मुखिया होता था जो गाँवके आन्तरिक शासनका सारा काम करता था और उच्च कर्मचारियों आदिके सामने वही अपने गाँवके प्रतिनिधिस्वरूप उत्तरदायी होता था । गाँवोंके आसपास जोतने बोने अथवा पशुओंके चरनेके लिये जितनी भूमि होती थी उसपर कुछ अंशोंमें गाँवके समस्त निवासियोंका अधिकार होता था। ज़ो कर लगते थे वे गाँवों पर ही लगते थे और मुखिया अपने गाँवके सब लोगोंसे वसूल करके चुकाता था । महाजन लोग अपने ऋणके

बदलेमें गाँववालोंको जमीनसे बेदखल नहीं कर सकते थे। बहुत प्राचीन कालमें जब कि मनुष्य जाति केवल खेती-बारी ही करती थी तब संसारके अधिकांश देशोंमें प्रायः यही व्यवस्था थी। आजकल और सब देशोंमें उन्नति तथा सभ्यताका प्रचार होनेके कारण वह प्राचीन व्यवस्था नष्ट हो गई; परन्तु रूसमें वह व्यवस्था बहुतसे अंशोंमें बनी रही। उस व्यवस्थाके कारण रूसी प्रजाको एक प्रकारके स्थानिक स्वराज्यके अधिकार प्राप्त थे और उसीके कारण उनका सामाजिक जीवन अन्यान्य देशोंके लोगोंके सामाजिक जीवनसे भिन्न और एक विशिष्ट प्रकारका हो गया था। इसीके कारण आर्थिक अथवा साम्पत्तिक दृष्टिसे प्रत्येक गाँव स्वयं ही परिपूर्ण था। उसे इन बातोंके लिये किसी दूसरे गाँवका मुखापेक्षी न होना पड़ता था। गाँवके सब लोग समान स्वतंत्र थे और परस्पर बराबरीका व्यवहार करते थे। यद्यपि १८६१ से पहले वे लोग गुलाम समझे जाते थे परन्तु उस वर्ष नया कानून बन जानेके कारण गुलामीसे उनकी मुक्ति हो गई थी। रूसमें मीरवाली जो सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था थी, वह बड़े बड़े जमींदारोंके लिये भी लाभदायक थी और सरकारके लिये भी। सरकारको अलग अलग लोगोंसे कर उगाहने, रंगरूट भरती करने और गाँवोंमें स्थानिक शासनकी व्यवस्था करनेका कष्ट न उठाना पड़ता था। वह गाँवोंके मुखिया लोगोंसे कर उगाह लेती थी, उन्हींसे रंगरूट माँग लेती थी और उन्हींको स्थानिक शासनका काम करने देती थी। इसीलिये अधिकांश लोग उस संस्थाको और भी अधिक गठित और दृढ़ करके जातीय जीवनके सामाजिक और आर्थिक आधारके लिये अधिक उपयुक्त चाहते थे। परन्तु बादमें सरकारने अपनी वह नीति

और धनिक कृषकोंका एक नया वर्ग खड़ा करनेके उद्देश्यसे उस संस्थाको तोड़नेका बहुत कुछ प्रयत्न किया और व्यक्तिगत कृषकोंको इस बातका अधिकार दे दिया कि वे गाँवकी पंचायती जमीनोंमेंसे अपनी अधिकृत भूमि अलग कर लें। लेकिन फिर भी इस नवीन अधिकारका बहुत प्रयोग न हो सका। यह एक बड़ी ही विलक्षण बात है कि जिस रूसी जातिका इस प्रकारका पुराने ढंगका संगठन था उसी रूसी जातिमें पश्चिमी युरोपके सबसे अधिक उन्नत क्रान्ति-कारक विचारोंका प्रचार हो गया। कुछ दिनों पहले भी रूसियोंमें विद्रोह या क्रान्तिका भाव कुछ कुछ वर्त्तमान था, परन्तु उसका रूप ऐसा भयंकर और विकट नहीं था। वहाँके निवासी बड़े ही अज्ञान और दुःखी थे और उन्हें विवश होकर लगातार बहुतसे कर तथा सेनाके लिये आदमी देने पड़ते थे; जिसके कारण उनमें सदा कुछ न कुछ असन्तोष बना रहता था; और कभी कभी वही असन्तोष बहुत बढ़ जानेके कारण छोटे मोटे विद्रोहका रूप धारण कर लेता था। रानी केथराइन और प्रथम एलेक्जेण्डरके राजत्वकालोंमें उच्च वर्गके लोग मानों शौकिया उदारमतवादी बनने लग गए थे। उनके ये उदारभाव सिर्फ शौकिया ही होते थे और वे उन भावोंके अनुसार कभी-कोई काम न करते थे; इसलिये रूसके स्वेच्छाचारी राजाओंके लिये उनसे सशंकित या भयभीत होनेका भी कोई कारण न था। निकोलसके राजत्वकालके आरम्भमें ही सेण्टपिटर्सबर्ग नगरमें वहाँके गार्डों (Guards) ने कुछ कुलीन, उदारमतवादी अधिकारियोंके नेतृत्वमें सिर उठाया था परन्तु वे लोग जल्दी थोड़ीसी कार्रवाई करके दबा दिए गए। निकोलस जबतक जीता रहा तबतक (१८५५ तक) देशमें बराबर उसकी दमनकारक नीति ही बनी रही और सारे युरोपमें

लोग उसे आदर्श स्वेच्छाचारी और एकतंत्री राजा समझते रहे। जब द्वितीय एलेक्जेण्डर रूसके राजसिंहासनपर बैठा तब वहाँके इतिहासका मानों एक नया युग आरम्भ हुआ। क्रीमियाके युद्धमें बुरी तरह पराजित होनेके कारण रूसी सरकारकी पुरानी प्रणालियाँ बहुत अधिक बदनाम हो गई थीं। प्रायः लोग यह समझने लग गए थे कि पश्चिमके जिन विचारों और उपायोंसे रूस इस प्रकार पराजित हुआ है उन्हीं विचारों और उपायोंका परीक्षाके लिये रूसमें भी प्रचार होना चाहिए। युवक सम्राट् द्वितीय एलेक्जेण्डर भी नई नीतिका अवलम्बन करना आवश्यक समझता था इसलिये शीघ्र ही रूसके शासन-कार्योंमें बहुत बड़े बड़े परिवर्तन हो गए और कुछ दिनोंतक सब काम बहुत मजेमें होता रहा। एलेकजेण्डरने गुलामोंको स्वतंत्र कर दिया, नए न्यायालय स्थापित किए, स्थानिक शासनकी नई व्यवस्था की और शिक्षा-प्रचार पर बहुत जोर दिया। परन्तु उसने जिन उदार शक्तियोंको इतनी स्वतंत्रता दे दी थी शीघ्र ही वे शक्तियाँ बहुत प्रबल हो गईं; और आशंका होने लगी कि उनके द्वारा रूसी समाजका सारा तख्त ही कहीं न उलट जाय; इसलिये अब एलेक्जेण्डर उदारमतवालोंसे कुछ हिचकने लगा। उसमें इतनी दृढ़ता नहीं थी कि वह बराबर व्यवस्थित सुधार करता चलता। अबतक जितने सुधार हो चुके थे अथवा भविष्यमें और जिन सुधारोंकी सम्भावना थी उनके कारण रूसके पुराने विचारवाले अधिकारियों और बड़े आदमियोंमें खलबली मच गई। सन् १८६३ में पोलैण्डवालोंने भी सिर उठाया और रूसी उदारमतवादी उनके साथ सहानुभूति प्रकट करने लग गए। इसका परिणाम यह हुआ कि रूसके पुराने ढंगके अनुदार अधिकारियोंने जोरोंसे दमन नीतिका अवलम्बन आरम्भ किया। इसके तीन ही वर्ष

वाद, सन् १८६६ में करकजफ नामक एक व्यक्तिने रूसी सम्राट् द्वितीय एलैक्जेण्डरकी हत्या करनेका प्रयत्न किया जिसके कारण उसके विचार भी उदारसे अनुदार और दमननीतिके पक्षमें हो गए। उस समयतक रूसी लोग सुधार और उन्नतिके अच्छी तरह अभ्यस्त नहीं हुए थे। वहाँ पहलेसे ही कुछ तो ऐसे लोग उपस्थित थे जो किसी प्रकारका परिवर्त्तन या सुधार चाहते ही न थे अथवा बहुत ही धीरे धीरे और थोड़ा थोड़ा सुधार अथवा परिवर्त्तन करना चाहते थे; और कुछ लोग ऐसे उत्पन्न हो गए थे जो प्रत्येक बातमें बहुत बड़ा सुधार और परिवर्त्तन करना चाहते थे। रूसी समाजकी उन दिनों जैसी अवस्था और परिस्थिति थी उसके कारण इन दोनों पक्षोंमें किसी प्रकारका समझौता होना असम्भव था। यही कारण था कि रूसमें क्रान्तिकारक आन्दोलन आरम्भ हो गया। नया दल रूसकी विशिष्ट राजनीतिक संस्थाओंका ही विरोधी नहीं था बल्कि वह सम्पत्ति, धर्म और परिवार आदिके सम्बन्धमें प्रस्तुत समाजके समस्त सिद्धान्तोंमें बहुत बड़ा परिवर्तन करना चाहता था। इसलिये शेष सारे समाजसे उसका अलग हो जाना बहुत ही स्वाभाविक और अनिवार्य था।

रूसमें जो क्रान्तिकारक आन्दोलन हुआ उसके तीन (और यदि सन् १८१८ वाली राज्यक्रान्तिको ले लिया जाय तो चार) विभाग किए जा सकते हैं। पहला युग सन् १८५५ में द्वितीय एलेक्जेंडर-के राज्यारोहणके समयसे लेकर सन् १८७० तकके लगभग था। उस युगकी सबसे प्रधान बात यह थी कि नए दलके क्रान्तिकारक लोग पुरानी समस्त बातों, संस्थाओं और सगठनोंका विध्वंस कर देना चाहते थे। रूसका प्रायः समस्त क्रान्तिकारक आन्दोलन उसी विध्वंसक सिद्धान्त (Nihilism) से पूर्ण माना जाता है। परन्तु सच

पूछिए तो इस सिद्धान्तका पूरा जोर इसी पहले युगमें अर्थात् १८५५ से १८७० तक था। बात यह थी कि उन दिनों रूसके शिक्षित धार्मिक भावोंसे बिलकुल ही रहित थे और दार्शनिक विचारोंको वे लोग दूसरे देशोंसे मानों शौकिया अपने देशमें ले आए थे । यही कारण था कि उन लोगोंमें भूतवादका इतना अधिक प्रसार हो गया था जो बहुत ही नाशक प्रभाव उत्पन्न कर रहा था। उन दिनों अच्छे अच्छे विचारशील भी समस्त पुरानी बातोंका विध्वंस कर देना चाहते थे। यह बात ऐसे लोगोंके लिये बहुत ही उपयुक्त थी जिन्हें न तो कोई अनुभव था और न जिनमें कोई व्यवस्था। ये विध्वंसक (Nihilists) लोग, एक लेखकके कथनानुसार, न तो किसी प्रकारके शासनाधिकारके सामने दबना जानते थे और न उनका कोई निश्चित सिद्धान्त था। वे अपने उन्हीं विध्वंसक विचारोंसे समस्त राजनीतिक संस्थाओं, सामाजिक सुधारों और धार्मिक तथा पारिवारिक व्यवस्थाओंकी परीक्षा करते थे और उन सबको त्रुटिपूर्ण पाते थे । अपनी अधीरताके कारण वे प्राचीन कालकी अच्छी और बुरी सभी बातोंका तिरस्कार करते थे। साहित्य या कला आदिके प्रति भी उनके हृदयमें कोई आदर न रह गया था। वे लोग यही समझते थे कि यदि किसी मेंढकके अंग अत्यंग काटनेसे हमारे ज्ञानमें कोई वृद्धि हो तो यह काम बड़ेसे बड़े कवियोंकी कविता अथवा बड़ेसे बड़े चित्रकारोंके चित्रसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। परन्तु वे लोग यह नहीं जानते थे कि उद्धारके लिये जो आन्दोलन किया जाता है उसमें सब बातोंका केवल विध्वंस करनेसे कभी काम नहीं चल सकता।

कुछ दिनोंतक रूसके विध्वंसक समाजके यही विचार बने रहे; परन्तु पीछे उनमेंसे कुछ लोग डार्विन, हर्बर्टस्पेन्सर और मिलके ग्रंथ

पढ़ने लग गए जिसके कारण उनके विचार कुछ संस्कृत हो चले। पहले सेण्ट साइमन, फोरियर, रावर्ट ओवेन आदि और तब लैसेल और मार्क्सके विचारोंसे भी वे लोग कुछ कुछ अवगत हो चुके थे जिसके कारण उन लोगोंमें पीडित दरिद्रवर्गके प्रति बहुत अधिक और सच्ची सहानुभूति उत्पन्न हो चली थी। अब वे लोगोंका ध्यान व्यर्थकी और विध्वंसक टीका टिप्पणियोंकी ओरसे हटाकर दरिद्रोंका कष्ट दूर करने और अज्ञानोंमें शिक्षाप्रचार करनेकी ओर आकृष्ट करने लगे। साथ ही वे स्त्रियोंको भी पुरुषोंके ही समान अधिकार दिलानेके लिये बहुत जोर देने लगे। रूसी साम्यवादसम्बन्धी विचारोंमें सब चीजोंको विध्वंसकरनेका यह एक ऐसा पागलपन था जो एक हवाकी तरह कुछ ही समयतक ठहरकर निकल गया और जो अपने पीछे ऐसे संस्कृत और परिमार्जित विचार छोड़ गया जो आगे चलकर रूसी प्रजाके लिये बहुत कुछ उपयोगी और हितकर प्रमाणित हुए। जो देश बहुत दिनोंसे तरह तरहके भारी पक्षपातों और दुर्दशाओंके बोझसे दबा हुआ था उसे उठानेके लिये इसी प्रकारकी एक कड़ी मात्राकी आवश्यकता थी। यह विध्वंसक सिद्धान्त न तो बहुत दिनोंतक ठहर सकता था और न ठहरा। ज्यों ज्यों समय बीतने लगा त्यों त्यों रूसी प्रजाके उद्धारका प्रश्न संगठित और युक्तियुक्त रूप धारण करने लगा।

इस प्रकार रूसका क्रान्तिकारक आन्दोलन अपने दूसरे युगमें पहुँचा जिसमें साम्यवादी नेता अनेक प्रकारके उपायोंसे सर्वसाधारणमें साम्यवादके सिद्धान्तोंका प्रचार करने लगे। पश्चिमी युरोपमें सार्वभौमिक महासभाकी उन्नति और वृद्धि हो चुकी थी, पेरिसका कम्यूनवाला प्रसिद्ध भीषण झगड़ा भी हो चुका था और जर्मनसाम्य-

लोकमतवादका भी प्रचार हो चला था। इन सब घटनाओंके कारण रूसके स्वतंत्रताप्रेमी युवकोंमें नए जीवनका संचार हो आया था। नए विधानात्मक और उच्च आदर्श उन युवकोंके विचारोंको अपनी ओर आकृष्ट करने लगे। अब वे लोग यह सोचने लगे कि रूसमें जो इतने अपढ़ और दुखी दरिद्र कृषक हैं उनका उद्धार कैसे हो। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय भी रूसके साम्यवादसम्बन्धी आन्दोलन-पर बकुनिनके क्रान्तिकारक विचारोंका ही बहुत कुछ प्रभाव था लेकिन फिर भी लोगोंकी प्रवृत्ति विध्वंसक क्रान्तिकी ओरसे हटकर विधायक क्रान्तिकी ओर हो गई थी। इसके अतिरिक्त उस साम्यवादपर लैवरफ नामक एक दूसरे प्रधान रूसी देशनिर्वासित साम्यवादीके सिद्धान्तोंका भी बहुत कुछ प्रभाव था। लैवरफका मुख्य सिद्धान्त यह था कि जो कुछ सुधार किया जाय वह वैध उपायोंसे और क्रम-क्रमसे किया जाय। क्रान्तिकारक युगमें भी विध्वंसक और विधायक दोनों विचारोंके लोग थे। उसमें बकुनिनके अराजकतावादकी ही बहुत कुछ प्रधानता थी, परन्तु फिर भी लोग उसकी ओरसे हटकर उचित और उपयुक्त मार्गकी ओर आने लग गए थे।

बकुनिनका एक सिद्धान्त यह भी था कि सर्वसाधारणमें घूम घूम-कर साम्य और क्रान्तिसम्बन्धी नए सिद्धान्तों और विचारोंका प्रचार किया जाय। दूसरे युगके क्रान्तिकारक आन्दोलनमें लोगोंने इसी सिद्धान्तको अपना मूलमंत्र बना लिया था और उन्होंने गाँवोंमें घूम घूम-कर नए सिद्धान्तों और विचारोंका प्रचार करना आरम्भ कर दिया था। इस काममें उन लोगोंको सरकारकी कुछ कार्रवाइयोंसे और भी अधिक अप्रत्यक्ष सहायता मिली थी। १८७० के लगभग सैकड़ों रूसी युवक और युवतियाँ पश्चिमी युरोपके अनेक नगरोंमें और विशे-

षतः स्वीजरलैण्डके ज्यूरिच नगरमें शिक्षा पा रही थीं। वहाँ रहनेके कारण उन रूसी युवतियों और युवकोंका परिचय कुछ रूसी देश-निर्वासित क्रान्तिकारियोंसे हो गया था। इसके अतिरिक्त वे पश्चिमके अनिश्चित और अस्थिर विचारोंका भी ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। १८७३ में रूसमें एक नई राजाज्ञा निकली जिसके कारण वे सब लोग अपनी जन्मभूमिमें जा पहुँचे। वे लोग अपने साथ ही अपने नए विचार लेते गए थे। उन्हीं विचारोंको घूम घूमकर सर्वसाधारणमें फैलाना ही उन्होंने अपना मुख्य सिद्धान्त स्थिर कर लिया। यद्यपि उनकी संख्या बहुत थी तथापि न तो उनका कोई संगठन था और न कार्य करनेकी कोई निश्चित प्रणाली। वे लोग गाँवोंमें शिक्षक और चिकित्सक बनकर जाते थे। स्त्रियाँ प्रायः दाइयोंका काम करती थीं। इसके अतिरिक्त सर्वसाधारणमें सम्मिलित होनेके लिये वे लोग तुच्छसे तुच्छ काम सीखते और करते थे। साधारणतः वे लोग बढ़ई या मोचीका काम पसन्द करते थ, क्योंकि यही दोनों काम सहजमें सीखे जा सकते थे। उनमेंसे बहुतसे लोग केवल इसी उद्देश्यसे कारखानोंमें प्रति दिन १५—१५ घण्टोंतक काम करते थे कि जिसमें कुछ भी अवकाश मिलते ही वे अपने साथियोंको कुछ नई बातें बतला सकें। बड़े बड़े धनी और सभ्य घरानोंकी स्त्रियाँ और पुरुष अनेक प्रकारके कष्ट सहकर रूसी कृपकोंके साथ अपना समय बिताते थे और उन लोगोंमें मिलकर उनके विश्वासभाजन बननेके लिये उन्हींकेसे कपड़े पहनते थे; और यहाँतक कि अपना शरीर भी मैला कुचैला रखते थे! उनके इतने उद्योगका मुख्य कारण यह था कि रूसके कृपकों और धनिकवर्गके लोगोंमें बड़ा भारी और निश्चित अन्तर था और कृपक लोग प्रायः धनिकोंसे सशंकित और भयभीत रहा करते थे। उनके

विचार भी बहुत संकीर्ण थे और वे स्वभावतः नए तथा अपरिचित विषयोंसे उदासीन रहा करते थे। नए अपरिचित प्रचारक जो अपरिचित बातें उन्हें बतलाते थे वे बातें भी उन कृषकोंकी समझमें बहुत कठिनतासे आती थीं। इसके अतिरिक्त उन प्रचारकोंके विचार और सिद्धान्त प्रायः अधकचरे हुआ करते थे और पश्चिमी युरोपके अर्थ-शास्त्रसम्बन्धी विकाससे सम्बन्ध रखते थे; स्वयं उन रूसी कृषकोंको इन बातोंके सम्बन्धमें पहलेसे कुछ भी अनुभव नहीं था। इन्हीं सब कारणोंसे उन प्रचारकोंको अपने उद्देश्यमें बहुत ही थोड़ी सफलता हुई।

प्रचारका यह काम भी बहुत ही थोड़े समयतक प्रचलित रह सका। प्रचारक अपना काम विशेष सचेत होकर नहीं करते थे। वे जो कुछ करते थे वह प्रायः स्वतंत्रतापूर्वक और खुले आम करते थे; इसीलिये रूसी गवर्नमेण्टको बहुत ही सहजमें उनकी सब कार्रवाइयोंका पता लग गया। सन् १८७३ से १८७६ तक ऐसे २००० से अधिक प्रचारक गिरिफ्तार करके जेल भेज दिए गए। पुलिस बरसों-तक उनके बारेमें जाँच करती रही और तबतक वे सबके सब जेलमें पड़े सड़ते रहे। सन् १८७७ के अन्तमें पुलिसकी जाँचका यह परिणाम हुआ कि मास्कोमें ५० आदमियोंपर और सेण्टपिटर्सबर्गमें १९३ आदमियोंपर अदालतमें मुकदमा चला। यद्यपि अदालतोंसे उनमेंसे अधिकांश निरपराध सिद्ध होनेके कारण छूट गए परन्तु फिर भी वे सरकारकी आज्ञासे निर्वासित कर दिए गए। इन सब कठिनाइयोंके कारण इस शान्तिपूर्ण प्रचारके कार्यका अन्त हो गया और क्रान्तिकारक दलने उग्र उपायोंसे अपना उद्देश्य सिद्ध करना आरम्भ कर दिया। उन लोगोंने सर्व साधारणमें स्थायी रूपसे निवास करके उन्हें गवर्नमेण्टके विरुद्ध भड़काना निश्चित किया। शान्तिपूर्ण उपायोंसे

प्रचार करनेके लिये सरकारकी ओरसे मनाही हो गई थी, इसलिये लोगोंने उग्र उपायोंका अवलम्बन करना चाहा। परन्तु जो लोग क्रान्तिकारक दलके उद्देश्योंको अच्छी तरह समझनेमें भी असमर्थ थे उन लोगोंमें इस प्रकारके उपायोंसे नए सिद्धान्तोंका प्रचार करना केवल कठिन ही नहीं बल्कि प्रायः निराशाजनक भी था।

रूस देश तथा वहाँके निवासियोंकी जैसी परिस्थितियाँ थीं उन्हें देखते हुए कुछ लोगोंने यही निश्चित किया कि जबतक साधारण कृषकोंको यह मिथ्या विश्वास न दिलाया जायगा कि इस प्रकारके क्रान्तिकारक विचारोंके प्रचारके लिये स्वयं जारकी स्वीकृति ले ली गई है तबतक उसमें कभी सफलता न होगी। क्रान्तिकारक दलके जैकब स्टेफेनेविज नामक एक प्रधान सदस्यने दक्षिण-पश्चिमी रूसमें लोगोंसे यह कहना आरम्भ कर दिया कि जार तो कृषकोंको स्वतंत्र करके उन्हें जमीनका मालिक बनाना चाहते हैं; परन्तु देशके प्रायः सभी अमीर, सरदार, धर्माधिकारी और राजकर्मचारी इस बातमें जारके बहुत विरोधी हैं। अतः जारने मुझे यह आज्ञा दी है कि तुम देशमें जाकर ऐसे सरदारों और राजकर्मचारियोंके विरुद्ध एक गुप्त सभा स्थापित करो। जिन लोगोंसे वह ऐसी बातें कहता था उनकी समझमें यह बात सहजमें नहीं आ सकती थी कि ऐसा शक्तिशाली जार ऐसे अवसरपर क्योंकर इतना शक्तिहीन हो गया है परन्तु फिर भी उसे एक गुप्त सभा स्थापित करनेमें सफलता हो ही गई। उस सभाके सदस्योंकी संख्या भी एक हजारतक पहुँच गई। परन्तु जब पुलिसको इस षड्यंत्र तथा गुप्त सभाका पता लगा तब कृषक लोग इस प्रकार धोखा देनेवालेपर बहुत बिगड़े। इस अवसरपर यह बतला देना भी उचित जान पड़ता है कि स्टेफेनोविजकी इस कपटपूर्ण कार्यप्रणालीके साथ क्रान्तिकारक दलके केवल थोड़ेसे लोगोंकी ही सहानुभूति थी।

क्रान्तिकारक विचारोंके प्रचारका यह उपाय भी रूसमें अधिक समयतक न चल सका। पग पगपर राजकर्मचारी बहुत ही सहजमें क्रान्तिकारक दलके समस्त उपायोंका अन्त कर देते थे। अन्तमें क्रान्तिकारक दलके लोगोंने स्वयं जार और उसके सेवकोंपर प्रत्यक्ष आक्रमण करना चाहा। उन्होंने सोचा कि जब हमपर किसी प्रकारकी दया नहीं दिखाई जाती है तब हम राजा और उसके कर्मचारियोंपर क्यों दया दिखलावें। अब उन लोगोंने दृढ़ता और निर्दयतापूर्वक स्वयं जारके विरुद्ध ही उपद्रव आरम्भ कर दिए। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये स्वभावतः ही उन्हें अपनी कार्यप्रणाली बदलनी पड़ी। बकुनिनका उपदेश था कि क्रान्तिकारक विचारोंके प्रचारके लिये किसी प्रकारकी व्यवस्था या संगठन न करना चाहिए; और अबतक वे बराबर इसी ढंगसे काम करते थे। परन्तु अब उन्होंने अपना काम व्यवस्थित और संगठित रूपमें आरम्भ किया। एक गुप्त प्रधान कमेटी बनी जो बड़ी ही तत्परतासे क्रान्तिकारक दलके नए उद्देश्योंकी सिद्धिमें लग गई। यहींसे रूसी क्रान्तिकारक आन्दोलनका मानों तीसरा युग आरम्भ हुआ। इस युगमें पहला सबसे बड़ा काम यह हुआ कि सन् १८७८ में सेण्टपिटर्सबर्गमें वेरा सैशोलिश नामक एक स्त्रीने पुलिस-विभागके सर्वप्रधानकर्मचारी जनरल ट्रेपफकी हत्या कर डाली। इस हत्याका कारण यह था कि ट्रेपफकी आज्ञासे एक राजनीतिक कैदीको कोड़े लगाए गए थे। यद्यपि उस कैदीके साथ सैशोलिशका कोई व्यक्तिगत परिचय या सम्बन्ध नहीं था परन्तु फिर भी उसके साथ जो निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया गया था उसके कारण सैशोलिशने उसका बदला लेना निश्चित कर लिया था। इसी निश्चयके अनुसार उसने ट्रेपफके प्राण लिए थे। मुकदमा चलनेपर जूरियोंने उस-

को साफ छोड़ दिया जिसके कारण राजपक्षके लोगोंको बहुत आश्चर्य हुआ । न्यायालयसे छूटकर जब वह बाहर निकल रही थी तब पुलिसने उसको फिर पकड़ना चाहा था; परन्तु बहुतसे लोगोंने बीचमें पड़कर उसे बचा दिया और वह भागकर स्वीजरलैण्ड चली गई ।

सर्वसाधारणने वेरा सैशोलिशके साथ बहुत अधिक सहानुभूति दिखलाई । उस समय क्रान्तिकारक दलके कुछ उत्साही लोगोंमें भी बहुत अधिक आवेश आ गया था और वे राजकर्मचारियोंसे उसका बदला लेनेकी चिन्ता करने लग गए थे । सेण्टपिटर्सबर्गमें दिनदहाड़े वहाँकी पुलिसका प्रधान कर्मचारी जनरल मेजेन्सेफ बुरी तरह घायल किया गया । चार्कफके गवर्नर प्रिन्स क्रोपाटकिन पर भी जो कि एक क्रान्तिकारकका रिस्तेदार था गोली चलाई गई थी और सड़कपर जनरल ड्रेण्टेन पर भी आक्रमण किए गए थे । इस प्रकारके उपद्रव करनेके उपरान्त कान्तिकारक दलके लोगोंने स्वयं जारकी हत्या करनेका मन्सूबा बाँधा । सालोवेफ नामक एक व्यक्तिने स्वयं जारपर पाँच गोलियाँ चलाई पर भाग्यवश जारको कुछ भी चोट न पहुँची । तीन बार जारकी रेलगाड़ी नष्ट करनेके भी उद्योग किए गए परन्तु वे भी विफल हुए । एक बारकी विफलताका कारण तो केवल यही था कि जारने यात्रासम्बन्धी अपना निश्चय ही बदल दिया था । एक बार जारके विण्टर पैलेस (Winter Palace) नामक प्रासादमें भी एक भीषण बम फूटा था । इस बमसे जार केवल इसी लिये बच गया था कि उसे अपने भोजनागारमें पहुँचनेमें नित्यकी अपेक्षा थोड़ासा विलम्ब हो गया था । इतनी विफलताएँ होनेपर भी क्रान्तिकारक कमेटी बराबर अपना काम करती ही थी और यहाँतक कि अन्तमें १३ मार्च १८८१ को जार द्वितीय

एलेक्जेण्डरकी हत्या हो ही गई। इस हत्याके कारण सारे युरोपमें सनसनी फैल गई थी। द्वितीय एलेक्जेण्डरने अपना शासन बहुत ही उच्च तथा उदार भाव मनमें रखकर आरम्भ किया था और उसके शासनसे रूसी प्रजाके बहुत कुछ कल्याणकी आशा थी। यह बात लोगोंकी समझमें ही न आती थी कि जो जार इतना उदार और उच्चाशय था उसकी हत्या कुछ लोगोंने कैसे कर डाली। परन्तु इसका मुख्य कारण यही था कि बहुत दिनोंसे यही प्रथा चली आती थी कि वहाँके राजा बिलकुल स्वेच्छाचारी होते थे और लोगोंको न तो किसी प्रकारकी स्वतंत्रता देना चाहते थे और न शासन-कार्योंमें उनकी कोई सम्मति लेना चाहते थे।

रूसके आधुनिक इतिहासमें जिन क्रान्तिकारियोंने बहुतसे काम किये हैं, इस अवसरपर उनके सम्बन्धमें भी कुछ बातें बतला देना आवश्यक जान पड़ता है। जो लोग इस दलके सदस्य थे वे रूसी प्रजाके प्रायः सभी वर्गों और जातियोंके थे। उनमेंसे कुछ बड़े और अमीर घरानोंके लोग थे और कुछ धर्माधिकारियों तथा छोटे राजकर्म्मचारियोंके वंशज थे। देहाती और कृषक भी पीछेसे इस दलमें सम्मिलित हो गए थे। इस दलके सम्बन्धमें सबसे विलक्षण और ध्यान रखने योग्य बात यह थी कि उसमें बहुत सी स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं। सन् १८७८ में वेरा सैंशोलिशने ही एक बड़े राजकर्म्मचारीकी हत्या करके रूसके एकतंत्री शासनके साथ वैर ठाना था। द्वितीय एलेक्जण्डरकी हत्या करनेवालोंने जो भीषण बम फेंके थे वे सोफिया पैरास्किया नामक एक उच्च कुलकी स्त्रीके आदेशोंके अनुसार ही फेंके थे। यह स्त्री एक परदेकी आड़में खड़ी थी और वहींसे उसने वह परदा हिलाकर लोगोंको बम फेंकनेका इशारा किया था।

इस दलके सम्बन्धमें दूसरी विलक्षण बात यह थी कि इसके सभी सदस्य अमीर और गरीब, स्त्रियाँ और पुरुष सभी युवक थे। उनमेंसे बहुत से तो ऐसे ही थे कि जिनकी अवस्था पूरे २५ वर्ष की भी न थी। यही कारण था कि उनमें समझदारी तो कम थी पर उत्साह और आवेश बहुत था। लोग चटपट सफलता प्राप्त कर लेना चाहते थे और यह नहीं समझते थे कि सर्वश्रेष्ठ उन्नति केवल धैर्य्यपूर्वक और क्रमक्रमसे काम करनेसे ही प्राप्त होती है। रूसी प्रजामें वे जिन विलक्षण और क्रान्तिकारक सिद्धान्तोंका प्रचार करना चाहते थे उन्हें देखते हुए हम कह सकते हैं कि संसारका कोई एकतंत्री शासन उन कार्योंको कभी सहन नहीं कर सकता। हाँ उस गवर्नमेण्टकी बात दूसरी है जिसकी प्रजा सुशिक्षित और समझदार हो और जिसके देशमें भिन्न विषयोंपर बहुत दिनोंसे स्वतंत्रतापूर्वक वादविवाद होता आया हो।

परन्तु एक बात और है। यद्यपि रूसी साम्यवादियोंके विचार आरम्भसे ही क्रान्तिकारक थे परन्तु फिर भी पहले उन्होंने उग्र उपायोंका कभी अवलम्बन नहीं किया। पहले जब शान्तिपूर्ण उपायोंके कारण ही पुलिस तथा राजकर्मचारी उन्हें तंग करने लग गए तब विवश होकर उन्हें उग्र मार्ग ग्रहण करना पड़ा। उन्हीं दिनों वहाँके विश्वविद्यालयोंके कुछ विद्यार्थियोंने भी कुछ छोटे मोटे उपद्रव किए थे जिनका दमन बड़े ही भीषण उपायोंसे किया गया था। बहुतसे युवक केवल सन्देहपर ही पकड़ लिए गए थे और बरसोंतक बहुत ही खराब जेलखानोंमें रक्खे गए थे क्योंकि इतने समयतक उनके विषयम बराबर जाँच ही होती थी। इसलिये विश्वविद्यालयके उन विद्यार्थियोंमेंसे भी बहुतसे स्वभावतः अपने देशकी उस सरकारके शत्रु ही

गए थे जो लोगोंके साथ ऐसा विपम, अनुचित और निन्दनीय व्यवहार करती थीं।

रूसमें राजनीतिक सुधारोंके लिये किसी प्रकारका संगठित उद्योग करना कानूनसे वर्जित था। क्रान्तिकारियोंको सार्वजनिक सभाएँ करके अथवा और किसी प्रकार भापण करने अथवा समाचारपत्रोंमें अपने विचार प्रकट करनेका कोई अधिकार न था। उनके पीछे दिन रात ऐसे गुप्तचर लगे रहा करते थे जो उनके प्रत्येक कार्य और प्रत्येक बातको बहुत ही बुरा स्वरूप देकर बड़े अधिकारियोंतक पहुँचाया करते थे। क्रान्तिकारक लोग जिन कृपकोंमें नए विचार फैलाना चाहते थे स्वयं वही कृपक भी कभी कभी उनकी कार्रवाइयोंकी सूचना पुलिसको दे दिया करते थे। बहुतसे क्रान्तिकारकोंको भी पुलिस डरा धमकाकर अथवा अनेक प्रकारके लालच देकर अपनी ओर मिला लिया करती थी और उनसे दलका बहुत कुछ भेद ले लिया करती थी। जिस आदमीपर क्रान्तिकारक विचारोंके प्रचारका थोड़ासा सन्देह भी हो जाता था उसपर भी बड़ी भारी विपत्ति आ जाती थी, क्योंकि पुलिसके कर्मचारी तथा राज्यके अधिकारी उन लोगोंको भी बहुत कठोर दंड देते थे जिनपर क्रान्तिकारक विचारोंके प्रसारका अभियोग मात्र भी लगाया जाता था। अभियुक्त या अपराधी अपील करके भी कोई लाभ नहीं उठा सकते थे, क्योंकि उस दशामें इस बातकी सम्भावना होती थी कि साधारण अदालतोंका फैसला रद्द हो जाय और सरकार स्वयं उनके लिये किसी दण्डकी आज्ञा दे और दण्डसम्बन्धी यह सरकारी आज्ञा, बिना किसी प्रकारका मुकदमा किए, फाँसी, आजन्मकारावास अथवा देशनिर्वासनकी होती थी। ऐसी अवस्थाओंमें स्वतंत्रता देवीके दृढ भक्तोंके लिये यह बात बहुत ही स्वाभाविक

थीं कि वे गुप्त सभाएँ स्थापित करके भीषण षड्यंत्र रचते और अनेक प्रकारके निर्दयतापूर्ण उग्र उपायोंका अवलम्बन करते। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि क्रान्तिकारक दलके विचार और उद्देश्य उदारमतवादके विचारों और उद्देश्यों तथा नियमानुमोदित शासनकी अपेक्षा कहीं आगे बढ़े हुए थे तथापि यह बात भी निर्विश्वाद सिद्ध है कि उस दलके लोगोंने उग्र उपायोंका अवलम्बन केवल इसीलिये किया था कि उन्हें छोटे मोटे राजनीतिक अधिकार भी नहीं दिए गए थे। यदि उग्र उपायोंका अवलम्बन करनेके कुछ समय उपरान्त भी उनके साथ कुछ रिआयत की जाती और उन्हें थोड़े बहुत अधिकार दिए जाते तो अवश्य ही वे शान्त हो जाते और सौम्य उपायोंसे अपना कार्य आरम्भ कर देते। हमारे इस कथनका एक प्रमाण भी है। द्वितीय एलेक्जेण्डरकी हत्याके उपरान्त जब तृतीय एलेक्जेण्डर राजसिंहासनपर बैठा तब मार्च सन् १८८१ में क्रान्तिकारक दलकी प्रधान कार्यकारिणी सभा (Executive Committee) ने उसके पास एक अभिनन्दन पत्र भेजा था जिसमें यह कहा गया था कि यदि सर्वसाधारणकी चुनी हुई कोई राष्ट्रसभा (National Assembly) स्थापित की जाय तो हम लोग सब उग्र उपाय छोड़ देंगे और निर्विवाद रूपसे उसकी समस्त आज्ञाओंका पालन करेंगे। इससे सिद्ध होता था कि नियमानुमोदित शासनमें वे लोग नियमानुमोदित उपायोंसे राजनीतिक सुधार करना चाहते थे।

यद्यपि जार और उसके शासनका खुले आम विरोध करनेवाले लोगोंकी संख्या बहुत ही कम थी तथापि उन लोगोंके साथ रूसी प्रजाके बहुत बड़े अंशकी सहानुभूति थी। सन् १८८२ में स्टेपनियाक नामक एक लेखकने रूसकी आन्तरिक दशाके सम्बन्धमें एक

बहुत अच्छा ग्रन्थ लिखा था जिसमें उसने बतलाया था कि रूसमें सारी प्रजा क्रान्तिकारक आन्दोलन नहीं करती। यह आन्दोलन कुछ थोड़ेसे लोग करते हैं परन्तु ये थोड़ेसे लोग मानों सारी प्रजाके प्रतिनिधि होते हैं और उसकी आवश्यकताएँ विचार तथा भाव प्रकट करते हैं। राज्यक्रान्तिकारकोंकी आकांक्षाओं और विचारोंसे सहमत रहनेवालोंकी संख्या लाखों और करोड़ों तक है। रूसकी ऐसी लाखों करोड़ों प्रजाकी एक क्रान्तिकारक जाति ही मानी जा सकती है परन्तु वह समस्त जाति स्वयं अथवा प्रत्यक्ष रूपसे इस झगड़ेमें सम्मिलित नहीं होती। वह अपने सारे स्वार्थ, सारी प्रतिष्ठा, प्रस्तुत राजप्रणालीके सम्बन्धमें सारी घृणा और बदला लेनेके सारे भाव कुछ ऐसे लोगोंमें भर सपुर्द कर देती है जो राज्यक्रान्तिको ही अपने जीवनका एक मात्र व्यापार बना बैठते हैं। क्योंकि आजकल रूसकी वर्त्तमान अवस्था ही ऐसी है कि साधारण नागरिक साम्यवाद तथा क्रान्तिसम्बन्धी कार्योंमें किसी प्रकार सम्मिलित ही नहीं हो सकते।

कुछ वर्षोंतक क्रान्तिकारकोंको राज्यकी ओरसे बराबर कठिन दण्ड मिलते रहे और उनकी सभाएँ आदि बराबर तोड़ी गईं। इसी बीचमें रूसके बड़े बड़े नगरोंमें शिल्पकलाकी वृद्धि होने लगी और अच्छे अच्छे कारखाने स्थापित होने लगे। उन कारखानोंमें ऐसे गरीब देहाती मजदूर काम करते थे जो प्रायः अपने खेतोंसे बेदखल कर दिए गए थे। इस प्रकार वे मजदूर भी देशके राष्ट्रीय जीवनका एक मुख्य अंग बन चले। सन् १८९६ में सेण्टपिटर्सबर्ग नगरमें एक बहुत बड़ी हड़ताल हुई। रूसमें इधर हालमें जो नई औद्योगिक और शिल्पसम्बन्धी उन्नति हुई थी उसके परिणामस्वरूप क्रान्तिकारक आन्दोलनका मानों इसी हड़तालसे आरम्भ हुआ था। इस प्रकार

रूसमें एक साम्यलोकमतवादी दल खड़ा हो गया जो मार्क्सके सिद्धान्तोंपर बहुत जोर देता था। उसी वर्ष लन्दनमें जो सार्वभौम कांग्रेस हुई थी उसमें भी पहले पहल कुछ रूसी साम्यवादी प्रतिनिधि रूपमें सम्मिलित हुए थे। उसके कुछ ही दिनों बाद सारे देशके भिन्न भिन्न स्थानोंमें बहुतसे नए साम्यवादी खड़े हो गए और साम्यवादके सिद्धान्तोंका प्रचार करने लगे। उस समय बहुतसे लोग यही समझते थे कि ये साम्यवादी इस बातका आसरा नहीं देखेंगे कि देशकी शिल्पकला विकसित और उन्नत हो जाय और रूसकी विशिष्ट परिस्थितिको देखते हुए शीघ्र ही बहुत बड़ी क्रान्ति आरम्भ हो जायगी। पुराने क्रान्तिकारक दलके भी कुछ सदस्य तबतक बचे हुए थे जिन्होंने आगे चलकर सन् १९०१ में साम्यवादी क्रान्तिका एक दल (Socialist Revolutionary Party) स्थापित किया। अब रूससाम्राज्यमें साम्यवादियोंके दो मुख्य दल हो गए। एक दल तो साम्यलोकमतवादियोंका था जो इस बातपर जोर देता था कि अभी हमें रूसकी शिल्पसम्बन्धी उन्नति और आर्थिक विकासकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। जब देशमें बड़े बड़े कारखाने स्थापित हो जायँ और उनके कारण दरिद्रोंका बहुत बड़ा वर्ग तैयार हो जाय तब उसकी सहायता और सम्मतिसे कोई काम करना चाहिए। इस दलको अपने आन्दोलनमें साधारण कृषकोंसे किसी प्रकारकी सहायताकी कोई आशा नहीं थी; क्योंकि वह समझता था कि जबतक बड़ी बड़ी जमींदारियों और बड़े बड़े कारखानोंकी स्थापनाके कारण उन कृषकोंका अपहरण नहीं होगा और वे दरिद्र नहीं हो जायँगे तबतक उनकी आँखें न खुलेंगी। हम पहले ही कह आए हैं कि यह दल मार्क्सके सिद्धान्तोंपर बहुत जोर देता था। इसी लिये वह साम्यवादमूलक का-

न्तियुग उपस्थित करनेसे पहले आर्थिक विकासके नियमोंके अनुसार देशकी औद्योगिक अथवा शिल्पसम्बन्धी उन्नतिकी प्रतीक्षाके पक्षमें था। दूसरा साम्यवादी क्रान्तिकारक दल था। यह दल इस बातपर बहुत जोर देता था कि कृषकोंमें साम्यवाद और क्रान्तिसम्बन्धी विचारोंका खूब प्रचार किया जाय और जार तथा उसके सेवकोंके साथ तुरन्त खुले आम झगड़ा बखेड़ा आरम्भ कर दिया जाय। इन दोनों दलोंके अतिरिक्त लिथुआनिआ, रूसी पोलैण्ड तथा पश्चिमी रूसके दूसरे भागोंमें यहूदी साम्यवादी श्रमजीवियोंका एक और संगठन था जिसे बण्ड (Bund) कहते थे। रूसमें यहूदियोंकी बड़ी दुर्गति थी। वे लोग राजक्रान्ति उपस्थित करना चाहते थे इसलिये उनपर सरकारकी अवकृपा रहती थी और शहरों तथा गाँवोंमें वे ही महाजनी भी करते थे और कृपकों तथा श्रमजीवियोंसे बहुत निर्दयतापूर्वक अपनी असल और व्याजकी रकम वसूल करते थे इसलिये कृपक और श्रमजीवी भी उनसे घृणा करते थे। इस प्रकार वे दोनों ओरसे बुरे थे। इन्हीं दोनों बातोंको अच्छी तरह समझनेसे यह पता चल सकता है कि रूसमें यहूदियोंकी वास्तविक अवस्था कैसी थी। इसके अतिरिक्त स्वयं कृपक भी अपने हितोंकी रक्षा और वृद्धि आदिके लिये एक अलग आन्दोलन करते थे। यह आन्दोलन था तो और सब आन्दोलनोंसे अधिक शक्तिशाली परन्तु उसमें व्यवस्थाका बिलकुल अभाव था जिसके कारण वह बहुतसे अंशोंमें निरर्थक ही सिद्ध होता था।

सन् १९०१ में सेण्टपिटर्सबर्ग और मास्कोके मजदूरोंकी सहायतासे बहुतसे रूसी विद्यार्थियोंने अनेक उपद्रव किए थे। इन उपद्रवोंका कारण यह था कि रूसी सरकारने उन विद्यार्थियोंको सेनामें भेजना निश्चित किया था। परन्तु जब विद्यार्थियोंने अनेक स्थानोंपर

रक्तपात किए तव उन्हें सेनामें भेजनेका विचार छोड़ दिया गया, जिससे वह उपद्रव शान्त हो गया। परन्तु जार फिर भी सर्वसाधारणको राजनीतिक क्षेत्रमें अग्रसर न होने देना चाहता था और शासनकार्योंमें उन्हें सम्मिलित करनेका विरोधी था। इसके बाद जब रूस-जापान युद्ध हुआ तव लोगोंपर यह वात अच्छी तरह विदित हो गई कि एकतंत्री शासन वहुत ही त्रुटिपूर्ण है। वह न तो अच्छी सैनिक व्यवस्था कर सकता है और न परराष्ट्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंका अच्छा निर्णय कर सकता है। सन् १९०४ में जारकी सहमतिसे वहुतसे यहूदियोंकी हत्या हुई जिसके कारण रूसी शासकोंपर सारा युरोप बिगड़ खड़ा हुआ। रूसके छोटे छोटे जिलों आदिमें पहलेसे कुछ काउन्सिलें स्थापित थीं। दिसम्बर १९०४ में उन सव काउन्सिलोंकी एक वड़ी कांग्रेस हुई जिसमें १०४ प्रतिनिधि उपस्थित थे। उस कांग्रेसमें १०२ वोट इस बातके पक्षमें आए थे कि जारसे प्रार्थना की जाय कि वह राष्ट्रीय शासन-संस्थाका फिरसे नियमपूर्वक संगठन करे और उसमें प्रजाके प्रतिनिधियोंको भी यथेष्ट स्थान दे। जनवरी १९०५ में फादर गैपन नामक एक धर्म्माधिकारी १००००० रूसियोंको अपने साथ लेकर जारके निवासस्थानपर प्रजाके लिये राजनीतिक अधिकार माँगने गया था। उस दलपर सैनिकोंने गोलियाँ चलाई थीं जिनके कारण १००० आदमी हत और आहत हुए थे। फादर गैपन उस समय किसी प्रकार वचकर भाग निकला था परन्तु पीछेसे कुछ क्रान्तिकारियोंने यह समझकर कि वह अन्दर ही अन्दर राजपक्षसे मिला हुआ है उसकी हत्या कर डाली। वहुत सम्भव है कि वह उन्हीं विलक्षण लोगोंमेंसे हो जो पहले तो प्रजापक्ष और लोकमतवादके नेता वन बैठते है और पीछे राजपक्षमें मिल जाते हैं।

इसके कुछ ही दिनोंबाद पोलैण्डमें क्रान्तिकारक हड़तालें आरम्भ हुईं जो शीघ्र ही सारे रूसमें फैल गई। ओडेसामें पूरा पूरा विद्रोह मच गया था। कृष्णसागर (Black Sea) के बेड़ेके लोग बागी हो गए थे और एक युद्ध-जहाज जिसपर बहुतसे विद्रोही थे बहुत देरतक इधर उधर स्वतंत्रतापूर्वक घूमता रहा। उस जहाजपरके विद्रोहियोंने कोई उत्पात या हानि नहीं की थी और अन्तमें उसे रूमानियाके एक बन्दरमें छोड़ दिया था। अगस्त १९०५ में जारने शासनसंस्थाके संगठनकी आज्ञा दी और लोगोंको मत देनेका अधिकार दिया; परन्तु समस्त श्रमजीवी और बहुतसे दूसरे लोग मत देनेके उस अधिकारसे वंचित रक्खे गए थे जिसके कारण किसीका सन्तोष न हुआ। इसके बाद ही मास्कोमें प्रसिद्ध बड़ी हड़ताल हुई जो सारे रूसमें व्याप गई। कारखाने और रेलें आदि बिल्कुल बन्द हो गईं। देशके और विशेषतः सेण्टपिटर्सबर्गके सब काम बन्द हो गए। अवश्य ही वह हड़ताल सार्वदेशिक थी और उसमें न्यायालयोंके जजतक सम्मिलित हुए थे; परन्तु कुशल इतनी ही थी कि कहीं शान्ति भंग नहीं हुई और सैनिकोंको अपनी कार्रवाई करनेका कहीं अवसर न मिला। ३० अक्टूबर १९०५ को जारने घोषणा की कि हम डूमा (Duma) को स्थापित करके उसका अधिवेशन करनेके लिये तैयार हैं और उसके दो दिन बाद आज्ञा दी कि हड़ताल करनेवालोंको किसी प्रकारका दण्ड न दिया जायगा। परन्तु डूमाके इस आवाहन और अभय-वचनसे भी देशकी अव्यवस्थित प्रजामें शान्ति नहीं हुई। १९०६ के आरम्भमें ही रूसके भिन्न भिन्न स्थानोंमें सब मिलाकर कृषकोंके प्रायः १६०० छोटे मोटे विद्रोह हुए थे जिनका दमन बड़ी ही निर्दयतासे किया गया था।

में पहली डूमाका संगठन और अधिवेशन हुआ परन्तु दिनोंमें ही उसकी आयु पूरी हो गई। साम्यवादी दल तो सम्मिलित नहीं हुआ था परन्तु १०७ कृषकों और श्रमजीवियों का एक वर्ग उस डूमाके लिये अवश्य चुना गया था। जनवरी १९०७ में जब दोबारा डूमाका चुनाव हुआ तब उसमें साम्यलोकमतवादी भी सम्मिलित हुए और क्रान्तिकारक साम्यवादी भी। उस बार डूमाके ५२४ सदस्योंमेंसे १३२ साम्यवादी सदस्य चुने गए थे। इस घटनासे इस बातका पता चलता है कि जो साम्यवाद इतने दिनोंसे बदनाम हो रहा है और जिसको दबानेके लिये इतने प्रयत्न हो रहे हैं उस साम्यवादका उस समय रूसमें कितना जोर और प्रभाव था। यह डूमा भी ५–६ महीनेसे अधिक न रह सकी। जूनमें ही प्रधान मंत्रीने जल तथा स्थलसेनामें विद्रोह फैलानेके अभियोगमें डूमाके १६ साम्यवादी सदस्योंको गिरफ्तार करनेका प्रस्ताव किया। इसके अतिरिक्त ५५ दूसरे साम्यवादियोंपर भी यही अभियोग लगाया गया था। इस प्रस्तावके उपरान्त ही दूसरी डूमा भी तोड़ दी गई और डूमाकी सहमतिके बिना ही, नियमके विरुद्ध, चुनावसम्बन्धी एक नया कानून बनाया गया। मत देनेका अधिकार प्रायः बड़े बड़े जमीन्दारों और धनवानोंतकके लिये ही मर्यादित कर दिया गया और डूमाके सदस्योंकी संख्या ५२४ से घटाकर ४४२ कर दी गई। १५ नवम्बर १९०७ को जिस तीसरी डूमाका अधिवेशन हुआ था उसमें साम्यवादियों और श्रमजीवी दलके केवल १४–१४ सदस्य चुने गए थे। इसके उपरान्त फिर दमननीतिका आरम्भ हुआ। सैकड़ों समाचारपत्रसम्पादक देशसे निर्वासित करके साइबेरिया भेज दिए गए। दूसरी डूमाके २६ साम्यवादी सदस्योंको सपरिश्रम कारागारका

दण्ड मिला। पहली डूमाके १६३ सदस्योंको ३–३ महीनेकी सजा हुई और सर्वसाधारणके स्वेच्छापूर्वक दिए हुए धनसे स्थापित पोलैण्डके ६०० स्कूल बन्द कर दिए गए। पहली डूमाके जिन १६३ सदस्योंको तीन तीन महीनेकी सजा हुई थी उनके राजनीतिक अधिकार भी छीन लिए गए थे। उन सब लोगोंका अपराध यह था कि उन्होंने सन् १९०५ में उस मेमोरियलपर हस्ताक्षर किए थे जिसमें सर्वसाधारणसे यह कहा गया था कि सरकारने जो पहली डूमा तोड़ दी है उसके जवाबमें तुम सब लोग उसका सक्रिय प्रतिरोध करो। इसके अतिरिक्त सन् १९०७ में ६२७ आदमियोंको फाँसी भी दी गई थी। सन् १९०८ में भी यह दमननीति बराबर प्रचलित रही। उस वर्ष राजनीतिक अपराधोंके लिये ७०००० आदमी देश-निर्वासित किए गए थे और ७८२ आदमी फाँसीपर चढ़ाए गए थे।

सन् १९०९ में एक बड़ा ही विकट रहस्य खुला। आजव नामक एक व्यक्ति था जो क्रान्तिकारकोंका नेता बना हुआ था, परन्तु वह वास्तवमें पुलिसका गुप्तचर था। पुलिसको अपनी कार्रवाई दिखलाने और दमननीतिको बराबर प्रचलित रहनेका अवसर देनेके लिये गत ८ वर्षोंसे, वह सारे रूसमें क्रान्तिकारकोंसे अनेक प्रकारके उत्पात, रक्तपात और हत्याएँ आदि कराया करता था और पीछेसे क्रान्तिकारक दलके अच्छे अच्छे आदमियोंको गिरफ्तार करा दिया करता था। उसने दो बहुत बड़े रूसी कर्म्मचारियोंकी हत्या करानेका भी प्रबन्ध किया था। उसने सोचा था कि ठीक हत्याके समय मैं हत्याकारियोंको गिरफ्तार करा दूँगा और हत्या न होने दूँगा; परन्तु वह ठीक समयपर अपनी कार्रवाई न कर सका था जिसके कारण वे दोनों हत्याएँ हो गई थीं। इन दोनोंमेंसे एक तो रूसका राजमंत्री वानप्लेव था जो जु-

आर्थिक स्वतंत्रतासे है तथापि अन्यान्य देशोंके साम्यवादियोंकी भाँति रूसके साम्यवादी भी राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिये अनेक प्रकारके कष्ट उठाते रहे। राजनीतिक अधिकारोंकी प्राप्तिके लिये युरोपके अन्यान्य देशोंमें भी इसी प्रकारके बहुतसे झगड़े होते थे और अबतक होते हैं। इंग्लैण्डकी स्त्रियाँ मताधिकार चाहती थीं। बेल्जियन लोग चाहते थे कि प्रत्येक मनुष्यको एक वोट देनेका अधिकार मिले। जर्मन लोग सामरिक व्यय तथा देशरक्षाके लिये झगड़ते थे। डेन लोग मताधिकारसम्बन्धी नियमोंमें परिवर्त्तन और सुधार कराना चाहते थे। अमेरिकनोंकी माँग भी प्रायः कुछ ऐसी ही थी। इनमेंसे बहुतसे लोगोंकी बहुतसी माँगें अबतक पूरी भी हो चुकी हैं और शेष माँगोंके पूर्ण होनेकी बहुत कुछ आशा भी है। तात्पर्य यह कि संसारके प्रायः सभी देशोंमें साम्यवादी लोग लोकमतमूलक साम्यवादके लिये नहीं बल्कि साम्यलोकमतवादके लिये झगड़ते थे और झगड़ते हैं, परन्तु अभाग्यवश आरम्भिक डूमाओंके साम्यवादियोंने इस बातको अच्छी तरह नहीं समझा था। यदि वे लोग लोकमतवादियोंके दलकी दृढ़तापूर्वक सहायता करते तो उनका बहुत कुछ लाभ हो सकता था। रूसमें पोल, लेट, फिन और जाजियन आदि अनेक ऐसी जातियाँ थीं जो रूसी साम्राज्य और उसकी प्रतिनिधि सभाके प्रधान अंग थीं। परन्तु बहुत दिनोंतक रूसमें कोई ऐसा सर्वप्रिय नेता नहीं उत्पन्न हुआ जो इन भिन्न भिन्न जातियों और सुधारकोंके भिन्न भिन्न दलोंकी समान सहानुभूति सम्पादित करता। किसी अच्छे नेताके अभावके कारण ही रूसके अनेक सच्चे देशहितैषी और स्वतंत्रताप्रेमी युवकोंको अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ सहनी पड़ी थीं। हम ऊपर कह आए हैं कि थोड़े ही दिनोंमें रूसके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें

कृपकोंके छोटे मोटे सब मिलाकर कोई १६०० उपद्रव हुए थे। इन उपद्रवोंमें ५ वर्षोंमें २११८३ आदमी मारे गए थे और ३१११७ आदमी घायल हुए थे। बाल्टिक प्रान्तोंमें १ फर्वरी १९०६ तक १४ महीनोंमें १८ आदमियोंको फाँसी हुई थी, ६२१ आदमियोंको गोली मार दी गई थी और ३२० आदमी लड़ने भिड़नेमें मारे गए थे। सन् १९०६ से १९१० तक ५ वर्षोंमें राजनीतिक अपराधोंके लिये ५७३५ आदमियोंको फाँसीकी आज्ञा हुई थी जिनमेंसे ३७४१ आदमियोंको सचमुच फाँसी हो भी गई थी। उन्हीं ५ वर्षोंमें राजनीतिक अपराधोंके लिये १९१४५ मनुष्य दण्डित हुए थे। इस प्रकार थोड़ेसे समयमें रूसी प्रजाने इतनी हानि सहकर और इतने कष्ट उठाकर थोड़ेसे राजनीतिक अधिकार प्राप्त किए थे। इन अधिकारोंका भोग भी उसने बहुत ही थोड़े दिनोंतक किया। इसके उपरान्त सन् १९१४ में सुप्रसिद्ध युरोपीय महायुद्ध छिड़ गया। उस महायुद्धके समय रूसमें जो भीषण क्रान्ति हुई उसका विवरण आगे चलकर ' बोल्शेविज्म ' नामक प्रकरणमें दिया जायगा।

१ अराजकतावाद और व्यापारसंघवाद ।



यद्यपि अराजकतावादका आरम्भ प्राउड्हनने ही किया था तथापि उसका पूरा पूरा विकास रूसी विचारशीलोंके ही द्वारा हुआ था । इस बातका सबसे बड़ा प्रचारक माइकेल बकुनिन था । बकुनिनका जन्म सन् १८१४ में रूसके दूर प्रान्तमें एक बहुत ही उच्च तथा सम्पन्न रूस कुलमें हुआ था । युवावस्थामें उसने तोपखानेके अफसरकी हैसियतसे सेनाविभागमें प्रवेश किया था । उन दिनों सेनाका वह विभाग बहुत ही श्रेष्ठ समझा जाता था और उसमें केवल बहुत ही चुने हुए लोग लिए जाते थे । बकुनिन जब पोलैण्डमें अपने उक्त पदपर काम करता था, तब उसने वहाँ रूसी अनियंत्रित शासनके अनेक ऐसे भीषण अत्याचार देखे थे जिनके कारण उसके हृदयपर गहरी चोट पहुँची थी । इसीलिये उसने अपने सैनिक पदसे इस्तीफा दे दिया । तबसे वह भिन्न भिन्न विषयों और विशेषतः राजनीतिक और सामाजिक विषयोंका अध्ययन करने लगा । सन् १८४७ में वह पेरिस गया, वहीं प्राउड्हनसे उससे भेंट हुई थीं जिसके विचारोंका उसपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था ।

सन् १८४८ में जब सारे युरोपमें क्रान्तिकारक आन्दोलन आरम्भ हुआ तब बकुनिनको अपने क्रान्तिकारक विचारोंके अनुसार कार्य

करनेका बहुत अच्छा अवसर मिला। १८४९ में ड्रेस्डेन नगरमें जो उपद्रव हुए थे उनके साथ उसका विशेष सम्बन्ध था। परन्तु सरकारी कर्मचारियों और पुलिसवालोंने क्रान्तिकारकोंको बेतरह दबाया था जिसका फल बकुनिनको भी बहुत कुछ भोगना पड़ा था। मेजिनीके सम्बन्धमें उसने जो ग्रन्थ लिखा है उसमें उसने स्वयं अपने विषयमें लिखा है कि प्रायः आठ वर्षोंतक मुझे सेक्सनी, आस्ट्रिया और रूसके भिन्न भिन्न किलोंमें बन्द रहना पड़ा था और अन्तमें आजन्म साईबेरियामें रहनेके लिये देशसे निर्वासित कर दिया गया था। सौभाग्यवश साइबेरियाका तत्कालीन गवर्नर उसका रिश्तेदार निकल आया जिसके कारण वह बड़े आरामसे स्वतंत्रतापूर्वक अपना समय बिताने लगा। चार वर्ष तक साइबेरियामें रहनेके उपरान्त वह किसी प्रकार वहाँसे भाग निकला और अनेक कठिनाइयाँ तथा विपत्तियाँ सहता हुआ कैलिफोर्निया जा पहुँचा और वहाँसे सन् १८६० में लन्दन चला गया।

सन् १८४८ की क्रान्तिके उपरान्त सारे युरोपमें बहुत वर्षोंतक कठोर दमन-नीतिका अवलम्बन होता रहा था। इतने समयतक बकुनिन बराबर या तो जेलमें और या साइबेरियामें था। जब वह लन्दन पहुँचा तब उसने देखा कि अब लोग फिर सामाजिक उन्नतिके लिये आन्दोलन करने लग गए हैं। तबसे उसने अपने देशवासियोंमें फिरसे क्रान्तिकारक और अराजकतापूर्ण विचारोंके प्रचारका आरम्भ कर दिया। अपने जीवनके अन्तिम वर्ष उसने स्वीजरलैण्डमें बिताए थे, वहाँसे वह सार्वभौम अराजकतावादका बहुत जोरोंके साथ प्रचार किया करता था। सन् १८६९ में उसने एक साम्यलोकमतवादी संघ स्थापित किया था जो उसी वर्ष टूट गया तब वह सार्वभौम महासभामें सम्मि-

लित हुआ। सन् १८७० में उसने फ्रान्सके लायन्स नगरमें कुछ विद्रोह कराना चाहा था परन्तु उसमें उसे कोई सफलता नहीं हुई। हेग नगरवाली सार्वभौम महासभामें मार्क्सके दलके लोगोंने बहुमतसे उसे निकाल बाहर किया था। अपने अन्तिम दिनोंमें वह बहुत अधिक बीमार रहा करता था जिसके कारण वह विशेष कार्य न कर सकता था। उसकी मृत्यु १८७६ में बर्न नगरमें हुई थी।

बकुनिनने 'ईश्वर और राष्ट्र' (God and the State) नामक एक ग्रन्थ लिखा था। उसकी भूमिका उसके दो मित्रोंने लिखी थी। उस भूमिकामें उन लोगोंने बकुनिनके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा था वह संक्षेपमें इस प्रकार है:—

"बकुनिनके शत्रु और मित्र सभी लोग यह बात जानते हैं कि वह एक बहुत अच्छा विचारशील मनुष्य था और उसमें अध्यवसाय और दृढनिश्चय बहुत अधिक था। वे लोग यह भी जानते हैं कि जिस सम्पत्ति या मानमर्यादा आदिको अधिकांश लोग अपनी हीनताके कारण बहुत अधिक चाहते हैं उस सम्पत्ति और मानमर्यादाको वह कितनी घृणाकी दृष्टिसे देखता था। वह रूसी साम्राज्यके एक बहुत ही उच्च, कुलीन और प्रतिष्ठित घरानेमें उत्पन्न हुआ था और वह ऐसे क्रान्तिकारकोंके दलमें सम्मिलित हो गया था जो जाति और वर्ग आदिके बखेड़ोंसे अपने आपको दूर रखना चाहते थे। इस प्रकार उसने स्वयं अपने सुखोंपर लात मारी थी। उन लोगोंके साथ उसने अपने जीवन-संग्राममें ऐसे ऐसे भयंकर कष्ट सहे थे जो किसी काममें अपना तन मन और धन अर्पण कर देनेवाले लोगोंको सहने पड़ते हैं। रूसमें विद्यार्थियों, जर्मनीमें ड्रेस्डेनके विद्रोहियों, साइबेरियामें अपने भाई देशनिर्वासितों और अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रान्स, स्वीजरलैण्ड तथा

इटलीमें भले आदमियों और समझदारोंपर उसका बहुत अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव था। उसके विचार सदा मौलिक होते थे, उसका भाषण बहुत ही सुन्दर और प्रभावशाली होता था और काम करनेसे कभी वह थकता न था। इसके अतिरिक्त उसका शारीरिक संगठन और रूपरंग भी बहुत अच्छा था। इन्हीं सब बातोंके कारण वह सभी क्रान्तिकारक साम्यवादियोंके दलोंमें सम्मिलित हो जाता था; और जो लोग पहले आदरपूर्वक उसे अपने दलमें सम्मिलित करते थे वे ही जब विचारों और कार्यप्रणालीसम्बन्धी मतभेदके कारण अन्तमें उसे अपने दलसे अलग कर देते थे उनपर भी उसकी कार्यकुशलता आदिका सिक्का जम जाता था। उसके छपे हुए लेख तो बहुत ही थोड़े हैं परन्तु वह रात रात भर जागकर बड़े बड़े क्रान्तिकारकोंको जो पत्रादि लिखा करता था वे बहुत अधिक हैं।"

बकुनिनने जिस अराजकतावादका प्रचार किया था उसकी नाशकता बहुत ही स्पष्ट और व्यापक है। उसका साम्यवाद क्रान्तिमूलक है और उसका उद्देश्य समस्त साध्य उपायोंसे बाह्य शासक शक्तियोंको नाश करना है। बकुनिन ईश्वरसे लेकर छोटीसे छोटी शक्तियाँ और समस्त आदर्श व्यवस्थाओंको अस्वीकृत करता है। वह कहता है कि सर्वसाधारण पर न तो किसी राजाका और न सार्वजनिक मतका किसी प्रकारका शासन होना चाहिए। उसका मत है कि मनुष्यकी स्वतंत्रता केवल उसी दशामें रह सकती है जब कि वह प्राकृतिक नियमोंका पालन करे, क्योंकि प्रकृतिके इन नियमोंको वह स्वयं ही स्वीकृत करता है। व्यक्तिगत अथवा ईश्वरीय किसी कारणसे और किसी बाहरी अथवा पराई इच्छासे वह उन नियमोंको स्वीकृत करनेके लिये बाध्य नहीं होता। स्वतंत्रताकी सारी समस्याकी मीमांसा केवल

इसी प्रकार हो सकती है कि विज्ञानकी सहायतासे प्राकृतिक नियमों-का अन्वेषण किया जाय और सारे संसारके लोगोंको उनका ज्ञान कराया जाय। इस प्रकार लोग अपने लिये जिन प्राकृतिक नियमोंको स्वीकृत करेंगे उनका पालन किए बिना वे रह ही न सकेंगे। क्योंकि वही नियम स्वयं उनकी प्रकृतिके नियम होंगे और तब सब प्रकारकी राजनीतिक व्यवस्थाओं शासन और नियमन आदिकी आवश्यकता बिलकुल नष्ट हो जायगी।

इन सब बातोंसे यह सिद्ध होता है कि बकुनिन इस बातको कभी स्वीकृत नहीं कर सकता कि किसी व्यक्ति अथवा जातिको औरोंकी अपेक्षा कुछ अधिक अधिकार और सुभीते दिए जायँ। वह स्वयं कहता है कि जब कभी किसीको कुछ विशिष्ट अधिकार दिए जाते हैं तब उनसे मनुष्यकी बुद्धि और विवेककी सदा हत्या ही होती है। जिस मनुष्यको कोई राजनीतिक अथवा आर्थिक सुभीता होता है वह बुद्धि और विवेकसे रहित होता है। इसीलिये चाहे सार्वदेशिक मताधिकारके अनुसार हीं क्यों न हो किसी प्रकारका शासन, नियमन, प्रभुत्व अथवा प्रभाव न होना चाहिए। क्योंकि उस दशामें बहुमतका सदा दूसरोंपर प्रभुत्व बना रहेगा और उनके धन अथवा अधिकारोंका अपहरण होता रहेगा। उसने जो सार्वभौम साम्यलोमतवादी संघ (International Social Democratic Alliance) स्थापित किया था, उसके प्रोग्रामकी कुछ बातोंसे उस विलक्षण आन्दोलकके विचारोंका पूरा पूरा पता लग जाता है। उस संघने स्पष्ट शब्दोंमें अपने आपको नास्तिक कह दिया था। उसका उद्देश्य था कि सब प्रकारके धर्म्मोंका नाश कर दिया जाय, लोगोंका विश्वास अथवा धर्म्म ईश्वरीय नहीं बल्कि वैज्ञानिक हो, ईश्वरीय अथवा धार्मिक न्यायके बदले

मानव-न्यायकी स्थापना हो और सब प्रकारकी विवाहप्रथा तोड़ दी जाय । राजनीतिक अथवा आर्थिक दृष्टिसे बननेवाली सब प्रकारकी जातियाँ और वर्ग तोड़ दिए जायँ, प्रत्येक मनुष्य चाहे वह स्त्री हो या पुरुष सामाजिक दृष्टिसे एक बराबर हो, उत्तराधिकारकी प्रथा नष्ट कर दी जाय जिसमें भविष्यमें प्रत्येक मनुष्य श्रमकी उपजसे समान लाभ उठा सके । भूमि, श्रमके साधन तथा सब प्रकारकी पूँजी सारे समाजकी सार्वजनिक सम्पत्ति हो जाय और उनका उपयोग केवल श्रमजीवी कृषकों और शिल्पियोंकी समितियाँ ही कर सकें । उसका उद्देश्य था कि भविष्यमें सारे संसारके श्रमजीवी मिलकर एक हो जायँ और इस प्रकार सामाजिक समस्याकी पूरी पूरी और अन्तिम मीमांसा हो जाय । जातीय अथवा देशहितैषिताकी दृष्टिसे जिन नीतियोंका अवलम्बन किया जाता है वे सब उसकी दृष्टिमें निन्दनीय थीं। उसका यह भी उद्देश्य था कि पूर्ण स्वतंत्रताके सिद्धान्तपर समस्त स्थानिक समितियोंका एक सार्वभौम संघ स्थापित हो ।

बकुनिनने अपने इन विलक्षण सिद्धान्तोंका पूरा पूरा प्रचार करनेके लिये जो क्रान्तिकारक उपाय निश्चित किए थे वे भी उन सिद्धान्तोंके लिये बहुत ही उपयुक्त थे । भविष्यमें उसके उद्देश्योंकी सिद्धिमें जो राजनीतिक और सामाजिक संस्थाएँ बाधक हो सकती थीं उन सबको वह चटपट नष्ट कर देना चाहता था । उसने अपने क्रान्तिकारक सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें जो प्रश्नोत्तरी बनाई थी उसमें नाशनका यह भाव अपनी चरम सीमातक पहुँच गया है । उस प्रश्नोत्तरीमें जिन बातोंका वर्णन किया गया है वे उसके दूसरे लेखोंके बिलकुल विरुद्ध पड़ती हैं । कुछ लोगोंको उस प्रश्नोत्तरीके बकुनिन द्वारा लिखित होनेमें भी सन्देह है । सम्भव है कि वह प्रश्नोत्तरी बकुनिनकी तैयार

की हुई न हो परन्तु उसके अनुयायियोंकी लिखी हुई अवश्य है और इस दृष्टिसे ध्यान देने योग्य भी है। उसमें क्रान्तिका जो भाव है वह चरम सीमातक पहुँचा हुआ है। उससे बढ़कर और कोई क्रान्ति हो ही नहीं सकती। प्रश्नोत्तरीका अभिप्राय है कि क्रान्तिकारक ऐसा होना चाहिए जो किसी प्रकारके व्यक्तिगत हितों अथवा भावोंको बिलकुल रहने ही न दे और धर्म, नीति अथवा देशहितैषिताका बिलकुल ही अन्त कर दे। उसका उद्देश्य सदा यही होना चाहिए कि समस्त साध्य उपायोंसे प्रस्तुत समाजको बिलकुल उलट दिया जाय। उसका काम निर्दयतापूर्वक समस्त प्रस्तुत संगठनोंको नष्ट कर देना है। भविष्यमें जो व्यवस्था होगी वह लोगोंके कार्यों और भावोंके अनुसार होगी, परन्तु उसका निर्णय आनेवाली पीढ़ियाँ स्वयं ही कर लेंगी। *भविष्यके पुनर्घटनके सम्बन्धमें बकुनिन केवल यही बतलाता है कि* रूसमें जिस प्रकारके कम्यून या वर्ग हैं उसी प्रकारकी स्वतंत्र समितियोंका एक स्वतंत्र संघ स्थापित किया जाय।

बकुनिनके विचारोंका विशेप प्रभाव दक्षिणी युरोपके साम्यवाद-सम्बन्धी आन्दोलनपर पड़ा था। १८७३ में स्पेन देशमें जो महत्त्व-पूर्ण विद्रोह हुए थे वे सब उसीके कारण हुए थे। पीछेसे इटालीमें जो क्रान्तिकारक आन्दोलन हुआ था उसपर उसका प्रभाव मेजिनीके प्रभावसे भी बढ़ा हुआ था। क्योंकि अन्यान्य देशोंकी तरह वहाँ भी बड़े बड़े विचारवानोंके मनमें शुद्ध राजनीतिक हितकी अपेक्षा सामाजिक हितका विचार बहुत अधिक था। इधर हालमें फ्रान्स और फ्रान्सीसी स्वीजरलैण्डमें जो कुछ साम्यवादसम्बन्धी काम हुआ है उसपर भी बकुनिनके सिद्धान्तोंका बहुत कुछ प्रभाव था। १८७९ में लायन्स नगर और उसके आसपासके शिल्पीय केन्द्रोंमें अराजक-

ताका कुछ भाव फैला था। १८८२ में खानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंने भी कुछ उपद्रव किए थे जिनकी ओर पुलिस और सरकारका ध्यान आकृष्ट हुआ था। इसका परिणाम यह हुआ था कि ऐसे ६६ आदमी पकड़े गए थे जिनपर अराजक सिद्धान्तोंवाली किसी सार्वभौम सभामें सम्मिलित होनेका अभियोग लगाया गया था। उन अभियुक्तोंमें प्रिन्स क्रोपाट्किन भी था। वह, प्रिन्स क्रोपाट्किन, फ्रान्सका प्रसिद्ध भूगोलज्ञ एलिसी रेक्लस और रूसी लेवरफ, ये सब अराजकतावादके आधुनिक बड़े बड़े प्रचारकोंमेंसे हैं। इनमेंसे प्रिन्स क्रोपाट्किन एक ऐसा व्यक्ति है जिसने युरोपकी आधुनिक क्रान्तिमें बहुत काम किया है। बकुनिनकी तरह उसका जन्म भी रूसके एक बहुत ही उच्च और प्रतिष्ठित कुलमें हुआ था। उसके मित्र तो प्रायः यहाँतक कहा करते थे कि जिस राजकुलका अभी हालतक रूस देशपर शासन था उसकी अपेक्षा क्रोपाट्किनका कुल शासन-कार्यके लिए विशेष अधिकारी था। क्रोपाट्किन सरीखे सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक, सुशील और दयालु व्यक्तिके लिये एक ऐसे नाशक दलमें, जिसका अब अन्त हो गया है, सम्मिलित होना बहुत ही आश्चर्यजनक है। १८८३ में लायन्स नगरमें उसपर एक मुकदमा चला था। उस मुकदमेंमें उसने अपने सबन्धमें जो बातें बतलाई थीं उनसे उसके जीवनचरित्रके सम्बन्धमें बहुत सी बातें मालूम होती हैं।

उसका पिता बहुतसे गुलामोंका मालिक था इसलिये वह बाल्यावस्थासे ही अनेक ऐसे दृश्य देखा करता था जिनका वर्णन अमेरिकन औपन्यासिकाने Uncle Tom's Cabin (टाम काकाकी कुटिया) में किया है। दासोंके साथ जो निर्दयतापूर्ण व्यवहार किए जाते थे उन्हें देखकर उसके हृदयमें उन लोगोंके प्रति दया और प्रेमका भाव

बहुत दृढ़ हो गया था। सोलह वर्षकी अवस्थामें उसे राजकीय परि-सेवकों (Pages) की शिक्षा मिलने लगी। अपने घरमें रहकर तो उसने दीनों और अनाथोंके साथ प्रेम करना सीखा था और राजदरबारमें रहकर उसने बड़े आदमियोंके प्रति अत्यन्त घृणा करना सीखा। उसने यह भी समझ लिया कि रूसी दमनकारक सरकारसे सेना और शासन आदि कार्योंमें किसी प्रकारके सुधारकी आशा रखना बिलकुल व्यर्थ है। इसके बाद कुछ दिनोंतक वह वैज्ञानिक कार्योंमें लगा रहा; परन्तु जब साम्यवादसम्बन्धी सामाजिक आन्दोलन आरंभ हुआ तब वह उसमें सम्मिलित हो गया। जब नए दलके लोगोंने सरकारसे कुछ स्वतंत्रताकी प्रार्थना की तब उस दलके लोग जेल भेज दिए गए जहाँ उनके साथ बहुत ही बुरा व्यवहार हुआ। जिस जेलमें प्रिन्स क्रोपाट्किन रक्खा गया था उसमें ९ आदमी पागल हो गए थे और ११ ने आत्महत्या कर ली थी। जेलमें क्रोपाट्किन बहुत सख्त बीमार हो गया और अस्पताल पहुँचाया गया। वहीं अस्पतालसे वह किसी तरह भाग निकला। वहाँसे भागनेपर उसे स्वीजरलैण्डमें शरण मिली। स्वीजरलैण्डमें घड़ियोंके बड़े बड़े कारखानोंमें उसने श्रमजीवियोंको अनेक प्रकारके कष्ट और दुर्दशाएँ भोगते हुए देखा। सामाजिक राजनीतिक दोषोंके कारण सभी जगह उसे इसी प्रकारके कष्ट दिखलाई दिए। ऐसी दशामें यदि उसने उन कष्टोंको दूर करनेके लिये समाजमें पूरी क्रान्ति करना ही उत्तम समझा तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि १८८३ में लायन्स नगरमें प्रिन्स क्रोपाट्किन और दूसरे कई अराजकों पर एक बड़ा मुकदमा चला था। उस मुकदमेकी मिसिलमें बहुतसी ऐसी बातें हैं जो साम्यवाद और अराजकतावादके इतिहासकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उस

मिसिलसे यह बात बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि अराजकवादकी उत्पत्ति किन कारणोंसे हुई और उसके उद्देश्य क्या थे। इस मुकदमेमें अभियुक्तने अपना जो लिखा हुआ बयान पेश किया उसमें उसने अपने विचारों और सिद्धान्तोंका पूरा पूरा वर्णन कर दिया था। उस वर्णनसे अराजकोंके पक्षकी बहुतसी बातें माल्म होती हैं, इसलिये हम यहाँ उसका सारांश दे देना उपयुक्त समझते हैं। उस बयानसे माल्म होता है कि अराजकोंका उद्देश्य यह है कि समस्त मानव-आवश्यकताओं और आकांक्षाओंको पूरी तरहसे पूर्ण करनेके लिये जिस स्वतंत्रताकी आवश्यकता होती है वही पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त की जाय। इस स्वतंत्रता-प्राप्तिमें केवल दो ही बातोंका ध्यान रखना आवश्यक है। एक तो कोई ऐसी बात न हो जो प्राकृतिक दृष्टिसे असम्भव हो और दूसरे यह कि उसमें पास पड़ोसमें रहनेवालोंकी आवश्यकताओं और सुभीतोंका पूरा पूरा ध्यान रक्खा जाय। उस पूर्ण स्वतंत्रतामें इन दो बातोंके अतिरिक्त और कोई तीसरी बात बाधक न हो। अराजकोंका यह सिद्धान्त ही है कि सब प्रकारका शासन और अधिकारका अन्त कर दिया जाय और कानून अथवा व्यवस्थाके विचारसे जो शासन किया जाता है उसके बदलेमें सब लोगोंको स्वतंतापूर्वक पारस्परिक सम्बन्ध स्थिर करनेका अधिकार हो; और आवश्यकतानुसार समय समयपर सम्बन्धकी शर्तोंमें परिवर्त्तन और परिवर्द्धन भी होता रहे। लेकिन जिस समाजमें कुछ थोड़ेसे लोग सारी सम्पत्ति और पूँजीपर अधिकार कर बैठते हैं उस समाजमें किसी प्रकारकी स्वतंत्रता हो ही नहीं सकती। पूँजी समस्त मानवजातिका समान उत्तराधिकार है। क्योंकि उसे संग्रह करनेमें समस्त पिछली और वर्त्तमान पीढ़ियोंने मिलकर श्रम किया है। इसलिये उस पूँजीपर सबका समान अधिकार

होना चाहिए। न तो उस पूँजीसे किसीको वंचित रखना चाहिए और न किसीको ऐसा अधिकार देना चाहिए कि वह उसका कुछ अंश केवल अपने ही अधिकारमें रखकर दूसरोंको उसकी प्राप्तिसे वंचित रक्खे। तात्पर्य यह कि अराजक लोग पूर्ण स्वतंत्रताकी प्राप्तिके लिये, पूर्ण समानताकी स्थापना करना चाहते हैं। प्रत्येक व्यक्तिसे उसकी योग्यता और शक्तिके अनुसार काम लिया जाय और प्रत्येक व्यक्तिको उसकी आवश्यकताओंके अनुसार धन और सामग्री दी जाय। वे लोग चाहते हैं कि सब लोगोंको पेटभर भोजन मिले, सबको पूरी शिक्षा मिले और सबसे काम लिया जाय; और साथ ही सबको पूरी स्वतंत्रता दी जाय और सबके साथ पूर्ण न्यायका व्यवहार किया जाय।

इस मुकदमेके एक अभियुक्तने यह भी कहा था कि जो सरकार सार्वदेशिक मताधिकारके सिद्धान्तोंपर संगठित होती है वह भी दरिद्रोंके कष्ट पूरी तरहसे दूर नहीं कर सकती। फ्रान्समें सार्वदेशिक मताधिकार है और वहाँ प्रायः ८० लाख आदमी चुनावमें सम्मिलित होते हैं परन्तु उनमेंसे केवल ४ ही लाख ऐसे होते हैं जो स्वतंत्रतापूर्वक अपनी सम्मति दे सकें। ऐसी अवस्थामें दरिद्रवर्गकी दिनपर दिन बढ़नेवाली दुर्दशाको देखकर ही हम लोग चाहते हैं कि सब लोग मिलकर विद्रोह और अराजकता करें।

इस मुकदमेकी अपीलके समय एमिलि गाटियर नामक एक व्यक्तिने अपने पक्षके समर्थनमें जो बातें कही थीं वे और भी अद्भुत थीं। सरकारी वकीलने कहा था कि गाटियर एक बहुत विद्वान् और बुद्धिमान् वकील है और उसकी भाषण शक्ति बहुत अच्छी है, परन्तु वह दूसरोंके बहकानेमें आकर अराजक दलमें सम्मिलित हो गया है और इस प्रकार फ्रान्समें अराजकतावादका सबसे बड़ा प्रचारक बन गया

है। उसकी अवस्था केवल २९ वर्षकी थी। उसने अपने पक्षके समर्थनमें एक बहुत ही ओजस्वी भाषण किया था। उस भाषणमें उसने बतलाया था कि विद्रोहियों और अराजकोंके दलमें मेरे सम्मिलित होनेका मुख्य कारण यह है कि मैं अदालतोंमें नित्य देखा करता था कि बड़े बड़े पूँजीदारोंके फेरमें पड़कर लोग किस प्रकार कर्जदार और दिवालिए हो जाते हैं और कितने कष्ट भोगते हैं। कहते हैं कि जब-जब सेन्ट बारथोलोम्यूके कत्लेआमकी बरसी होती थी तबतब वाल्टे-अरको बुखार आ जाता था। ठीक उसी प्रकार जब जब कृषकों आदिसे लगान और कर्जदारोंसे किस्त लेनेकी तारीखें आतीं थीं तब तब गाटियरको भी मारे क्रोधके बुखार चढ़ आता था।

अराजकतावादके सिद्धान्त बहुत ही सीधे हैं। उनके विषयमें थोड़ेमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वे किसी प्रकारके बाहरी अधिकार या शासन अथवा जमीन और पूँजीपर होनेवाले व्यक्तिगत अधिकारको स्वीकृत नहीं करते। उन सिद्धान्तोंकी मनशा है कि सब लोग स्वतंत्रतापूर्वक और अपनी इच्छानुसार पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करें। कृषि और शिल्प आदिके लिये स्वतंत्र समितियाँ स्थापित हों और स्वतंत्रतापूर्वक पारस्परिक सम्बन्ध स्थिर करनेके लिये लोग अपने संघ स्थापित करें, अर्थात् अराजकोंका मत यह है कि स्वतंत्र संघ स्थापित करके समाजका फिरसे संगठन किया जाय।

अराजकतावादकी सृष्टि कुछ तो मानव-विचारकी भिन्नता और उग्रताके कारण और कुछ परिस्थितियोंके कारण हुई थी। साम्यवादकी तरह अराजकतावाद भी यही चाहता था कि आर्थिक संसारमें पूरी पूरी क्रान्ति हो। उन्नीसवीं शताब्दीमें जो बहुतसे आन्दोलन और दुर्घटनाएँ हुई थीं उनका कारण यही था कि साम्य और अराजकता-

वाद दोनोंने मिलकर लोगोंके पुराने विचार और भाव बदल दिए थे। यहाँतक तो साम्यवाद और अराजकतावादमें कोई विरोध नहीं पड़ता, परन्तु जहाँ साम्यवाद समाजके पुनः संगठनका प्रश्न उपस्थित करता है वहीं अराजकतावाद उससे अलग हो जाता है। आरम्भमें बहुतसे ऐसे विचारशील और विद्वान् भी थे जो अराजकतावाद और साम्यवादमें कोई अन्तर ही न समझते थे। बात यह थी कि जिन दिनों साम्यवादी लोग राजनीतिक शक्तियोंका विरोध करते थे उन दिनों अराजक दलके लोग भी अपने उद्देश्योंकी एकताके कारण साम्यवादियोंका पूरा पूरा साथ देते थे, परन्तु जब राजनीतिक शक्तियोंका विरोध बन्द हो गया तब अराजकोंने साम्यवादियोंका साथ भी छोड़ दिया। यह तो हुई विचारभेदके कारण अराजकतावादकी सृष्टिकी बात; अब परिस्थितिके कारण होनेवाली अराजकतावादकी सृष्टिको लीजिए। अराजकतावादके दो सिद्धान्त मुख्य हैं—एक तो यह कि शासन मात्र बुरा है और दूसरे यह कि शिल्प आदिका काम बिना किसी प्रकारके संगठनके भी बहुत अच्छी तरह चल सकता है। इन्हीं कारणोंसे अराजकतावादका प्रचार केवल ऐसे ही देशोंमें हो सकता है जहाँके बड़े बड़े समझदार भी सरकारको अपना शत्रु समझते हों और जहाँका शिल्प छोटे छोटे और स्वतंत्र शिल्पियोंके हाथमें हो। रूसमें बहुत हालतक पूर्ण अनियंत्रित शासन प्रचलित था और उसपर सार्वजनिक मतका कोई प्रभाव न पड़ता था। इस प्रकार वहाँके लोगोंपर एक बाहरी और अप्रिय शक्तिका प्रभाव पड़ता था जिसके कारण लोगोंके विचार बदल गए थे। रूसमें प्रत्येक स्वतंत्र-विचारवाले मनुष्यको विवश होकर सरकारका विरोध करना पड़ता था। ऐसे लोगोंमें टाल्स्टाय और क्रोपाट्किन सरीखे बड़े बड़े रूसी

विचारशील भी समिलित हो गए थे। बात यह थी कि जिस देशमें वे उत्पन्न हुए थे उस देशकी सरकार बहुत बुरी थी। इसीलिये वे समस्त सरकारोंको बुरा समझने लगे गए थे। जिन देशोंमें सरकार थोड़ी बहुत भी लोकप्रिय होती है अथवा जिन देशोंके लोग यह समझते हैं कि कुछ विशिष्ट कार्योंका सम्पादन और सञ्चालन करनेके लिये स्वयं हमने ही सरकारका संगठन किया है उन देशोंमें अराजकतावाद कभी जड़ नहीं पकड़ सकता। यही कारण है कि लोकमतके अनुसार चलनेवाले राज्योंमें अराजकतावादका कोई नाम भी नहीं जानता और पूर्वी तथा दक्षिणी युरोपमें जहाँकी सरकारें लोकप्रिय नहीं हैं अथवा बहुत ही कम लोकप्रिय हैं, अराजकतावादने भयंकर रूप धारण किया है।

परिस्थितिका यह राजकीय अंग है। इसके अतिरिक्त उसका एक शिल्पीय अंग भी है। जिस देशमें बहुत बड़े बड़े कारखाने और रेलें आदि हों उस देशके मजदूरोंपर अराजकतावादका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। अराजकतावादके सिद्धान्तोंके अनुसार चलकर मानव समाज साधारण खेती-बारी और अपनी छोटी-मोटी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये थोड़ा बहुत सामान तैयार करनेके सिवा और कुछ कर ही नहीं सकता। बहुत बड़े कार्योंका सञ्चालन अराजकतावादके विचार-क्षेत्रके बाहर है। रूसमें प्रायः छोटे छोटे कृषक ही होते थे और गाँवोंमें रहते थे। वहाँके शिल्पियोंकी भी यही दशा थी। लोगोंके पास सम्पत्ति बहुत ही कम होती है और वहाँकी सरकार कर उगाहने और सेनाके लिये रंगरूट भरती करनेके अतिरिक्त और कोई बड़ा काम न करती थी। इसीलिये वहाँ अराजकतावादका प्रचार हो गया। यदि वहाँ भी पश्चिमी युरोपके अन्यान्य देशोंको तरह बड़े बड़े कारखाने

आदि होते तो अराजकतावादकी सृष्टि न हो सकती। क्योंकि अराजकतावादका मूल सिद्धान्त समस्त प्रस्तुत संस्थाओंको नष्ट करना है और बड़ी बड़ी संस्थाओंका उस सिद्धान्तके अनुसार नष्ट होना असंभव है। दक्षिणी युरोपकी दशा भी शिल्पकलाकी दृष्टिसे प्रायः रूसकी दशाके समान ही थी। इसीलिये वहाँ भी अराजकतावादने खूब पैर जमाए थे, लेकिन फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि अराजकतावादकी सृष्टिमें सामाजिक और राजकीय परिस्थितिकी अपेक्षा मानव-विचारकी *उग्रता ही अधिक सहायक थी। बात यह है कि मनुष्य पक्का अराजक केवल जन्मतः ही हो सकता है, परिस्थितियाँ किसी मनुष्यको पक्का अराजक नहीं बना सकतीं। जिन लोगोंका स्वभाव उग्र होता* है और जो हठी तथा दृढनिश्चयी होते हैं वे प्रस्तुत दुर्दशाएँ देखकर और आदर्श विचारोंसे परिचित होकर स्वभावतः अधीर हो जाते हैं; उस समय छोटे मोटे लाभों या सुधारोंपर उनका ध्यान नहीं रह जाता और वे यही चाहते हैं कि चाहे जो हो चटपट पूरी सफलता प्राप्त कर ली जाय। बस इसी प्रकार लोग अराजक हो जाते हैं। इसी प्रकारके लोगोंकी दृष्टिमें साम्यवाद तो दब जाता है और अराजकतावादका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। जर्मनी और इंग्लैण्ड सरीखे देशोंमें जहाँ बहुत बड़े बड़े कारखानें हैं और जहाँके राजकार्योंपर लोकमतका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, साम्यवादकी बहुत अधिक उन्नति होती है और अराजकतावादको कोई पूछता भी नहीं।

अराजकतावाद पूरा पूरा नाशक और विघातक वाद है। उसके सिद्धान्त ही यह हैं कि गवर्नमेण्ट और कानून तोड़ दिए जायँ और सम्पत्तिपर लोगोंको केवल भोग करनेका अधिकार रहे, कोई उसका संग्रह न कर सके। रूसमें उत्पादनका मुख्य साधन भूमि है। इस

भूमिका वहाँ समय समयपर परिवारोंकी आवश्यकताओंके अनुसार बँटवारा हुआ करता है और जमीनपर केवल जोतने बोनेके अतिरिक्त किसीका और कोई अधिकार नहीं माना जाता। बस इसी व्यवस्थाको देखकर वहाँके अराजक समझने लगते है कि पूँजीपर भी सबका समान अधिकार हो जाना चाहिए और सब लोगोंको अपनी अपनी इच्छाके अनुसार उत्पादनके साधनोंका उपयोग करके अपनी जीविकानिर्वाह करनेका अधिकार मिल जाना चाहिए। जमीनके सम्बन्धमें तो अराजकोंके सिद्धान्त बहुतसे अंशोंमें काममें लाए जा सकते हैं परन्तु बड़े बड़े शिल्पों और कारखानों आदिके सम्बन्धमें उनका उपयोग बिलकुल असम्भव है। इसीलिये आजतक किसी अराजकने यह बतलानेका प्रयत्न भी नहीं किया कि बड़े बड़े शिल्पों और कारखानोंका सञ्चालन किस प्रकार होना चाहिए।

साधारणतः लोग यही समझते हैं कि अराजकतावादके साथ बम आदि फेंककर तथा दूसरे उग्र उपायोंसे हत्याएँ और उपद्रव आदि करनेका घनिष्ट सम्बन्ध है। वास्तवमें दोनोंमें सम्बन्ध तो अवश्य है परन्तु वह सम्बन्ध केवल संयोगवश हो गया है। अच्छे अच्छे अराजक (जैसे टाल्स्टाय आदि) कभी उग्र उपायोंके पक्षमें नहीं थे। टाल्स्टाय तो लोगोंको सदा निष्क्रिय प्रतिरोध करनेका ही उपदेश दिया करते थे। जिन अनेक उपद्रवोंके लिये अराजक लोग अपराधी ठहराए जाते हैं वे उपद्रव प्रायः बड़े बड़े कैदियों, बदमाशों और नीचोंने ही किए हैं। रूसमें जो अनेक उपद्रव हुए हैं उनके कर्त्ता ऐसे राजनीतिक षड्यंत्रकारी थे जो अराजकतावादके सिद्धान्तोंके लिये नहीं बल्कि केवल राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिये ही लड़तेझगड़ते थे। जो लोग किसी प्रकारका दबाव नहीं सह सकते, पूरी

व्यक्तिगत स्वतंत्रता चाहते हैं और अधिकारियोंका विरोध करना अप-
ना धर्म समझते हैं वे तुरन्त ही यह सिद्धान्त स्थिर कर लेते हैं कि
प्रस्तुत शासन-प्रणालीको बदनाम और नष्ट करनेके लिये अच्छे और
बुरे सभी उपाय करना आवश्यक और नियमानुमोदित हैं। जिस दे-
शकी प्रजा अपनी सरकारको शत्रु समझती है उसी देशके लोग अनेक
प्रकारके उपद्रव और उत्पात करते हैं; और उन्हींकी देखादेखी उन
देशोंमें भी, जिनमें सरकारके प्रति प्रजाकी बहुत ही थोड़ी शिकायत
होती है, कुछ नासमझ और विशेषतः दूसरे देशोंसे निर्वासित होकर
आए हुए लोग समय समय पर इस प्रकारके उपद्रव और उत्पात
किया करते हैं।

अराजकतावादका सामाजिक संगठनसम्बन्धी जो आदर्श है वह
अवश्य ही प्रत्येक विचारशीलको अभीष्ट है। कानून दुष्टोंके लिये
बनता है। आजकल शिल्प और व्यापारसम्बन्धी जो कानून बनते हैं
उनका उद्देश्य प्रायः यही होता है कि समाजमें जो लोग कुछ बातोंमें
पिछड़े हुए हों वे भी उन्नति करके औरोंके समान हो जायँ। जिस
युगमें इतना अधिक धन हो कि प्रत्येक मनुष्य उसमेंसे अपने इच्छा-
नुसार ले सके और अपनी योग्यता तथा रुचिके अनुसार अपने लिये
काम पसन्द कर सके उस युगका सब लोग प्रसन्नचित्तसे स्वागत
करेंगे। आजकल संसार इसी आदर्श राज्य और व्यवस्थाकी ओर बढ़
रहा है परन्तु इस कामके लिये कानूनोंको और विस्तृत करनेकी आ-
वश्यकता है न कि उन्हें नष्ट करनेकी। परन्तु अभी वह समय बहुत
दूर है कि जब कि धन इतना अधिक बढ़ जाय कि सबकी इच्छाओं
और आवश्यकताओंको पूर्ण कर सके। वह समय भी अभी समीप
नहीं है जब कि साधारण मनुष्य इतने आचारवान् और उन्नत हों कि

बिना किसी प्रकारके दबावके अपने अंशका पूरा पूरा काम करें और बदलेमें उन्हें उतना पुरस्कार मिल सके जितनेमें वे अपने आरामसे दिन बिता सकें ।

सन् १८८२ के बाद इंग्लैण्डमें अराजकोंका एक नया दल खड़ा हो गया था जो अपने आपको (Communist Anarchists) कहता था। प्रिन्स क्रोपाट्किनने इस दलके आन्दोलनको बहुत बढ़ाया था। बहुतसे ऐसे साम्यवादी जो पहले अराजकोंके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखते थे वे अब इस नए दलके विचारोंके साथ पूरी पूरी सहानुभूति प्रकाशित करने लग गए थे । इन लोगोंने 'स्वतंत्रता' (Freedom) नामक समाचारपत्र भी निकाला था। आगे चलकर इस दलके लोगोंने सोशलिस्ट लीग (Socialist League) पर भी अपना पूरा पूरा अधिकार कर लिया था। विलियम मोरिसने इसी लिये उस लीगसे अपना सम्बन्ध त्याग दिया था, पर थोड़े ही दिनों बाद वह लीग टूट गई। न तो इंग्लैण्डमें ही और न अन्यान्य देशोंमें ही यह आन्दोलन कुछ जोर पकड़ सका। इसका महत्त्व बराबर घटता गया और बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें उसका कहीं नाम भी न रह गया । उस दलके पुराने विचारोंके साथ कुछ लोगोंने और नए विचार भी सम्मिलित कर दिए और एक नए वादका आरम्भ किया । उस वादका नाम व्यापारसंघवाद रक्खा गया था। आजकल प्रायः समस्त युरोपका ध्यान उसी वादकी ओर आकृष्ट हो रहा है ।

व्यापारसंघवाद।

हम पिछले प्रकरणमें बतला चुके हैं कि अराजकतावादका अभिप्राय केवल यही था कि सारे संसारमें प्राय: वैसा ही सामाजिक संगठन हो जैसा कि रूसी गाँवोंमें है। 'मियाँकी दौड़ मसजिदतक' वाली कहावतके अनुसार अराजकोंकी दृष्टि अपने संकुचित रूसी क्षेत्रके बाहर नहीं जाती थी।

आजसे प्राय: ३०–४० वर्ष पहले ग्रेटब्रिटेनमें तो बहुतसे व्यापारसंघ (Trade Unions) स्थापित थे परन्तु शेष युरोपमें उसका कोई नाम भी न जानता था। कोई यह नहीं समझता था कि अँगरेज व्यापारसंघवादी सामाजिक क्रान्तिमें भी किसी प्रकारकी सहायता दे सकेंगे। परन्तु तबसे अबतक लोगोंके विचार बहुत बदल गए हैं और उन्हें व्यापारसंघों तथा सहयोगसमितियोंकी उपयोगिता अच्छी तरह मालूम हो गई है। इधर हालमें जर्मनी फ्रान्स बेल्जियम और इटली आदि अनेक देशोंमें इस प्रकारके संघ और समितियाँ स्थापित हो गई हैं। श्रमजीवियोंने समझ लिया है कि हम अपने विशिष्ट उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये अपना संगठन कर सकते हैं, धनका संग्रह और सदुपयोग कर सकते हैं और बड़े बड़े कारबार चला सकते हैं। इतिहाससे उन्हें यह भी मालूम हो गया था कि युरोपमें मध्य युगमें बड़े बड़े व्यापारसंघ स्थापित थे जो अपने अपने व्यापार-कार्योंपर पूरा पूरा शासनाधिकार रखते थे और ऐसे नियम बनाते थे जिन्हें कानूनी अदालतोंको भी विवश होकर मानना पड़ता था। ये संघ अपने अपने नगरके शासन-कार्य्यमें बहुत अधिक सहायक होते थे। अराजकतावादका उद्देश्य था कि राज्य नष्ट कर दिया जाय और उसके बदलेमें स्वतंत्र श्रमजीवियोंके समुदाय

स्थापित किए जाँय जो उत्पादनके साधनोंपर अपना अधिकार रक्खें और अपने समस्त आन्तरिक कार्योंका स्वयं ही पूरा पूरा प्रबन्ध करें। अराजक चाहते थे कि कोई ऐसी व्यवस्था निकाली जाय जिससे स्वतंत्र समितियाँ बड़े बड़े कारखानोंका प्रबन्ध कर सकें परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं हुई। उनकी इस आवश्यकताको व्यापारसंघने पूर्ण कर दिया है।

आजकल राज्योंमें छोटे छोटे जिले और प्रान्त बना दिए जाते हैं और चुनावके काममें उन प्रान्तोंके निवासियोंका मत लिया जाता है; परन्तु व्यापारसंघवादी जो राज्य स्थापित करना चाहते हैं उसका संगठन इस प्रकार होगा कि चुनावके काममें अलग अलग प्रान्तोंके निवासियोंका नहीं बल्कि अलग अलग पेशेवालोंका मत लिया जाय। क्योंकि लोगोंका विश्वास है कि केवल निवासस्थानके बन्धनकी अपेक्षा पेशे या व्यवसायका बन्धन अधिक महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। पुराने ढंगके राज्योंमें वर्गीय शासन इसलिये आवश्यक होता है कि राज्य बहुत बड़ा होता है, उसके समस्त कार्य्य और अधिकार एक ही केन्द्रमें होते हैं और उसकी सूक्ष्म बातोंको साधारण श्रमजीवी समझनेमें असमर्थ होते हैं। परन्तु यदि श्रमजीवियोंको केवल अपने ही व्यापार या व्यवसायका पूरा पूरा प्रबन्ध करनेका अधिकार मिल जाय तो फिर आजकलका वर्गीय शासन अनावश्यक हो जायगा। आजकल लोग यह भी समझने लग गए हैं कि उग्र उपायोंसे भीषण क्रान्ति करनेका जमाना गया। सन् १८७१ से, जब कि पेरिसमें कम्यूनवाला झगड़ा हुआ था, बराबर अबतक सामाजिक क्रान्तिके लिये बहुत लंबी चौड़ी बातें होती रहीं परन्तु उनके अनुसार कार्य कुछ भी न हो सका। हाँ उन क्रान्तिकारियोंके हाथमें हड़तालका

एक बड़ा अस्त्र आ गया। यदि बहुतसे लोग मिलकर कोई काम करनेसे इनकार कर दें तो फिर संसारकी कोई शक्ति उन्हें वह काम करनेके लिये विवश नहीं कर सकती। विज्ञानने क्रान्तिको और भी असम्भव कर दिया है। सैनिकोंके हाथमें बहुत बड़े बड़े नाशक साधन आगए हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं सामाजिक जीवन भी ऐसा पेचीला और ओतप्रोत हो गया है कि यदि समाजरूपी बड़ी मशीनका एक छोटासा पुरजा भी अपने स्थानसे हट जाय अथवा अपना काम छोड़ दे तो बहुत कुछ अनर्थकी सम्भावना हो सकती है। इसीलिये व्यापारसंघोंने हड़तालोंको ही अपना मुख्य अस्त्र बनाया है। व्यापारसंघवादियोंका विश्वास है कि यदि समस्त देशके श्रमजीवी और मजदूर एक हफ्तेके लिये भी अपना अपना काम छोड़ दें तो वर्त्तमान सामाजिक और राजनीतिक कुव्यवस्थाओंका अन्त हो जायगा और हड़ताल करानेवाले व्यापारसंघ अपनी मनमानी शर्त्तोंपर अधिकारियों आदिके साथ समझौता कर लेंगे। इन विचारोंकी सत्यतामें भले ही किसीको सन्देह हो परन्तु यह बात निर्विवाद है कि अराजकोंके बतलाए हुए उपायोंकी अपेक्षा व्यापारसंघवादियोंका उपाय बहुत ही सौम्य और फलतः बहुत ही प्रशंसनीय है।

इधर बहुत दिनोंसे फ्रान्सकी राजनीतिक अवस्था बड़ी ही विलक्षण थी। वहाँ किसी प्रकारकी दलबन्दी नहीं थी। सन् १८७७ के बादके प्रायः सभी फ्रान्सीसी मंत्रिमंडल ऐसे हुए जो किसी एक दलसे सम्बन्ध न रखते थे और न कोई विशिष्ट दल उनका पृष्ठपोषक होता था। उसके कुछ पृष्ठपोषक अवश्य होते थे परन्तु वे लोग ऐसे थे जो जरा जरा सी बातोंपर अपने खड़े किए हुए मंत्रियों अथवा मंत्रिमंडलसे रुष्ट होकर अलग हो जाते थे और नए नेताओंका नेतृत्व ग्रहण कर

लेते थे । साम्यवादी दलके लोग भी इस स्थितिमें कोई परिवर्त्तन न कर सके थे । चेम्बरके साम्यवादी सदस्योंने केवल यही निश्चित कर लिया था कि हमारा काम राष्ट्रके राजनीतिक जीवनमें सम्मिलित होता है । इस कामके लिये कभी तो दल बाँधकर मंत्रिमंडलके पक्षमें हो जाते और कभी विरोधी दलका पक्ष ले लेते । इसके अतिरिक्त कुछ साम्यवादी नेताओंने प्रजातंत्र शासनमें मंत्रित्व भी ग्रहण कर लिया था जिसका परिणाम यह हुआ था कि वे अपने पुराने साथियों और सहायकोंसे त्यक्त हो गए और उनकी दृष्टिमें गिर गए ।

फ्रान्सके स्थानिक शासनका बहुत ही अधिक केन्द्रीकरण हुआ है । शासनकार्यके लिये स्थानिक संस्थाएँ स्वतंत्र नहीं हैं बल्कि उन सबका सञ्चालन एक केन्द्रसे होता है । नगरोंमें अनेक प्रकारके बड़े बड़े कर लगते हैं । विशेषतः खाद्य पदार्थोंपर जो चुंगी लगती है वह बहुत ही अधिक होती है । यही कारण है कि फ्रान्समें अवतक जितनी क्रान्तियाँ हुई हैं वे सब प्रायः इसी उद्देश्यसे हुई हैं कि केन्द्रीभूत शासनाधिकारका अन्त हो जाय और स्थानिक स्वराज्यकी स्थापना हो । ऐसे देशमें इस विचारका प्रसार बहुत ही सहज था कि श्रमजीवियोंका उद्धार राजनीतिक झंझटोंमें फँसनेसे नहीं हो सकता, पार्लिमेण्ट ऐसे लोगोंकी संस्था है जो केवल अपनी उन्नति प्रतिष्ठा अथवा लाभपर ही विशेष ध्यान रखते हैं और अपने सिद्धान्तोंकी कुछ भी परवा नहीं करते; और केन्द्रीभूत शासनाधिकार हमारा बड़ा भारी शत्रु है ।

इन्हीं उद्देश्योंसे फ्रान्समें व्यापारसंघ स्थापित होने लगे और व्यापारसंघवाद (Syndicalism) का प्रसार होने लगा । पहले तो सरकार उन व्यापारसंघोंको बहुत सन्देहकी दृष्टिसे देखती थी, परन्तु सन् १८८४

में ऐसा कानून बन गया जिसके अनुसार व्यापारसंघ स्थापित करना अथवा उसमें सम्मिलित होना कोई अपराध न रह गया। सन् १८८६ में एक राष्ट्रीय व्यापारसंघ भी स्थापित हुआ था परन्तु साम्यवादियोंके एक विशिष्ट दलने उसपर अपना अधिकार कर लिया जिसके कारण साधारण श्रमजीवियोंपर उसका कोई प्रभाव न पड़ सका। सन् १८८७ में एक ऐसा ही दूसरा और १८९२ में तीसरा राष्ट्रीय संघ स्थापित हुआ। उसी तीसरे संघकी कांग्रेसमें जो १८९३ में हुई थी देशव्यापी हड़तालका सिद्धान्त स्वीकृत हुआ था। पीछेसे दोनों राष्ट्रीय संघोंको मिलाकर एक करनेका भी प्रयत्न किया गया था परन्तु उस समय उसमें सफलता नहीं हुई। देशमें व्यापारसंघोंकी संख्या आश्चर्यजनक रूपसे बढ़ती जाती थी। सन् १८८४ में केवल ६८ व्यापारसंघ थे परन्तु १० वर्ष बाद १८९४ में उनकी संख्या बढ़कर २१७८ हो गई थी। सन् १८९० में व्यापारसंघोंके सदस्योंकी संख्या १३९६९२ थी परन्तु ४ ही वर्ष बाद १८९४ में वह संख्या बढ़कर ४०३४४० तक पहुँच गई थी। उसी वर्ष नैन्टेस नगरमें व्यापारसंघोंकी एक बहुत बड़ी कांग्रेस हुई थी जिसमें १६६२ संघोंके प्रतिनिधि उपस्थित थे। उस कांग्रेसमें भी देशव्यापी हड़तालके पक्षमें एक मन्तव्य स्थिर हुआ था। १८९५ वाली कांग्रेसमें व्यापारसंघोंकी महासभाने अपना फिरसे संगठन और नामकरण किया। उस समय उसका नाम अखिल श्रमजीवी महासभा (General Confideration of Labour) पड़ा। पहले साम्यवादी दलोंके झगड़ोंके कारण व्यापारसंघवादियोंको बहुत कुछ हानि सहनी पड़ी थी जिसके कारण उन्होंने निश्चित कर लिया था कि अब हम किसी राजनीतिक दलमें सम्मिलित न होंगे। श्रमजीवियोंकी इस नई महास-

भाकी आरम्भमें कई वर्षोंतक कोई विशेष उन्नति नहीं हुई, अपने वार्षिक अधिवेशनोंमें वह बराबर देशव्यापी हड़तालके सम्बन्धमें ही प्रस्ताव स्वीकृत करती रही। अपने अधिवेशनोंमें वह मद्यका प्रचार दूर करने, कारखानोंके इन्स्पेक्टर नियत करने और सरकारसे अनेक उपयोगी कानून बनवाने आदिके सम्बन्धमें ही विचार करती रही। सन् १८९९—१९०० के लगभग बहुतसे अराजक भी अपने पुराने विचार छोड़कर व्यापारसंघवादियोंमें सम्मिलित हो गए। सन् १९०१ से इस महासभाका स्वरूप कुछ कुछ क्रान्तिकारक हो चला। सन् १८९२ में व्यापारसंघोंकी जो तीसरी महासभा स्थापित हुई थी सन् १९०२ में वह भी इस नई महासभाका अंग बन गई। सन् १९०४ में इस अखिल श्रमजीवी महासभाके सदस्योंकी संख्या डेढ़ लाख तक पहुँच गई। उनमेंसे अधिकांशके विचार क्रान्तिकारक ही थे। सुधारकोंकी संख्या अपेक्षाकृत कम ही थी।

इस महासभाने सन् १९०६ में निश्चित किया कि पहली मईको श्रमदिवस (Labour Day) मनाया जाय और देशव्यापी हड़ताल हो। यह हड़ताल २५८५ कारखानोंमें हुई थी और उसमें दो लाखसे अधिक मजदूर सम्मिलित हुए थे। इस हड़तालका उद्देश्य यह था कि मजदूर लोग प्रतिदिन ८ घंटेसे अधिक काम न करने पावें। परन्तु कुछ संघोंके सदस्य कामका समय ९ या १० घंटेतक भी स्थिर कराना चाहते थे। अनेक स्थानोंमें यह आन्दोलन महीनोंतक होता रहा परन्तु पूरी पूरी सफलता केवल ४५ हड़तालियोंको हुई। दस हजार आदमी ९ या १० घंटेतक काम करने लग गए, ५८ हजार आदमियोंने कुछ थोड़ेसे दूसरे सुभीते प्राप्त किये और १३४००० आदमियोंको कुछ भी सफलता न हुई, उनके साथ

किसी प्रकारकी रिआयत न हुई । सन् १९१० में इस महासभामें ३०१२ संघ अन्तर्भुक्त हो गए थे जिनके सदस्योंकी संख्या साड़े तीन लाखसे ऊपर थी । इसके अतिरिक्त २२४८ ऐसे और संघ थे जो उस महासभामें सम्मिलित नहीं हुए थे । उनके सदस्योंकी संख्या सवा छः लाखके करीब थी परन्तु ये सब संघ वास्तवमें पूरे पूरे व्यापारसंघ नहीं थे, उन्हें साधारण सार्वजनिक सभाएँ ही समझना चाहिए।

अक्टूबर १९१० में रेलवालोंकी भयंकर हड़ताल हुई जिसके लिये पहलेसे कोई तैयारी नहीं हुई थी और जो संघोंके सदस्यों और नेताओंकी इच्छाके विरुद्ध की गई थी । इस हड़तालमें केवल उत्तरी और पश्चिमी रेलोंमें काम करनेवालोंको छोड़कर और बहुत ही कम लोग सम्मिलित हुए थे । हड़तालका अन्त करनेके लिये सरकारने सेनाएँ बुलवाई और एक पुराने कानूनके आधारपर घोषणा कर दी कि यह हड़ताल नियमविरुद्ध है । एक सप्ताहमें इस हड़तालका अन्त हो गया। यदि इसका कोई परिणाम हुआ तो वह केवल इतना ही कि रेलमें काम करनेवालोंके संघसे हजारों सदस्य अलग हो गए । तबसे बराबर समय समयपर प्रायः सभी तरहके कारबार करनेवाले लोग बराबर छोटी मोटी हड़तालें किया करते हैं । सन् १९१३ में फ्रान्समें एक नया कानून बना था जिसके अनुसार सैनिक सेवाकी अवधि बढ़ाई गई थी । अखिल श्रमजीवी महासभाने इस कानूनका विरोध किया था जिसके कारण उसके बहुतसे नेताओंपर राजद्रोहका अभियोग लगाया गया था और वे जेल भेज दिए गए थे । यह सब उपद्रव प्रायः अराजकोंके प्रभावके कारण ही हुए थे । परन्तु अब धीरे धीरे अराजकोंसे महासभाका पिंड छूट रहा है और उसकी प्रवृत्ति उपद्रवोंकी अपेक्षा व्यापारसंघोंकी स्थापना और उसके सदस्यों तथा कोशकी वृद्धिकी ओर ही अधिक है ।

आजकल फ्रान्समें जिस व्यापारसंघवाद (Syndicalism) का बहुत जोर है वह अपने सिद्धान्तोंकी उग्रताके विचारसे इंग्लैण्डके शुद्ध व्यापारसंघवाद (Trade Unionism) और अराजकतावाद (Anarchism) के मध्यमें है। शुद्ध व्यापारसंघवादके इस सिद्धान्तको उसने अपना लिया है कि श्रमजीवियोंका उद्धार राजनीतिक झंझटोंमें पड़नेसे नहीं हो सकता। इसके लिये उन्हें अपने पैरों आप खड़े होना चाहिए और अपना संगठन करना चाहिए। वे यद्यपि समझते हैं कि लड़-भिड़कर पूँजीदारोंपर विजय प्राप्त करनेकी आवश्यकता है; परन्तु इसके लिये समाजको राजनीतिक दृष्टिसे संगठित होकर प्रयत्न नहीं करना चाहिए बल्कि श्रमजीवियोंको शिल्प और व्यवसायकी दृष्टिसे अपना संगठन करके प्रयत्न करना चाहिए। श्रमजीवियोंको सब काम पहले अपनी पेशेवरीके विचारसे करने चाहिएँ और तब नागरिकताके विचारसे। इस वादमें जो अंश अराजकतावादसे लिया गया है वह यह है कि क्रान्तिके नैतिक महत्त्वपर बहुत अधिक भरोसा किया जाता है। व्यापारसंघवादी कहते हैं कि चाहे हड़तालोंका कोई फल हो और चाहे न हो पर वे हैं वास्तवमें बहुत अच्छीं। उनसे सबसे बड़ा लाभ यह हो रहा है कि श्रमजीवी लोग उस देशव्यापी हड़तालके लिये तैयार हो रहे हैं जो किसी समय पूरी क्रान्ति कर देगी। व्यापारसंघवादके भावी राज्य अथवा राष्ट्रसम्बन्धी विचार भी अराजकतावादसे लिए गए हैं। इसके अनुसार भी शासनसंस्थाका अन्त हो जाना चाहिए और पूँजीकी सहायतासे व्यापार करनेकी प्रथा उठ जानी चाहिए। लोगोंका जो कुछ सार्वजनिक जीवन हो वह सब व्यापारसंघोंके अन्तर्गत ही होना चाहिए और बाकी जो काम हों वे उन स्थानिक व्यापारसंघोंकी महासभा किया करे।

राज्यका सारा काम वही महासभा चलावे जिसमें व्यापारसंघोंके प्रतिनिधि रहें। प्रत्येक मनुष्यसे उसकी योग्यता और प्रवृत्तिके अनुसार काम लिया जाय और उसकी इच्छाओं और आवश्यकताओंके अनुसार उसे धन और सामग्री दी जाय। सारा वर्ग एक परिवारकी तरह माना जाय और सब लोगोंको माँगनेपर मुफ्त भोजन-वस्त्र और रहनेके लिये स्थान दिया जाय। उत्पादनके साधनोंपर भी सबका समान अधिकार रहे परन्तु एक व्यक्तिके व्यवहारमें जो चीज रहे उसपर अकारण कोई दूसरा अधिकार न कर ले। यह व्यवस्था ठीक परिवारकी व्यवस्थाके सदृश है। जिस प्रकार परिवारमें चीजोंपर किसीका व्यक्तिगत अधिकार नहीं रहता बल्कि व्यावहारिक अधिकार मात्र रहता है उसी प्रकारका अधिकार वर्गमें भी रहे। प्रत्येक व्यापार और शिल्पसम्बन्धी साधनों या औजारों पर उस व्यापार या शिल्पके संघका पूरा पूरा अधिकार रहे। अराजकोंकी तरह व्यापारसंघवादी भी किसी प्रकारका शासनाधिकार स्वीकृत नहीं करते। उनका मत है कि न तो कोई आज्ञाएँ प्रचारित करे और न कोई उनका पालन करे। वे कहते हैं कि जब समाज या देश परसे वर्गीय शासन उठ जायगा और धनप्राप्तिके लिये होनेवाली प्रतियोगिताका अन्त होजायगा तब मनुष्य जाति बहुत ही समझदार हो जायगी। उस समय नीतिसम्बन्धी प्रश्नोंपर सहजमें ही सबका एक मत हो जायगा।

कुछ लोग कहते हैं कि व्यापारसंघवादका मुख्य उद्देश्य यह है कि शिल्पकी प्रत्येक शाखापर केवल उसमें काम करनेवालोंका ही पूरा पूरा अधिकार रहे और समाजका संगठन स्थानिक विचारसे नहीं बल्कि पेशोंके विचारसे हो। परन्तु कुछ फ्रान्सीसी व्यापारसंघवादियोंने इस कथनका खंडन किया है। वे कहते हैं कि यदि सचमुच ऐसा ही हो

तब तो यह व्यक्तिगत पूँजीदारीका केवल एक परिवर्द्धित रूप होगा और आगे चलकर यह भी पूँजीदारीकी प्रथाके समान ही नाशक सिद्ध होगा। व्यापारसंघवादका मुख्य उद्देश्य यह है कि उत्पादनकी व्यवस्था की जाय और उत्पन्नद्रव्यका ठीक ठीक बँटवारा हो, उसपर कोई अपनी मिलकियत कायम न कर सके। व्यापारसंघवादकी यह भी व्यवस्था है कि स्थानिक शासन तो व्यापारी काउन्सिलोंके हाथमें रहे और प्रधान शासन व्यापारसंघकांग्रेसका हो जिसके अधिवेशन बीचबीचमें हुआ करें। परन्तु सभी अवस्थाओंमें यह माना जाता है कि जब सम्पत्तिपरसे व्यक्तिगत अधिकार उठ जायगा तब सरकारका प्रायः कुछ भी काम न रह जायगा। व्यापारसंघवादी सैनिकताके भी बड़े भारी विरोधी हैं। वे किसी प्रकारका उग्र उपाय अथवा बलप्रयोग नहीं करना चाहते। वे यह भी समझते हैं कि युरोपियन जातियाँ सहजमें ही इस उच्च आदर्शतक पहुँच सकती हैं और संसारकी दूसरी जातियोंको हम उपेक्षापूर्वक पीछे छोड़ सकते हैं!

फ्रान्स तथा युरोपके अन्यान्य देशोंमें अनिवार्य्य सैनिकसेवाका नियम प्रचलित है जिसके कारण श्रमजीवियोंको बहुत कष्ट होता है और उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रतामें निरन्तर बाधा पड़ती रहती है। इसके अतिरिक्त सभी देशोंका सैनिक व्यय भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है। बहुतसे लोगोंका यह भी कहना है कि अधिकांश युद्धोंमें धनिकवर्गके लाभके लिये श्रमजीवियोंको ही कटना मरना पड़ता है। जो सैनिक व्यय दिनपर दिन बढ़ता जाता है वह भी इन्हीं पूँजीदारोंके लाभके लिये है और फिर सबसे बढ़कर बात यह है कि जिस सेनामें प्रजाका इतना धन व्यय होता है वह सेना सम्पत्तिकी रक्षा और हड़तालोंका अन्त करती है। इन्हीं सब कारणोंसे व्यापारसंघवादी सदासे सैनिक-

प्रथाके बड़े भारी विरोधी रहे हैं। बहुतसे व्यापारसंघवादी सैनिकोंको यह भी समझाया करते हैं कि यदि नागरिक झगड़े शांत करनेके लिये तुम लोगोंसे कहा जाय तो तुम लोग आज्ञा माननेसे इनकार कर दो। इन बातोंके लिये अनेक व्यापारसंघवादियोंको सैनिक क़ानूनके अनुसार दण्ड भी मिल चुका है।

व्यापारसंघवादी इस सिद्धान्तको तो मानते हैं कि श्रमजीवियों और पूँजीदारोंके हित परस्पर विरोधी हैं। उनका यह भी कहना है कि जहाँ जहाँ पूँजीदारीकी प्रथा अपनी जड़ जमा चुकी है वहाँ वहाँ इस विरोधके कारण दोनों वर्गोंमें बराबर एक झगड़ा या यों कहिए कि नियमित युद्ध चला करता है। जिस प्रकार अराजक यह कहा करते हैं कि शासकों और शासितोंमें बराबर युद्ध छिड़ा रहता है इसलिये शासितवर्गके नेताओंकी हत्या कर डालें तो उनका यह काम निन्दनीय नहीं हो सकता, उसी प्रकार व्यापारसंघवादी भी कहते हैं कि जब कि पूँजीदारों और मजदूरोंमें बराबर युद्ध छिड़ा रहता है तब श्रमजीवी लोग भी पूँजीदारोंकी मशीनें तोड़कर रद्दी या खराब माल तैयार करके अथवा बहुत थोड़ा काम करके पूँजीदारोंको पूरी पूरी हानि पहुँचा सकते हैं। विशेषतः हड़तालोंके समय तो उन्हें ऐसे काम अवश्य करने चाहिए। कुछ लोगोंका यह भी विश्वास है कि व्यापारसंघोंने एक नियम सा बना दिया है कि लोग इतनेसे अधिक काम न करें या इतनेसे अधिक माल न बनावें परन्तु सच पूछिए तो ऐसी बातोंसे स्वयं मजदूरोंका कोई हित नहीं हो सकता। अर्थशास्त्र इस सिद्धान्तका कभी समर्थन नहीं करता कि थोड़ा या रद्दी काम करनेसे मजदूरोंका लाभ होता है और न उससे यही सिद्ध होता है कि थोड़ा वेतन देकर कारखानेदार विशेष लाभ उठा सकते हैं।

व्यापारसंघवादके विषयमें एक सबसे बड़ी और विलक्षण बात यह है कि उसकी सृष्टि पुराने अथवा आधुनिक साम्यवादियोंके दिमागसे नहीं हुई है और न कोई एक व्यक्ति उस बातका प्रचारक है। भिन्न भिन्न साम्यवादियोंके विचारोंसे परिचित होकर स्वयं श्रमजीवियोंने ही अपने विस्तारके लिये जो उपाय और सिद्धान्त स्थिर किए हैं उन्हीं सबका समावेश व्यापारसंघमें है। व्यापारसंघवादियोंमें भी बहुतसे अच्छे अच्छे विचारशील और लेखक हो गए हैं। इनमेंसे जार्ज सोरेल विशेष उल्लेखयोग्य है। उसका जन्म १८४७ में फ्रान्समें हुआ था और बचपनमें उसने पेरिसमें अच्छी शिक्षा पाई थी। इसके उपरान्त उसने प्रायः २५ वर्षतक इंजीनियरी की थी। उसने साम्यवादसम्बन्धी अनेक पुस्तकें लिखी थीं और एक समाचारपत्र भी निकाला था। व्यापारसंघवादके सम्बन्धमें उसने अपनी सबसे पहली और विचारपूर्ण पुस्तक १८९८ में प्रकाशित की थी। उस पुस्तकमें उसने पार्लिमेण्टों आदिमें बैठनेवाले साम्यवादियोंको बहुत लथाड़ा है और बतलाया है कि साम्यवादका प्रचार तभी हो सकता है जब पूर्ण स्वतंत्र व्यापारसंघोंका यथेष्ट विकास हो।

इस अवसरपर हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि व्यापारसंघवादका प्रचार प्रायः उन्हीं देशोंमें है जिनमें अराजकतावादका भी थोड़ा बहुत प्रचार हुआ है। फ्रान्स तो इस बातका जन्मस्थान ही है; इटलीमें भी उसका थोड़ा बहुत प्रचार हुआ है। वहाँ इसने कुछ तो अराजकतावादके सिद्धान्त लिये हैं और कुछ सहयोगके। इसी लिये वहाँ इसका स्वरूप कुछ विलक्षण हो गया है। सन् १९०६ में रोममें साम्यवादियोंकी जो कान्फरेन्स हुई थी उसमें इटलीके व्यापारसंघवादी एक बातमें परास्त हो गए थे, तबसे उन्होंने अपना एक स्वतंत्र दल

प्रथाके बड़े भारी विरोधी रहे हैं। बहुतसे व्यापारसंघवादी सैनिकोंको यह भी समझाया करते हैं कि यदि नागरिक झगड़े शांत करनेके लिये तुम लोगोंसे कहा जाय तो तुम लोग आज्ञा माननेसे इनकार कर दो। इन बातोंके लिये अनेक व्यापारसंघवादियोंको सैनिक क़ानूनके अनुसार दण्ड भी मिल चुका है।

व्यापारसंघवादी इस सिद्धान्तको तो मानते हैं कि श्रमजीवियों और पूँजीदारोंके हित परस्पर विरोधी हैं। उनका यह भी कहना है कि जहाँ जहाँ पूँजीदारीकी प्रथा अपनी जड़ जमा चुकी है वहाँ वहाँ इस विरोधके कारण दोनों वर्गोंमें बराबर एक झगड़ा या यों कहिए कि नियमित युद्ध चला करता है। जिस प्रकार अराजक यह कहा करते हैं कि शासकों और शासितोंमें बराबर युद्ध छिड़ा रहता है इसलिये शासितवर्गके नेताओंकी हत्या कर डालें तो उनका यह काम निन्दनीय नहीं हो सकता, उसी प्रकार व्यापारसंघवादी भी कहते हैं कि जब कि पूँजीदारों और मजदूरोंमें बराबर युद्ध छिड़ा रहता है तब श्रमजीवी लोग भी पूँजीदारोंकी मशीनें तोड़कर रद्दी या खराब माल तैयार करके अथवा बहुत थोड़ा काम करके पूँजीदारोंको पूरी पूरी हानि पहुँचा सकते हैं। विशेषतः हड़तालोंके समय तो उन्हें ऐसे काम अवश्य करने चाहिए। कुछ लोगोंका यह भी विश्वास है कि व्यापारसंघोंने एक नियम सा बना दिया है कि लोग इतनेसे अधिक काम न करें या इतनेसे अधिक माल न बनावें परन्तु सच पूछिए तो ऐसी बातोंसे स्वयं मजदूरोंका कोई हित नहीं हो सकता। अर्थशास्त्र इस सिद्धान्तका कभी समर्थन नहीं करता कि थोड़ा या रद्दी काम करनेसे मजदूरोंका लाभ होता है और न उससे यही सिद्ध होता है कि थोड़ा वेतन देकर कारखानेदार विशेष लाभ उठा सकते हैं।

जर्मनीमें व्यापारसंघवादका बहुत ही थोड़ा प्रचार है । कुछ थोड़ेसे व्यापारसंघवादी हैं जो दो पत्र निकालते हैं और समय समयपर सरकारके छोटे मोटे कामोंका विरोध करते हैं। अमेरिकाके संयुक्त राज्य व्यापारसंघवादके लिये बहुत ही उपयुक्त हैं। वहाँ है तो प्रजातंत्र परन्तु फिर भी शासनकार्योंमें पूँजीदारोंकी ही प्रधानता है। बहुतसे लोग केवल स्वार्थवश ही नेता बन बैठते हैं। श्रमजीवियोंकी पहुँच अभी सरकारतक नहीं हुई। न तो सार्वदेशिक शासनमें और न स्थानिक शासनमें उन्हें कोई पूछता है । वहाँ मजदूरोंकी एक बहुत बड़ी सभा है जिसका नाम Industrial Workers of the World है । इसकी स्थापना सन् १९०३–४ में हुई थी । इससे बहुत पहले वहाँ हजारों व्यापारसंघ स्थापित हो चुके थे परन्तु उन संघोंका काम प्रायः केवल हड़तालें कराना ही होता था । देशके भिन्न भिन्न स्थानोंमें प्रतिवर्ष इस सभाके अधिवेशन हुआ करते हैं।

इंग्लैण्डमें व्यापारसंघवादका प्रचार अमेरिकाके संयुक्त राज्योंसे आए हुए साम्यवादी श्रमजीवी दलके कुछ लोगोंने किया था। व्यापारसंघवादसम्बन्धी सिद्धान्त इंग्लैण्डमें सबसे पहले एडिनबरोसे निकलनेवाले एक साम्यवादी पत्रमें प्रकाशित हुए थे। इस बातका विशेष प्रचार वहाँ टाममैन नामक एक व्यक्तिने किया था। इसने पहले इंग्लैण्डमें साम्यवादसम्बन्धी बहुत कुछ आन्दोलन किया था और तब आस्ट्रेलेशिया चला गया था। वहाँसे सन् १९१० में लौटकर उसने फिर जोरोंसे व्यापारसंघवादके सिद्धान्तोंका प्रचार आरम्भ किया। उन दिनों इंग्लैण्डके व्यापार और शिल्प संसारमें बहुत हलचल मची हुई थी। दक्षिण वेल्समें १९१०–११ में बहुतसी हड़तालें और कुछ उपद्रव भी हुए थे। १९११ में रेलवालोंकी हड़ताल हुई, बारबरदा-

खड़ा कर लिया है। इटलीके श्रमजीवी बहुत ही अशिक्षित और दरिद्र थे परन्तु व्यापारसंघोंके प्रयत्नके कारण अब उनकी दशा बहुत सुधर गई है। बड़े बड़े नगरोंसे लेकर छोटे छोटे गाँवोंतकमें व्यापारसंघ स्थापित हो गए हैं और बराबर होते जा रहे हैं। खेती-बारीके कामोंमें सहयोगको बहुत अधिक स्थान मिला है। वहाँ श्रमजीवियोंकी बहुत बड़ी बड़ी समितियाँ भी स्थापित हो गई हैं जो राज्यके अधिकारियोंसे बड़े बड़े ठीके लेती हैं। उन्होंने अपनी एक रेल लाइन भी तैयार कर ली है। इस प्रकार वहाँके श्रमजीवी बड़े बड़े व्यापार और कारबार चलानेमें बहुत कुछ कुशल हो चले हैं।

इटलीमें व्यापारसंघवादके दो ऐसे नेता भी हो गए हैं जिन्होंने उस वादके सम्बन्धमें अच्छे अच्छे ग्रन्थ भी लिखे हैं। इनमेंसे आरटरो लेब्रिओला एक विश्वविद्यालयका प्रोफेसर और बैरिस्टर है। फ्रान्सीसी व्यापारसंघवादियोंकी अपेक्षा लेब्रिओलाके विचार सौम्य और कुछ कम क्रान्तिकारक हैं। वह कहता है कि किसी पेशेके लोग मिलकर पूँजीदारोंसे उत्पादनके साधन किराएपर ले सकते हैं और उनकी उपजसे होनेवाली आय आपसमें बराबर बराबर बाँट ले सकते हैं। अभी तो लोग पूँजीदारोंसे किराएपर उपजके साधन अथवा सूदपर पूँजी ले लें परन्तु कुछ दिनोंमें वह समय आ जायगा जब कि व्यापारसंघ बहुत बलशाली हो जायँगे और पूँजीदारोंको किराया या सूद देनेसे इनकार कर बैठेंगे और तब क्रान्ति पूरी हो जायगी। इटलीके व्यापारसंघवादियोंका मत है कि कारखानों आदिपर श्रमजीवियोंका पूरा पूरा अधिकार होना चाहिए। एन्रिको लिओन नामक एक और लेखक है जिसके व्यापारसंघवादी एक प्रसिद्ध ग्रन्थका अनुवाद रूसी और स्पेनी भाषामें भी हो गया है। उसने व्यापारसंघवादका सम्बन्ध विश्वके विकास और मानवजातिके इतिहाससे जा मिलाया है।

हुई आजतक कभी कोई ऐसी हड़ताल नहीं हुई जिसमें राष्ट्रके सभी श्रमजीवी क्रान्ति उपस्थित करनेके लिये एक साथ ही सब कारबार बन्द कर दें और न ऐसी हड़ताल होनेकी कोई सम्भावना ही है। हाँ श्रमजीवियोंकी दशाके सुधारके लिये छोटी मोटी हड़तालें बराबर हुआ करती हैं जिनसे बहुत कुछ उद्देश्यसिद्धि भी होती है। साम्यवादी लोग राजनीतिक उद्देश्योंसे हड़ताल करनेकी सम्मति देते हैं। कई अवसरोंपर इस प्रकारकी हड़तालें हुई भी हैं और उनमें हड़तालियोंने अच्छी सफलता प्राप्त की है। अक्टूबर १९०५ की बड़ी रूसी हड़तालके कारण ही वहाँ बहुतसे राजनीतिक सुधार हुए थे। सन् १९१३ में बेल्जियमके अनुदार दलके राजकर्म्मचारियोंने मताधिकारसम्बन्धी नियमोंमें सुधार करनेसे इनकार कर दिया था जिसके कारण वहाँ भी बहुत बड़ी हड़ताल हुई थी। उस समय विवश होकर अधिकारियोंको कुछ वचन देने पड़े थे परन्तु पीछेसे उन वचनोंकी पूर्ति नहीं हुई।

अन्तमें हम यह बतला देना चाहते हैं कि व्यापारसंघवादी जो देशव्यापी हड़ताल करना चाहते हैं उसका होना यद्यपि बहुत ही कठिन है तथापि इसमें सन्देह नहीं कि यदि किसी समय वैसी देशव्यापी हड़ताल हो सके तो उससे साम्यवादियों अथवा व्यापारसंघवादियोंके बहुतसे उद्देश्य सिद्ध हो सकते हैं। यदि आगे चलकर कभी कोई ऐसा समय आवे जब कि सभ्य और शिक्षित समाजके लोग सामाजिक क्रान्ति करनेपर तुल जायँ तब वे लोग सम्भवतः इसी देशव्यापी हड़तालरूपी शस्त्रको ग्रहण करेंगे। परन्तु सच्ची देशव्यापी हड़ताल उसी अवस्थामें हो सकती है जब कि देशके समस्तश्रमजीवी आपसमें मिलकर सरकारके विरुद्ध हो जायँ। परन्तु जिन देशोंका शासनकार्य्य लोकमतवादके सिद्धान्तोंके अनुसार होता है उन देशोंमें सरकारके विरुद्ध श्रमजीवियोंका इस प्रकार एक होकर उठखड़ा होना प्रायः असम्भव ही है।

रवालोंने काम छोड़ दिया और १९१२ में खान खोदनेवालोंने हड़ताल कर दी । इसी प्रकारके और भी अनेक उपद्रव हुए और धीरे धीरे व्यापारसंघोंका जोर बढ़ता गया । अब वहाँ बहुतसे व्यापार और पेशोंके जबरदस्त संघ स्थापित हो गए हैं जो सहजमें ही बड़ी बड़ी हड़तालें कर डालते हैं । अभी हालमें सन् १९१९ में वहाँके खान खोदनेवालों और रेलवेमें काम करनेवालोंने बहुत बड़ी और देशव्यापी हड़तालें की थीं और कई कई दिनोंतकके लिये देशके सब काम बन्द कर दिए थे । इस प्रकार श्रमजीवियों और व्यापारसंघोंने आपसमें मिलकर राजकर्मचारियोंपर अपना बहुत कुछ आतंक जमा लिया है और अपनी बहुत ही माँगें पूरी करा ली हैं । इन हड़तालोंके सम्बन्धमें अभी हालमें ही समाचारपत्रोंमें बहुतसी बातें निकल चुकी हैं। अतः इस अवसरपर उनका वितृत विवरण देनेकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती ।

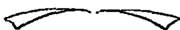
व्यापारसंघवादियोंका मुख्य उद्देश्य यह है कि देशव्यापी हड़तालकरके क्रान्ति उपस्थित कर दी जाय और उत्पादनके समस्त साधनोंपर मजदूरोंको अधिकार दिलाकर अपना अभीष्ट सिद्ध किया जाय । इस देशव्यापी हड़तालसे उनका अभिप्राय यह है कि पूँजीदारीकी प्रथाका अन्त करनेके लिये सारा राष्ट्र अपना काम बन्द कर दे । मजदूर लोग अपने मालिकोंके लिये काम करनेसे इनकार कर दें । कारखानों, खानों और रेलों आदि उत्पादनके साधनोंपर पूरा पूरा अधिकार कर लें और तब स्वयं अपने तथा समाजके हितके लिये हड़तालका अन्त होनेपर, फिरसे उनका चलाना आरम्भ करें। देशके भिन्न भिन्न भागोंमें भिन्न भिन्न उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये भी साम्यवादी और व्यापारसंघवादी लोग हड़तालें करनेकी सम्मति देते हैं । व्यापारसंघवादकी बतलाई

साम्यवादी उत्पन्न होते हैं और तब वे धीरे धीरे अपना दल बढ़ाकर उसे संगठित करते हैं। तब वे पार्लिमेण्टोंमें स्थान पानेका प्रयत्न करते हैं जिनमें पहले उन्हें विफलता होती है, फिर धीरे धीरे उनके पक्षपाती और अनुयायी बढ़ने लगते हैं और पहले उन्हें सैकड़ों तब हजारों और अन्तमें लाखोंतक वोट मिलने लगते हैं—सब दलोंका बल घटने लगता है और साम्यवादी दल बराबर बढ़ता जाता है। यहाँतक कि रूस जर्मनी और फिनलैण्ड सरीखे देशोंमें वह सबसे अधिक बलवान् दल हो गया है, आस्ट्रेलियामें श्रमजीवी दल प्रधान हो गया है और इंग्लैण्डमें उसके प्रधान होनेकी सम्भावना बनी हुई है। युरोपमें जिस शीघ्रताके साथ साम्यवादका प्रचार हो रहा है उसे देखते हुए तो यही आशा होती है कि मार्क्सके मरनेकी तिथि (१८८२) से एकसौ वर्षोंके अन्दर संसारमें कोई ऐसा सभ्य देश न रह जायगा जिसमें साम्यवादने अन्यान्य राजनीतिक वादोंपर विजय न प्राप्त कर ली हो। इस प्रकरणमें हम पाठकोंको यह बतलाना चाहते हैं कि प्रत्येक सभ्य देशमें साम्यवादका जोर कहाँतक बढ़ा है। प्रति रविवारको युरोप और अमेरिका आदिके सभी सभ्य देशोंमें साम्यवादके प्रचारके लिये सैकड़ों हजारों सभाएँ हुआ करती हैं और शिल्प व्यापार आदिके प्रत्येक बड़े केन्द्रमें हजारों लाखों मनुष्योंको उनके आर्थिक निस्तारके तत्त्व बतलाए जाते हैं। प्रत्येक देशके साम्यवादियोंको दबानेके लिये वहाँकी सरकार अनेक प्रकारके प्रयत्न करती है परन्तु फिर भी उनकी वृद्धि भयंकर रूपसे होती जाती है। इस प्रकरणमें आगे चलकर जो बातें दी गई हैं उनसे हमारे कथनकी अच्छी तरह पुष्टि हो जायगी।

जर्मनी।

संसारके बड़े बड़े राष्ट्रोंमें जितने साम्यवादी दल हैं उनमेंसे बोल्शेविकोंको छोड़कर जर्मनीके साम्यलोकमतवादियोंका दल सबसे अधिक

१० साम्यवादका प्रचार।



इधर प्रायः एक हजार वर्पसे युरोपके सभी राष्ट्रोंका राजनीतिक विकास हो रहा है। प्राचीन अनियंत्रित और एकतंत्री शासनका स्थान लोकमतवादमूलक और नियंत्रित शासनको मिल रहा है। तौ भी इतने दिनोंमें यह राजनीतिक विकास अभीतक पूरा नहीं हो सका है। इधर चार पाँच सौ वर्षोंमें संसारकी स्थितिमें अनेक अद्भुत परिवर्तन हुए हैं। उक्त राजनीतिक विकासकी पूर्तिके लिये स्थान स्थानपर जो प्रयत्न हो रहे हैं उन प्रयत्नोंमेंसे एक प्रयत्न साम्यवादके सिद्धान्तोंकी स्थापना भी है। इस साम्यवादके सम्बन्धमें बहुतसे लोगोंका विश्वास है कि जब इसके सिद्धान्तोंके अनुसार पूरी तरहसे काम होने लगेगा तब संसारकी समस्त अच्छी बातोंका अन्त हो जायगा। लेकिन साम्यवादका प्रचार जिस अधिकताके साथ इधर पचासों वर्षोंसे होता चला आ रहा है उसे देखते हुए कहना पड़ता है कभी न कभी वह दिन अवश्य आवेगा जब कि पूँजीदारीकी प्रथापर साम्यवादके सिद्धान्त विजयी होंगे और साम्यवादके विरोधियोंको निराश होना पड़ेगा।

मार्क्स और लैसेलने जिस आधुनिक साम्यवादकी स्थापना की है उसका प्रचार संसारके सभी देशों और राष्ट्रोंमें आश्चर्यजनक रूपसे हो रहा है। सभी स्थानोंमें यह देखनेमें आता है कि पहले दो चार

साम्यवादी उत्पन्न होते हैं और तब वे धीरे धीरे अपना दल बढ़ाकर उसे संगठित करते हैं। तब वे पार्लिमेण्टोंमें स्थान पानेका प्रयत्न करते हैं जिनमें पहले उन्हें विफलता होती है, फिर धीरे धीरे उनके पक्षपाती और अनुयायी बढ़ने लगते हैं और पहले उन्हें सैकड़ों तब हजारों और अन्तमें लाखोंतक वोट मिलने लगते हैं—सब दलोंका बल घटने लगता है और साम्यवादी दल बराबर बढ़ता जाता है। यहाँतक कि रूस जर्मनी और फिनलैण्ड सरीखे देशोंमें वह सबसे अधिक बलवान् दल हो गया है, आस्ट्रेलियामें श्रमजीवी दल प्रधान हो गया है और इंग्लैण्डमें उसके प्रधान होनेकी सम्भावना बनी हुई है। युरोपमें जिस शीघ्रताके साथ साम्यवादका प्रचार हो रहा है उसे देखते हुए तो यही आशा होती है कि मार्क्सके मरनेकी तिथि (१८८२) से एकसौ वर्षोंके अन्दर संसारमें कोई ऐसा सभ्य देश न रह जायगा जिसमें साम्यवादने अन्यान्य राजनीतिक वादोंपर विजय न प्राप्त कर ली हो। इस प्रकरणमें हम पाठकोंको यह बतलाना चाहते हैं कि प्रत्येक सभ्य देशमें साम्यवादका जोर कहाँतक बढ़ा है। प्रति रविवारको युरोप और अमेरिका आदिके सभी सभ्य देशोंमें साम्यवादके प्रचारके लिये सैकड़ों हजारों सभाएँ हुआ करती हैं और शिल्प व्यापार आदिके प्रत्येक बड़े केन्द्रमें हजारों लाखों मनुष्योंको उनके आर्थिक निस्तारके तत्त्व बतलाए जाते हैं। प्रत्येक देशके साम्यवादियोंको दबानेके लिये वहाँकी सरकार अनेक प्रकारके प्रयत्न करती है परन्तु फिर भी उनकी वृद्धि भयंकर रूपसे होती जाती है। इस प्रकरणमें आगे चलकर जो बातें दी गई हैं उनसे हमारे कथनकी अच्छी तरह पूर्ति हो जायगी।

जर्मनी।

संसारके बड़े बड़े राष्ट्रोंमें जितने साम्यवादी दल हैं उनमेंसे बोल्शेविकोंको छोड़कर जर्मनीके साम्यलोकमतवादियोंका दल सबसे अधिक

बलवान् है। यद्यपि उस दलमें कार्यप्रणाली नीति और सिद्धान्त आदिके सम्बन्धमें बहुत कुछ मतभेद उत्पन्न हो गया है परन्तु फिर भी उन सबका अन्तिम उद्देश्य एक ही है और उद्देश्यकी इस एकताके विचारसे एक ही समझना चाहिए। उनके दलमें मतभेदके कारण बहुतसी लड़ाइयाँ और झगड़े हुआ करते हैं परन्तु बहुत हालतक उन्होंने अपने दलको विभक्त नहीं होने दिया। इस दलने आरम्भसे अबतक जो उन्नति की है उसका पता नीचेके कोष्टकसे लग जाता है।

सन्	साम्यलोकमतवादी वोट	कुल वोटोंमें प्रति सैकड़े	चुने गए साम्यलोकमतवादियोंकी संख्या
१८७१	१२४६५५	३	२
१८७४	३५१९५२	६·८	१०
१८७७	४९३२८८	९·१	१३
१८७८	४३७१५८	७·६	९
१८८१	३११९६१	६·१	१३
१८८४	५४९९९०	९.७	२४
१८८७	७६३१२८	१०·१	११
१८९०	१४२७२९८	१९·७	३५
१८९३	१७८६७३८	२३·२	४४
१८९८	२१०७०७६	२७·२	५६
१९०३	३०१०७७१	३१·७	८१
१९०७	३२५९०२०	२८·९	४३
१९१२	४२५०३२९	३४·८	११०

२४ मार्च १९१६ को साम्यलोकमतवादी दलमेंसे कुछ लोगोंने निकलकर अपना 'साम्यलोकमतवादी श्रमजीवीसंघ' नामक एक अलग

दल बना लिया था जिसके कारण सन् १९१८ में साम्यलोकमतवादियोंके चुने हुए ८४ और साम्यलोकमतवादी श्रमजीवीसंघके चुने हुए २५ प्रतिनिधि थे। परन्तु फिर भी इन दलोंमें सिद्धान्तसम्बन्धी कोई विशेष मतभेद नहीं है। दोनों ही दल अर्फर्टवाले प्रोग्रामपर अटल हैं। उनका मुख्य उद्देश्य यह है कि बिना दूसरे दलोंकी सहायताके जर्मनीके श्रमजीवियोंका उद्धार किया जाय। साम्यलोकमतवादियोंका दल जर्मन साम्राज्यके बजटोंका बराबर विरोध करता आया है। इस विरोधका कारण केवल यही नहीं है कि सार्वजनिक धनका व्यय सैनिक कार्योंमें होता है बल्कि यह भी एक कारण है कि देशमें जितने कर लगते हैं उन सबका बोझ अप्रत्यक्ष रूपसे प्रायः दरिद्र श्रमजीवियोंपर ही होता है। ये साम्यलोकमतवादी साम्राज्यकी औपनिवेशिक तथा व्यापारिक नीतिके बराबर कट्टर विरोधी रहे हैं और सब लोगोंको सब प्रकारसे स्वतंत्र करनेके लिये बराबर प्रयत्न करते रहे हैं। जो कानून उनके सिद्धान्तोंके विरुद्ध होते हैं उनका वे घोर प्रतिवाद करते हैं और जो उनके सिद्धान्तोंके अनुकूल होते हैं उनका तन मन धनसे समर्थन करते हैं। तात्पर्य यह कि वे जर्मनीके श्रमजीवियोंके सच्चे प्रतिनिधि और वकील हैं। अपने आरम्भिक नेताओंके प्रति भी उनके मनमें पूरा आदर और श्रद्धा है। जहाँ जहाँ उनकी वार्षिक कांग्रेसें होती हैं वहाँ वहाँ लैसेल, मार्क्स, एंजेल्स और लेब्कनेक्ट आदिकी मूर्त्तियाँ बहुत सम्मानपूर्वक और सजधजके साथ मंचोंपर रक्खी जाती हैं।

परन्तु यह बात स्पष्ट है कि यदि जर्मनीके साम्यलोकमतवादी अपने देशके श्रमजीवियोंका सच्चा और पूरा उद्धार करना चाहते हों तो उन्हें अन्धविश्वासी साम्प्रदायिकोंका स्वरूप न धारण करना चाहिए। मा-

र्क्सने साम्यलोकमतवादके लिये जो सिद्धान्त और कार्यप्रणाली स्थिर कर दी है उसपर बराबर समय समयपर विचार होना चाहिए और आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्त्तन तथा परिवर्द्धन भी होना चाहिए। ढंगसे माळूम होता है कि जर्मनीके साम्यलोकमतवादी मार्क्सके वचनोंको प्रायः वेदवाक्यके तुल्य मानते हैं। परन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए। मार्क्सका मत था कि लोकमतवादकी स्थापनाके लिये यदि आवश्यकता हो तो दूसरे उन्नतदलोंके साथ सहयोग भी कर लेना चाहिए। उसका यह भी मत था कि शान्तिपूर्ण विकासमें भी बहुत कुछ उन्नति हो सकती है और उसका यह भी विश्वास था कि अमेरिका इंग्लैण्ड और हालैण्ड आदि देशोंके श्रमजीवी शान्तिपूर्ण उपायोंसे भी अपना उद्देश्य सिद्ध कर सकते हैं। यदि इस प्रकारकी उद्देश्यसिद्धिके लिये और भी अधिक अनुकूल समय आ जाय तो मार्क्सके अनुयायियोंको उचित है कि वे शान्तिपूर्ण उपायोंके अवलम्बनपर ही अधिक जोर दें।

सन् १८९९ में बर्नस्टेनने एक विचारपूर्ण ग्रन्थ लिखा था जिसमें उसने मार्क्सके सिद्धान्तोंकी बहुत अच्छी आलोचना की थी। जिस प्रकार मार्क्सने संसारकी शिल्प और व्यापारसम्बन्धी उन्नतिका अध्ययन किया था उसी प्रकार बर्नस्टेनने अपने देशके राजनीतिक विकासका मनन किया था। बर्नस्टेनका मत था कि यह बात ठीक नहीं है कि इस समय संसारमें दरिद्रश्रमजीवियों और पूँजीदारोंमें जो झगड़ा चल रहा है उसके परिणामस्वरूप शीघ्र ही कोई बड़ा भारी सामाजिक विप्लव होगा। उसका यह भी मत था कि केवल शान्तिपूर्ण उपायोंसे ही उद्देश्यसिद्धिकी बहुत कुछ आशा हो सकती है। यदि राज्य लोकमतवादके सिद्धान्तोंपर स्थापित हो जाय और लोग सहयो-

कि सिद्धान्तोंपर काम करने लगें तो शीघ्र ही अनेक शुभ परिणाम हो सकते हैं। इंग्लैण्डमें जिस प्रकार साम्यवादके सम्बन्धमें फेबियन तथा दूसरे विचारशीलोंने प्रायः बिलकुल नए सिद्धान्त स्थिर किए हैं उसी प्रकार जर्मनीमें भी बर्नस्टेनके अनुयायियोंका एक नया दल खड़ा हो गया है जो पुराने सिद्धान्तोंके दोष दूर करके उन्हें अधिक उपयोगी बनाना चाहता है। इस नए दलके जो सिद्धान्त हैं उनकी पुष्टि प्रत्यक्ष घटनाओंसे होती है। प्रायः २०–२५ वर्ष पहले जिस व्यापारसंघवादका इंग्लैण्डके बाहर कोई नाम भी न जानता था वह व्यापारसंघवाद जर्मनीमें बहुत ही शक्तिशाली हो गया है और साम्य-लोकमतवादी भी उसका महत्त्व तथा उपयोगिता मानने लग गए हैं। जर्मनीमें व्यापारसंघोंके अनेक दल हैं जिनमेंसे कुछ साम्यलोकमतवादके विरोधी हैं। सन् १९१२ के अन्तमें इन संघोंके सदस्योंकी संख्या २५९७८१ थी और सारे साम्राज्यमें सब मिलाकर प्रायः ३० लाख व्यापारसंघवादी थे। यद्यपि उन संघोंकी आर्थिक अवस्था उतनी अच्छी नहीं है तथापि उनके सदस्योंकी संख्या बहुत है। इसके अ-तिरिक्त साम्यवादके इस नए क्षेत्रमें जर्मन लोग कुछ बादमें आए हैं। इसलिये उन्होंने बहुतसी छोटी छोटी और परस्परविरोधी संस्थाएँ न स्थापित करके थोड़ी सी बहुत बड़ी और व्यवस्थित संस्थाएँ स्था-पित की हैं।

सहयोगके सम्बन्धमें भी ठीक यही बात है। यदि सहयोग-समि-तियोंकी बहुत अधिक संख्यामें स्थापना होने लगे तो थोड़े ही सम-यमें केवल शान्तिपूर्ण उपायोंसे श्रमजीवियोंकी दशा बहुत कुछ सुधर सकती है। और इसके अतिरिक्त बड़ा लाभ यह हो सकता है कि लोग काम करनेका अच्छा ढंग सीख सकते हैं। जर्मनीमें पहले छोटे

छोटे कृषकों और कारीगरोंने ही सहयोगसमितियाँ स्थापित की थीं। अब उन समितियोंने बहुत उन्नति कर ली है और अनेक दूसरे व्यवसायी तथा शिल्पी भी सहयोग-समितियाँ स्थापित कर रहे हैं। इन समितियोंकी साम्यलोकमतवादी भी अच्छी प्रशंसा करते हैं।

हम ऊपर कह आए हैं कि मार्क्सका सिद्धान्त था कि यदि आवश्यकता पड़े तो अपने उद्देश्योंकी सिद्धिके लिये देशके दूसरे राजनीतिक दलोंके साथ मेल-मिलाप बढ़ा लेना चाहिए। जर्मनसाम्यलोकमतवादी इस मतके अनुसार बराबर ठीक ठीक काम करते आए हैं। वे जब उपयुक्त समय देखते हैं तब चुनाव आदिके कामोंमें दूसरे दलोंकी भी सहायता करते हैं और बदलेमें उनसे सहायता पाते हैं। सन् १९०७ और १९१२ में साम्यलोकमतवादियोंने ऐसा ही किया था। बात यह है कि काम सदा पहले होते हैं और उनके सम्बन्धमें सिद्धान्त हमेशा पीछे बनते हैं। जो सिद्धान्त एक बार स्थिर हो जाता है वह सदा समानरूपसे काम नहीं दे सकता। कार्यप्रणाली और नीति बराबर बदलती रहती है और उन्हींके अनुसार सिद्धान्त स्थिर होते हैं।

जर्मन साम्यलोकमतवादी दल अपने देशका केवल सबसे बड़ा राजनीतिक दल ही नहीं है बल्कि उसका संगठन भी बहुत विशाल है। सन् १९१३ में ९८२८५० सदस्य थे जिनमेंसे १४१११५ स्त्रियाँ थीं। सन् १९१२ में उसके प्रधान कार्यालयमें एक लाख पाउण्डकी आय हुई थी, इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न स्थानिक कार्यालयोंमें जो आय हुई थी वह अवश्य ही कहीं इससे अधिक होगी। उस समय इस दलके ९३ समाचारपत्र और सामयिकपत्र थे जिनकी ग्राहक-संख्या १८ लाख थी। इस दलके प्रधान मुखपत्रकी पौने दो लाख

तियाँ छपती थीं और उसे प्रतिवर्ष १५००० पाउण्ड लाभ होता ा। यह मुखपत्र तथा दूसरे समाचारपत्र आदि अब भी निकलते हैं ौर उनकी संख्या भी बराबर बढ़ती है। इस दलका सब कार-बार क कांग्रेसमें होता है जिसकी बैठक प्रतिवर्ष होती है। इस कांग्रेसमें भिन्न भिन्न स्थानिक संस्थाओंके सदस्योंकी संख्याके हिसाबसे प्रतिनिधि ाते हैं। इसके अतिरिक्त कार्यकारिणी सभाके सब सदस्य तथा रेश्टै-के साम्यलोकमतवादी सदस्य भी उसमें सम्मिलित होते हैं। यह ांग्रेस प्रतिवर्ष अपनी कार्यकारिणी समिति और उसके पदाधिकारि-ोंका चुनाव करती है। इसके ६ मंत्री होते हैं जिनमें एक स्त्री भी ावश्य होती है। इन सब पदाधिकारियोंको वेतन मिलता है और उन्हें ापना सारा समय साम्यलोकमतवादी दलके कामोंमें ही लगाना ाड़ता है। इन पदाधिकारियोंके अधीन बहुतसे क्लर्क आदि भी होते ैं। इसके अतिरिक्त जिलोंकी और स्थानिक संस्थाओंके सैकड़ों वेतन-ोगी मंत्री होते हैं।

साम्यलोकमतवादकी संस्थाका यह संगठन बहुत ही पूर्ण है। उसके सदस्य केवल चन्दा देकर ही निश्चित नहीं हो सकते। उनका यह मुख्य कर्त्तव्य होता है कि साम्यलोकमतवादसम्बन्धी साहित्यका प्रचार करें, अपने दूसरे साथियोंको वादविवाद करके और समझा-बुझाकर अपने दलमें मिलावें और चुनाव तथा बड़ी बड़ी सभाएँ कर-नेके काममें पूरी पूरी सहायता करें। जब रेश्टैगके सदस्योंके चुनावका समय आता है तब सारे देशमें साम्यलोकमतवादियोंकी पल्टनोंकी पल्टनें मशीनकी तरह काम करती हुई दिखाई देती हैं। इन्हीं सब कारणोंसे चुनावके समय साम्यलोकमतवादी दलको दूसरे समस्त दलोंसे अधिक सफलता होती है। रेश्टैगमें जर्मनीके प्रत्येक बड़े नगरका एक

न एक साम्यलोकमतवादी प्रतिनिधि अवश्य होता है। यह दल केवल राजनीतिक क्षेत्रमें ही अपना सारा समय, धन और बल नहीं लगा देता बल्कि सर्वसाधारणमें विज्ञान, कला और दर्शन आदि शास्त्रोंका भी बहुत कुछ प्रचार करता है। इस दलने भिन्न भिन्न स्थानोंमें चार पाँच सौ ऐसी समितियाँ स्थापित की हैं जो केवल शिक्षा-प्रचारका ही काम करती हैं। इन सब समितियोंकी एक प्रधान सभा भी है जो स्थानिक समितियोंको सदा उपयुक्त परामर्श और सहायता दिया करती है। सन् १९१२–१३ में केवल इन्हीं शिक्षाप्रचारिणी सभाओं और समितियोंका व्यय ३५ हजार पाउण्डसे अधिक था। उन्होंने उस वर्ष अर्थ-शास्त्र, इतिहास, साहित्य, कला, साम्यवाद, दर्शन, सहयोग, व्यापार-संघवाद, राजनीतिक विज्ञान तथा शिल्पसम्बन्धी विषयोंपर भिन्न भिन्न स्थानोंमें प्रायः ३५०० व्याख्यान कराए थे। अपने उद्देश्योंकी सिद्धिके लिये ये सभाएँ गान वाद्य और नाटकों आदिका भी खूब प्रबन्ध करती हैं। अनेक ऐसे थिएटर हैं जिनमें अच्छे अच्छे पात्र अनेक पुराने बढ़िया बढ़िया नाटकोंके अतिरिक्त आधुनिक ऐसे नाटकोंका भी अभिनय करते हैं जिनसे साम्यलोकमतवादके सिद्धान्तोंका प्रचार होता है। इस कामके लिये सिनामेटोग्राफसे भी बहुत कुछ सहायता ली जाती है।

इन संस्थाओंमेंसे बर्लिनका एक कालेज विशेष उल्लेखयोग्य है। प्रतिवर्ष भिन्न भिन्न अवस्थाओंके ३१ पुरुष और स्त्रियाँ चुनी जाती हैं जिन्हें उस कालेजमें इतिहास, अर्थशास्त्र, साम्यवाद, समाजशास्त्र, शिल्पविज्ञान, भाषण, लेखन तथा दूसरे अनेक उपयोगी विषयोंकी अच्छी शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक विद्यार्थीको जबतक वह विद्यालयमें शिक्षा पाता है उसके खाने पहनने आदिका कुल व्यय दिया जाता है। इस प्रकार नित्य बहुतसे ऐसे लोग तैयार होते रहते हैं

जो या तो देशमें आन्दोलन करके साम्यवादके सिद्धान्तोंका प्रचार करते हैं और या दलकी बड़ी बड़ी संस्थाओंमें अच्छे अच्छे पद ग्रहण करके उनके कार्योंका संचालन करते हैं। इस विद्यालयका वार्षिक व्यय २००० पाउण्ड है जिसमेंसे आधा केवल विद्यार्थियोंको वृत्ति-स्वरूप दिया जाता है।

इस दलका एक विशेष विभाग स्त्रियोंके लिये भी है जो प्रायः डेढ़ लाख साम्यलोकमतवादिनी स्त्रियोंके सम्बन्धमें काम करता है। प्रति-वर्ष मईका दिन साम्यलोकमतवादिनी स्त्रियोंका दिन माना जाता है। उस दिन सारे देशमें सैकड़ों, हजारों ऐसी सभाएँ होती हैं जो स्त्रियोंको मतदानका विशेष अधिकार दिलानेका प्रयत्न करती हैं। साम्यवाद-सम्बन्धी सिद्धान्तोंका स्त्रियोंमें प्रचार करनेके लिये बहुतसी पुस्तिकाएँ छापकर बाँटी जाती हैं और दलकी वार्षिक कांग्रेसके कुछ ही पहले स्त्रियोंकी एक विशेष कान्फ्रेन्स होती है। इस दलकी बहुतसी स्त्रियाँ बालकोंकी रक्षाके लिये सभाएँ और समितियाँ आदि संगठित करके समाजकी बहुत अच्छी सेवा करती हैं। इस प्रकारकी संस्थाएँ २०० से अधिक स्थानोंमें स्थापित हैं। बालकोंके सम्बन्धमें सरकार जो नियम बनाती है यदि उन नियमोंका कहीं भंग होता है तो ये स्त्रियाँ तुरन्त उसे रोकनेका प्रयत्न करती हैं। कारखानोंमें काम करनेवाले बालकोंपर ये स्त्रियां किसी प्रकारका अत्याचार नहीं होने देतीं। बहुतसे अवसरोंपर इन स्त्रियोंका काम उन सरकारी इन्सपेक्टरोंके कामसे भी कहीं अच्छा होता है जो कारखानोंकी देखभालके लिये नियुक्त होते हैं।

यद्यपि बालक और छोटी अवस्थाके लोग साम्यलोकमतवादी दलमें सम्मिलित नहीं हो सकते तथापि यह दल उन लोगोंको साम्य-

वादके सिद्धान्तोंसे अवश्य परिचित कराता रहता है। इस कामके लिये छ सात सौ स्थानिक सभाएँ स्थापित हैं और एक विशेष समाचारपत्र निकलता है जिसकी प्रायः एक लाख प्रतियाँ छपती हैं। प्रायः स्थानोंमें बालकोंके लिये अलग पुस्तकालय हैं। सन् १९१२-१३ में बालकों और नवयुवकोंके लिये छोटी मोटी पुस्तिकाओंकी सवा आठ लाख प्रतियाँ बँटी गई थीं; साढ़े चार हजार व्याख्यान हुए थे, ढाई हजार गाने बजाने और जलपान आदिकी पार्टियाँ हुई थीं और साढ़े चौदह हजार मेलों तमाशों, अजायबघरों और दूसरे अच्छे अच्छे स्थानोंकी सैर हुई थी।

इधर कुछ दिनोंसे स्थानिक और म्यूनिसिपल शासनमें सुधार-करानेके लिये यह दल बहुत जोर दे रहा है। इसका उद्देश्य है कि म्यु-निसिपैलिटीसम्बन्धी और स्थानिक शासनके सब कार्य्य साम्यवादके सिद्धान्तोंके अनुसार किए जायँ। इस उद्देश्यकी सिद्धके लिये हजारों आदमी बराबर काम किया करते हैं और उन्हें अच्छी सफलता होती है। इस समय म्यूनिसिपल क्षेत्र ही साम्यलोकमतवादियोंका सबसे अधिक ध्यान आकृष्ट कर रहा है। सर्वसाधारणको म्यूनिसिपल तथा स्थानिक शासनके स्वरूप और ढंग आदि बतलानेके लिये ही एक विशिष्ट समाचारपत्र निकलता है। इधर हालमें [illegible] भी इस दलके भाव बहुत कुछ [illegible] हैं। पहले [illegible] समझते थे कि आजकल पूँजी [illegible] प्रचलित [illegible], देशपर चाहे जर्मनोंका अधि [illegible] [illegible]ोंका [illegible] श्रमजीवियोंके [illegible] न्तु [illegible] [illegible] कह [illegible]

और मरनेको तैयार हूँ। यहाँ आकर मार्क्सके विचारोंपर लैसेलके विचारोंको विजय प्राप्त हो गई है। यद्यपि यह दल अबतक देशके समस्त राज्यों और जातियोंमें शान्ति और सद्भाव ही स्थापित करनेका प्रयत्न करता आया है और जर्मनीकी जल तथा स्थल-सेनाको बढ़ानेका बराबर विरोध ही करता रहा है तथापि उसमें स्वदेशाभिमानका भाव पहलेकी अपेक्षा बहुत बढ़ गया है।

जर्मनसाम्यवादियोंको सबसे अधिक सफलता इस कारणसे हुई है कि वे केवल असम्भव आदर्शोंकी ओर दृष्टि रखकर हवाई किले ही नहीं बाँधा करते बल्कि इस बातका भी पूरा ध्यान रखते हैं कि हम अपने आदर्शोंको कार्य द्वारा प्रत्यक्ष कर सकते हैं या नहीं। यद्यपि बहुधा उनकी दृष्टि आकाशकी ही ओर रहती है तथापि उनके पैर सदा जमीनपर जमे रहते हैं। यद्यपि उनमेंसे बहुतोंका यह विश्वास है कि मार्क्सके सिद्धान्तके अनुसार कभी न कभी पूँजीदारीकी प्रथाका बिलकुल अन्त हो जायगा और तब साम्यवादके सिद्धान्तोंका यथेष्ट प्रचार होगा; तथापि वे कभी यह नहीं कहते कि वर्त्तमान समस्याओंकी मीमांसा केवल साम्यवादके सिद्धान्तोंके प्रचारसे ही हो सकती है। राजनीतिक अधिकार प्राप्त करनेके लिये वे सैकड़ों उपायोंका अवलम्बन करते हैं। वे परिणामकी ओर विशेष ध्यान न रखकर राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक कल्याणके लिये अनेक प्रकारके प्रयत्न करते हैं। इन प्रयत्नोंमें उन्हें जो अनुभव प्राप्त होता है उसीको सिद्धान्त रूपमें परिणत करके वे अपना भावी कार्यक्रम निश्चित करते हैं और दिनपर दिन वह योग्यता प्राप्त करते जाते हैं जिसके द्वारा समय पड़नेपर वे साम्यवादी साम्राज्य स्थापित करके भलीभाँति उसका सञ्चालन कर सकते हैं। इस प्रकार अन्यान्य राष्ट्रोंकी तरह

जर्मनी भी अब यह अच्छी तरह समझने लग गया है कि साम्यवादके सिद्धान्तोंका प्रचार क्रान्तिकी सहायतासे नहीं बल्कि विकासके द्वारा ही हो सकता है ।

१३ अगस्त १९१३ को स्वीजरलैण्डमें आगस्ट बेबेलका देहान्त हो गया । ज्यूरिच नगरमें उसकी जो रत्थी निकली थी उसके साथ प्रत्येक युरोपीय देशके सैकड़ों प्रतिनिधि थे । वह मार्क्सके समकालीनों और सहयोगियोंमेंसे था और अपनी मृत्युके समयतक साम्यवादी आन्दोलनका बराबर नेता बना रहा । जर्मनी देश तथा वहाँकी रेश्टैगमें उसका बहुत दवदबा था । वह बराबर एकताका उपदेश देता था और क्रान्तिकारियोंको उग्र उपाय करनेसे रोकता था, परन्तु साथ ही वह कभी अपनी पुरानी नीतिको परिवर्त्तित करनेके लिये तैयार न होता था । अब उस दलका नेतृत्व हर एबर्टको मिला है जो बहुत समझदार आदमी है । वह अपने दलके जिस विभागका नेता है उसमें पूरी एकता है और उसके कारण उग्र उपायोंका अवलम्बन रुकता है ।

फ्रान्स ।

१७८९ से १८७१ तक फ्रान्स देशमें अनेक बड़े बड़े राजनीतिक परिवर्त्तन हुए थे जिसके कारण उस देशमें किसी प्रकारकी दृढ़ राजनीतिक दलबन्दी न हो सकी थी । फ्रान्सीसी साम्यवादके प्रत्येक नेताके कुछ थोड़े बहुत शिष्य और अनुयायी होते थे । फ्रान्सीसी साम्यवादके इतिहाससे यही सिद्ध होता है कि उसमें भिन्न भिन्न नेताओंके अलग अलग दल बनते थे जो कभी तो आपसमें मिलकर नए दल खड़े कर लिया करते थे और कभी पुराने दलोंको छोड़कर नए दल बनाते थे । इस प्रकार वहाँ बराबर पुराने दल टूटते और नए

वनते थे परन्तु उनमें कभी कोई स्थायी और दृढ़ दल नहीं बना था।

सन् १८७१ में जब पेरिसके कम्यूनवाले उपद्रवका दमन हुआ तब अधिकांश फ्रान्सीसी साम्यवादी या तो फाँसी चढ़ा दिए गए और या देशसे निर्वासित कर दिए गए। उनमें जूल्स गेस्ड नामक एक युवक भी था जिसे ५ वर्षके लिये देशनिकाला मिला था। उसने सन् १८७७ में फ्रान्स लौटकर मार्क्सके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये एक समाचारपत्र निकालना आरम्भ किया। वह वड़ा विकट आन्दोलनकारी था। १८७९ में मार्सेल्स नगरमें जो व्यापारसंघकांग्रेस (Trade Union Cogress) हुई थी उसमें मार्क्सके सिद्धान्तोंपर वनाया हुआ उसीका प्रोग्राम या कार्यक्रम स्वीकृत था हुआ और उस दलने अपना नाम साम्यवादी श्रमजीवीदल (Socialist Labour) रक्खा था। परन्तु १८८१ वाले चुनावमें उस दलको सफलता नहीं हुई और १८८२ वाली कांग्रेसमें पाल व्राउस नामक साम्यवादीने एक नया दल खड़ा करके गेस्डवाले दलको दवा दिया। १८९० तक फ्रान्समें साम्यवादियोंके ५ दल हो गए। १८९३ के चुनावमें साम्यवादियोंने चेम्वर आफ डेप्यूटीज (Chember of Deputies =प्रतिनिधि सभा) के लिये ४० प्रतिनिधि चुने थे जिनके पक्षमें प्रायः ५ लाख वोट आए थे। इसके उपरान्त सन् १९०६ तक साम्यवादियोंके अनेक नए दल वनते और टूटते रहे परन्तु अन्तमें १९०६ में जारेस नामक साम्यवादीके नेतृत्वमें उन्होंने एक संयुक्त साम्यवादीदल (Unified Socialist Party) वनाया। यद्यपि अव सव दल मिलकर एक हो गए हैं तथापि उनका पुराना दलवन्दीवाला भाव नहीं गया है और उसमें पूरी पूरी एकता नहीं आई है।

सन् १९०६ में चेम्बर आफ डिपुटीजका जो चुनाव हुआ था उसमें ५४ साम्यवादी चुने गए थे जिनके पक्षमें ८७७९९९ वोट आए थे। १९१० में यह दल ७६ तक पहुँच गया और उसने ११२५८७७ वोट प्राप्त किए थे। १९१४ के चुनावमें साम्यवादी डिप्टियोंकी संख्या १०२ तक पहुँच गई। इसके अतिरिक्त चेम्बरमें ३० स्वतंत्र साम्यवादी (Indepedent Socialist) भी चुने गए थे। १९१२ में इस दलकी संस्थामें प्राय: ८०००० सदस्य थे और १९११ में उसकी आय ६३८० पाउण्ड हुई थी। १९१२ में म्युनिसिपलटियोंके चुनावमें ५५३० साम्यवादी चुने गए थे और २८२ स्थानोंमें उनकी पूरी पूरी प्रधानता थी। स्वयं पेरिसकी म्यूनिसिपैलटीके ८० सदस्योंमेंसे १५ साम्यवादी थे। तात्पर्य यह कि फ्रान्समें भी साम्यवादका उतना ही जोर है जितना कि जर्मनीमें। परन्तु यह जोर इसलिये ज्यादा काम नहीं आ सकता कि उसका उचित संगठन नहीं है। फ्रान्समें साम्यवादसम्बन्धी दल तो उतना बलवान् नहीं है परन्तु वहाँ उसके सिद्धान्तोंका पूरा पूरा प्रचार है। मंत्रिमंडलतकमें प्राय: साम्यवादियोंको स्थान मिलता है। वहाँ साम्यवादीदलका मुख्य नेता जेन जारेस बहुत ही प्रभावशाली और शक्तिसम्पन्न है। वहाँका सबसे बड़ा लेखक एनेटोल फ्रान्स भी साम्यवादी ही है और सदा अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करता रहता है। इसलिये फ्रान्सके साम्यवादके बलका अनुमान केवल वोटोंकी संख्यासे नहीं किया जा सकता। वह उस देशके राजनीतिक और मानसिक जीवनका एक प्रधान अंग है।

बेल्जियम।

बल्जियमका साम्यवादसम्बन्धी आधुनिक इतिहास सबसे अधिक मनोरञ्जक है। जितने कष्ट उस देशके श्रमजीवियोंने सहे हैं, उतने

कष्ट किसी और देशके श्रमजीवियोंने नहीं सहे। इधर बहुत दिनोंसे वहाँके श्रमजीवी अज्ञानान्धकारमें थे; उनसे अधिक समयतक काम लिया जाता था और उन्हें थोड़ा वेतन दिया जाता था; न तो उन्हें किसी प्रकारके राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे और न उनका कोई संगठन था, परन्तु इधर थोड़े दिनोंमें वहाँ आश्चर्यजनक जागृति हुई है और वहाँका साम्यवादी आन्दोलन बहुत ही दृढ है। बेल्जियमके श्रमजीवी दलका संगठन राजनीतिक उद्देश्यसे १८८५ में हुआ था। उसने अपने आसपासके देशोंसे अच्छी शिक्षा ग्रहण करके अपना कार्य आरम्भ किया था। इंग्लैण्डसे उसने सहयोग और आत्मावलम्बनकी शिक्षा ली, जर्मनीसे राजनीतिक चालें और मूल सिद्धान्त सीखे और फ्रान्सकी आदर्श प्रवृत्तियोंको ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त उसने अपना कार्यक्षेत्र भी बहुत विस्तृत किया और अपने दलमें कभी वैमनस्य या विरोध न उत्पन्न होने दिया।

बेल्जियममें प्रतिनिधियोंकी जो चेम्बर है, पहले उसके १६६ सदस्य हुआ करते थे। १९०० में उस चेम्बरमें श्रमजीवी दलके ३३,१९०२ में ३४, १९०४ में २८, १९०६ में ३०, १९०८ में ३४, १९१० में ३५ और १९१२ में ३९ सदस्य थे। १९१२ में नई व्यवस्थाके अनुसार चेम्बरके सदस्योंकी संख्या १८६ हो गई जिसमेंसे १०१ सदस्य इस दलके चुने गए। इनके पक्षमें जो वोट आए थे उनकी संख्या अनुमानतः छ लाख थी। इस दलकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह प्रायः अपने देशके उदार दलके साथ मिलकर काम किया करता है जिससे उसका बल और भी बढ़ जाता है।

बेल्जियमके प्रायः सभी प्रधान नगरोंमें साम्यवादियोंने शिल्प और व्यापार आदिके लिये अनेक बड़ी बड़ी सहयोगसमितियाँ स्थापित

की हैं जिन्हें अन्यान्य समस्त देशोंके साम्यवादियोंकी स्थापित समितियों आदिकी अपेक्षा सबसे बढ़ चढ़कर सफलता प्राप्त हुई है। इस प्रकारकी सबसे पहली समिति १८७३ में घेण्ट नगरमें एक कम्पोजीटरने स्थापित की थी जो बादमें वहाँकी पार्लिमेण्टका सदस्य हो गया था; और कदाचित् अबतक है। सन् १८८० में एक नई व्यापारसमिति स्थापित हुई थी जिसका आरम्भिक मूल धन पौने तीन पाउण्डसे कुछ ही अधिक था परन्तु आजकल जिस इमारतमें उस समितिका प्रधान कार्यालय है वह घेण्ट नगरकी सबसे अच्छी इमारतोंमें समझी जाती है। उसके कई भोजनागार हैं जिनमें मद्यकी बिक्री बिलकुल नहीं होती। उसमें ३२००० पुस्तकोंका एक पुस्तकालय भी है। यहाँ हम यह बतला देना चाहते हैं कि उक्त सहयोगसमितिकी स्थापना केवल रोटियाँ पकाकर बेचनेके लिये ही हुई थी, क्योंकि मजदूरोंको रोटियाँ बहुत मँहगी मिलती थीं। यह समिति बहुत अच्छी और सस्ती रोटियाँ बनाकर मजदूरोंके हाथ बेचती है। इसके अतिरिक्त उसकी एक दूकान कोयलेकी, ७ दूकानें दवाओंकी, ६ दूकानें कपड़ोंकी, ६ दूकानें जूतोंकी और २३ दूकानें किरानेकी हैं। एक छापेखाने, कई रूईकी मिलों, आरायशी सामान बनानेवाले कारखानों और एक सेविंगबैंकके साथ भी उसका बहुत कुछ सम्बन्ध है। जो लोग २० वर्षतक उसके सदस्य रहकर बराबर उससे माल खरीदा करते हैं उन्हें २ से ४॥ शिलिंगतक प्रति सप्ताह समितिसे पेन्शिन भी मिला करती है। १९१२ में इस पेन्शिनकी मदमें उक्त समितिने प्रायः २३०० पाउण्ड बाँटे थे। इसी प्रकारकी एक संस्था ब्रसेल्स नगरमें है जो सार्वभौम साम्यवादियोंका मुख्य केन्द्र है। इसकी स्थापना १८८१ में हुई थी। यह भी उक्त समितिका सा ही काम

करती है। १९१२ में इसके २५००० सदस्य और ४५० नौकर थे। यह समिति अपने लाभका कुछ अंश अपने ग्राहकोंमें भी बाँट दिया करती है और उनके रोगी होनेपर उनके भोजन तथा औषध आदिकी भी व्यवस्था कर देती है। राजनीतिक कार्योंमें भी प्रतिवर्ष इसके हजारों पाउण्ड खर्च होते हैं। व्यापारसंघों तथा साम्यवादियोंकी बड़ी बड़ी सभाओं और कान्फ्रेन्सोंकी भी इसके द्वारा व्यवस्था होती है। बेल्जियमकी इन सहयोग समितियोंके कारण ही वहाँका साम्यवादी दल ऐसा बलवान् है जिसकी समता सहजमें और किसी देशका साम्यवादी दल नहीं कर सकता।

इटली।

इटली कृषिप्रधान देश है और उसके दक्षिणी भागके निवासी प्रायः अशिक्षित हैं। पहले वहाँ केवल शिक्षितोंको ही मत देनेका अधिकार प्राप्त था जिसके कारण सारी आबादीमेंसे प्रति सैकड़े केवल ७ आदमी ही वोट दे सकते थे; परन्तु १९१३ में मताधिकारियोंकी संख्या बहुत बढ़ा दी गई और अब प्रति सैकड़े २४ आदमी वोट देनेके अधिकारी हैं। उत्तर इटलीमें कृषकोंकी जैसी अच्छी सहयोग समितियाँ हैं बहुतसे अंशोंमें उनकी बराबरी किसी देशके कृषकोंकी सहयोगसमितियाँ नहीं कर सकतीं। परन्तु दक्षिण इटलीके निवासियोंकी दशा बहुत ही शोचनीय है। वे दरिद्र भी हैं, पराधीन भी और अशिक्षित भी।

पहले फ्रान्सकी तरह इटलीमें भी साम्यवादियोंके छोटे छोटे दल हुआ करते थे जो बराबर टूटते और बनते रहते थे; परन्तु १८९२ की जेनेवावाली कांग्रेसमें कुछ साम्यवादियोंने अराजकोंका साथ छोड़कर अपना स्वतंत्र दल खड़ा किया था। उसी वर्षके चुनावमें इस

दलके ६ प्रतिनिधि चुने गए थे जिनके पक्षमें केवल २६०० वोट थे। इसके बाद उनकी संख्या बराबर बढ़ती गई यहाँतक कि १९०० में चेम्बरके लिये उस दलके ३२ सदस्य चुने गए और उनके पक्षमें पौने दो लाख वोट आए। १९०४ के चुनावमें वोट तो प्रायः सवा-तीन लाख आए थे परन्तु सदस्य २७ चुने गए थे और १९१३ के चुनावमें चुने हुए साम्यवादी प्रतिनिधियोंकी संख्या ७७ तक पहुँच गई थी।

इटलीके साम्यवादी दलके सम्बन्धमें सबसे विलक्षण बात यह है कि उसमें अधिकांश मध्यमश्रेणीके लोग ही हैं। अन्यान्य देशोंमें साम्य-वादियोंके नेता प्रायः ग्रैजुएट और कानूनपेशा लोग ही होते हैं परन्तु १९०४ में इटलीमें आधे साम्यवादी श्रमजीवी वर्गके ही थे। वहाँके प्रायः सभी अच्छे अच्छे लेखक भी साम्यवादी ही हैं। इटलीमें साम्य-वादियोंके कारण थोड़ी बहुत हड़तालें और कुछ दूसरे उपद्रव हुए हैं परन्तु वे सब विशेष महत्त्वपूर्ण न होनेके कारण उल्लेखयोग्य नहीं हैं।

आस्ट्रिया हंगरी।

आस्ट्रियामें साम्यवादी दलका संगठन १८९० के लगभग हुआ था परन्तु पहले वहाँ मत देनेका अधिकार बहुत ही थोड़े लोगोंको प्राप्त था जिसके कारण १९०१ में वहाँकी पार्लिमेन्टके लिये केवल १० ही साम्यवादी सदस्य चुने गए थे। १९०५ में जब रूसमें नियंत्रित शासनकी व्यवस्था होने लगी तब आस्ट्रियामें भी बहुत जोश फैला और वहाँकी प्रजा चुनावके नियमोंमें सुधार तथा परिवर्तनके लिये आ-न्दोलन करने लगी। उस वर्ष २८ नवम्बरको जब पार्लिमेण्टका अधिवेशन आरम्भ हुआ तब समस्त साम्राज्यके श्रमजीवियोंने काम बन्द करके छुट्टी मनाई थी। प्रायः सभी स्थानोंमें चुनावके नियमोंमें

सुधार करानेके लिये बड़ी बड़ी सभाएँ हुई थीं और वहाँकी राजधानी वीना नगरमें तो वहाँकी पार्लिमेण्टके भवनतक प्रायः ढाईलाख आदमियोंका एक जुलूस जा पहुँचा था। जुलाई १९०६ में वहाँके श्रमजीवियोंने यह व्यवस्था की थी कि एक सार्वदेशिक हड़ताल हो और तीन दिनतक साम्राज्यके सब कारबार बन्द रक्खे जायँ। परन्तु हड़तालकी नौबत नहीं आई और केवल धमकीसे ही काम निकल गया। जनवरी १९०७ में ही नया कानून पास हो गया जिसके अनुसार २४ वर्षसे अधिक अवस्थावाले सब लोगोंको वोट देनेका अधिकार मिल गया। उस वर्ष मईमें जो चुनाव हुआ उसमें पार्लिमेन्टके ५१६ सदस्योंमेंसे ८७ साम्यवादी चुने गए थे जिनके पक्षमें प्रायः साढ़े दस लाख—कुल वोटोंका एक तृतीयांश—वोट आए थे। इसके अतिरिक्त ईसाई साम्यवादी दलके भी सवा सात लाख वोटोंसे ८६ प्रतिनिधि चुने गए थे परन्तु वे लोग साम्यलोकमतवादके विरोधी थे और उनके कट्टर साम्यवादी होनेमें लोगोंको बहुत कुछ सन्देह था। १९११ वाले चुनावमें साम्यवादी सदस्योंकी संख्या घटकर ८२ ही रह गई थी परन्तु इधर हालमें जबसे आस्ट्रिया हंगरीमें राज्यक्रान्ति हुई है और प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित हुआ है तबसे उनका जोर बहुत बढ़ गया है। इन देशोंके साम्यवादियोंमें सबसे बड़ा दोप यह है कि उनमें जातीय वैर-विरोधका भाव बहुत अधिक है। यह पारस्परिक वैर-विरोध उन भिन्न भिन्न जातियोंमें है जो उन देशोंमें निवास करती हैं। वर्त्तमान राज्यक्रान्तिसे पहले आस्ट्रियामें साम्यवादियोंके दो प्रधान दल थे—एक तो आस्ट्रियन साम्यलोकमतवादी श्रमजीवी दल जिसका प्रधान कार्य्यालय वीना नगरमें था और जिसकी १३६९ शाखाएँ तथा प्रायः डेढ़लाख सदस्य थे। और दूसरा शेशल्व साम्यलोकमतवादी दल जिसका प्रधान

कार्यालय प्रेग नगरमें था और जिसकी प्रायः ढाई हजार शाखाएँ तथा १४४००० सदस्य थे।

कुछ दिनों पहले हंगरी देशके निवासियोंने राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिये बहुत बड़ा आन्दोलन किया था जिसमें इंग्लैण्ड आदि देशोंकी सहानुभूतिके कारण उन्हें अच्छी सफलता भी हुई थी; परन्तु जिन सिद्धान्तोंके लिये वे लड़े थे और जिनकी स्थापनाके लिये उन्होंने अनेक प्रकारके कष्ट सहे थे उन सिद्धान्तोंका उन्होंने कोई विशेष उपयोग नहीं किया। गत युरोपीय महायुद्धसे पहले वहाँके श्रमजीवियोंमेंसे प्रति सैकड़े ४ को ही वोट देनेका अधिकार था। उन्हें कानूनन प्रतिदिन १६ घण्टोंतक काम करना पड़ता था और किसी प्रकारकी हड़ताल करनेका अधिकार न था। व्यापारसंघोंका भी कोई ज्यादा जोर नहीं था और उनमेंसे जो व्यापारसंघ कुछ जोरदार थे, कुछ वर्ष हुए, उनमेंसे ३५४ व्यापारसंघ राज्यकी ओरसे तोड़ दिए गए थे। राजनीतिक उद्देश्योंसे सभाएँ और समितियाँ स्थापित करनेकी वहाँ कानूनकी रूसे मनाही थी। साम्यवादी लोग व्याख्यान आदि देकर मताधिकारसम्बन्धी नियमोंमें सुधार करानेके आन्दोलन किया करते थे। उस दलका एक दैनिक और कुछ साप्ताहिक समाचारपत्र थे। पार्लिमेण्टके चुनावमें साम्यवादी या श्रमजीवी किसी प्रकारका हस्तक्षेप न कर सकते थे; हाँ म्युनिसिपैलिटियोंके लिये वे कठिनतासे १३६ सदस्य चुन सके थे। लेकिन गत युरोपीय महायुद्धके अन्तमें वहाँके सम्राटको सिंहासन छोड़ देना पड़ा और वहाँ प्रजातंत्र स्थापित हो गया। वहाँका प्रजातंत्र बहुतसे अंशोंमें रूसके बालशेविकतंत्रके समान ही है जिसके कारण वहाँके साम्यवादियोंका जोर बहुत बढ़ गया है और श्रमजीवियों तथा सर्वसाधारणको एक साथ ही बहुतसे राजनीतिक अधिकार मिल गए हैं।

अमेरिकन संयुक्तराज्य।

अमेरिकामें साम्यवादका प्रचार प्रायः विदेशियोंका ही किया हुआ है। बहुतसे विदेशी तथा १८४८ वाले झगड़ेमें जर्मनीके देशनिर्वासित वहाँ जाकर बस गए हैं। अधिकांश श्रमजीवी भी या तो विदेशी या उनकी सन्तानें हैं। इन्हीं सब कारणोंसे वहाँके साम्यवादकी उत्पत्ति विदेशी अथवा युरोपीय साम्यवादसे मानी जाती है। १८४८ वाले जर्मन देशनिर्वासितोंने जिस साम्यवादसम्बन्धी आन्दोलनका थोड़ा बहुत आरम्भ किया था अमेरिकाके सिविल युद्ध (civil war) के कारण उसका अन्त हो गया। १८७२ में सार्वभौम महासभाने अपना प्रधान कार्यालय न्यूयार्कमें स्थापित किया और १८७६ में फिलडेल्फिया नगरमें उसका अन्तिम महाधिवेशन हुआ। १८७७ में साम्यवादी श्रमजीवी दल संगठित हुआ जो बराबर अबतक बना हुआ है। यह दल मार्क्सके केवल वचनोंपर ही चलता था और उसका अभिप्राय या भाव न ग्रहण करता था। उसने मार्क्सके सिद्धान्तोंको अमेरिकाकी परिस्थितिके अनुकूल रूपमें परिवर्तित करनेका कोई प्रयत्न न किया था। इसके कुछ दिनों बादतक अराजकोंके उपद्रव होते रहे, परन्तु १८८७ में उस दलका सदाके लिये अन्त हो गया और प्रायः सभी अराजक नेता शिकागो नगरमें फाँसी पर चढ़ा दिए गए। १८९२ में संयुक्त राज्योंके साम्यवादियोंने राष्ट्रपतिके चुनावके सम्बन्धमें वोट संग्रह करना आरम्भ किया उस वर्ष इस दलके केवल २१५१२ और १८९८ में ८२२०४ वोट आए थे। परन्तु उस वर्ष चुनावके समस्त वोटोंकी संख्या एक करोड़ बीस लाखके लगभग थी इसलिये राजनीतिक दृष्टिसे साम्यवादी श्रमजीवी दलका कुछ भी महत्त्व न था। अमेरिकामें श्रमजीवियोंकी दो बड़ी संस्थाएँ संगठित

हुई थीं—एक संस्था तो पुरानी थी जिसका १८८६ के लगभग बहुत जोर था और जिसके उस समय प्राय: पाँच लाख सदस्य थे परन्तु पीछे धीरे धीरे उसकी अवनति होने लगी और अन्तमें वह संस्था टूट गई। आजकल वहाँ एक अमेरिकन श्रमजीवी संघ (American Federation of Labour) स्थापित है जो उस देशका सबसे अधिक शक्तिशाली व्यापारसंघ समझा जाता है। इन संस्थाओंके साथ साम्यवादी श्रमजीवी दलका कई बार झगड़ा और मेल भी हुआ था। परन्तु साम्यवादियोंका बल बराबर बढ़ता गया। १९०० में उसके पक्षके १३११२२ वोट आए थे और आगे चलकर जब साम्यवादी दल (Socialist Party) संगठित हुआ तब १९०४ में उसके पक्षके ४४२८६६ वोट आए थे। यह अन्तिम दल १९०१ में संगठित हुआ था और आजकल अमेरिकामें साम्यवादियोंका यही मुख्य दल है।

१९०८ के चुनावमें यद्यपि साम्यवादियोंके वोट कुछ घट गए थे परन्तु १९१२ में वे बढ़कर ९३०५८९ हो गए। उस वर्ष समस्त वोटोंकी संख्या १५०३४८०० थी जिससे सिद्ध होता है कि अमेरिकामें दूसरे देशोंकी अपेक्षा साम्यवादका जोर कम ही है। आस्ट्रेलियामें तो प्राय: श्रमजीवी दल ही शासन करता है, परन्तु संयुक्त राज्योंके दोनों हाउसों या पार्लिमेण्टोंके लिये वहाँका श्रमजीवी दल एक भी सदस्य नहीं चुन सका है। १९१२ में साम्यवादी दलके सदस्योंकी संख्या १२५८२६ थी और उसके १३ दैनिक और १२ मासिकपत्र निकलते थे। इस दलकी नीति जर्मन साम्यवादके संस्थापकोंकी नीतिके समान ही परन्तु विधायक है। जो सिद्धान्त मार्क्सके सिद्धान्तोंसे न मिलता हो उसे माननेके ... अमेरिकन साम्यवादी सहजमें तैयार नहीं होते

यह बात ठीक है कि अमेरिकामें किसी प्रकारका संगठन करना बहुत ही कठिन है, वहाँ प्रायः एक दर्जन भाषाएँ बोली जाती हैं और प्रायः एक कोड़ी जातियोंके वंशज निवास करते हैं। तौ भी वहाँका साम्यवादी दल धीरे धीरे राजनीतिक महत्त्व प्राप्त कर रहा है। अमेरिकाका स्थानिक शासन प्रायः पार्लिमेण्टी शासनके ढंगपर ही चलता है और सभी नगरों तथा राज्योंमें सदा एक न एक दल अधिकारारूढ़ रहता है। ऐसी दशामें कभी न कभी साम्यवादी दलके भी अधिकारारूढ़ होनेकी सम्भावना हो सकती है और दो एक स्थानोंमें एकाध वार ऐसा हुआ भी है। अमेरिकामें दो तीन ऐसे लेखक भी हैं जिनके साम्यवादसम्बन्धी ग्रन्थोंका खूब प्रचार है। आजकल विश्वविद्यालयोंसे और विशेषतः जर्मन विश्वविद्यालयोंसे जो अमेरिकन विद्यार्थी निकलते हैं प्रायः वे सभी साम्यवादी हुआ करते हैं। उनके विचार भी बहुत परिष्कृत, उन्नत तथा विधायक होते हैं जिससे आशा होती है कि अमेरिकामें शीघ्र ही बहुत शुद्ध और पुष्ट साम्यवादका विकास होगा।

अभी हालमें (नवम्बर १९१९ के आरम्भमें) अमेरिकाकी कोयलेकी खानोंमें काम करनेवाले प्रायः ५--६ लाख मजदूरोंने हड़ताल कर दी थी। वे चाहते थे कि वेतनमें ६० प्रतिसैकड़े वृद्धि की जाय; दिन भरमें ६ घंटेसे अधिक और सप्ताह भरमें ५ दिनसे अधिक काम न लिया जाय और श्रमजीवियोंको कुछ शर्तें तोड़नेपर जो विशिष्ट दण्ड दिए जाते हैं वे उठा दिए जायँ। इस हड़तालको बन्द करनेके लिये वहाँकी सरकारने पूरा प्रयत्न किया था और संघके कर्मचारियोंको नोटिस दी थी कि बहुत शीघ्र हड़ताल बन्द कर दी जाय। उसने यह भी आज्ञा दी थी कि जितने दिनोंतक मजदूरे हड़ताल रक्खें

हुई थीं—एक संस्था तो पुरानी थी जिसका १८८६ के लगभग बहुत जोर था और जिसके उस समय प्रायः पाँच लाख सदस्य थे परन्तु पीछे धीरे धीरे उसकी अवनति होने लगी और अन्तमें वह संस्था टूट गई। आजकल वहाँ एक अमेरिकन श्रमजीवी संघ (American Federation of Labour) स्थापित है जो उस देशका सबसे अधिक शक्तिशाली व्यापारसंघ समझा जाता है। इन संस्थाओंके साथ साम्यवादी श्रमजीवी दलका कई बार झगड़ा और मेल भी हुआ था। परन्तु साम्यवादियोंका बल बराबर बढ़ता गया। १९०० में उसके पक्षके १३११२२ वोट आए थे और आगे चलकर जब साम्यवादी दल (Socialist Party) संगठित हुआ तब १९०४ में उसके पक्षके ४४२८६६ वोट आए थे। यह अन्तिम दल १९०१ में संगठित हुआ था और आजकल अमेरिकामें साम्यवादियोंका यही मुख्य दल है।

१९०८ के चुनावमें यद्यपि साम्यवादियोंके वोट कुछ घट गए थे परन्तु १९१२ में वे बढ़कर ९३०५८९ हो गए। उस वर्ष समस्त वोटोंकी संख्या १५०३४८०० थी जिससे सिद्ध होता है कि अमेरिकामें दूसरे देशोंकी अपेक्षा साम्यवादका जोर कम ही है। आस्ट्रेलियामें तो प्रायः श्रमजीवी दल ही शासन करता है, परन्तु संयुक्त राज्योंके दोनों हाउसों या पार्लिमेण्टोंके लिये वहाँका श्रमजीवी दल एक भी सदस्य नहीं चुन सका है। १९१२ में साम्यवादी दलके सदस्योंकी संख्या १२५८२६ थी और उसके १३ दैनिक और १२ मासिकपत्र निकलते थे। इस दलकी नीति जर्मन साम्यवादके संस्थापकोंकी नीतिके समान ही परन्तु विधायक है। जो सिद्धान्त मार्क्सके सिद्धान्तोंसे न मिलता हो उसे माननेके लिये अमेरिकन साम्यवादी सहजमें तैयार नहीं होते।

एक अर्द्धसाप्ताहिक पत्र निकालता था। १९१२ में मुख्य दलकी १७६ शाखाएँ और १३९६८ सदस्य थे। यह दल सदा विधायक उपायोंके पक्षमें रहा है इसके चार दैनिक, १४ साप्ताहिक तथा ७ दूसरे सामायिक पत्र निकलते हैं। हालैण्डके व्यापार-संघोंकी भी दशा बहुत संतोपजनक है।

फिनलैण्ड।

फिनलैण्ड देश पहले रूस साम्राज्यके अधीन था और रूसका जार वहाँके राजनीतिक संगठनको नष्ट करनेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न करता था परन्तु अब वह देश बिलकुल स्वतंत्र हो गया है और अनियंत्रित शासनके दुष्परिणाम भोगनेसे बच गया है। युरोपमें केवल फिनलैण्डकी राष्ट्रीयसभा (National Assembly) ही एक ऐसी सभा है जिसमें स्त्रियोंको भी पुरुषोंके ही समान अधिकार प्राप्त हैं। वहाँ श्रमजीवी दलका संगठन १८९९ में हुआ था और १९०५ में एक बड़ा राजनीतिक आन्दोलन हुआ था जिसके कारण रूसके जारको विवश होकर लोकमतवादके सिद्धान्तोंके अनुसार वहाँ नियंत्रित शासनकी स्थापना करनी पड़ी थी। १९०७ के चुनावमें साम्यवादी दलने चेम्बरके २०० सदस्योंमेंसे ८० सदस्य चुने थे जिनमें ९ स्त्रियाँ भी थीं। १९११ के चुनावमें इस दलके चुने हुए सदस्योंकी संख्या ८६ थी जिनमें ९ स्त्रियाँ भी थीं। अगस्त १९१३ के चुनावमें इस दलके प्रतिनिधियोंकी संख्या बढ़कर ९० तक पहुँच गई। उस समय अन्यान्य दलोंके प्रतिनिधियोंकी संख्या २९,२८,२८ और २५ थी। इस प्रकार संसारके किसी देशकी पार्लिमेण्टमें साम्यवादियोंके अपेक्षाकृत उतने प्रतिनिधि नहीं है जितने कि फिनलैण्डकी पार्लिमेण्टमें हैं आस्ट्रेलियामें जो अधिक सदस्य हैं वे उस श्रमजीवी दलके कारण हैं

उतने दिनोंतकका वेतन उन्हें न दिया जाय । परन्तु इन पंक्तियोंके लिखनेके समयतक यह पता नहीं चला था कि इस हड़तालका क्या परिणाम हुआ ।

हालैण्ड ।

हालैण्डमें साम्यलोकमतवादी श्रमजीवी दलकी स्थापना १८९४ में हुई थी । १८९७ वाले चुनावमें उस दलवालोंके १३००० वोट थे और १०० मेंसे ३ सदस्य चुने गए थे। १९०१ में उसके ३८२७९ वोट आए थे और ७ सदस्य चुने गए थे, इसके अतिरिक्त एक स्वतंत्र साम्यवादी सदस्य भी चुना गया था । १९०५ में उसके वोटोंकी संख्या ६५७४३ और चुने हुए सदस्योंकी संख्या ७ तथा १९१० में वोटोंकी संख्या ८२४९४ परन्तु सदस्योंकी संख्या पहलेकी भाँति ७ ही थी । जून १९१३ के चुनावमें १९ साम्यवादी सदस्य चुने गए थे, इसके अतिरिक्त उदारमतवादी सदस्योंकी संख्या भी पहलेसे चार बढ़कर ३७ हो गई थी और अनुदार मतवादियोंकी संख्या ६० से घटकर ४५ रह गई थी । अन्तर्राष्ट्रीय मंडल (International Bureau) की सम्मतिसे साम्यवादियोंने निश्चित किया कि अनुदार मतवादी मंत्रिमण्डलमें हम लोगोंमेंसे कोई सम्मिलित न हो और एक विशेष कान्फ्रेंसमें भी बहुमतसे यही निश्चित हुआ था; परन्तु उदारमतवादी मंत्रिमंडलकी हर तरहसे सहायता करनेके लिये यह दल तयोर है ।

हालैण्डके शिल्पी तथा शिक्षितवर्ग साम्यवादके सिद्धान्तोंका पूरा आदर करते हैं । पहले वहाँ अराजकतावादका अच्छा प्रचार था परन्तु अब वहाँ उसका नाम भी नहीं है । उसका एक पुराना नेता जो १८८८ में पार्लिमेण्टमें चुना गया था १९१४ तक जीवित था और

एक अर्द्धसाप्ताहिक पत्र निकालता था। १९१२ में मुख्य दलकी १७६ शाखाएँ और १३९६८ सदस्य थे। यह दल सदा विधायक उपायोंके पक्षमें रहा है इसके चार दैनिक, १४ साप्ताहिक तथा ७ दूसरे सामायिक पत्र निकलते हैं। हालैण्डके व्यापार-संघोंकी भी दशा बहुत संतोषजनक है।

फिनलैण्ड।

फिनलैण्ड देश पहले रूस साम्राज्यके अधीन था और रूसका जार वहाँके राजनीतिक संगठनको नष्ट करनेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न करता था परन्तु अब वह देश बिलकुल स्वतंत्र हो गया है और अनियंत्रित शासनके दुष्परिणाम भोगनेसे बच गया है। युरोपमें केवल फिनलैण्डकी राष्ट्रीयसभा (National Assembly) ही एक ऐसी सभा है जिसमें स्त्रियोंको भी पुरुषोंके ही समान अधिकार प्राप्त हैं। वहाँ श्रमजीवी दलका संगठन १८९९ में हुआ था और १९०५ में एक बड़ा राजनीतिक आन्दोलन हुआ था जिसके कारण रूसके जारको विवश होकर लोकमतवादके सिद्धान्तोंके अनुसार वहाँ नियंत्रित शासनकी स्थापना करनी पड़ी थी। १९०७ के चुनावमें साम्यवादी दलने चेम्बरके २०० सदस्योंमेंसे ८० सदस्य चुने थे जिनमें ९ स्त्रियाँ भी थीं। १९११ के चुनावमें इस दलके चुने हुए सदस्योंकी संख्या ८६ थी जिनमें ९ स्त्रियाँ भी थीं। अगस्त १९१३ के चुनावमें इस दलके प्रतिनिधियोंकी संख्या बढ़कर ९० तक पहुँच गई। उस समय अन्यान्य दलोंके प्रतिनिधियोंकी संख्या २९,२८,२८ और २५ थी। इस प्रकार संसारके किसी देशकी पार्लिमेण्टमें साम्यवादियोंके अपेक्षाकृत उतने प्रतिनिधि नहीं है जितने कि फिनलैण्डकी पार्लिमेण्टमें हैं आस्ट्रेलियामें जो अधिक सदस्य हैं वे उस श्रमजीवी दलके कारण हैं

जो सिद्धान्ततः साम्यवादी हैं । परन्तु आस्ट्रेलियाकी भाँति फिनलैण्ड भी पहले पूर्ण स्वतंत्र नहीं था । गत रूसी राज्यक्रान्तिके उपरान्त वह स्वतंत्र हुआ है और अब आशा की जाती है कि वहाँ साम्यवादके सिद्धान्तोंका पूरा पूरा प्रचार हो जायगा । इस दलका बहुत अच्छा संगठन है और १९१२ में उसके सदस्योंकी संख्या ४८४०६ थी । इससे पहले यह संख्या बहुत अधिक थी परन्तु रूसके साथ झगड़ा होनेके कारण इधर कुछ वर्षोंसे घट गई थी । उस समय उसकी वार्षिक आय ९१५०० पाउण्ड थी और उसके ६ दैनिक तथा १० साप्ताहिक पत्र निकलते थे । फिनलैण्ड एक बहुत छोटा देश है । उसकी आबादी तीस लाखसे कुछ ही अधिक है और वहाँकी अधिकांश प्रजा कृषक है । इन सब बातोंको देखते हुए फिनलैण्डके साम्यवाद-सम्बन्धी आन्दोलनको बहुत ही दृढ और उन्नत समझना चाहिए ।

डेन्मार्क ।

डेन्मार्ककी राज्यव्यवस्था इंग्लैण्डकी राज्यव्यवस्थासे बहुत कुछ मिलती जुलती है । वहाँके साम्यलोकमतवादी दलकी स्थापना १८७८ में हुई थी तबसे वह बराबर व्यापारसंघवादके पक्षमें भी रहा है । उसकी ४०० राजनीतिक शाखाएँ और ५२००० सदस्य हैं । इसके अतिरिक्त बहुतसे व्यापारसंघ भी उससे सम्बद्ध हैं जिनके सदस्योंकी संख्या ११२००० है । इनमेंसे कुछ लोग ऐसे भी हैं जो दोनोंके सदस्य हैं । यदि उन्हें एक मान लिया जाय तो साम्यलोकमत-वाद दल और व्यापारसंघोंके १२६००० सदस्य निकलते हैं ।

अपने देशके हाउस आफ कामन्समें भी उस दलका बड़ा जोर है । सन् १९०१ से अबतक उसके चुने हुए प्रतिनिधि सदस्योंकी संख्या इस प्रकार है ।

१९०१	....	१४ सदस्य
१९०३	....	१६ ,,
१९०६	....	२४ ,,
१९०९	....	२४ ,,
१९१०	....	२४ ,,
१९१३	....	३२ ,,

इस अन्तिम चुनावमें साम्यवादियोंके वोटोंकी संख्या शेष सब दलोंके वोटोंकी संख्यासे अधिक अर्थात् १०७००० थी। उदारमतवादियोंके—जो कि साम्यवादियोंके साथ सहानुभूति रखते हैं—यद्यपि ४४ प्रतिनिधि चुने गए थे तथापि उनके वोटोंकी संख्या १०२८५० ही थी। वहाँके राजाने साम्यलोकमतवादी दलके नेता स्टानिंगसे मंत्रिमंडल संगठित करनेके लिये कहा था। परन्तु उस समय उस दलके पक्षमें पूरा पूरा बहुमत नहीं था इसलिये स्टानिंगने मंत्रिमंडल संगठित करनेसे इन्कार कर दिया और रैडिकल (Radical) दलको जो कि मताधिकारसम्बन्धी नियमोंमें सुधार करानेका वचन दे चुका था सहायता देना मंजूर किया। इधर हालमें वहाँ इस सम्बन्धमें कुछ नए सुधार भी हुए हैं। स्थानिक काउन्सिलोंपर भी साम्यवादियोंका बहुत कुछ अधिकार है। उसके ३२ दैनिकपत्र निकलते हैं जिनकी सब मिलाकर १७०००० प्रतियाँ छपती हैं।

डेन्मार्क कृषिप्रधान देश है, अतः पाठक समझ सकते हैं कि वहाँके साम्यवादियोंको ऐसी नीति स्थिर करनेमें कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा होगा जिसे कृषक लोग भी मान लेते। कृषकों तथा छोटे छोटे शिल्पियोंका सहयोग वहाँ पूर्ण रूपसे हो चुका है। इस काममें सरकार भी सदा उनकी पूरी पूरी सहायता करती है। वहाँकी

सहयोगसमितियाँ प्रायः बेल्जियमकी सहयोगसमितियोंके ढंगपर काम करती हैं।

अन्यान्य देश।

स्वीजरलैण्ड—इस देशमें अनेक जातियाँ बसती हैं और इसमें बड़ा ही विलक्षण और सर्वांगपूर्ण प्रजातंत्र स्थापित है। वहाँ किसी प्रकारकी दलबन्दी नहीं है। १८८८ में वहाँ साम्यलोकमतवादी दलकी स्थापना हुई थी जिसकी इस समय १६३० शाखाएँ और ४५००० सदस्य हैं। सन् १९१३ के चुनावमें वहाँकी राष्ट्रीयसभाके १९९ सदस्योंमेंसे १७ सदस्य साम्यवादी थे। स्थानिक शासनमें उनका इससे कुछ अधिक जोर है।

नार्वे—१८९४ में नार्वेके साम्यवादियोंके वोट केवल ७३२ थे, १९०३ में उसके २४५२६ वोट और ४ सदस्य, १९०९ में ९१ २६८ वोट और ११ सदस्य और १९१२ में १२४५९४ वोट तथा २३ सदस्य थे। इस दलके ८ दैनिक और १८ साप्ताहिक पत्र निकलते हैं। १८८७ में स्थापित श्रमजीवी दलकी, १९१२ में ८०९१ शाखाएँ और ४३५०० सदस्य थे।

स्वीडन—इस देशमें साम्यलोकमतवादी दल १८८० में संगठित हुआ था और १८८५ में व्यापारसंघवादी भी उसमें मिल गए थे। १९११ में १७२९८० वोटोंसे हाउस आफ कामन्सके २३० सदस्योंमेंसे ६४ और लार्ड्सके १३० सदस्योंमेंसे १३ सदस्य चुने गए थे। साम्यवादी दलने उदारमतवादियोंके साथ मिलकर संयुक्त सरकार स्थापित करनेसे इन्कार कर दिया था परन्तु सरकारको पूरी पूरी सहायता दी थी। स्थानिक शासनमें इस दलका जोर कुछ कम

है। इस दलके ५७७२१ सदस्य हैं और १९०८ में व्यापारसंघोंके प्रायः पौन दो लाख सदस्य थे।

स्पेन—स्पेनमें साम्यवादकी कोई विशेष उन्नति नहीं हुई है। वहाँ व्यापारसंघ अवश्य स्थापित हैं जिनके सदस्योंकी संख्या डेढ़ लाख है और संगठित दलके सदस्य ४० हजार हैं। केवल १९१० में वहाँ एक साम्यवादी प्रतिनिधि सभाके लिये चुना गया था।

पुर्त्तगाल—इस देशकी पार्लिमेण्टमें भी केवल एक ही साम्यवादी है। यद्यपि वहाँ साम्यवादी दलका संगठन १८७५ में हुआ था तथापि अबतक उसके केवल ढाई हजार सदस्य हैं। उसका एक दैनिकपत्र भी निकलता है।

यूनान—यूनानके श्रमजीवी संघकी स्थापना १९०९ में और साम्यवादी दलका संगठन १९११ में हुआ था। वहाँ बहुतसे लोग साम्यवादके सिद्धान्तोंको मानते हैं परन्तु वे संगटित नहीं हैं।

जापान—रूसकी तरह पहले जापानमें भी सरकारकी ओरसे साम्यवादका प्रचार रोकनेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया जाता था परन्तु अब वह प्रयत्न कम हो गया है। १८९७ में प्रोफेसर सेन काटायामाने साम्यवाद और व्यापारसंघवादके सिद्धान्तोंका प्रचार आरम्भ किया था। १९०१ में टोकियो नगरमें साम्यलोकमतवादी दल संगठित हुआ था जिसे पुलिसने तुरन्त ही तोड़ दिया। उस समय वहाँ अनेक साम्यवादी समाचारपत्र भी निकलने लग गए थे परन्तु वे तुरन्त ही बन्द कर दिए गए और उनके सम्पादक जेल भेज दिए गए। १९०६ में फिर एक दल संगठित करनेका उद्योग किया गया था परन्तु उसी समय साम्यवादी लोग टोकियोकी एक हड़तालमें सम्मिलित हो गए थे जिसके कारण उनकी समिति तोड़ दी गई

सहयोगसमितियाँ प्रायः बेल्जियमकी सहयोगसमितियोंके ढंगपर काम करती हैं।

अन्यान्य देश।

स्वीजरलैण्ड—इस देशमें अनेक जातियाँ बसती हैं और इसमें बड़ा ही विलक्षण और सर्वांगपूर्ण प्रजातंत्र स्थापित है। वहाँ किसी प्रकारकी दलबन्दी नहीं है। १८८८ में वहाँ साम्यलोकमतवादी दलकी स्थापना हुई थी जिसकी इस समय १६३० शाखाएँ और ४५००० सदस्य हैं। सन् १९१३ के चुनावमें वहाँकी राष्ट्रीयसभाके १९९ सदस्योंमेंसे १७ सदस्य साम्यवादी थे। स्थानिक शासनमें उनका इससे कुछ अधिक जोर है।

नार्वे—१८९४ में नार्वेके साम्यवादियोंके वोट केवल ७३२ थे, १९०३ में उसके २४५२६ वोट और ४ सदस्य, १९०९ में ९१ २६८ वोट और ११ सदस्य और १९१२ में १२४५९४ वोट तथा २३ सदस्य थे। इस दलके ८ दैनिक और १८ साप्ताहिक पत्र निकलते हैं। १८८७ में स्थापित श्रमजीवी दलकी, १९१२ में ८०९१ शाखाएँ और ४३५०० सदस्य थे।

स्वीडन—इस देशमें साम्यलोकमतवादी दल १८८० में संगठित हुआ था और १८८५ में व्यापारसंघवादी भी उसमें मिल गए थे। १९११ में १७२९८० वोटोंसे हाउस आफ कामन्सके २३० सदस्योंमेंसे ६४ और लार्ड्सके १३० सदस्योंमेंसे १३ सदस्य चुने गए थे। साम्यवादी दलने उदारमतवादियोंके साथ मिलकर संयुक्त सरकार स्थापित करनेसे इन्कार कर दिया था परन्तु सरकारको पूरी पूरी सहायता दी थी। स्थानिक शासनमें इस दलका जोर कुछ कम

साम्यवादी होगी। परन्तु इसके बाद देशमें बहुत गड़बड़ मच गई। सरकारकी ओरसे साम्यवादका प्रचार रोक दिया गया और कुछ प्रांन्तोंमें साम्यवादी समितियाँ भी तोड़ दी गई। साम्यवादी दलका संगठन १९१२ में नानकिनकी कांग्रेसमें हुआ था जिसमें ३०० आदमी थे। उसी समय एक साम्यवादी दैनिक पत्र भी शंघाई नगरसे प्रकाशित होने लगा जिसका सम्पादक डाक्टर सन्‌याटसेनका प्राइवेट सेक्रेटरी था। राष्ट्रीय सभामें एक साम्यवादी भी चुना गया था और सुनते हैं कि २० सदस्योंका एक साम्यवादी वर्ग भी संगठित हुआ था। परन्तु चीनमें विधायक साम्यवादके स्थापित होनेसे पहले अनेक प्रारंभिक राजनीतिक सुधारोंकी आवश्यकता है।

फारसमें भी एक साम्यवादी दल है जिसका एक प्रतिनिधि वहाँकी मजलिस या पार्लिमेण्टमें है। वहाँके साम्यलोकमतवादी दलकी मुख्य सभाने सार्वभौम साम्यवादी मण्डल (International Socialist Bureau) के पास सितम्बर १९११ में एक अपील भी भेजी थी।

तुर्किस्तानमें भी कुछ दिनोंसे साम्यवादसम्बन्धी आन्दोलन हो रहा है। वहाँ सेलोनिका नगरमें एक श्रमजीवी साम्यवादी संघ, एक आर्मेनियन संघ और कुस्तुन्तुनियामें एक साम्यवादी संघ है। १९०८ में वहाँकी पार्लिमेण्टमें ६ साम्यवादी प्रतिनिधि थे।

चिली, लक्जेम्बर्ग, यूरुवे, रूमानिया, मेक्सिको, ब्रेजिल, पेरू तथा दक्षिण अमेरिकाके अन्यान्य छोटे छोटे राज्योंमें भी साम्यवादसम्बन्धी कुछ न कुछ आन्दोलन होता है। कदाचित एबिसीनिया, अफगानिस्तान, हेटी और भारत ही ऐसे देश हैं जो इस जगव्यापक आन्दोलनके प्रभावसे बचे हुए हैं।

और उनमेंसे १०—१२ कैद कर लिए गए। जनवरी १९१२ में वहाँका प्रसिद्ध डाक्टर कोट्टकू, उसकी स्त्री तथा १० साथी सम्राटकी हत्या करनेके अभियोगमें फाँसीपर चढ़ा दिए गए। इन लोगोंके विरुद्ध गुप्त रूपसे एक मुकदमा चलाया गया था परन्तु उसमें सबूत कुछ भी न मिला था इसी कारण बहुतसे युरोपीयन विद्वान् जापान सरकारकी इस कारवाईसे अप्रसन्न हो गए थे। जापानमें साम्यवादकी तरह व्यापारसंघवादको भी दबानेका प्रयत्न किया जाता है। और सब बातोंमें तो वहाँकी सरकार बहुत समझदारीसे काम लेती है परन्तु साम्यवादके सम्बन्धमें उसके विचार और सिद्धान्त बहुत ही संकीर्ण है।

अर्जेण्टाइन रिपब्लिक—यहाँ साम्यवादी दलका संगठन १८९८ में हुआ था और १९१२ के चुनावमें १८४४ वोटोंसे २ सदस्य चुने गए थे। यहाँ ५०,००० व्यापारसंघवादी भी हैं जिनमेंसे आधे अराजकतावादी और आधे साम्यवादी हैं। यहाँ अराजकतावादके विरुद्ध बहुत कड़े कानून बनाए हैं जिनका व्यवहार दूसरे कार्योंके लिये भी होता है।

जो राष्ट्र अभी हालमें बने हैं उनमें साम्यवादका आरम्भ इसी सीमासे होता है जिस सीमातक उन्नत राष्ट्रोंमें साम्यवाद पहुँच चुका है। तुर्किस्तान, फारस और चीनसे बहुतसे लोग युरोप और अमेरिका जाते हैं और वहाँके साम्यवाद तथा व्यापरसंघवादके सिद्धान्तोंका परिचय प्राप्त करते हैं। सम्भवतः वे ही लोग आगे चलकर अपने देशमें क्रान्तिकारक होंगे। यही कारण है कि जिन राष्ट्रोंने अभी हालमें सभ्यताके क्षेत्रमें पैर रक्खा है उनमें भी साम्यवादी दल मौजूद है।

चीनके मुख्य क्रान्तिकारक डाक्टर सनूयाटसेनने मार्च १९१२ में भविष्यद्वाणी की थी कि चीनकी सरकार इस शताब्दीमें सबसे बढ़कर

सहानुभूति दिखलाई थी परन्तु स्वयं सरकार अथवा सरकारी सदस्योंने उनपर कोई विशेष दया नहीं दिखलाई थी। अतः इस बातकी आवश्यकता प्रतीत होती है कि श्रमजीवियोंको भी वोट देने तथा ऐसे प्रतिनिधि चुननेका अधिकार दिया जाय जो प्रान्तीय कौन्सिलोंमें उनके हितकी रक्षा कर सकें, उनके कष्ट काउन्सिलको बतला सकें और उनकी दशाका सुधार करा सकें। उन्हें केवल सरकार अथवा सार्वजनिक नेताओंकी दयाके भरोसे ही न छोड़ देना चाहिए। मि० बी० पी० वाडिया इस बातका प्रयत्न कर रहे हैं कि भारतमें जो राजनीतिक सुधार होनेवाले हैं उनमें मजदूरोंको भी अपनी दशा सुधारनेका अवसर दिया जाय। भारतीय पूँजीदार अन्यान्य भारतीय धनवानोंकी तरह दानशील होते हैं। अतः हम आशा करते हैं कि वे अपने इस गुणका उपयोग मजदूरोंकी दशा सुधारनेमें भी करेंगे।

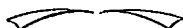
इस प्रकार संसारके प्रायः सभी देशोंमें श्रमजीवियोंका महत्त्व बढ़ता जाता है और उनके हाथमें अधिकार आ रहा है। अब जितने राजनीतिक सुधार होते हैं उनमें श्रमजीवियोंकी दशाके सुधारका भी कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य होता है। इस समय भारतमें भी कुछ राजनीतिक सुधार होनेवाले हैं, अतः यहाँके श्रमजीवियोंकी दशाका वर्णन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। भारतमें यद्यपि अभी बहुत ही थोड़े कारखाने स्थापित हुए हैं तथापि उनका दुष्परिणाम यहाँके श्रमजीवियोंको भोगना ही पड़ रहा है। भारतके कारखानोंमें १७५१५२५० मजदूरे काम करते हैं। उन्हें बहुत अधिक समय-तक काम करना पड़ता है और बहुत ही थोड़ा वेतन मिलता है जिससे उनका पेट भी नहीं भरता और वे सदा कर्जदार बने रहते हैं। १९०९ वाले इंडियन फैक्टरी कमीशनकी रिपोर्टसे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि भारतीय कारखानोंमें काम करनेवाले मज़-दूरोंकी अपेक्षा भारतीय जेलोंमें रहनेवाले कैदी कहीं अधिक हृष्ट पुष्ट होते हैं। भारतमें कारखानोंके सम्बन्धमें सबसे पहले १८८१ में सर-कारने एक कानून बनाया था तबसे आजतक सरकारने केवल दो ही बार यहाँके कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंकी दशा जाननेका प्रयत्न किया है। यहाँके कारखानोंमें मजदूरोंको प्रतिदिन १२ घंटेतक काम करना पड़ता है। इस बीचमें उन्हें केवल आध घंटेकी छुट्टी मिलती है। कारखानोंके निरीक्षणके लिये सरकारकी ओरसे जो इन्स्पे-क्टर नियुक्त होते हैं वे प्रायः नाम मात्रका निरीक्षण करते हैं। मजदू-राक रहनेके लिये मकान आदिका कोई प्रबन्ध नहीं है। १९११ में जब फैक्टरी एक्टका सुधार हो रहा था तब बड़े लाटकी काउन्सिलके कुछ चुने हुए भारतीय सदस्योंने तो मजदूरोंके साथ अवश्य कुछ

चाहती है। जो व्यापारसंघ नियमानुमोदित रीतिसे इन उद्देश्योंके साधनमें सहायक होते हैं वे सब इस कांग्रेसमें सम्मिलित होते हैं। अराजकोंको इसमें कोई स्थान नहीं मिलता।

पहले जो कांग्रेसें हुआ करती थीं उनमें बहुत सा समय भिन्न भिन्न देशोंकी साम्यवादसम्बन्धी उन्नतिकी जबानी रिपोर्टें सुनाने और सुननेमें ही बिताया जाता था परन्तु अब ऐसी रिपोर्टें छपकर आती हैं और कांग्रेसके सामने रक्खी जाती हैं। इन रिपोर्टोंमें साम्यवादके विकासके सम्बन्धकी बहुत ही महत्त्वपूर्ण और जाननेयोग्य बातें हुआ करती हैं। १९०७ में स्टटगार्टमें जो कांग्रेस हुई थी उसमें इस व्यवस्थाका शुभ फल बहुत ही स्पष्ट रूपसे देखनेमें आया था। उसमें २६ राष्ट्रोंके ८८६ प्रतिनिधि आए थे और सार्वभौम साम्यवादसम्बन्धी बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषयोंपर वादविवाद हुआ था। उस समयतक कांग्रेसकी कार्यप्रणाली आदिमें पूरा पूरा सुधार हो चुका था। उससे पहले साम्यवादके आन्दोलनकी न तो उतनी अधिक उन्नति ही हुई थी और न उसमें यथेष्ट बल ही आया था; परन्तु अब बहुत ही बलवान् और सुव्यवस्थित साम्यवादी दल, संसारके प्रायः सभी मुख्य देशोंमें खड़े हो गए थे और उनमें सम्मिलित रहनेवालोंकी संख्या लाखों और करोड़ोंतक पहुँच गई थी, इसलिये अब सार्वभौम महासभाके सुव्यवस्थित होनेका उपयुक्त अवसर आ गया था और उस अवसरपर वह सुव्यवस्थित हो गई।

इस कांग्रेसमें वोट देनेकी व्यवस्थामें भी बहुत कुछ सुधार हुआ था। १९०७ से पहले यह नियम था कि प्रत्येक राष्ट्रके दो वोट लिये जायँ। इसका परिणाम यह होता था कि आस्ट्रेलिया, सर्विया और यूनान आदि बहुत ही साधारण राष्ट्रोंके थोड़ेसे प्रतिनिधि सहजमें ही

११ आधुनिक सार्वभौम संगठन ।



आजकल साम्यवादसम्बन्धी जितने काम हो रहे हैं उन सबमें अच्छा काम नई सार्वभौममहासभाका है। हम पहले एक प्रकरणमें बतला चुके हैं कि १८८९ में ब्रूसेल्समें, १८९३ में ज्यूरिचमें और १८९६ में लन्दनमें सार्वभौम कांग्रेसें हुई थीं। इनके उपरान्त १९०० में फिर पेरिसमें, १९०४ में अमस्टर्डममें, १९०७ में स्टटगाटमें और १९१० में कोपनहेगनमें भी कांग्रेसें हुई थीं; परन्तु ब्रूसेल्स और लन्दनकी कांग्रेसोंमें जो खराबियाँ हुई थीं उनके कारण कांग्रेसोंके संगठन और कार्यप्रणालीमें विशेष सुधारकी आवश्यकता हुई थी। क्योंकि इन कांग्रेसोंका उद्देश्य था कि आगे चलकर वे दरिद्र श्रमजीवियोंकी पार्लिमेण्टका रूप धारण करें। अब हम संक्षेपमें यह बतलाना चाहते हैं कि इस सम्बन्धमें १९०० वाली पेरिस कांग्रेसके उपरान्त कौन कौन सी नई बातें हुईं।

जो सभाएँ या समितियाँ साम्यवादके मुख्य मुख्य सिद्धान्त मानती हैं वे सब इसमें सम्मिलित हो सकती हैं। इसके द्वारा उत्पादन तथा विनिमयके साधनोंको समाज अथवा राष्ट्रके अधिकारमें लाने तथा समस्त देशोंके श्रमजीवियोंको संगठित करनेका उद्योग होता है। यह कांग्रेस दरिद्र श्रमजीवियोंको भी पूर्ण राजनीतिक अधिकार दिलाना

चाहती है। जो व्यापारसंघ नियमानुमोदित रीतिसे इन उद्देश्योंके साधनमें सहायक होते हैं वे सब इस कांग्रेसमें सम्मिलित होते हैं। अराजकोंको इसमें कोई स्थान नहीं मिलता।

पहले जो कांग्रेसें हुआ करती थीं उनमें बहुत सा समय भिन्न भिन्न देशोंकी साम्यवादसम्बन्धी उन्नतिकी जबानी रिपोर्टें सुनाने और सुननेमें ही विताया जाता था परन्तु अब ऐसी रिपोर्टें छपकर आती हैं और कांग्रेसके सामने रक्खी जाती हैं। इन रिपोर्टोंमें साम्यवादके विकासके सम्बन्धकी बहुत ही महत्त्वपूर्ण और जाननेयोग्य बातें हुआ करती हैं। १९०७ में स्टटगाटमें जो कांग्रेस हुई थी उसमें इस व्यवस्थाका शुभ फल बहुत ही स्पष्ट रूपसे देखनेमें आया था। उसमें २६ राष्ट्रोंके ८८६ प्रतिनिधि आए थे और सार्वभौम साम्यवादसम्बन्धी बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषयोंपर वादविवाद हुआ था। उस समयतक कांग्रेसकी कार्यप्रणाली आदिमें पूरा पूरा सुधार हो चुका था। उससे पहले साम्यवादके आन्दोलनकी न तो उतनी अधिक उन्नति ही हुई थी और न उसमें यथेष्ट बल ही आया था; परन्तु अब बहुत ही बलवान् और सुव्यवस्थित साम्यवादी दल, संसारके प्रायः सभी मुख्य देशोंमें खड़े हो गए थे और उनमें सम्मिलित रहनेवालोंकी संख्या लाखों और करोड़ोंतक पहुँच गई थी, इसलिये अब सार्वभौम महासभाके सुव्यवस्थित होनेका उपयुक्त अवसर आ गया था और उस अवसरपर वह सुव्यवस्थित हो गई।

इस कांग्रेसमें वोट देनेकी व्यवस्थामें भी बहुत कुछ सुधार हुआ था। १९०७ से पहले यह नियम था कि प्रत्येक राष्ट्रके दो वोट लिये जायँ। इसका परिणाम यह होता था कि आस्ट्रेलिया, सर्बिया और यूनान आदि बहुत ही साधारण राष्ट्रोंके थोड़ेसे प्रतिनिधि सहजमें ही

उन अनुभवी जर्मन, फ्रान्सीसी और अँगरेज प्रतिनिधियोंपर विजय प्राप्त कर लेते थे जिनके लाखों सहायक होते थे। परन्तु स्टटगाटकी कांग्रेसमें भविष्यके लिये बहुत ही अच्छी व्यवस्था हो गई। उसमें निश्चित हुआ कि जर्मनी, आस्ट्रिया, फ्रान्स, ग्रेटब्रिटन और रूसमेंसे प्रत्येकके बीस बीस और इटलीके १५ वोट माने जायँ। अन्यान्य छोटे छोटे राष्ट्रोंके लिये प्रायः ४—४ और लक्जेम्बर्गके लिये २ वोटोंकी व्यवस्था हुई। इस सुधारके कारण अब कांग्रेसका निर्णय बहुत सार-गर्भित होने लगा है।

१९१० की कोपनहेगनवाली कांग्रेसमें २३ राष्ट्रोंके ८९६ प्रतिनिधि आए थे। भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंकी संख्या भी भिन्न भिन्न थी। अर्जेण्टाइनका १ प्रतिनिधि आया था और जर्मनीके १८९। इस कांग्रेसके पाँच कमीशन बैठे थे जिन्होंने अलग अलग नीचे लिखे विषयोंमेंसे एक एक विषयपर वादविवाद किया था—(१) सहयोग और साम्यवादका सम्बन्ध, (२) व्यापारसंघ, (३) सार्वभौम पंचायत और शस्त्रत्याग, (४) बेकारीके सम्बन्धमें कानून और (५) साधारण प्रस्ताव। पहले विषयके सम्बन्धमें कांग्रेसने खरीद-दारोंकी सहयोगसमितियोंको बहुत पसन्द किया था और बतलाया था कि उसमेंसे शिक्षाप्रचारके लिये कुछ धन निकाला जाया करे और सहयोगवादियों, व्यापारसंघवादियों तथा साम्यवादियोंमें परस्पर मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए। कांग्रेसने व्यापारसंघोंको भी पसन्द किया था और कहा था कि व्यापारसंघवादियोंमें परस्पर जातीय विभेद अथवा द्वेष न होना चाहिए। बेकार रहनेवालोंके सम्बन्धमें उसने स्थिर किया था कि सरकारको बीमे आदिकी व्यवस्था करनी चाहिए और जिस समय बेकार रहनेके कारण मजदूरोंको अधिक कष्ट

हो उस समय उसे अपनी ओरसे सार्वजनिक कार्य्य खोल देने चाहिएँ। अन्यान्य प्रस्ताव प्राणदण्ड उठा देने और साम्यवादियोंमें एकता उत्पन्न करनेके सम्बन्धमें थे। कांग्रेसने यह भी तै किया था कि सब राष्ट्रोंको शस्त्र त्याग देने चाहिएँ और अपने झगड़ोंका निर्णय सार्वभौम पंचायतके द्वारा कराना चाहिए। इस सम्बन्धमें इंग्लैण्डके मजदूर दलके नेता स्वर्गीय मि० केरहार्डी तथा वैलेण्टने यह सुधार उपस्थित किया था कि यदि किसी समय युद्धकी सम्भावना हो तो उसे रोकनेके लिये युद्धमें लिप्त होनेवाले राष्ट्रोंके मजदूरोंको सार्वदेशिक हड़ताल कर देनी चाहिए। परन्तु इस सुधारके पक्षमें केवल ५१ और उसके विरुद्ध १३१ वोट आए थे जिसके कारण यह विषय बूरोके सपुर्द कर दिया गया और उससे कहा गया कि वह अगली कांग्रेसमें इस सम्बन्धमें अपनी रिपोर्ट उपस्थित करे। उस कांग्रेसमें तुर्किस्तान, फिनलैण्ड, फारस, मरक्को आदि देशोंकी राजनीतिक स्थिति तथा मजदूरोंसे प्रतिदिन आठ घंटे काम कराने, बहुत छोटे छोटे बालकोंसे बिलकुल काम न कराने और सरकारी कर्म्मचारियों द्वारा कारखानोंका अच्छी तरह निरीक्षण कराने आदिके सम्बन्धमें भी कई प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे। इस अवसरपर यह बतला देना भी उपयुक्त जान पड़ता है कि इस कांग्रेसके होनेसे ठीक पहले स्त्रियोंकी भी एक साम्यवादी कान्फ्रेन्स होती है और इंग्लैण्ड तथा दूसरे देशोंमें साम्यवादिनी स्त्रियोंकी कई सभाएँ आदि हैं।

१९१२ के अन्तमें इस बातकी सम्भावना थी कि बालकन युद्धमें युरोपकी बहुत बड़ी बड़ी शक्तियाँ भी सम्मिलित हो जायँगी, अतः इस बातका घोर विरोध करनेके लिये नवम्बर १९१२ में बैसेल नगरमें जल्दी जल्दी एक विशेष कांग्रेस की गई। केवल कुछ सत्ता-

होंकी सूचना पाकर भिन्न भिन्न देशोंसे ५५५ प्रतिनिधि वहाँ आ पहुँचे थे। रविवार २४ नवम्बरको नगरके टाउनहालमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ जिसमें निश्चित हुआ कि प्रत्येक देशकी पार्लिमेण्टमें युद्धमें सम्मिलित होनेका घोर विरोध किया जाय और महायुद्धको रोकनेके लिये जितने सम्भाव्य उपाय हों उनमेंसे एक भी न छोड़ा जाय। यह तो नहीं कहा जासकता कि इस कांग्रेसके प्रयत्नोंका युद्ध रोकनेपर क्या प्रभाव पड़ा परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि बड़ी बड़ी शक्तियाँ उसमें सम्मिलित न हुई और उनके परराष्ट्र विभागोंने आपसमें ही समझ बूझकर एक विकट महायुद्धसे कमसे कम उस समयके लिये युरोपको बचा दिया। इस कांग्रेसका अधिवेशन पहले नियमानुसार १९१३ में होनेको था परन्तु बालकन युद्धमें महाशक्तियोंके सम्मिलित होनेकी सम्भावनाके कारण वह अधिवेशन १९१२ में ही हो गया था इस कारण १९१४ में दूसरा अधिवेशन होना निश्चित हुआ था। परन्तु १९१४ में युरोपीय महायुद्ध छिड़ जानेके कारण कदाचित् कांग्रेसका अधिवेशन न हो सका था।

अभी हालमें ३० अक्टूबर १९१९ में अमेरिकाके वाशिंगटन नगरमें सार्वभौम श्रमजीवी कान्फ्रेन्सका एक एक अधिवेशन हुआ था जिसमें ३६ राष्ट्रोंके प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इस कान्फ्रेन्समें भारत सरकारने भी अपनी ओरसे मिस्टर जोशी और मि० वाडिया आदिको भेजा था। इस कान्फ्रेन्सका ध्यान भारतीय मजदूरोंकी दुर्दशाकी ओर भी गया था और उनके सुधारके सम्बन्धमें उसने भारत सरकारसे अनेक प्रश्न भी किए थे। उस कान्फ्रेन्सने भारतसरकारसे पूछा था कि क्या भारतसरकार कानून बनाकर यह निश्चित करनेके लिये तैयार है कि कारखानोंमें मजदूरोंसे प्रतिदिन आठ घंटे और प्रति

सप्ताह ६ दिनसे अधिक काम न लिया जाय। भिन्न भिन्न कारखानोंके सम्बन्धमें अबतक भारत सरकारने कौन कौनसे कानून बनाए हैं और आगे कौन कानून बनानेका उसका विचार है। इस बातके लिये सरकारने क्या प्रयत्न किया है कि मजदूरे बेकार न रहने पाएँ; और उनकी बेकारीकी दशामें उनके निर्वाहकी क्या व्यवस्था है। बेकारी और बेकार मजदूरोंकी व्यवस्थाके लिये कोई संस्था है या नहीं और यदि है तो उसकी क्या दशा है और भविष्यमें इस सम्बन्धमें सरकारका क्या विचार है। सरकारने इस विषयमें अबतक क्या व्यवस्था की है कि स्त्रियोंसे प्रसवकालके कुछ पहले और पीछे, रातके समय तथा विशिष्ट कठिन कार्य न लिए जायँ। प्रसवकालमें माता और उसके बच्चेके निर्वाहके लिये क्या व्यवस्था है। यदि कोई व्यवस्था नहीं है तो सरकार इस सम्बन्धमें क्या व्यवस्था करना चाहती है। क्या सरकार इस बातके लिये तैयार है कि १४ वर्षसे कम अवस्थावाले बालकोंसे काम न लिया जाया करे और इससे अधिक अवस्थावाले बालकोंसे रातके समय और स्वास्थ्यनाशक कार्य न लिया जाया करे। अबतक इस सम्बन्धमें सरकारने क्या नियम रक्खा है और भविष्यके लिये उसका क्या विचार है, आदि आदि। अभीतक यह नहीं मालूम हुआ कि भारत सरकारने इन सब प्रश्नोंका क्या उत्तर दिया, परन्तु इससे उक्त कान्फ्रेन्सकी कार्यप्रणाली और तत्परताका बहुत कुछ पता लगता है और आशा होती है कि उसके द्वारा भिन्न भिन्न देशोंके मजदूरोंकी दशा बहुत कुछ सुधर जायगी।

उक्त कांग्रेसोंके मुख्य और स्थायी कार्यालयका नाम सार्वभौम साम्यवादी मण्डल (International Socialist Bureau) और स्थान ब्रसेल्स नगर है। इधर कुछ वर्षोंमें इस मण्डलने बहुत ही

महत्त्व प्राप्त किया है। इसके कार्यालयसे सैकड़ों विज्ञापन और पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुआ करती हैं; सार्वभौम महत्त्वकी हड़तालोंके लिये चन्देकी अपीलें निकलती हैं और श्रमजीवियोंकी दशा सुधारनेके अनेक प्रयत्न होते हैं। रूस, पुर्त्तगाल और बालकन आदि ऐसे देशोंसे जिनमें प्रायः युद्ध अथवा क्रान्तियाँ हुआ करती हैं लोग सारे संसारके श्रमजीवियोंके पास अपीलें भेजा करते हैं जो इसी मण्डलके द्वारा छपती और बँटती हैं। वर्षमें कई वार इस मण्डलके अधिवेशन होते हैं जिनमें सार्वभौम समस्याओंपर वादविवाद तथा विचार होता है। यदि कहीं युद्धकी सम्भावना होती है अथवा साम्यवादियोंपर किसी प्रकारकी विपत्तिकी सम्भावना होती है तो उसे रोकनेके लिये यह मण्डल अपनी ओरसे कोई बात उठा नहीं रखता। भिन्न भिन्न स्थानोंमें कांग्रेसोंके अधिवेशन करानेकी व्यवस्था भी यह मण्डल करता है। प्रत्येक सभ्य देशमें इस मण्डलसे सम्बद्ध सभाएँ या संस्थाएँ हैं। जिन जातियोंके स्वतंत्र राष्ट्र नहीं हैं और जो पराधीन हैं उन्हें भी यह मण्डल स्वतंत्र मानता है और अपनी कांग्रेसोंमें उनके अलग अलग प्रतिनिधि लेता है। फ्रेञ्च, जर्मन तथा अँगरेजी इन तीन भाषाओंमें इस मण्डलके समय समय पर बुलेटिन भी निकला करते हैं। उसमें साम्यवादियोंकी सब कार्रवाइयोंका पूरा पूरा वर्णन रहता है। यह मण्डल साम्यवादियोंकी भिन्न भिन्न शाखाओं और श्रमजीवी दलको मिलकर एक करनेका भी प्रयत्न करता है। जुलाई १९१३ में इस मण्डलके सभापति तथा मंत्री लन्दन गए थे और उन्होंने वहाँके भिन्न भिन्न साम्यवादी तथा श्रमजीवी दलोंके नेताओंसे मिलकर उन सब दलोंको मिलाकर एक करनेका प्रयत्न किया था। इससे पहले वे लोग फ्रान्समें भी सफलतापूर्वक इसी प्रकारका प्रयत्न कर आए थे।

१८८९ से लेकर अबतक जितनी कांग्रेसें हुई हैं उनमें बहुत अधिक प्रस्ताव स्वीकृत हुए हैं। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न राष्ट्रीय दलोंने अनेक प्रोग्राम या कार्यक्रम भी स्थिर किए हैं। बड़े बड़े विचारशीलोंने मुद्दतोंतक परिश्रम करके जो सिद्धान्त स्थिर किए हैं उन सबका सार इन स्वीकृत प्रस्तावों तथा निश्चित कार्यक्रमोंमें आ गया है। उस सबको देखनेसे यह पता चलता है कि सारे संसारके साम्यवादी क्या चाहते हैं। उनके विचारों आदिमें बराबर समयानुकूल परिवर्त्तन भी होते रहते हैं। हम नीचे संक्षेपमें वे सब महत्त्वपूर्ण बातें देते हैं जिनके सम्बन्धमें प्रायः सभी देशोंके साम्यवादी सहमत हैं—

(१) सारे आन्दोलनका मुख्य उद्देश्य यह है कि संसारमें आर्थिक क्रान्ति हो जाय—उत्पादन विभाग तथा विनिमयके जितने साधन हैं उन सबपर समाजका अधिकार हो जाय।

(२) इस उद्देश्यकी सिद्धिका मुख्य साधन यह है कि समस्त देशोंके श्रमजीवी मिलकर और संगठित रूपसे कार्य करके राजनीतिक शक्ति अपने हाथमें ले लें।

(३) इस समय साम्यवादी दलका सबसे बड़ा काम यह है कि लोगोंमें यथेष्ट शिक्षा प्रचार करे, खूब आन्दोलन करे और सभाएँ समितियाँ आदि संगठित करे, जिसमें श्रमजीवियोंकी शारीरिक और नैतिक दशा सुधर जाय और वे इस बड़े उद्देश्यकी सिद्धिके योग्य हो जायँ। सार्वभौम साम्यवादकी नित्य क्रिया यही है कि श्रमजीवियोंकी योग्यता आदिकी वृद्धि और उनमें जागृति उत्पन्न की जाय।

(४) इस राजनीतिक झगड़ेका एक महत्त्वपूर्ण अंग यह भी है कि सब लोगोंके लिये और विशेषतः स्त्रियोंके लिये समान रूपसे और

प्रत्यक्ष मत देनेका अधिकार प्राप्त किया जाय। इस सम्बन्धमें जो प्रयत्न होगा उसका श्रमजीवियोंकी राजनीतिक शिक्षापर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

(५) साम्यवादी दलोंका अधिक शुद्ध राजनीतिक झगड़ा व्यापारसंघोंके अधिक शुद्ध आर्थिक झगड़ेके साथ मिलकर होना चाहिए और दोनों आन्दोलनोंमें निकटतम सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए।

(६) श्रमजीवी लोग जो अधिकार चाहते हैं, सभाएँ समितियाँ आदि स्थापित करनेका अधिकार, स्वतंत्रतापूर्वक बोलनेका अधिकार और स्वतंत्रतापूर्वक समाचारपत्रोंमें अपने विचार प्रकट करनेका अधिकार, उनमेंसे मुख्य और परम आवश्यक हैं।

(७) श्रमजीवियोंसे प्रतिदिन आठ घंटोंसे अधिक काम न लिया जाय। इसके लिये प्रत्येक देशके लोगोंको प्रति पहली मईके दिन खूब आन्दोलन और व्याख्यानों आदिकी व्यवस्था करनी चाहिए। श्रमजीवियोंका पारिवारिक जीवन, स्वास्थ्य, बल, ज्ञान और नैतिक आचरण आदि सुधारने और उनमें शिक्षा प्रचार करनेके लिये इस बातकी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि उनसे प्रतिदिन आठ घंटेसे अधिक काम न लिया जाय।

(८) श्रमजीवियोंकी रक्षाके लिये जिन अनेक बड़े बड़े कानूनोंके बननेकी आवश्यकता है उनमें सबसे अधिक आवश्यक कानून यह है कि उनसे प्रतिदिन ८ घंटेसे अधिक काम लेनेकी मनाही हो जाय। वयस्क लोग ८ घंटेतक काम करें, परन्तु बालकों, युवकों और स्त्रियोंके लिये इसके अतिरिक्त विशिष्ट कानून बनने चाहिएँ और इस बातकी व्यवस्था होनी चाहिए कि सभी अवस्थाओंके लोगोंको कामके बीचमें विश्राम करनेका यथेष्ट अवसर मिले, रातके समय

उनसे काम न लिया जाय और कारखानों, दूकानों, खिदमतगारों और कृषकों आदिकी अवस्थाका पूरा पूरा निरीक्षण हुआ करे।

(९) श्रमजीवी दल युद्धों आदिका घोर विरोधी है। उसकी समझमें युद्ध आदि राष्ट्रीय अथवा राजनीतिक मतभेदोंके कारण कम और पूँजीदारोंके लिये नए बाजार या हाट खोलनेके लिये अधिक होते हैं। उसका विश्वास है कि जब पूँजीदारीकी प्रथाका अन्त होगा तभी युद्धका भी अन्त होगा। आजकल राष्ट्रोंकी जो स्थायी सेनायें होती हैं वे केवल शासक और अपहरक वर्गके उद्देश्योंकी सिद्धि करती हैं, अतः वे सबकी सब तोड़ दी जानी चाहिएँ और उनके स्थानमें नागरिकोंकी सेना अथवा सैनिक राष्ट्रकी सृष्टि होनी चाहिए। स्वीजरलैण्डकी सेनाकी भाँति लोकमतवादके सिद्धान्तोंके आधारपर देशके समस्त हृष्ट-पुष्ट पुरुषोंको सैनिक शिक्षा और सामग्री दी जानी चाहिए। भिन्न भिन्न देशोंके साम्यवादियोंको उचित है कि जब कभी प्रस्तुत जल और स्थल सेनाके व्ययका प्रश्न उठे तब वे उसका विरोध करें।

(१०) सभी कांग्रेसोंमें बहुमतसे विदेशोंमें उपनिवेश स्थापित करनेकी निन्दा की गई है। क्योंकि उपनिवेशोंकी स्थापनासे केवल पूँजीदारोंके अपहरण क्षेत्रका ही विस्तार होता है। हाँ जिन देशोंमें इंग्लैण्डने वहाँके लोगोंको स्वराज्यके योग्य बनानेके उद्देश्यसे उपनिवेश स्थापित किए हैं उनके सम्बन्धमें कांग्रेसें कोई विरोध नहीं करतीं। परन्तु कांग्रेसें कदाचित् यह माननेके लिये तैयार नहीं हैं कि अँगरेजी शासनने भारतवर्षमें शान्ति, व्यवस्था अथवा उन्नति की है। प्रायः लोग यही समझते हैं कि औपनिवेशिक प्रथाका तात्पर्य्य यह है कि पूँजीदार लोग अपने लाभके लिये देशी तथा काली, लाल आदि जातियोंके धनका अपहरण करें। कांग्रेसोंमें कुछ थोड़ेसे लोग ऐसे

भी निकले हैं जो वर्त्तमान औपनिवेशिक नीतिकी तो अवश्य निन्दा करते हैं परन्तु साथ ही यह भी समझते हैं कि उसे सुधारकर उपयोगी और लाभदायक बनाया जा सकता है ।

नए सार्वभौम संगठनकी शक्ति दिनपर दिन बराबर बढ़ती जाती है अब उसमें राज्यक्रान्तिके लिये गुप्त मंत्रणाएँ नहीं होतीं । उसमें पार्लिमेण्टोंके बड़े बड़े नेता, बड़ी बड़ी लोकप्रिय संस्थाओंके सञ्चालक तथा ऐसे सुयोग्य व्यक्ति सम्मिलित होते हैं जिनकी बातोंका उनके देशमें और कभी कभी सारे संसारमें पूरा मान होता है । उसकी दिनपर दिन उन्नति होती जाती है और आशा होती है कि उसके द्वारा सार्वभौम सम्बन्धोंकी एक बड़ी सम्मिलित शक्ति खड़ी हो जायगी; और वह शक्ति समस्त संसारके राष्ट्रोंका वह संघ बन जायगा जिसकी कल्पना बहुत दिनोंसे बड़े बड़े कवि और दार्शनिक करते आरहे हैं । साम्य उसी समय अपने सर्वोच्च शिखरपर पहुँचेगा ।



१२ आधुनिक अँगरेजी साम्यवाद।



आरम्भके एक प्रकरणमें हम यह बतला चुके हैं कि आवेनने इंग्लैण्डमें किस प्रकारके साम्यवादका आरम्भ किया था और गत शताब्दीके मध्यमें ईसाई साम्यवादके आन्दोलनने किस प्रकार उस साम्यवादका अन्त कर दिया था। मारिस और किंग्स्ले आदि ईसाई साम्यवादी तत्कालीन समाजके दोषोंकी केवल निन्दा ही करते थे परन्तु उस समाजका पुनः संगठन करनेके प्रयत्नमें उन्हें कोई सफलता नहीं हुई। वे लोग पूँजी और श्रमके झगड़ेको तै करनेके लिये छोटे छोटे श्रमजीवियोंको साधारण पूँजीदार बनानेका ही प्रयत्न करते थे। उन्होंने ऐसी उत्पादक सहयोग समितियाँ स्थापित की थीं जिनमें साधारण श्रमजीवियोंका बचाया हुआ धन ही लगता था। वे समितियाँ स्वयं ही पूँजी लगाती थीं और स्वयं ही श्रम करती थीं और उपजसे जो कुछ आय होती थी वह उन्हींके सदस्योंमें बराबर बराबर बँट जाती थी। वे यह बात नहीं समझते थे कि इस प्रकारकी छोटी मोटी समितियाँ बहुत अधिक पूँजीसे और व्यवस्थित रीतिसे चलनेवाले बड़े बड़े कारखानोंके मुकाबलेमें नहीं ठहर सकतीं। साथ ही वे यह भी नहीं जानते थे कि इस प्रकारकी सहयोग समितियाँ ज्यों ही विशेष सफलता प्राप्त कर लेती हैं त्यों ही अपना मूल स्वरूप

और उद्देश्य छोड़ बैठती हैं । क्योंकि जब कोई समिति यथेष्ट धन कमा लेगी तब उसके संस्थापक नए श्रमजीवियोंको उसमें सम्मिलित न करेंगे; और यदि सम्मिलित कर भी लें तो उन्हें अपने बराबर सुभीते या अधिकार न देंगे । उस समय उनकी दशा बहुतसे अंशोंमें प्रायः साधारण लिमिटेड कम्पनियोंकी सी ही हो जायगी ।

इन्हीं सब कारणोंसे ईसाई साम्यवादका आन्दोलन बहुत जल्दी ठंढा पड़ गया और प्रायः १५–२० वर्षोंके लिये इंग्लैण्डमें साम्यवादके आन्दोलनका नाम निशान भी मिट गया । कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक एन्जल्स अवश्य ही उन दिनों लन्दनमें रहते थे परन्तु उनका प्रभाव केवल उनकी पुस्तकोंके द्वारा ही पड़ता था और वे पुस्तकें जर्मन भाषामें होती थीं । सन् १८६४ और उसके बादका जो सार्वभौम आन्दोलन था वह प्रायः राजनीतिक दृष्टिसे ही क्रान्तिकारक था, सामाजिक अथवा आर्थिक दृष्टिसे नहीं। मार्क्सके पास जो लोग आया जाया करते थे वे प्रायः विदेशी ही होते थे और अँगरेजी श्रमजीवी उसके आर्थिक सिद्धान्तोंका कोई महत्त्व न समझते थे। अँगरेजी प्रजापर आरम्भिक साम्यवादी आन्दोलनकारियोंका जो थोड़ा बहुत बचाखुचा प्रभाव था वह भी पेरिसके कम्यूनवाले उपद्रवके दमनके कारण बिलकुल नष्ट हो गया था । उस समय सुप्रसिद्ध अँगरेज विचारशील जान स्टुअर्ट मिलने साम्यवादके क्षेत्रमें उतरकर बहुत कुछ काम किया । यद्यपि वह केवल आरम्भिक फ्रान्सीसी और अंगरेजी साम्यवादके असम्भव सिद्धान्तोंसे ही परिचित था तथापि साम्यवादके उद्देश्योंके साथ उसकी पूरी पूरी सहानुभूति थी, परन्तु साथ ही वह यह भी समझता था कि इन उद्देश्योंकी सिद्धिके लिये लोग अबतक जो उपाय बतला गए हैं वे कार्य्यरूपमें परिणत नहीं

हो सकते। मिलने साम्यवादके सम्बन्धमें उस समय जो विचार प्रकट किए थे उनपर लोगोंका विशेष ध्यान नहीं गया और लोग उन्हें शीघ्र ही भूल गए। १८७३ में मिलका देहान्त हो गया और उसके प्रायः १० वर्ष वादतक फिर इंग्लैण्डमें साम्यवादके नाम सन्नाटा छाया रहा।

इसके उपरान्त इंग्लैण्डमें धीरे धीरे लोग फिर साम्यवादके सिद्धान्तोंका अध्ययन करने लगे। उस समय मार्क्सके सिद्धान्तोंपर चलनेवाला एक साम्यलोकमतवादी संघ स्थापित हुआ। परन्तु उसके साथ ही फेबियन सोसायटी नामकी एक और साम्यवादिनी सभा भी स्थापित हुई। उस सभाके सदस्य केवल मार्क्स द्वारा निश्चित संकुचित क्षेत्रमें ही बद्ध नहीं रहते थे वलिक अनेक दूसरे द्वारोंसे भी अपने सिद्धान्त स्थिर करते थे। धीरे धीरे इस सोसाइटीके सदस्य मार्क्सके सिद्धान्तोंके विरोधी हो गए। इसके कुछ ही दिनोंवाद एक स्वतंत्र श्रमजीवी दल (Independent Labour Party) खड़ा हो गया जिसने इंग्लैण्डमें आधुनिक साम्यवादका प्रचार आरम्भ किया। इस प्रकार इंग्लैण्डमें साम्यवादसम्बन्धी दो आन्दोलन आरम्भ हुए। पहला आन्दोलन लोकमतवादी संघ (Democratic Federation) का था जिसकी स्थापना मिस्टर हाइण्डमैनने १८८१ में की थी। इस संघका मुख्य उद्देश्य यह था कि हाउस आफ लार्ड्स तोड़ दिया जाय और भूमिपर समाज अथवा राष्ट्रका अधिकार हो जाय। इसके सदस्य साम्यवादियोंके अतिरिक्त और भी वहुतसे लोग थे। मि० हाइण्डमैनने १८८३ में एक पुस्तक प्रकाशित करके अँगरेजोंको मार्क्सके सिद्धान्तोंसे परिचित कराया था। शीघ्र ही यह संघ खुले आम साम्यवादी हो गया और अगस्त १८८४ में उसने अपना नाम साम्यलोकमतवादी संघ रख लिया। १९०८ तक उसका

यही नाम बना रहा परन्तु १९०८ में उसका नाम साम्यलोकमतवादीसंघके बदले साम्यलोकमतवादी दल हो गया । जनवरी १८८४ से उसने एक साप्ताहिक पत्र भी निकलना आरम्भ कर दिया था । उस पत्रका नाम जस्टिस (Justice) था । आगे चलकर यह पत्र अँगरेजी साम्यवादी दलका मुखपत्र बन गया ।

१८८३ में जिस समय मार्क्सकी मृत्यु हुई उस समयतक यह आन्दोलन अच्छी दशामें नहीं आया था। उसके छः महीने बाद फेब्रियन सोसायटीका साम्यवादसम्बन्धी आन्दोलन सन्तोपजनक रूपसे आरंभ हुआ । उस आन्दोलनका आरम्भ मार्क्सके अतिरिक्त और भी अनेक विचारशीलोंके द्वारा हुआ था, जिनमेंसे हेनरी जार्ज विशेप उल्लेखनीय है । उसकी 'उन्नति और दरिद्रता' (Progress and Poverty) नामक बड़ी और महत्त्वपूर्ण पुस्तक जो १८८० में ही अमेरिकाके संयुक्त राज्योंमें प्रकाशित हो चुकी थी शीघ्र ही इंग्लैण्डके विचारशीलोंका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने लगी। उसने साम्यवादके सिद्धान्तोंका प्रचार नहीं किया था, उसका मत था कि आजकलके प्रतिद्वन्द्विताके समयमें जो आर्थिक शक्तियाँ काम कर रही हैं वे ही सर्वसाधारणकी दरिद्रता दूर कर देंगी और उसीसे समस्त सामाजिक दोप दूर हो जायँगे। इसके लिये केवल एक और नई व्यवस्थाकी आवश्यकता होगी । वह व्यवस्था यह है कि जमीनका लगान जमींदारोंको न मिले बल्कि समाजको मिला करे । आगे चलकर उसके आधुनिक अनुयायियोंने उसमें इतना और बढ़ा दिया कि जमीनपर समाजका अधिकार हो जाय । उसके अनुयायियोंमें साम्यवादी अथवा समष्टिवादी भी थे और व्यष्टिवादी भी । जमीन आदिके सम्बन्धमें उसके चाहे जो कुछ विचार रहे हों परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसने अपने

समयमें लोगोंमें यह विचार फैला दिया था कि दरिद्रता एक ऐसा सामाजिक दोष है जो सरकारके प्रयत्नोंसे दूर हो सकता है। उसने अपने समयके अर्थशास्त्रसम्बन्धी सिद्धान्तोंकी कड़ी टीका और आलोचना की थी। उस समयके राजनीतिज्ञों और समाजसुधारकोंका मत था कि चरित्रहीनता, मादक द्रव्योंके विशेष व्यवहार, अयोग्यता, अकर्मण्यता और अपव्यय आदिके कारण ही दरिद्रता उत्पन्न होती है। यदि सरकार गिरजोंमें नैतिक उपदेश कराया करे, सर्वसाधारणकी शिक्षाकी उचित व्यवस्था करे, कारखानों सम्बन्धी कानून बनाकर स्त्रियों तथा बालकोंकी रक्षा करे और जो लोग अपनी चरित्रहीनताके कारण अपनी वृद्धावस्थाके लिये थोड़ी बहुत आयकी व्यवस्था अथवा संचय नहीं कर सकते, बीमारी, मौत अथवा दूसरे अवसरोंपर उनके लिए थोड़ी बहुत सहायता करे तो दरिद्रता सहजमें ही दूर हो सकती है। जार्जने अपनी पुस्तकमें इन सिद्धान्तोंका घोर विरोध किया था। उसका मत था कि दरिद्रताकी सृष्टि समाजकी त्रुटिपूर्ण व्यवस्थाके कारण ही उत्पन्न होती है। उसने बाइबिल आदि तकसे प्रमाण उद्धृत करके सिद्ध किया था कि जमीनकी जो व्यवस्था आजकल है वह बिलकुल अप्राकृतिक है और सृष्टिकर्ताकी इच्छा तथा व्यवस्थाके विरुद्ध है। उसकी उक्त पुस्तकको पढ़ करके ही इंग्लैण्डमें अधिकांश विचारशील साम्यवादकी ओर प्रवृत्त हुए थे। उन लोगोंने मार्क्स तथा हेनरी जार्जके उत्तम और उपयुक्त विचारोंको एकत्र करके आधुनिक अँगरेजी साम्यवादका प्रचार आरम्भ किया।

आधुनिक अँगरेजी साम्यवादके प्रचारमें मार्क्स और हेनरी जार्जके अतिरिक्त और भी बहुतसे लोग सहायक हुए थे। उस समय एक छोटा मोटा ईसाई-साम्यवाद आन्दोलन भी आरम्भ हुआ था जिसके

नेताओंका मत था कि उत्पादक सहयोगसमितियाँ स्थापित करनेके वदले जर्मनकी वर्त्तमान व्यवस्थामें सुधार करनेकी कहीं अधिक आवश्यकता है। १८८३ से १८९१ तक इस दलका ' ईसाई साम्यवादी ' (Christian Socialist) नामक एक मासिकपत्र भी निकलता था। सुप्रसिद्ध विद्वान् रस्किनने भी अर्थशास्त्रके प्रचलित सिद्धान्तोंकी आलोचना करके लोगोंको नए विचार ग्रहण करनेके योग्य बनाया था। वहुतसे लोग लोकमतवादी संघमें भी सम्मिलित होकर उसके सिद्धान्तोंका प्रचार करने लग गए थे। परन्तु इस सम्बन्धमें सबसे अच्छा काम स्काटलैण्डनिवासी थामस डेविडसन नामक एक व्यक्तिने जो कि न्यूयार्कमें रहा करता था, किया था। उसीने उन लोगोंको एकत्र किया था जिनके द्वारा प्रसिद्ध फेवियन सोसाइटीकी स्थापना हुई थी। वह अच्छा वक्ता था और १८८३ में लन्दन नगरमें छोटी छोटी सभाएँ करके उनमें व्याख्यान दिया करता था। उसका उद्देश्य था कि एक ऐसे समाजकी स्थापना हो जिसमें लोग अधिक उच्च और श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया करें। इसके वाद वह इंग्लैण्डसे न्यूयार्क चला गया परन्तु उसके अनुयायियोंने पहलेकी तरह सभाएँ करना और व्याख्यान देना बराबर जारी रक्खा। शीघ्र ही वे लोग यह समझ गए कि केवल अपना ही जीवन सुधारनेकी अपेक्षा सारे समाजका जीवन सुधारनेका प्रयत्न अधिक लाभदायक होगा। इसलिये ४ जनवरी १८८४ को उन्होंने अपनी सभाका नाम सुप्रसिद्ध रोमन जनरल फेवियस * के नामपर फेवियन सोसाइटी

---

* रोमका प्रसिद्ध जनरल फेबियस ईसासे प्रायः २०० वर्ष पहले हुआ था। वह अपने देशकी ओरसे कार्थेजके हनीबालके साथ लड़नेके लिये भेजा गया था। परंतु इसने जाते ही हनीवालपर आक्रमण नहीं कर दिया वल्कि बहुत

रक्खा। यह नाम राबर्ट आवेनके जीवनी-लेखक फ्रैंक पाडमोरके कहनेसे रक्खा गया था। सोसाईटीने अपना मूल मंत्र यह रक्खा था—"तुम्हें उपयुक्त समयकी उसी प्रकार प्रतीक्षा करनी चाहिए जिस प्रकार फेबियसने हनीवालके साथ युद्ध करते समय की थी; परन्तु जब उपयुक्त समय आ जाय तब तुम्हें फेबियसकी ही भाँति कठिन परिश्रम करना चाहिए, नहीं तो तुम्हारा प्रतीक्षा करना निरर्थक और निष्फल हो जायगा।" उस सोसाइटीके सदस्योंने लोगोंको उपदेश देनेसे पहले स्वयं ही अध्ययन तथा मनन करना ही अधिक उपयुक्त समझा। बहुतसे अच्छे अच्छे विद्वान् और लेखक जैसे बर्नर्डशा, सिड्नी बेब्, ग्राहम बैलेस्, सिड्नी ओलीवियर और विलियम क्लार्क आदि आकर उसमें सम्मिलित हो गए। श्रीमती एनी बिसेन्ट भी बहुत दिनोंतक उस सोसाइटीमें सम्मिलित थीं और अपने उत्तम व्याख्यानोंसे सोसाइटीका बहुत कुछ काम करती थीं, परन्तु १८९० में वे साम्यवादको छोड़कर थियासोफीकी ओर ढल गईं।

उन दिनों मार्क्सका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'कैपिटल' केवल जर्मन और फ्रेंच भाषाहीमें था। फेबियन सोसाइटीके आरम्भिक सदस्योंने उस ग्रन्थका विधिपूर्वक अध्ययन करके समझ लिया कि मार्क्सका मूल्य-सम्बन्धी जो सिद्धान्त है वह ठीक नहीं है। उन दिनोंके अँगरेज साम्यलोकमतवादी मार्क्सके उस मूल्यवाले सिद्धान्तको ही साम्यवादका सर्वप्रधान आधार समझते थे। उन दिनों बहुतसे लोगोंका यह भी

दिनोंतक उपयुक्त अवसरकी प्रतीक्षामें वह छावनी डालकर पड़ा रहा। युद्धमें उसके इस प्रकार विलम्बके कारण बहुतसे लोग उसे दोषी ठहराते थे परंतु जब उपयुक्त अवसर आया तब उसने तुरन्त घोर युद्ध करके हनीबालको परास्त कर दिया।

विश्वास था कि साम्यवादके सिद्धान्तोंकी स्थापनाके लिये क्रान्तिकारक उपायोंका अवलम्बन अनिवार्य और परम आवश्यक है, परन्तु फेबियन सोसाइटीवाले इस सिद्धान्तके भी विरोधी थे। उस समयतक सर्वसाधारणपर फेबियन सोसाइटीके विचारों और सिद्धान्तोंका कोई विशेष प्रभाव न पड़ा था। उस समयतक फेबियन लोग स्वयं ही वास्तविक तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेमें लगे हुए थे और उनकी समझसे कार्य आरम्भ करनेका उपयुक्त अवसर तबतक न आया था। साम्यलोकमतवादी संघ उन दिनों जोरोंपर था और सर्वसाधारणपर उसका अच्छा प्रभाव था। फेबियन सोसाइटीके संस्थापकोंकी तरह इसके संस्थापक युवक और अपरिपक्व बुद्धिके नहीं थे बल्कि वयस्क और परिपक्व बुद्धिके थे। उसका मुख्य संस्थापक हाइण्डमैन अच्छा प्रभावशाली लेखक, वक्ता और विद्वान् था। वह संसारका अच्छा अनुभव और ज्ञान प्राप्त कर चुका था, इस कारण साम्यलोकमतवादी संघकी बातोंका लोगोंमें अच्छा आदर होता था। इसी बीचमें सुप्रसिद्ध विद्वान् और कवि विलियम मारिस भी उस संघमें आकर सम्मिलित हो गया जिससे सर्वसाधारणकी दृष्टिमें संघ और भी अधिक आदरणीय हो गया। मारिसने बरसोंतक लेखनी तथा धनसे साम्यवादसम्बन्धी नए आन्दोलनमें प्रशंसनीय सहायता की। इसके अतिरिक्त उसने साम्यवादसम्बन्धी कुछ नए विचारोंका भी प्रचार किया। उसने देखा कि आजकलकी व्यापारपद्धति बहुत ही त्रुटिपूर्ण है और पूँजीदारीकी प्रथा मशीनोंके आविष्कारके साथ ही बढ़ी है। वह कलाकुशल था, इसलिये मशीनोंकी बनी हुई चीजें उसे भद्दी मालूम होती थीं। वह मशीनोंका प्रचार तो रोक ही नहीं सकता था इसलिये वह ऐसी सामाजिक क्रान्ति उपस्थित करना चाहता था जो लोगोंको मशीनोंके

उस दासत्वसे छुड़ा सके जिसमें मजदूरोंको गन्दे स्थानोंमें रहकर थोड़े वेतनपर बहुत अधिक समयतक काम करना पड़ता था। परन्तु काम करनेको वह बहुत पसन्द करता था। उसका मत था कि हर एक काम इस ढंगसे होना चाहिए जिसमें काम करनेवालेको आनन्द भी मिले और वह अपनी योग्यता भी दिखला सके। लोग कहते थे कि मशीनोंके आविष्कारके कारण लोगोंको कम परिश्रम करना पड़ता है और समाजकी सम्पत्ति बढ़ती है इसलिये शिल्पके प्रत्येक विभागमें मशीनोंका खूब आदर होगा; परन्तु मारिस इन सब बातोंको नहीं मानता था और मशीनोंको बहुत घृणाकी दृष्टिसे देखता था। मारिस तथा उसके मित्र वाल्टर क्रेनके प्रयत्नोंका यह फल हुआ कि अँगरेजी साम्यवादियोंका ध्यान छोटे छोटे कारीगरोंकी ओर आकृष्ट हुआ और कुछ समयके लिये वे लोग इस बातका प्रयत्न करने लग गए कि पुराने ढंगके चरखों और करघोंका व्यवहार होने लगे। अब साम्यलोकमतवादी संघ खूब जोर पकड़ चला। सब लोग समझने लगे कि इन नए सिद्धान्तोंकी ओर श्रमजीवी वर्ग खूब आकृष्ट होगा। १८८५ के चुनावके समय भिन्न भिन्न स्थानोंसे तीन साम्यलोकमतवादी उम्मेदवार खड़े हुए जिनमेंसे एकके पक्षमें ५९८ वोट आए थे और बाकी दोनोंके पक्षमें केवल २७ और ३२ वोट। इससे सिद्ध हो गया कि अधिकांश अँगरेजी प्रजाके विचार अनुदार ही हैं और उनमें उदार विचारों और साम्यवादके सिद्धान्तोंका प्रचार करना बहुत ही कठिन है। उसी समय उस दलके कुछ लोगोंमें मतभेद भी हो गया जिसके फलस्वरूप १८८५ में ही विलियम मारिसने और कई आदमियोंकी सहायतासे एक साम्यवादी लीग (Socialist League) की स्थापना की और एक नया पत्र निकाला जिसमें मारिसकी कुछ

किताबें प्रकाशित हुईं। धीरे धीरे इस लीगके सदस्योंके विचार अराजकतावादके पक्षमें होने लगे जिसके कारण चार ही पाँच वर्षमें उस लीगका सारा महत्त्व नष्ट हो गया।

इस बीचमें देशके भिन्न भिन्न भागोंमें अनेक छोटे मोटे दल खड़े हो गए थे। लीग और फेडरेशन इन दोनों प्रधान संस्थाओंमें परस्पर कोई विशेष वैमनस्य नहीं था और बड़े बड़े नगरोंमें उनकी बीसों शाखाएँ स्थापित हो गई थीं। कभी कभी व्याख्यानके समय इन दोनों दलोंके लोगोंकी लन्दनमें पुलिसके साथ मुठभेड़ भी हो जाया करती थी। १८८६ में हाइलण्डमैन शैम्पियन और बर्न्सपर राजद्रोही व्याख्यान देनेके अपराधमें मुकदमा भी चला था, परन्तु अन्तमें वे तीनों छूट गए जिससे सब लोगोंको बहुत आश्चर्य हुआ। फेबियन सोसाइटीकी उस समयतक कोई विशेष प्रसिद्धि नहीं हुई थी परन्तु बाकी दोनों संस्थाएँ खुले आम भयंकर राज्यक्रान्ति करनेका उपदेश किया करती थीं। १३ नवम्बर १८८७ को ट्रैफिलगर स्क्वायरकी एक सार्वजनिक सभा बन्द कर दी गई और जान बर्न्सको पुलिसके काममें बाधा डालनेके अपराधमें सजा भी हो गई। १८८९ में डाकवालोंकी प्रसिद्ध हड़ताल (Dockers' Strike) हुई जिसके नेता बर्न्स, टाममैन, बेन् टिलेट, शैम्पियन तथा दूसरे अनेक साम्यवादी थे। इस हड़तालमें हड़तालियोंको सफलता हुई जिसके कारण व्यापारसंघोंका जोर बहुत बढ़ चला। इसके बाद जानबर्न्सने साम्यलोकमतवादी संघका पक्ष छोड़ दिया और तब वह कई राजकीय पदोंपर नियुक्त हुआ।

उसी समय फेबियन सोसाइटीका प्रभाव भी लोगोंपर पड़ने लग गया था। उसने अपनी नीति बहुत कुछ सुधार ली थी और अनेक

पुस्तिकाएँ प्रकाशित करके लोगोंको श्रमजीवियों आदिकी वास्तविक दशाका परिचय कराना आरम्भ कर दिया था। उस समय फेवियन सोसाइटीवाले यह समझने लग गए थे कि आज ही क्रान्ति करके कल साम्यवादके सिद्धान्तोंके आधारपर कोई नई संस्था नहीं संगठित की जा सकती। इसके लिये सबसे पहले इस बातकी आवश्यकता है कि पूँजीदारीकी प्रथा और बड़े बड़े कारखानोंका अन्त हो। वे कहते थे कि क्रान्ति एक दिनमें नहीं हो सकती बल्कि धीरे धीरे लगातार होती रहेगी। वे कहते थे कि म्युनिसिपैलिटी, वाटरवर्क्स, पोस्ट-आफिसों और रेलों आदिपर पहलेसे ही समष्टिका अधिकार है और अब धीरे धीरे और सब चीजोंको समष्टिके अधिकारमें लानेकी आवश्यकता है। लन्दनकी ट्रैमवेपर बिना किसी प्रकारकी क्रान्तिके सहजमें ही समष्टिका अधिकार कराया जा सकता है। इसी प्रकार और भी अनेक ऐसे उद्योग हैं जो क्रम क्रमसे करनेके योग्य हैं।

एक बातसे फेबियन सोसाइटीके कामोंमें बहुत कुछ अप्रत्यक्ष सहायता मिली था। साधारण नागरिक और श्रमजीवी लोग गवर्नमेण्टको अपनेसे बिलकुल अलग और एक ऐसी बहुत बड़ी मशीन समझते हैं जिसके विषयमें उनकी धारण होती है कि न तो हमें उसका कोई विशेप परिचय है और न उसपर हमारा कोई वश है। जो कुछ थोड़ाबहुत कर सकते हैं वह भी बहुतसे अंशोंमें स्वेच्छा-पूर्वक नहीं बल्कि दूसरोंके दबावमें पड़कर। फेबियन सोसाइटीके सदस्योंमें बहुतसे लोग ऐसे थे जो बड़े बड़े सरकारी विभागोंमें उच्चतम श्रेणीके क्लार्क या लेखक थे। वे लोग समझते थे कि गवर्नमेण्टरूपी मशीनपर हमारा भी थोड़ा बहुत अधिकार है। बात यह थी कि प्रायः उन्हीं लोगोंको मंत्रियोंके व्याख्यानोंके लिये मसाला तैयार

करना पड़ता था; नए कानूनोंके खाके तैयार करने पड़ते थे और सरकारी खरीतों आदिके मसौदे बनाने पड़ते थे। वे लोग अनेक ऐसे उपायोंसे राजनीतिक कार्योंपर अपना प्रभाव डाल सकते थे जिनका बाहरी लोगोंको पता भी न लग सकता था। देशका शासन केवल वोटोंसे ही नहीं होता बल्कि उन विचारोंसे भी होता है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे बड़े बड़े सरकारी कर्मचारियोंके मस्तिष्कमें उत्पन्न कर दिए जाते हैं। सार्वजनिक सभाओंमें भी प्रायः यही बात हुआ करती है। जो व्यक्ति रिपोर्टों और प्रस्तावों आदिका मसौदा तैयार करता है प्रायः उसीकी नीतिके अनुसार सार्वजनिक सभाओंको चलना पड़ता है। यदि आप दूसरोंकी अपेक्षा अधिक ज्ञान प्राप्त कर लें और अपनी आवश्यकतायें तथा कार्य्यप्रणाली अच्छी तरह समझ लें तो सहजमें ही दूसरे आदमियोंको अपने विचारोंके अनुसार चला सकते हैं। अपने लिये नई मशीन बनानेकी अपेक्षा किसी बनी बनाई मशीनपर अधिकार प्राप्त कर लेना कहीं अधिक सहज है। इस प्रकार फेबियन सोसाइटीके सदस्योंका सरकारी कार्योंपर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता था। अन्तमें उन लोगोंने यह भी समझ लिया था कि हजारों और लाखों श्रमजीवी सहजमें ही साम्यवादी नहीं बनाए जा सकते। अपना नया राजनीतिक दल खड़ा करना उनकी शक्तिके बाहर था इसलिये उन्होंने पहलेके दलोंको अपने अनुकूल बनानेका प्रयत्न आरम्भ किया और धीरे धीरे वह उदार दलकी अनेक छोटी मोटी शाखाओंको अपने अनुकूल करके अप्रत्यक्षरूपसे अपना उद्देश्य सिद्ध करने लगी।

१८८९ से देशमें सोसाइटीका महत्त्व बढ़ने लगा। पहले अनेक अवसरोंपर सोसाइटीके प्रधान सदस्योंके जो बड़े बड़े व्याख्यान हुए

थे उन सबको उसने इस वर्ष प्रकाशित कर दिया जिसके कारण उसे असाधारण सफलता हुई। उन व्याख्यानोंसे यह पता चलता था कि अँगरेजोंके विचारसे साम्यवादका क्या स्वरूप होना चाहिए। दूसरे वर्ष १८९० में लन्दनके बाहर शिल्प और व्यापार आदिके केन्द्रोंमें सोसाइटीके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये निरन्तर अनेक व्याख्यानोंकी व्यवस्था की गई जिसका फल यह हुआ कि प्रत्येक बड़े नगरमें स्थानिक फेबियन सोसाइटीकी स्थापना हो गई, परन्तु अधिकांश स्थानिक सोसाइटियोंके सदस्य श्रमजीवी ही हुआ करते थे जिसके कारण वे लोग लन्दनवाली मुख्य फेबियन सोसायटीके दिखलाए हुए मार्गपर नहीं चल सकते थे। अतः दो ही तीन वर्षोंमें, १८९३ में स्वतंत्र श्रमजीवी दल (Independent Labour Party) के संगठित होनेके समयतक, प्रायः सबकी सब स्थानिक सोसाइटियाँ टूट गईं। उस समय एक ऐसे साम्यवादी दलकी आवश्यकता थी जो कि फेबियन सोसाइटीके सिद्धान्तोंके अनुसार व्यापारसंघोंके साथ मिलने और राजनीतिक क्षेत्रमें कुछ कार्य करनेको लिये तैयार हो। साथ ही इस बातकी भी आवश्यकता थी कि वह दल पूर्ण रूपसे स्वतंत्र हो। पहलेसे जो साम्यलोकमतवादी दल था उसके विचार बहुत ही सकुंचित और कार्यपणाली बहुत ही असन्तोषजनक थी। इन्हीं सब कारणोंसे एक नए स्वतंत्र दलकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी।

स्वर्गीय मिस्टर केअर हार्डीने इस आवश्यकाकी पूर्तिके लिये एक स्वतंत्र दलका संगठन करनेमें बहुत कुछ सहायता की थी। वह श्रमजीवियोंका नेता था और उन्हींकी ओरसे १८९२ में पार्लिमेण्टका सदस्य भी चुना गया था। उसीने १८९३ में ब्रैडफोर्डकी एक कान्फ्रेन्समें पहले पहल स्वतंत्र श्रमजीवी दल (Independent Labour

Party) का संगठन किया था । जैसा कि इसके नामसे विदित होता है इस दलका उद्देश्य साम्यवादसम्बन्धी सिद्धान्तोंका केवल प्रचार करना ही नहीं था बल्कि श्रमजीवियोंकी दशाका सुधार करना था । यह दल शीघ्र ही बहुत जोरदार हो गया । समस्त देशके व्यापारसंघोंके अच्छे अच्छे युवक और उत्साही युवक आकर इस दलमें सम्मिलित होने लगे । व्यापारसंघोंकी कांग्रेसोंमें प्रतिवर्ष साम्यवादके सिद्धान्तोंपर वादविवाद होने लगे और उनके पक्षमें प्रस्ताव स्वीकृत होने लगे । अब साम्यवादके सिद्धान्तोंका खूब प्रचार होने लगा । स्वतंत्र श्रमजीवी दलका जोर बहुत बढ़ गया और साम्यलोकमतवादी संघ बहुत दब गया । इस बीचमें फेबियन सोसाइटी बराबर बड़े बड़े व्याख्यान दिलवाया करती थी और अच्छे अच्छे ग्रन्थ तथा लेख प्रकाशित कराया करती थी । १८९३ में उसने प्रसिद्ध सामायिक पत्र (Fortnightly Review)में एक लेख छपवाया था जिसमें तत्कालीन उदार या लिबरल गवर्नमेण्टकी इसलिये निन्दा की गई थी कि वह श्रमजीवियोंको सरकारी काम करनेका अवसर न देती थी । उसी अवसरपर उसने व्यापारसंघोंसे यह भी कहा था कि तुम्हें अपना एक अलग श्रमजीवी दल संगठित करना चाहिए ।

श्रमजीवी दल ।

(THE LABOUR PARTY)

अँगरेजी साम्यवादके इतिहासमें इसके उपरान्त दूसरी घटना यह हुई कि श्रमजीवी दल (Labour Party) संगठित हुआ । पहले १८७४ में ही व्यापारसंघवादियोंके दो प्रतिनिधि पार्लिमेण्टमें चुने गए थे तबसे बराबर कुछ न कुछ व्यापारसंघवादी प्रतिनिधि बराबर

पार्लिमेण्टके सदस्य चुने जाया करते थे और सदा उदारमतवादियोंके साथ बैठकर उन्हींके पक्षमें वोट दिया करते थे। १८९९ में व्यापारसंघोंकी जो कांग्रेस हुई थी उसमें इस आशयका एक प्रस्ताव पास हुआ था कि एक कान्फरेन्स की जाय जो आगामी पार्लिमेण्टमें श्रमजीवी दलके प्रतिनिधियोंकी संख्या बढ़ानेका उपाय करे। फरवरी १९०० में लन्दनमें यह कान्फरेन्स हुई थी जिसमें प्रायः साढ़े पाँच लाख व्यापारसंघवादियों तथा तीनों साम्यवादी सभाओंके प्रायः २३००० सदस्योंके प्रतिनिधि और पार्लिमेण्टके अनेक मेम्बर सम्मिलित हुए थे। उस समय इस उद्देश्यसे (Labour Representation Committee) नामकी एक कमिटी बनाई गई कि पार्लिमेण्टमें श्रमजीवी प्रतिनिधि अधिक संख्यामें सम्मिलित हो सकें। उस समय यह भी निश्चित हुआ था कि इन प्रतिनिधियोंका एक अलग दल हो जो वर्तमान दलोंसे अलग तो न रहे परन्तु सदा श्रमजीवियोंका पक्ष लिया करे। ये प्रतितिधि चाहे उदारमतवादी हों, चाहे अनुदारमतवादी हों और चाहे साम्यवादी हों; परन्तु जिस समय श्रमजीवियोंके सम्बन्धका कोई प्रश्न उपस्थित हो उस समय ये सब मिलकर एक हो जायँ। जेम्स रैम्से मैकडनेल्ड जो पहले फेबियन सोसाइटीके सदस्य और पीछे स्वतंत्र श्रमजीवीके सदस्य रह चुके थे, उक्त कमेटीके सदस्य बनाए गए। श्रमजीवी दलको आरम्भमें जो सफलता हुई थी उसका बहुत कुछ श्रेय इन्हीं मैकडनेल्ड महाशयको था।

उक्त कमेटीके संगठित होनेके कुछ ही महीनों बाद सन् १९०० वाला सार्वजनिक चुनाव हुआ। उस समय तो श्रमजीवी दलके १५ उम्मेदवारोंमेंसे केवल २ ही पार्लिमेण्टके लिये चुने जा सके परन्तु इसके दो ही तीन वर्षके अन्दर श्रमजीवी दलके तीन और सदस्योंने

इंग्लैण्डके श्रमजीवी दलमें सभी व्यापारसंघ साम्यवादी सभाएँ और स्थानिक संस्थाएँ सम्मिलित हैं। उसके सदस्योंमें अधिक संख्या व्यापारसंघवालोंकी ही है परन्तु वे सब लोग साम्यवादी हैं अतः दलपर पूरा अधिकार साम्यवादका ही है। इस दलकी प्रतिवर्ष एक कान्फ्रेन्स होती है जिसमें भविष्यके लिये नीति स्थिर की जाती है और कार्यकारिणी समिति (Executive Committee) के सदस्योंका चुनाव होता है जिनमें व्यापारसंघवादियोंके ११ और साम्यवादियोंके ३ सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त व्यापारिक काउन्सिलों (Traders Councils) और स्थानिक श्रमजीवी दलों (Local Labour Parties) का भी एक सदस्य कार्यकारिणी समितिके लिये चुना जाता है। उन्हीं लोगोंमेंसे एक व्यक्ति सभापति भी चुना जाता है। सभापति और सदस्योंका चुनाव केवल एक वर्षके लिये होता है। इस दलके जो प्रतिनिधि पार्लिमेण्टके सदस्य चुने जाते हैं उनकी एक अलग समिति है जिसके सभापति और पदाधिकारियोंका चुनाव प्रतिवर्ष होता है। इस समितिके अधिवेशन प्रति सप्ताह होते हैं जिनमें बिलों और प्रस्तावों आदिके सम्बन्धमें विचार और नीति स्थिर की जाती है।

जनवरी १९१३ में इस दलमें १३० व्यापारसंघ जिनके सदस्योंकी संख्या १८५८१७८ थी, १४६ व्यापारिक काउन्सिलें और स्थानिक श्रमजीवी दल, दो साम्यवादी सोसाइटियाँ जिनके सदस्योंकी संख्या ३१२३७ थी तथा स्त्रियोंकी श्रमजीवी लीगकी सदस्य ५००० स्त्रियाँ सम्मिलित थीं। प्रत्येक सदस्यसे एक आना वार्षिक और व्यापारिक काउन्सिलोंसे थोड़ीसी फीस ली जाती है। १९१३ में इस मदसे ३८६२ पाउण्ड आय हुई थी। पुस्तकों आदिकी बिक्री

तथा दूसरे मदोंसे जो आय हुई थी वह इससे कहीं अधिक थी। इस दलका कोई बँधा हुआ सिद्धान्त नहीं है क्योंकि इसमें साम्यवादी भी हैं और व्यापारसंघवाले भी, परन्तु फिर भी साम्यवादकी नीतिके अतिरिक्त और किसी नीतिका अवलम्बन हो ही नहीं सकता, इसलिये उसके सभी कार्य सदा साम्यवादियोंकेसे हुआ करते हैं। इसका Daily Citizen नामका दैनिकपत्र भी १९१२ से निकलता है जो एक कम्पनीके हाथमें है।

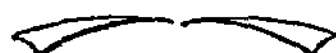
इंग्लैण्डमें बहुत दिनोंसे यह नियम चला आता था कि यदि श्रमजीवी लोग हड़ताल करें तो कारखानेदार उनसे अपना हर्जाना न ले सकें; परन्तु १९०० में एक मुकदमेमें फैसला हो गया कि यदि मजदूर लोग हड़ताल करें तो कारखानेदारोंको व्यापारसंघोंसे हर्जाना वसूल करनेका अधिकार है। इस निर्णयसे श्रमजीवियोंकी दशा बहुत नाजुक हो गई थी और बड़ी बड़ी हड़तालें करना उनके लिये बहुत हानिकारक और फलतः असम्भव हो गया था। इस निर्णयसे व्यापार-संघवादी लोग बहुत नाराज हुए थे। इसी नाराजगीके कारण ही श्रमजीवी दलका जोर बहुत बढ़ गया। समस्त श्रमजीवियोंने मिलकर इस निर्णयको पार्लिमेण्टसे रद्द करानेके लिये बहुत दृढतापूर्वक आन्दोलन आरम्भ किया जिसमें १९०६ में उन्हें सफलता भी हो गई। उस समय Trades Disputes Aet नामका एक कानून बन गया जो श्रमजीवियोंके लिये सर्वथा सन्तोषजनक था। इसके अतिरिक्त श्रमजीवियोंने आन्दोलन करके १९०६ में सरकारसे एक और कानून बनवा लिया था, जिसके अनुसार स्कूलमें जानेवाले बालकोंके लिये भोजन की व्यवस्था हुई थी। १९०९ में उन्होंने एक और कानून बनवाया जिसके अनुसार उत्तरप्रान्तके लिये उन्होंने

यह निश्चय करा लिया कि मजदूरोंको कमसे कम इतनी मजदूरी अवश्य मिला करेगी। इधर हालमें कुछ ऐसे नए कानून भी बने हैं जिनके अनुसार श्रमजीवियोंको बीमारी और बेकारी आदिके समयके लिये अनिवार्य्य रूपसे बीमा कराना पड़ता है। वृद्धावस्थामें सबकी पेन्शनोंके लिये भी विशेष व्यवस्था हो गई है। यह बात स्पष्ट ही है कि यदि व्यापारसंघों और श्रमजीवी दलमें पूरा जोर न होता तो इस प्रकारके कानून नहीं बन सकते थे। १८७४ से व्यापारसंघोंका धन बराबर राजनीतिक कार्यौंके लिये खर्च होता था, परन्तु १९०९ में एक मुक़दमा चला था जिसमें सरकारद्वारा निश्चित हो गया था कि व्यापारसंघोंका रुपया श्रमजीवी दलको न मिला करे। यद्यपि १९१३ में Trade Union Act बन जानेके कारण यह फैसला रद्द हो गया था और व्यापारसंघोंको पहलेकी ही तरह राजनीतिक कार्यौंमें भी अपना धन लगानेकी स्वतंत्रता मिल गई थी तो भी १९०९ से १९१३ तक श्रमजीवी दलको रुपए पैसेकी कमी नहीं हुई और उसके सब काम बराबर पहलेकी ही तरह होते रहे थे। श्रमजीवी दलने इंग्लैण्डके राजनीतिक क्षेत्रमें बहुत कुछ काम किया है। पहले इस दलके लोगोंका चुनाव उदार दलमें ही होता था परन्तु अब उन लोगोंने अपना बिलकुल स्वतंत्र दल खड़ा कर लिया है। १९०६ से १९१० तक तो पार्लिमेण्टमें उनका अधिक जोर नहीं था परन्तु जनवरी १९१० से उसकी उच्चाकांक्षाएँ बहुत बढ़ गई हैं। साम्यलोकमतवादी दल उसके सामने बहुत ही कमजोर पड़ गया है। उसके सदस्योंकी संख्या तेरह चौदह हजारसे अधिक नहीं है। उसके दो पत्र निकलते हैं परन्तु उनकी दशा भी विशेष सन्तोषजनक नहीं है। स्वतंत्र श्रमजीवी दल अपनी पुरानी नीतिपर बराबर चल रहा है।

उनके नेता श्रमजीवी दलके भी नेता हैं और राजकीय कार्योंमें दोनोंकी नीति एक ही है। स्थानिक शासनमें उसके हजारों प्रतिनिधि हैं। उसका एक साप्ताहिक और एक मासिक पत्र निकलता है। इसके अतिरिक्त वह दल साम्यवादसम्बन्धी एक ग्रन्थमाला भी निकालता है जिसमें बड़े बड़े साम्यवादियोंके ग्रन्थ रहते हैं। पार्लिमेण्टके श्रमजीवी दलके जितने सदस्य हैं उनके आधे स्वतंत्र श्रमजीवी दलके भी सदस्य हैं। देशके भिन्न भिन्न भागोंमें इसकी सात सौसे ऊपर शाखाएँ हैं जिनके पचास हजारके लगभग सदस्य हैं। फेबियन सोसाइटीकी दशा भी बहुत अच्छी है। उसकी स्थानिक शाखाएँ और संस्थाएँ तो टूट गई हैं परन्तु लण्डनवाली प्रधान सोसाइटी बहुत उन्नति पर है। इसके द्वारा अनेक छोटी छोटी पुस्तिकाएँ और लेख आदि बराबर प्रकाशित होते हैं जो बहुत मार्केके होते हैं। आरम्भसे ही यह सोसाइटी प्रतिपक्ष साम्यवादसम्बन्धी व्याख्यान कराया करती है जिनका सर्व साधारणपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। सन् १९०६ के बादसे उसके सदस्योंकी संख्या बहुत बढ़ गई है। इन सदस्योंमें अनेक बहुत अच्छे अच्छे लेखक हैं जिन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। इधर कुछ वर्षोंसे देशके भिन्न भिन्न भागोंमें फिरसे इसकी शाखाएँ स्थापित होने लग गई हैं। इस सोसाइटीके विचारोंसे प्रभावित बहुतसे लोग अनेक उच्च राजकीय पदोंपर पहुँच गए हैं। १९१२ में पार्लिमेण्टमें बारह फेबियन थे जिनमेंसे आठ श्रमजीवी दलमें और चार उदार दलमें थे। भिन्न भिन्न विषयोंपर विचार करनेके लिये इस सोसाइटीके अनेक वर्ग हैं जो बहुत अच्छा काम करते हैं। इसके कुछ प्रधान सदस्योंने अभी हालमें एक नया साप्ताहिक पत्र भी निकालना आरम्भ किया है। इधर कुछ

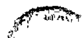
दिनोंसे स्वतंत्र श्रमजीवी दलके साथ इसकी घनिष्ठता बहुत बढ़ गई है। १९१० में इन दोनोंकी एक संयुक्त स्थायी समिति बनी थी जो साम्यवादके सिद्धान्तोंके प्रचारके लिये बराबर उद्योग करती है। बहुतसे लोगोंने एककालीन दान देकर इसकी आर्थिक दशा भी बहुत सन्तोषजनक कर दी है। तात्पर्य यह कि इंग्लैण्डकी फेबियन सोसाइटी इस समय बहुत उन्नत दशामें है और साम्यवादसम्बन्धी कार्योंमें उससे बहुत कुछ आशा की जा सकती है।

१३ भिन्न भिन्न विषयोंके सिद्धान्त ।



समाजाधिकार ।

साम्यवादके विरोधी अकसर कहा करते हैं कि साम्यवादियोंके साम्राज्यमें एक सुई या कील भी किसीकी सम्पत्ति न होगी, लोहारके वसूले और हथौड़ेके लिये भी नित्य सार्वजनिक औजारखानेतक दौड़ना पड़ेगा; यदि कमरेमें एक चित्र लटकानेकी इच्छा हो तो उसके लिये कील भी टाउनहालमें दरखास्त भेजे बिना न मिल सकेगी, इत्यादि। इसमें सन्देह नहीं कि साम्यवादी सम्पत्तिपर समाजका अधिकार चाहते हैं—पूँजीवालोंके साम्राज्यका अन्त चाहते हैं। उनका निश्चित मत है कि वर्त्तमान पूँजीदारीकी प्रथा और सभ्यता दोनोंका अस्तित्व साथ साथ नहीं रह सकता। यदि पूँजीदारीकी प्रथाका नाश न हुआ तो सभ्यताका नाश अटल समझना होगा। जबतक जमीन, रुपया पैसा, रेल, जहाज, खानें, सोना, चाँदी, कोयला, अन्न आदि एक या कुछ व्यक्तियोंकी सम्पत्ति हैं तबतक पादाक्रान्त और दरिद्र जनताके उद्धारकी आशा मनमोदक मात्र है। तथापि यह कहना असत्य है कि साम्यवादी व्यक्तिका सभी कुछ छीन लेना चाहते हैं। साम्यवादी



नेताओंने सम्पत्तिके दो स्पष्ट विभाग कर दिए हैं—(१) समाजाधिकारके योग्य सम्पत्ति और (२) समाजाधिकारके अयोग्य सम्पत्ति। उत्पादन सामग्रीको—उन वस्तुओंको जो पूँजीकी भाँति काममें लाई जा सकती हैं—उन्होंने प्रथमके अन्तर्गत माना है और उपभोग सामग्रीको—उन वस्तुओंको जो केवल भोगी जा सकती हैं और दूसरी वस्तुओंकी उत्पादक नहीं हो सकतीं—दूसरे विभागमें स्थान दिया है। उत्पादन सामग्रीपर वे किसी प्रकार व्यक्तिका अधिकार नहीं रहने देना चाहते। परन्तु उपभोग सामग्रीको वे व्यक्तिके अधिकारमें ही रहने देना चाहते हैं। मि० वेल्सने अपनी पुस्तकमें इस विषयमें यो लिखा है—

समाजधिकारके अयोग्य सम्पत्ति।

जो कुछ व्यक्तिके पास है उस सबपर समाजका अधिकार करा देना असम्भव है। संसारमें ऐसी चीजें भी हैं जो व्यक्तिकी ही सम्पत्ति रहनेके लिये बनाई गई हैं। जिन वस्तुओंसे मनुष्यकी नैत्यिक या नैमित्तिक आवश्यकताएँ पूरी होती हैं, जो एकवार उपयोग करनेसे ही या थोड़े ही दिनोंके उपयोगसे नष्ट हो जाती हैं, और जो कुछ मनुष्यके खाने और पहनेनके काममें आ सकती है, उसपर सदा उसीका अधिकार होना चाहिए। उसके औजार, उसके खिलौने, उसकी साइकिल, उसका क्रिकेट खेलनेका सामान, आदि साम्यवादी सरकारमें भी उसी प्रकार उसकी अपनी सम्पत्ति बना रहेगा जिस प्रकार कि आज है। इन वस्तुओंको अपनी समझनेकी इच्छा स्वाभाविक है। मेरा ३ सालका बच्चा भी अपने और अपने बड़े भाईके खिलौनोंमें भली भाँति भेद कर सकता है और अपने खिलौनोंपर पूर्ण ममता प्रकट करता है।

साम्यवादी जिस सम्पत्तिको समाजाधिकारके योग्य या अपहरणीय समझते हैं वह उस प्रकारकी सम्पत्ति है जिसे प्रकृतिने तो सम्पूर्ण मानव प्राणियोंके भोगके लिये पैदा किया था पर थोड़ेसे चतुर साहसी मनुष्योंने अपनी सभ्य ठगी या लूटकी बदौलत जनताको उससे वञ्चित करके उसे अपने ही अधिकारमें कर लिया है। बड़ी बड़ी जमींदारियों, कारखानों, रेलों, जहाजों, खानों, बैंकिंग और बीमा कम्पनियोंके मालिक उन्हीं लोगोंकी श्रेणीमें हैं। इनसे बलपूर्वक दस्तबरदारी लिखवा लेनेके सम्बन्धमें पुराने और नए साम्यवादियोंमें मतान्तर नहीं है—दोनों ही ऐसा करनेके लिये कृत-निश्चय हैं। उपर्युक्त कारखानोंके मालिकोंको मशीनें, तथा और सब प्रकारकी साधन-सामग्री भी साम्यवादी सरकारके चरणोंमें अर्पित कर देनी पड़ेगी। जलप्रबन्ध, गैस और बिजली उत्पन्न करने तथा दूध, रोटियों और मांस आदिकी दूकानें खोलनेका अधिकार साम्यवादी म्यूनिसिपैलिटियोंको देना चाहते हैं, जिसके जनताके–सामने–उत्तर-दाता अधिकारी इनकी व्यवस्था करेंगे।

समाजाधिकारके योग्य सम्पत्ति।

पुराने साम्यवादी नेता छोटी सम्पत्तियोंको भी उसी प्रकार अप-हरणीय समझते थे जिस प्रकार कि बड़ी सम्पत्तियोंको। उनकी सम-झमें छोटी सम्पत्तियोंके स्वामियोंका कल्याण भी इसीमें था कि उनकी छोटी छोटी पूँजियाँ सार्वजनिक सम्पत्ति हो जायँ। उनका कहना था कि बड़ी पूँजीवाले क्रमशः छोटी पूँजियोंको नोचनोचकर अपने पेटमें रखते जा रहे हैं। थोड़े ही दिनोंमें वे उन्हें सर्वांशमें चट कर जायँगे। अत्यन्त श्रम और उपवास–ये ही दो वस्तुएँ

साम्यवादी और छोटी पूँजीवाले।

वर्त्तमानमें उनके अस्तित्वकी रक्षक हैं। ऐसी दशामें क्या यह उनके साथ उपकार करना न होगा कि उनकी छोटी पूँजियाँ लेकर उनको बड़ी सामाजिक सम्पत्तिका हिस्सेदार बना लिया जाय? पर कुछ ही आगे चलकर उनको मालूम हो गया कि किसानों और दस्तकारों आदिकी पूँजियोंपर सामाजाधिकार होना टेढ़ी खीर है। सम्पत्ति छोटी हो या बड़ी, स्वामीकी उसपर समान ममता होती है। यह बात नहीं हो सकती कि जिनसे बड़ी बड़ी सम्पत्तियाँ छीनी जायँ केवल वे ही साम्यवादका विरोध करें और छोटी सम्पत्तियोंके स्वामी खुशीसे अपनी पूँजी उसके चरणोंमें भेंटकर उसका स्वागत करें। क्रमशः यह बात उनके ध्यानमें आ गई कि अपनी पूँजीसे १००) रु० सालाना कमानेवाला भी उसपर अपना व्यक्तिगत अधिकार रखनेके लिये उसी तरह मरने मारनेपर तुल जायगा जिसतरह कि उससे लाख दो लाख सालाना कमानेवाला। किसानों, दस्तकारों और छोटे दूकानदारोंकी संख्या सभी देशोंमें अधिक है। क्रान्तिकारी आन्दोलनोंकी सफलता भी अधिकतर इन्हींकी अनुकूलतापर अवलम्बित होती है। ऐसी दशामें साम्यवादीको अपने कार्यक्रममें ऐसा सुभीता करना नितान्त आवश्यक हुआ जिससे किसान आदि छोटी पूँजीवाले उसके विरोधी न होकर सहायक हो जायँ। १८८० की हैवर कांग्रेसमें निश्चित मार्क्सवाले कार्य्यक्रमके अनुसार जहाँ सूईकी नोक बराबर भूमिपर स्वयं सूई भी राष्ट्रीय सम्पत्तिके अतिरिक्त नहीं रह जानी चाहिए थी वहाँ १८९२ की मार्शेलस कांग्रेसने सभी छोटी सम्पत्तियोंके व्यक्तिगत स्वामित्वको अक्षुण्ण रखनेका मन्तव्य स्वीकृत किया। ऐंजेल्से, वेबेल आदि वृद्ध नेताओंने यद्यपि इस मन्तव्यको 'साम्यवादकी हत्या करनेवाला' आदि विशेषण देकर इसका तीव्र विरोध किया था, पर उनके विचार

प्रायः प्रभावहीन सिद्ध हुए और साम्यवादी लोकमत विशेष सुभीते देकर किसान आदिकोंको अपने साथ रखनेहीके मतकी ओर अधिकाधिक बढ़ता गया। अब प्रभावशाली साम्यवादी नेताओंमें एक कार्ल काउस्कीका दल ही ऐसा है जो पुराने सिद्धान्तपर कुछ अड़ा हुआ है। वह चाहता है कि किसानों आदिकी पूँजी तो छीन ली जाय पर घरपर उनका व्यक्तिगत अधिकार रहने दिया जाय। वह कहता है— घर उत्पादक वस्तु नहीं, उपभोग्य वस्तु है और नव साम्यवादको केवल उत्पादन सामग्रीको व्यक्ति मात्रकी संयुक्त सम्पत्ति बना देना इष्ट है। जिस उपभोग्य वस्तुपर मनुष्यकी सबसे अधिक ममता होती है वह स्वतंत्र घर ही है। इसलिये किसानों आदिको उसके छिन जानेके विषयमें निर्भय कर देना चाहिए। उनकी पूँजीके अपहरणमें भी वह उग्र उपायोंसे काम नहीं लेना चाहता, बल्कि ऐसे सौम्य उपायसे यह काम करना चाहता है जिससे वे यह अनुभव ही न कर सकें कि हमारी कोई चीज छीनी जा रही है। जार्ज रेनार्ड किसानोंके पूर्ण निर्भय हो जानेकी घोषणा करता है। वह कहता है कि उस गरीब आदमीकी हम कोई चीज नहीं लेना चाहते जिसको वर्त्तमान सम्पत्तिविभागपद्धति उसकी कमाईका उचितसे बहुत ही कम भाग दिला रही है। वह अपने घरमें बना रहे और अपने पूर्वजोंकी भूमिको निश्चिन्त होकर भोगे और अपनी सन्तानके लिये छोड़ जाय। जर्मनीके प्रायः सभी विचारवान् साम्यवादी इस बातपर सहमत हैं कि जो मनुष्य अपने खेतको स्वयं ही जोतता बोता है उसकी सम्पत्ति न छीनी जाय। अर्थात् किसानके खेत, हल बैल या घोड़े आदि उसीके रहने दिए जायँ। थोड़ी कमाई करनेवाले दस्तकारों और दूकानदारोंको भी आधुनिक साम्यवादी किसानोंके समान ही सुभीते देना चाहते हैं।

किसान अपनी पृथक् भूसम्पत्तिका उपभोग किस प्रकार करेंगे ? यदि वे अपने खेतके जोतने बोनेके लिये अकेले ही काफी न हुए—और ऐसा होना केवल सम्भव ही नहीं बल्कि निश्चित है—तो उनके खेतोंमें मजदूर बनकर कौन काम करने जायगा ? कुछ लोगोंको मालिक और कुछको मजदूर किस प्रकार बनाया जा सकेगा ? आदि प्रश्नोंका साम्यवादी अभीतक सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके हैं। हाँ कुछ लोग यह भविष्यद्वाणी अवश्य कर बैठे हैं कि मजदूर न मिलने और निश्चित दरपर राज्यके हाथ ही अपनी उपज बेचनेके लिये बाध्य होनेके कारण किसानोंका जी शीघ्र ही अपनी सम्पत्तियोंपर से हट जायगा और वे स्वयं ही उनसे दस्तबरदार होकर सामुदायिक विराट् कारखानेके हिस्सेदार बनाए जानेकी प्रार्थना करेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि छोटी पूँजीवालोंको विशेष सुभीते देना स्वीकृत कर साम्यवादी अपने एक प्रधान सिद्धान्तकी हत्या कर रहे हैं। यदि किसान, छोटे दूकानदार और दस्तकार (दूसरे शब्दोंमें सभी देशोंकी जनताओंका बड़ा भाग) व्यक्तिशः उद्योग करके या सहयोग संघोंके सदस्य होकर अपने और अपनी सन्तानके लिये धन एकत्र करते ही रहेंगे तो फिर साम्यवादी क्रान्तिकी आवश्यकता किनके लिये है ?

समाजाधिकार किस किस वस्तुपर किया जाय; इसका निर्णय करनेमें साम्यवादियोंको जितनी कठिनाई पड़ी है और पड़ रही है

समाजाधिकार क्योंकर साधित हो।

उससे कहीं अधिक कठिनाई उन्हें इस बातके निश्चित करनेमें पड़ रही है कि समाजाधिकार क्योंकर किया जाय। यद्यपि इतिहाससे सिद्ध है कि व्यक्तियोंकी सम्पत्तिपर अधिकार कर

लेनेका राज्यको अधिकार है और समय समयपर उसने इस अधिकारसे काम भी लिया है, तथापि यह काम है अत्यन्त भयपूर्ण और विशेषतः ऐसी दशामें जब कि एक साथ ही लाखों, करोड़ों मनुष्योंको सम्पत्तिरहित करना हो। कहावत भी है की "जीवके साथ जीविका" अर्थात् मनुष्य जान रहते जीविकाके साधनपर पराया अधिकार होना सहन नहीं करता। यही कारण है कि जब जब समाजाधिकारकी कोई योजना विचारार्थ उपस्थित हुई तब तब सम्पत्तिस्वामियोंकी ओरसे ऐसी जबरदस्त मोर्चाबन्दी होती देख पड़ी कि बड़े बड़े मनस्वी साम्यवादियोंके दिल भी दहल गए।

समाजाधिकारके अबतक ये तीन साधन माने गए हैं—दस्तबरदारी, अपहरण और क्रय। अर्थात् (१) लोग स्वेच्छासे अपनी पूँजियाँ राज्य या राष्ट्रके चरणोंमें अर्पित कर दें; (२) राज्य अपने अधिकारका उपयोग करके उनसे जबर्दस्ती छीन ले और (३) बदला या मूल्य देकर खरीद ले। जो लोग अबतक अपनी पूँजियों-हीकी बदौलत दुग्धकुंडमें स्नान करते और सैकड़ों-सहस्रोंको अपनेसे हीन देखकर अपने भाग्य या बुद्धिमत्तापर गर्व करते रहे हैं, जिनमेंसे अधिकतर विलासिताहीमें पले और विलासिताहीके लिये जीते हैं, उनके हृदयोंमें विश्वमानवप्रेमका किसी दिन ऐसा ज्वार आ जायगा कि अपने उसी गर्व, उसी विलासिताकी सामग्री—अपनी पूँजी—को वे राष्ट्रके चरणोंमें भेंट करके साधारण श्रमजीवीकी श्रेणीमें आ जायँगे-यह आशा किसी आशावादीसे आशावादी साम्यवादीके अतःकरणमें भी उद्भूत नहीं हुई। अब रह गए दो साधन। इनमेंसे भी किसीकी व्यवहार्यता असन्दिग्ध नहीं है। अधिकांश साम्यवादी तीसरे साधन—क्रयके तरफदार हैं। मि० बर्नार्डशाकी सम्मतिमें यदि सभी पूँजियाँ

एक ही साथ छीनी जा सकतीं तो फिर क्रमपद्धतिके अनुसरणकी आवश्यकता न पड़ती। पर जब इस रास्तेको क्रम क्रमसे ही तै करना है, जब एक समय एकही प्रकारकी या एकही वर्गकी सम्पत्तिका अपहरण किया जा सकता है तब यह घोर अन्याय होगा कि कुछ लोग अपनी सम्पत्तियोंको सुखपूर्वक भोगते रहें और दूसरोंकी पूँजी उनको बिना एक पैसा दिए छिन ली जाय। ऐसा करनेसे ये लोग भूखों भी मरने लग जायँगे क्योंकि सार्वजनिक संयुक्त कारोबारमें उनके लिये ठिकाना होनेके बहुत पहले ही उनकी व्यक्तिगत जीविकाका साधन उनसे छीन लिया जायगा। मि० वेल्सका कथन है कि व्यक्तिगत अधिकारपर 'वेजन' बोलनेके कारण ऐसी विपत्ति आवेगी जैसी मानवसमाजपर अबतक कभी न आई होगी। एडवर्ड बर्न्सटेन और काउस्की आपत्कालके अतिरिक्त और सभी अवस्थाओंमें क्रयका ही उपदेश करते हैं, आपत्कालमें वे अपहरण विधिको भी उचित मानते हैं।

समाजाधिकारकी कठिनाइयाँ।

पूँजियाँ खरीदनेके लिये बहुत अधिक धन चाहिए—इतने रुपए चाहिए जिनकी संख्या बतानेके लिये गणनामें अङ्क नहीं हैं। साम्यवादी सरकार इतना धन कहाँसे लावेगी? एक फ्रेञ्च सम्पत्तिशास्त्रीने हिसाब लगाकर बताया है कि फ्रान्सके बाजारके लेनदेनमें काम आनेवाले सबके सब रुपए देकर भी केवल वहाँकी जमींदारियों—केवल एक प्रकारकी सम्पत्तिकी कीमत नहीं अदा की जा सकती। काउस्कीकी भी सलाह है कि पूँजियाँ नकद दाम देकर नहीं, बल्कि उधारपर खरीदी जायँ और जिसकी चीजका जितना दाम निश्चित हो, साम्यवादी सरकार अपने ऊपर उसका उतना ऋण मान

ले। इस ऋणका सूद उसे दिया जाय। प्रत्येक पूँजीदारकी मृत्युपर बहुत बड़ा मृत्युकर वसूल किया जाय जो राज्यके जिम्मे उसके प्राप्तव्यमें मिनहा हो जाया करे। काउस्कीके मतसे इस प्रकार राज्यका देना क्रमशः घटते घटते कुछ कालमें बहुत कम रह जायगा। पर साथ ही वह मानता है कि इस समयके आनेके पहले कई पीढ़ियाँ बीत जायँगी। इस स्कीमके प्रतिवादमें मरमिक्स बिगड़कर सवाल करता है—क्या श्रमजीवी राज्य (Worker's State) जो संक्रमण स्थितिमें होनेके कारण यों ही आर्थिक कठिनाइयोंके दलदलमें बुरी तरह फँसी होगी, सैकड़ों सालमें चुकनेवाला इतना बड़ा ऋण भी अपने सिरपर रख लेना स्वीकृत करेगी? अपनी गाढ़ी कमाईका पैसा मुफ्तखोरोंकी जेबमें डालना क्या उसे न खलेगा? आज तुम जिनको यह तत्त्व घोंट घोंट कर पिला रहे हो कि पूँजी केवल परिश्रम करनेवालोंको लूटकर एकत्र किए हुए धनका नाम है, कलके लिये उन्हींसे क्या तुमको यह आशा है कि वे अपने उन्हीं लुटेरोंको हलुआ और मलाई खिलाते रहेंगे, जब कि परोसनेवाले स्वयं वे ही होंगे? प्रसिद्ध साम्यवादी नेता यूजिनियो रिगनानो काउस्कीकी योजनाको नितान्त अव्यवहार्य और उत्तरोत्तर करवृद्धि द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्तियाँ हस्तगत करनेकी योजनाको सुधारका आभास मात्र कहता है।

म्युनिसिपल और आयकरोंकी उत्तरोत्तर वृद्धि, बागियों, निर्वासितों आदिकी जायदादोंकी जब्ती, सब प्रकारके इजारोंपर राज्याधिकार आदि साधनोंसे भी सम्पत्तियोंके मूल्य-स्वरूप देनेके लिये कुछ धन मिल जानेकी आशा है; परन्तु पावनेकी ओर इस मदकी आनुमानिक आयके आँकड़े रख लेनेपर भी देनेके भयंकर आँकड़ोंको देखकर छक्के छूट जाते हैं।

सारांश यह है कि यदि इसी समय व्यक्तिगत पूँजियोंसे पिंड छुड़ाना निश्चित हो तो विचारवान् साम्यवादी इन पूँजियोंके स्वामियोंको मुआवजेके तौरपर कुछ देना तो अवश्य चाहते हैं, पर कितना दें, कैसे दें और कहाँसे दें, इसका निश्चय उनसे अभीतक नहीं हो सका है।

साम्यवादी और उत्तराधिकार ।

अपनी ही अन्तरात्माकी प्रेरणासे अपनी वपौती और कमाईके लिये दस्तवरदारी लिख देना इस स्वार्थी संसारमें असम्भव है; क्रमकी विधिके सम्पादनके लिये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें जितना ऋण लेना होगा उसके भारको सोचकर कल्पना-गर्भस्थ साम्यवादी सरकारके पावँ लड़खड़ा रहे हैं; अपहरणका हथियार उठानेके लिये उसे अपने हाथोंमें यथेष्ट वल नहीं माळूम होता। इस प्रकार उपर्युक्त तीनों ही साधन असाधन कहानेके अधिकारी होते हैं। रिगनानो और उससे सहमत साम्यवादी पिछले साधन—अपहरण—को व्यवहार्य बनानेकी आशा रखते हैं। उनकी इस आशाका आधार उत्तराधिकारसम्बन्धी कानूनोंका संशोधन है। वह संशोधन इस प्रकार होगा—पिताकी सम्पत्तिके $\frac{२}{३}$ का पुत्र और १ का राज्य उत्तराधिकारी हो; पुत्रको मिली हुई सम्पत्ति जब पौत्रके हाथमें जाने लगे तब राज्य उसमेंसे आधा ले ले और इस दूसरे उत्तराधिकारीके मरनेपर उसके पुत्रको कुछ न देकर शेप सारी सम्पत्तिपर राज्य अपना अधिकार कर ले। इस संशोधनके अनुसार कार्य होनेसे उस समय व्यक्तियोंके पास पूर्वजार्जित और स्वार्जित जितनी सम्पत्ति है वह उसके पोतेके मरनेपर सबकी सब समाजकी हो जायगी और आनेवाली सन्तानें जो कुछ कमाई करेंगी वह भी उसकी तीसरी पीढ़ीकी समा-

तिपर राज्यकी होती जायगी। इस संशोधनके आशयको अधिक स्पष्ट कर देनेके लिये हम एक उदाहरण देते हैं। मान लीजिए कि 'क' नामक एक व्यक्ति अपनी मृत्युके समय १८०००) की सम्पत्ति छोड़ जाता है। पूर्वोक्त प्रकारसे संशोधित उत्तराधिकार-नियमके अनुसार राज्य उसके पुत्र 'ख' को केवल १२०००) का सम्पत्ति देगा, शेप ६०००) की जायदाद पर स्वयं अधिकार कर लेगा। 'ख' भी अपनी मृत्युके समय १८०००) छोड़ता है। इसमेंसे १२०००) उसके पैतृक और ६०००) स्वार्जित समझे जायँगे। अब राज्य पूर्वोक्त १२०००) मेंसे ६०००) और उसके स्वार्जित ६०००) में से २०००) ले लेगा। शेप १००००) उसके पुत्र 'ग' को दे देगा। 'ग' अपनी मृत्युके समय १६०००) छोड़ता है। इसमेंसे ६०००) उसके दादा 'क' का तरका समझा जायगा और इसमेंसे उसके पुत्र 'घ' को एक पैसा भी न मिलेगा; सबका सब राज्यके अधिकारमें चला जायगा। ४०००) उसके पिता 'ख' की दी हुई पूँजी समझी जायगी जिसमेंसे 'घ' और राज्य आधोआध ले लेंगे। ६०००) उसकी निजकी कमाई मानी जायगी और इसमें २०००) राज्यको और ४०००) 'घ' को मिलेगा। पैतृक पूँजी व्यक्तिकी कमाईमें प्रत्येक समय शामिल समझी जायगी; भले ही उसके जीवनमें एक नहीं कई बार ऐसे समय बीत चुके हों जब कि घाटे, अग्निकाण्ड या अन्य किसी आपत्तिके कारण उसके पास एक अधेला भी शेप न रह गया हो, और फिर उसके बाद अपनी दशा सुधारनेमें वह एक मात्र अपने परिश्रमको ही पूँजीकी भाँति काममें ला सका हो। यदि 'ख' अपनी मृत्युके समय १२०००) ही छोड़ जाता तो यह सब 'क' की ही कमाई समझी जाती और 'ग' को उसका न मिलकर आधा ही मिलता।

उपर्युक्त योजनापर रिगनानो और उनसे सहमत साम्यवादियोंका बड़ा भरोसा है। उनका कहना है कि इससे साँप भी मरेगा और लाठी भी न टूटेगी। बिना मूल्य दिए; बिना ऋणका पहाड़ सिर-पर लादे व्यक्तिगत सम्पत्तियाँ समाजाधिकृत भी हो जायँगी और मृत्यु-करके रूपमें इस आंशिक अपहरणको लोग राज्यका इतना बड़ा अत्याचार भी न समझेंगे कि संगठित रूपसे 'युद्धं देहि' कहने लगें। काममें कुछ देर लग जायगी, परन्तु वह सुगम हो जायगा। व्यक्तियोंका सम्पत्तिपर कुछ स्वामित्व मानना पड़ेगा, पर वह अत्यावश्यक है। उपभोगके अतिरिक्त सम्पत्तिके दान करनेका अधिकार भी व्यक्तियोंको देना पड़ेगा, पर रिगनानोका कहना है कि यदि यह अधिकार उनको न दिया जायगा तो समाजकी उत्पादनशक्तिमें ही घुन लग जायगा। वह अपने विरोधियोंकी यह दलील मानता है कि परिश्रम करनेमें मनुष्यका जितना उद्देश्य अपनेको सुखी करना होता है उतना ही अपनी सन्तानको सुखी करना भी होता है और यदि अपनी कमाईसे अपनी सन्तानको सुखी करनेका उसका अधिकार छीन लिया जाय तो या तो उसकी कमाई ही बहुत कम हो जायगी या वह उसको उड़ाने लग जायगा। इसलिये उसकी उक्त योजनाके अनुसार अपनी कमाईसे अपनी सन्तानको सुखी बनानेकी व्यक्तियोंकी इच्छामें समाज या राज्य जितना हस्तक्षेप कर सकेगा उससे अधिक हस्तक्षेपको वह हानिकारक समझता है। इतने हस्तक्षेपसे व्यक्तियोंके आलसी, निरुत्साहित या अमितव्ययी हो जानेका उसे विशेष भय नहीं है; क्योंकि उसके विचारसे मनुष्य केवल अपनी सन्तति और अधिकसे अधिक उसकी उस सन्ततिके सुखकी जिसका जन्म उसके सामने हो चुका है, चिन्ता कर सकता है। जिन वस्तुओंका उसने

परिश्रमपूर्वक अर्जन और सञ्चय किया है उनके केवल इन्हींसे बिछुड़नेकी बात सोचकर वह कातर हो सकता है, उन पड़पोतों और नकड़पोतोंके लिये उसे इस प्रकारकी चिन्ता नहीं हो सकती।जिनके विषयमें वह यह भी नहीं सोच सकता कि वे उसके वंशके गौरव-रूप उत्पन्न होंगे अथवा कलङ्करूप। रिगनानोके उपर्युक्त विचारोंसे रेनार्ड पूर्णतया सहमत है।

जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि यदि साम्यवादियोंका अधिकार हो जाय तो वे वर्त्तमान उत्तराधिकार-कानूनमें बहुत कुछ उलट पुलट कर दें, क्योंकि उनके मुख्य उद्देश्य——व्यक्ति-स्वामित्वका उच्छेद कर समुदाय-स्वामित्वको उसके स्थानपर प्रतिष्ठित करने——की सिद्धिका जो साधन सबसे अधिक आधार है वह इस कानूनका संशोधन ही है।

साम्यवादी राज्यकी कार्य्ययोजना।

कल्पनागर्भस्थ साम्यवादी राज्यका ढाँचा क्या होना चाहिए, इस सम्बन्धमें विचार प्रकट करनेवाले साम्यवादियोंकी तीन श्रेणियाँ हैं। पहली श्रेणीके लोग इस कामको हाथ लगानेसे डरते हैं और इसे आनेवाली पीढ़ियोंके लिये छोड़ देना चाहते हैं। उनका कहना है कि जिस स्थानपर हमारी इमारत उठनेवाली है वह——भविष्य——हमारी दूरबीनोंकी पहुँचसे बहुत दूर है। इसलिये उसके समीप पहुँचे बिना कोई नकशा बनाना असम्भव है। सिगनर तूराती, आर. बी. सूथर्स आदि इसी श्रेणीके साम्यवादियोंमें हैं।

दूसरी श्रेणी पूर्ण आदर्शवादी साम्यवादियोंकी है। उनके लेखोंसे उनके कल्पनागर्भस्थ राज्यके ढाँचेका आभास नहीं मिलता; केवल इतना जाना जा सकता है कि वर्त्तमान राज्यरचना और समाज-रच-

नाके किसी अंगसे उसका साम्य न होगा, इसकी भौतिक रचनाकी तुलनामें उसकी रचना सर्वथा स्वर्गीय होगी।

तीसरी श्रेणीके साम्यवादी अवश्य इस जटिल प्रश्नका स्पष्ट उत्तर देनेका प्रयत्न करते हैं। उनके कथनानुसार भावी साम्यवादी राज्यके ये दो मूलभूत सिद्धान्त होंगे—(१) वृद्ध, वालक और शारीरिक या मानसिक कारणसे असमर्थ मनुष्योंके सिवा प्रत्येक मनुष्यसे काम कराना और (२) वर्ग-भेदका बिलकुल अन्त कर देना। इजारादारी, सूदखोरी और चतुर, बलवान् व्यक्तियों द्वारा भोले भाले और कमजोरोंकी सम्पत्तिका अपहरण—इन सब बातोंका उसमें नामतक कठिनतासे रहने पावेगा। जो लोग कहते हैं कि साम्यवादी राज्य दुर्बल और असमर्थके लिये अत्यन्त क्रूर होगा उनको देखना चाहिए कि वह अपने पहले सिद्धान्तमें उनका भार खुशीसे उठानेको तैयार है। साम्यवादी राज्यकी भिन्न भिन्न व्यवस्थाओंके विषयमें इनके विचारोंका सार इस प्रकार है—

आरम्भिक कालके साम्यवादियोंको राजसत्ता और प्रजासत्तामेंसे किसी एकको अपना लक्ष्य बना लेना जितना आवश्यक मालूम होता था उतना आधुनिक साम्यवादियोंको नहीं मालूम होता। डा० मेंजर बहुत कुछ तर्कवितर्कके पश्चात् इस अनुमानपर पहुँच सके थे कि लैटिन जातियोंसे आबाद देश—जिनमें क्रान्तिकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है—साम्यवादी प्रजासत्ता स्थापित करेंगे, इंग्लैण्डमें राजसत्ता स्थिर रहेगी और जर्मनीके श्रमजीवी पिछले प्रकारकी राज्यसत्ता ही पसन्द करेंगे। राजा या राष्ट्रपति पदका अस्तित्व साम्यवादी व्यवस्थामें रहे या न रहे, इस विषयमें आधुनिक साम्यवादियोंका मतभेद है।

राजसत्ता।

तथापि यह बात सर्वसम्मत है कि यदि ऐसा कोई पद कायम रक्खा जाय तो उसके अधिकार अत्यन्त संकुचित कर दिए जायँ। उसके हस्ताक्षरकी आवश्यकता केवल औपचारिक विधियोंमें हो। कैसर शाहीका कोई रूप या प्रकार उनको सह्य नहीं है, उससे उन्हें अत्यन्त घृणा है। प्रजासत्ताके अध्यक्ष या राष्ट्रपतिके विषयमें जार्ज रेनार्डका कहना है कि उसका सबसे बड़ा कर्तव्य परराष्ट्रीय मामलोंमें राष्ट्रका प्रतिनिधित्व करना है। पर यदि उसके हस्ताक्षर केवल उपचारकी विधि पूरी करनेके लिये आवश्यक होते हों तो साम्यवादी प्रजासत्ताके लिये, जिसको इन विधियोंका बहुत ही कम ख्याल होगा, वह बेकार है। और यदि वह राष्ट्रसे पूछे बिना ही परराष्ट्रीय नीति, सन्धि आदि कर सकता है तब तो उसका अस्तित्व अत्यन्त विपज्जनक है।

मताधिकार।

साम्यवादी श्रमजीवीवर्गोंको सबसे अधिक राजनीतिक शक्ति-सम्पन्न करना चाहते हैं, इसलिये नाबालिगों और मस्तिष्कसम्बन्धी कारणोंसे असमर्थ व्यक्तियोंके अतिरिक्त वे किसीको वोट देनेके अधिकारसे वञ्चित नहीं रखना चाहते। स्त्रियोंको मताधिकार देनेके सम्बन्धमें साम्यवादियोंमें कुछ मतभेद है, पर अधिकांश उनको यह अधिकार देनेके ही पक्षमें हैं। जार्ज रेनार्ड स्त्रियोंको सब राजनीतिक अधिकार एक साथ ही नहीं देना चाहते, क्योंकि ऐसा होनेसे उन्हें भय है कि जबतक ये पूर्ण योग्य न हो जायँ तबतक सम्भव है कि पादरी समुदायके प्रभावमें पड़कर वे उसकी ओर हो जायँ और इस प्रकार उनकी शक्तिसे सुधार-शत्रुओंका पक्ष बलवान् बने। इसलिये वे चाहते हैं कि ज्यों ज्यों इनका ज्ञान और विवेक बढ़ता जाय त्यों त्यों इनके राजनीतिक अधिकार बढ़ाए जायँ और अन्तको इनके पूर्ण

पात्र हो जानेपर इन्हें पूर्ण राजनीतिक अधिकार प्रदान कर दिए जायँ। पर इसके विरुद्ध डा० मेंजरका यह आग्रह है कि इनको इसी समय पूर्णांशमें मताधिकार दे दिया जाय।

नियमनिर्माण और न्यायदान।

नियमनिर्माण और न्यायदानकी व्यवस्थामें साम्यवादी राज्यको जो सुधार करनेकी आवश्यकता होगी उसके निश्चित करनेमें साम्यवादी बहुत सोच विचारकी आवश्यकता समझते है। उनका कहना है कि हमारी इन व्यवस्थाओंका वर्त्तमान रूप शताब्दियोंके विकासका फल है और सामन्त, एकसत्तात्मक, पूर्ण स्वेच्छाचारी आदि राज्योंकी नियामक और खजूरके नीचे बैठकर न्याय सुनानेवाले काजीकी न्यायव्यवस्थासे कहीं अधिक श्रेष्ट है। इसलिये किसी सैद्धान्तिक (Theoritical) सुधारके मोहमें पड़कर इनकी वर्त्तमान श्रेष्ठताको नष्ट कर देना ठीक न होगा।

डा० मेंजर और रेनार्ड लार्डसभा या राज्यपरिषदके ढंगकी एक सभाकी भी आवश्यकता समझते हैं, क्योंकि इसके न रहनेसे प्रतिनिधि-सभा कानूनोंके पास करनेमें इतनी जल्दवाजी कर सकती है जिससे उनको यथेष्ट विचार न हो सके और आगे चलकर राष्ट्रको उनके कारण हानि उठानी पड़े। यह हानि उस दशामें और भी भयंकर होगी जब कि इस प्रकार पास किये जानेवाले कानूनका सम्बन्ध सामाजिक बातोंसे होगा और श्रमप्राधान्य प्रजासत्ताक राज्य (Democratic Workstate=साम्यवादी राज्य) में नियामक मंडलका सम्बन्ध राजनीतिक कामोंकी अपेक्षा सामाजिक कामोंसे ही अधिक होगा। राजनीतिक शक्तिका रूपान्तर सहजमें रद किया जा सकता है; परन्तु सामाजिक रूपान्तर वज्रलेप हो जाता है। इतिहास

इस बातकी सत्यताका साक्षी है। जिसमें प्रतिनिधियोंको अपने चुनने-वालोंकी इच्छा और विचार आदिका बराबर ध्यान रहे और उनमें दायित्वहीनता, निरंकुशता आदि न उत्पन्न हो जायँ इसके लिये रेनाईका प्रस्ताव है कि प्रतिनिधियोंको कुछ निश्चित समयके बाद बार बार अपना अधिकारपत्र उस निर्वाचकसंघके पास, जिसने उसे चुना हो, भेजना और लैसेंसोंकी भाँति उसे नई स्वीकृतिके साथ प्राप्त करना चाहिए।

यह बात सब लोग स्वीकृत कर चुके हैं कि केन्द्रीय सरकारके कर्तव्योंको जहाँतक हो सके अधिकाधिक मंडलों और उपमंडलोंमें बाँटकर उसका बोझा हलका कर दिया जाय।

अधिकार-विभाजन।

दो मुख्य मंडल होंगे—शान्तिव्यवस्थामंडल और अर्थव्यवस्थामंडल'। साम्यवादी राज्यका कार्य्यक्षेत्र वर्त्तमान राज्योंकी अपेक्षा बड़ा होगा, क्योंकि देशभरके लिये केवल वही सम्पूर्ण आवश्यक वस्तुओंका उत्पादक और विभाजक होगा। ऐसी दशामें उसे कर्मचारियोंकी एक बड़ी भारी सेना रखनी पड़ेगी। इस सेनाकी संख्या यथासाध्य कम रखनेके लिये यह उपाय सोचा गया है कि साम्यवादी राज्यमें जहाँतक हो सके प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसीके लिये कोई न कोई राजपदाधिकारी हो। कौन कौन लोग इस कार्य्यके योग्य समझे जायँगे और उनसे किस प्रकार यह कार्य कराया जायगा, इसका कुछ विवरण अगले पृष्ठोंमें देनेका प्रयत्न किया जायगा।

साम्यवाद और व्यक्ति-स्वातंत्र्य।

क्या साम्यवादी राज्यमें व्यक्तियोंको अपने लिये कार्य चुननेकी स्वाधीनता होगी? अथवा प्रत्येक व्यक्तिके लिये कार्य नियत करना

एक मात्र राज्यका अधिकार होगा ? और व्यक्तिको उसी प्रकार उसकी आज्ञाओंके आगे सिर झुकाना पड़ेगा. जिस प्रकार सैनिकको अपने कमाण्डरकी आज्ञाके सामने झुकाना पड़ता है ? अथवा वह कोई ऐसा रस्ता ढूँढ़ निकालेगा जिसपर व्यक्तिस्वातंत्र्य और समाज-नियंत्रण दोनों एक दूसरेके अविरोधी होकर चल सकें ? बुद्धि और कर्तव्यके विकासका प्रत्येक व्यक्तिको समान अवसर देना साम्यवादी राज्यका प्रधान कर्तव्य होगा। ऐसी दशामें दूसरे उत्तम कामोंकी योग्यता रखते हुए खानोंमें कोयला खोदने, झाड़ू देने, पाखाना साफ करने, इंजिनोंमें कोयला झोंकने आदिके स्वास्थ्यनाशक; जानजोखोंवाले, गन्दे और घृणित कामोंको कौन करने जायगा ? इनके अतिरिक्त अन्य अनेक धन्धोंमें भी प्रत्येक समय आवश्यकताके अनुसार काम करनेवालोंकी संख्या यथेष्ट न रहेगी; उस समय व्यक्तियोंको कोई विशेष काम करने या न करनेके लिये मजबूर किए बिना कैसे काम चलेगा? अन्य कितने ही प्रश्नोंकी भाँति इन उपर्युक्त प्रश्नोंका भी अभीतक निश्चयात्मक और सन्तोपजनक उत्तर नहीं मिला है। तथापि निम्नलिखित कतिपय सम्मतियोंसे इन प्रश्नोंपर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है।

साम्यवादके विरोधियोंका यह आक्षेप है कि व्यक्तिकी साम्यवादी राज्यमें वही दशा होगी जो उस चिड़ियाकी होती है जिसके सामने काफी दाना-पानी रक्खा हो, आवश्यकता होनेसे पहले ही ये चीजें जिसके सामने रख दी जाती हों और इस प्रकार जिसे भूख प्यासके कष्टका कभी अनुभव ही न होता हो, पर जंगलकी स्वर्गीय वायुमें किलोलें करने, इस पेड़की डाली परसे उस पेड़की डाली पर जाकर चहकनेके लिये जो सदा तरस रही हो—अर्थात् दाने और पानीका सुख देकर जिसकी स्वाधीनता छीन ली गई हो। इसका

उत्तर देते हुए कार्ल काउस्की लिखता है—यथेच्छ पुष्टिजनक आहार, यथेष्ट वस्त्र परिच्छद, सुन्दर स्वास्थ्यप्रद गृह आदि राज्यकी कृपासे पाकर सुखी और निश्चित साम्यवादी गृहस्थ क्या राज्यका गुलाम होगा ? रही जब और जहाँ मन चाहे काम करनेकी बात। सो श्रमजीवियोंके किसी संगठनकी विद्यमानतामें—चाहे उसकी स्थापना व्यक्तिस्वार्थके सिद्धान्तपर की गई हो चाहे समुदाय-स्वार्थके सिद्धान्तपर—सर्वथा ही असम्भव है। फिर वर्त्तमान शासन व्यवस्थामें ही कौन लोग इस स्वाधीनताका उपयोग कर सकते हैं ? डाक्टर, सम्पादक, अध्यापक आदि सभीको तो दूसरोंके नियत किए हुए समयपर हाजिर होना और दूसरोंहीके नियत किए हुए समयतक काम करते रहना पड़ता है। एक कामको छोड़ देनेका आज उन्हें अख्तियार अवश्य है, पर दूसरा उनके मनका काम कब उनके सामने हाथ बाँधे खड़ा रहता है ? एक जगह खाली होती है तो सौ उम्मीदवार टूट पड़ते हैं। ऐसी दशामें बेकार आदमीको कोई–भला या बुरा—काम पाकर अपने आपको भाग्यवान् मानना पड़ता है, अपने मनका काम तो वह क्या पावेगा ? श्रमजीवियोंके लिये काउस्कीके ये दो सन्देश हैं—(१) अपने लिये कार्य चुननेकी स्वाधीनता न तुमको अब है और न तब (साम्यवादी राज्यमें) होनेकी आशा दिलाई जा सकती है। परन्तु व्यक्ति-धन-स्वामियोंके शासनको समुदाय-शासनसे बदल लेनेमें तुम्हारे लिये बहुत सी लाभकी बातें हैं। (२) तुमको मनमाना और मनमाने समयतक काम करनेकी स्वाधीनता नहीं है, शरीर और मस्तिष्कको छिजा डालनेवाली गुलामीसे मुक्ति पाना, अवश्य तुम्हारे अधिकारमें है।

डा० मेंजरको इस बातका भय है कि साम्यवादी राज्य व्यक्तियोंको अपना गुलाम बना लेनेमें उसी प्रकार अपनी आर्थिक शक्ति-

योंका दुरुपयोग करेगा जिस प्रकार कि वर्त्तमान राज्य अपनी राजनीतिक शक्तियोंका दुरुपयोग कर रहा है। इसी लिये उसका उपदेश है कि व्यक्तियोंकी स्वाधीनतामें हस्तक्षेप करनेकी अपेक्षा सार्वजनिक लाभोंका बलिदान कर देना साम्यवादी राज्यका अधिक कर्त्तव्य होना चाहिए।

मि० एच्. जी. वेल्सका कहना है—यह हमें स्पष्ट रूपसे स्वीकार है कि साम्यवादी राज्यका श्रमजीवी वर्त्तमान समयके ब्रिटिश श्रमजीवीकी अपेक्षा अधिक स्वाधीन न होगा। यह भी सम्भव है कि दूसरोंसे काम लेनेपर नियुक्त उसके कर्मचारी वर्त्तमान समयके छोटे छोटे व्यवसायोंके मालिकोंसे कम निरंकुश न हों। पर ऐसे साम्यवादी राज्यका अस्तित्व भी रह सकता है। जर्मनीमें तो यह अवस्था प्रायः अपने आधे स्वरूपमें अभीसे मौजूद है। वर्त्तमान अवस्थासे स्वेच्छाचारी साम्यवादकी हमारी अवस्था अधिक घृणास्पद नहीं हो सकती।

मि० डेसिलिनियर्सकी रायमें साम्यवादी राज्यके ये कर्त्तव्य होने चाहिएँ—

(१) अपने शासन-विभागको ऐसे अधिकार दे रखना जिससे अशान्ति, गड़बड़ आदिके अंकुर फूटते ही वह उन्हें उखाड़कर फेंक सके, (२) अपने पास ऐसा अधिकार रखना जिससे जब चाहे किसी सभा या अखबारको बन्द करा सकें, (३) Municipal Bodies को नियुक्त करनेका अधिकार अपने हाथमें लौटा लेना। (४) प्रत्येक मनुष्यसे जो बालक वृद्ध अथवा रोगी न हो, उचित पुरस्कार देकर सार्वजनिक काम कराना; (५) जो इस प्रकार काम करनेसे इनकार करे उसको बहुत थोड़ा धन देकर बाकी सब जब्त कर लेना; और (६) जो कोई राज्यकी आज्ञाके बिना ३ महीनेसे

अधिक विदेशमें विता दे उसके राष्ट्रीय अधिकार (National Rights) और सम्पत्ति जब्त, कर लेना।

जार्ज रेनार्ड और उसके अनुयायी साम्यवादी यह तो स्वीकार करते हैं कि हमारा आदर्श राज्य स्वेच्छाचारी होगा पर वे उसके इस स्वरूपसे व्यक्तिके डरनेका कोई कारण नहीं मानते। वे कहते हैं कि साम्यवादी राज्य व्यक्तिगत जीवन, मत और विवेकसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक वस्तुकी सब प्रकार रक्षा करेगा। लोगोंको लिखने, बोलने और मिलने जुलनेकी जो पूर्ण स्वाधीनता दी जायगी उस स्वाधीनताको साम्यवादके किसी विशेष सिद्धान्तका तिरस्कार मानेका कोई कारण नहीं जान पड़ता।

यदि सबको समान रूपसे शारीरिक और मानसिक उन्नति करनेके सुभीते दिए जायँगे तो रूखे, गन्दे, अधिक परिश्रमके और भयावह धन्धे कौन करने जायगा? क्या दलके दल कार्यार्थी, रुचिकर, हलके, कम परिश्रमके और भयरहित कार्योंके आफिसों पर ही प्रार्थनापत्र लेकर न चढ़ दौड़ेंगे? इन प्रश्नोंका उत्तर रेनार्ड और उनके पक्षके साम्यवादी इस प्रकार देते हैं—निःसन्देह हम सबको समान रूपसे सब प्रकारकी उन्नतियाँ करनेका अवसर देंगे पर हम (१) आरम्भिक पाठशालाओंमें ही इस बातकी भली भाँति जाँच कर लेंगे कि किस बालकका स्वाभाविक झुकाव किस शास्त्र अथवा कलाकी ओर है; प्रकृतिके भाण्डारसे किस विषयकी प्रतिभा लेकर वह अवतीर्ण हुआ है। जिसके स्वभावका झुकाव जिस विषयकी ओर दिखाई देगा, जिसमें जिस विषयकी प्रतिभा पाई जायगी उसको उसी शास्त्र या कलाकी शिक्षा दी जायगी, फिर उसको छोड़कर दूसरा कार्य स्वीकार करनेकी इच्छा किसीको क्यों होगी? (२) मनुष्यकी

रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ भिन्न भिन्न हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हें वे ही काम पसन्द आते हैं जिनमें साहससे काम लेना पड़े, जिनमें भय हो। मस्तिष्कका काम करनेकी अपेक्षा बहुतेरे शारीरिक श्रमको रुचिपूर्वक स्वीकार करेंगे। (३) हम लोग ऐसी मशीनोंका आविष्कार करावेंगे जिनसे बहुतसे अधिक भयावह धन्धे कमभयावह हो जायँगे और मनुष्यके करनेके कामोंमें बहुत कुछ कमी हो जायगी। (४) जो लोग अनाकर्षक धन्धे स्वीकार करेंगे उन्हें या तो औरोंसे अधिक परिश्रमिक दिया जायगा अथवा उनके काम करनेके घंटे औरोंसे कम कर दिए जायँगे। उनकी आमदनी इतनी होगी जिससे वे ऐसे ठाठ बाटसे रह सकें कि उन्हें देखकर दूसरोंके मुँहमें पानी भर आया करे। इतना सब कुछ होनेपर भी यदि कोई राज्यकी अवज्ञा कर ही दे तो साम्यवादी राज्य उससे कैसे निबटेगा? इस जिज्ञासाका उत्तर रेनार्ड आदिके उपर्युक्त आशावादमें नहीं मिलता। तथापि अन्यान्य प्रमाणोंसे यही निश्चय होता है अपने अवज्ञाकारी—विद्रोही—को वह अत्यन्त निर्भय होकर दण्ड देगा। मि० डेसलीनियर्सकी भविष्यद्वुक्तिके अनुसार साम्यवादी राज्यमें जेलखानोंका निवासयोग्य देहाती मकानोंमें रूपान्तर हो जायगा। कैदी अपने मनका खाना खायगा और कपड़े पहनेगा, सिगरेट पी सकेगा, स्नेही मित्रोंसे एकान्ततकमें मिल सकेगा, पर जान पड़ता है कि यह सब कुछ साधारण सामाजिक सदाचारका उल्लंघन करनेवालोंके लिये होगा। इसी प्रकार जिन कामोंके करनेके लिये, अधिक लोग इच्छुक होंगे, काम कम और करनेवाले अधिक होनेके कारण उनसे थोड़े समय काम लिया जायगा और पारिश्रमिक भी कम दिया जायगा। (५) साहित्य और पठन पाठनका कार्य करनेकी योग्यताका मान इतना

ऊँचा कर दिया जायगा कि अत्युच्च श्रेणीके प्रतिभाशालियोंके अतिरिक्त और कोई इनका अधिकारी ही न हो सकेगा।

श्रमका पुरस्कार।

क्या साम्यवादी राज्यमें सब प्रकारके परिश्रमों—झाड़ू देने, हजामत बनानेसे लगाकर विश्वविद्यालयकी उच्चतम कक्षाओंमें अध्यापन और प्रयोगशालाओंमें आविष्कार करने तक—का एक ही पुरस्कार होगा? क्या हज्जाम, लाइब्रेरीका टेबुल साफ करनेवाले और युगान्तरकारी आविष्कार करनेवाले—तीनोंहीके परिश्रमकी एक ही माप और पुरस्कारकी एक ही दर होगी? क्या सचमुच साम्यवादी राज्यमें भाजी और खाजा दोनों टके सेर होंगे? इस प्रकारके प्रश्नोंके जो उत्तर साम्यवादी नेताओंके लेखोंमें मिलते हैं उनमें और पूर्ववर्ती परिच्छेदोंमें की हुई जिज्ञासाओंके उत्तरोंमें बहुत ही कम विरोध है। साग और मेवा एक भाव बिकवानेके तरफदार इने गिने हैं, अधिकांश साम्यवादी नेता इसी विचारके पोषक हैं कि उनके आदर्श राज्यमें भी कार्यकी कठिनाई, महत्व, उपयोग आदिके हिसाबसे पारिश्रमिकमें कमीबेशी अवश्य होगी; हाँ, शक्तिविकासके साधन और सुभीते सबको समान मिलनेके कारण ज्यों ज्यों व्यक्तियोंकी शक्तियोंकी असमानता नष्ट होती जायगी त्यों त्यों यह भाव घटता जायगा।

कार्ल मार्क्सकी यह राय थी कि डाक्टर और भंगीको उजरत तो एक ही दी जाय, पर भंगीको तीन ही चार घंटे झाड़ू फटकार देनेके बाद सारे दिन और रातके लिये छुट्टी मिल जाय और डाक्टरकी डयूटी चौबीसों घंटे रहे और इसके लिये उसे केवल धनहीके रूपमें नहीं बल्कि और भी किसी रूपमें भंगीसे कुछ भी अधिक न दिया जाय। पर थोड़ेसे अतिवादियों Extremists के सिवा और किसी-

को उनकी राय न भाई । जर्मनीमें Vorwarts के सम्पादकके वेतनके विषयमें यह झगड़ा व्यावहारिक रूपमें भी उपस्थित हो चुका है । यह पत्र स्वयं साम्यवादियोंकी सम्पत्ति था । इसके सम्पादक लेप्कनेक्टको ३६० पाउण्ड वार्षिक वेतन मिलता था; पर कम्पोजीटरोंको जिन्हें उसकी अपेक्षा अधिक समयतक काम करना पड़ता था, साल भरके ५० पाउण्डसे भी कम मिलते थे । अतिवादियोंको अपने ही घरमें होनेवाली यह अनीति बहुत खटकी और उन्होंने इसका झगड़ा उठा दिया । लेप्कनेक्टने कहा कि मैं इससे एक पाउण्ड कम न लूँगा, मैं दूसरा काम करके इसका तिगुना कमा सकता हूँ; यदि कम देना हो तो मैं इस्तेफा देता हूँ । बहुमतने उसकी दलीलको ठीक समझा और विचारशील परिणामदर्शी जर्मन साम्यवादियोंने निश्चय कर लिया कि समाजके वर्तमान संगठनमें ही नहीं, साम्यवादी राज्यके आदर्श संगठनमें भी आदर्श आर्थिक समानता असम्भव है ।

डा० मेंजर 'आदर्श (आर्थिक) साम्य' केवल अराजकोंकी समाज-रचनामें सम्भव मानते हैं । साम्यवादी राज्यमें वे इन चार कारणोंसे ऐसी समानताको असम्भव मानते हैं—(१) शासितोंकी अपेक्षा शासकोंकी रहनसहनमें कुछ विशिष्टता या भेदकी आवश्यकता, जो साम्यवादी राज्यमें और भी अधिक होगी क्योंकि सम्पूर्ण साम्पत्तिक राज्यमें भी उन्हींको शासन करना होगा; (२) भिन्न भिन्न व्यक्तियोंके ज्ञान और शिक्षासंस्कारमें भारी अन्तरका अस्तित्व, (३) उनके कामोंके परिमाण और मूल्यकी असमानता, और (४) सामाजिक क्रान्तिमें बहुत बड़े बड़े शिल्पियों और कलाकुशलों आदिका प्रभुत्व ।

डाक्टर मेंजरको इस बातका पूर्ण भय है कि यदि पुरस्कारको प्रलोभनरहित कर दिया जायगा तो हमारे श्रमराज्यकी सारी उत्पादन शक्ति दैनिक आवश्यकताकी वस्तुएँ विशेषतः भोजनसामग्री उत्पन्न करनेतक ही रह जायगी, उन्नति अथवा नैमित्तिक आवश्यकताओंके लिये कुछ सञ्चय करना उसके लिये असम्भव हो जायगा; लोग एक प्रकारसे हतोत्साह या अकर्मण्य हो जायँगे। वे कहते हैं—"समाजकी वर्त्तमान इमारत बिलकुल जमींदोज करके दूसरी आमूल नई इमारत भले ही उठा ली जाय; पर व्यक्तियोंके हृदयको आमूल परिवर्तित कर देना किसी बड़ी सामाजिक क्रान्तिके लिये भी सम्भव नहीं हो सकता। जबतक प्रत्येक मनुष्य अपने ३½ हाथके शरीरको एक छोटा स्वतंत्र जगत् समझता है, उसके सुख दुःखोंका उसपर प्रत्यक्ष और उसके बाहरके सुख दुःखोंका अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, तबतक उसके हृदयमें स्वार्थ सबसे प्रबल प्रेरक शक्ति रहेगा और अवश्य रहेगा। सम्पत्तिसम्बन्धी नियमोंके रूपान्तरसे इसका बल कुछ घटाया जा सकता है, फिर भी अन्य प्रेरिका शक्तियोंमें यही बलवान् होगा। मेंजरको बेबेलके इस विचारपर बड़ी हँसी आती है कि साम्यवादी राज्यमें लोहार और बढ़ई नालें ढालने और कुर्सियाँ बनानेके साथ साथ जब उन्हें मनोरंजनकी आवश्यकता होगी तब नाविल आदि न पढ़कर वैज्ञानिक खोजोंसे ही अपना मनोरंजन करेंगे। क्योंकि वे देखते हैं कि विज्ञान और कलाकौशलके उन्नतिसाधनपर दिन दिन एक मात्र विशेषज्ञोंके अधिकार और उपकरणोंकी अधिकता होती जानेके कारण प्रयोगशालाकी स्थापना अत्यन्त व्ययसाध्य कार्य होता जा रहा है।

समपुरस्कार नीतिसे उत्पन्न होनेवाले संकट।

मेंजरकी तरह जार्ज रेनार्ड भी सबको समान पारिश्रमिक देनेके सिद्धान्तको अव्यवहार्य मानता है । उसके मतसे विद्वानों, कलाकुशलों और आविष्कारकोंको विशेष रीतिसे प्रोत्साहित करना आवश्यक होगा । वह कहता है—समाजके भिन्न भिन्न व्यक्तियोंमें थोड़ी बहुत साम्पत्तिक असमानता आवश्यक रहेगी, क्योंकि कितने ही काम ऐसे हैं जिनके मूल्यका निश्चय उनके करनेमें लगे हुए समयको देखकर नहीं किया जा सकता; और जो कार्य समाजके हितकी दृष्टिसे अधिक मूल्यवान् हों उनके कर्त्ताओंको प्रोत्साहित करनेका अधिकार समाजको रखना ही पड़ेगा । उनको सन्तुष्ट, प्रसन्न और अवकाशयुक्त रक्खे विना उसका काम न चलेगा । पर यह असमानता उन वस्तुओंमें न होगी जो जीवन और शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यके लिये अनिवार्य आवश्यक समझी जाती हैं । साथ ही यह असमानता उत्तरोत्तर क्षीण भी होती जायगी, क्योंकि सभी व्यक्तियोंकी योग्यता, शक्ति और ज्ञान बढ़ानेका एकसा प्रयत्न किया जायगा ।

ब्रिटिश साम्यवादियोंमें मि० ब्लैचफर्ड सम-पुरस्कार-दानके पक्षपाती हैं । मिसेज बीसेण्टने भी एक वार ऐसा ही विचार प्रकट किया था । मि० ब्लैचफर्डका कहना है कि आदर्श राज्यमें जीवन, सुख और उन्नतिके लिये आवश्यक चीजें तो प्रत्येक व्यक्तिको समान रूपसे प्राप्त होंगी ही, फिर यदि कोई विशेषज्ञ या प्रतिभावान् अपने विशेष ज्ञान या प्रतिभासे केवल इसलिये समाजको लाभ नहीं पहुँचाता है कि इसके लिये उसे कोई विशेष पुरस्कार नहीं मिलता तो यह उसका एक अपराध ही होगा । उसको धनी बनानेकी अपेक्षा समाजके लिये यही अधिक अच्छा होगा कि उसकी सेवाओंको अस्वीकार कर दे ।

परन्तु इस मतके विरोधियोंकी संख्या बहुत अधिक है । मि० सिडनी वाल, मि० एच. जी. वेल्स, मि० रैम्से मैकडानल्ड, मि० एफ.

डब्ल्यू, जोवेट आदिकी गणना इन्हीं लोगोंमें है। मि० सिडनी वाल्का कहना है कि नवसाम्यवादके आधारभूत सिद्धान्त 'श्रम करनेका अधिकार' (The Right of the work) और 'सेवाके अनुसार धनदान' हैं। विशेष योग्यताका पुरस्कार देना वे आवश्यक समझते हैं, पर शर्त यह है कि यह योग्यता किसीकी बपौती या इजारा न समझी जाय। मि० वेल्सके विचारानुसार साम्यवाद व्यक्तियोंको 'सेवा, वेतन, प्रसिद्धि, सामाजिक स्थिति, अधिकार, अवकाश और आदर' के क्षेत्रोंमेंसे किसी एक अथवा अनेकमें प्रतिस्पर्धा करनेकी पूर्ण स्वाधीनता देगा। मि० मैकडानल्ड कहते हैं—"साम्यवाद कोई पूर्ण समानताका राज्य नहीं स्थापित करने जा रहा है, उसका विचार प्रत्येक इन्द्रियको उसका स्वाभाविक विषय, प्रत्येक अवयवको उसका स्वाभाविक कार्य सौंप देना है; साम्यवादी प्रत्येक मनुष्यको उस क्षेत्रमें पहुँचा देना चाहते हैं जिसमें काम करनेके लिये वह पैदा किया गया है।"

सारांश यह कि सभी परिणामदर्शी साम्यवादी किसी न किसी कारणसे यह मानते हैं कि उनकी आदर्श राज्यव्यवस्थामें भी थोड़ी बहुत साम्पत्तिक असमानता रहेगी। वे व्यक्तियोंको उसमें जो कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करते हैं वह 'सुरक्षित और सुखदायक जीवन' है, न कि पूर्ण साम्पत्तिक साम्य।

साम्यवाद और कुटुम्ब।

क्या साम्यवादी अपने आदर्श राज्यमें वर्तमान कौटुम्बिक संगठनको स्थिर रखना चाहते हैं? अथवा उसको समूल नष्ट कर डालना उनका अभीष्ट है—सब स्त्री और पुरुष अलग रहेंगे, एकका दूसरे पर कोई अधिकार न होगा, दाम्पत्य-सम्बन्ध क्षणिक होगा, वैवाहका स्थान स्वाधीन प्रेम (Free Love) को दिया जायगा

जिसके करने और तोड़नेके लिये किसी प्रकारकी लिखा पढ़ी, गवाही साखीकी आवश्यकता न होगी, सन्तति केवल समाजकी सम्पत्ति समझी जायगी, बच्चा बहुत थोड़े समयतक माँके पास रहने पावेगा, फिर उसका रक्षण, पोषण और शिक्षण राज्य करेगा—अर्थात् क्या सब पुरुष सैनिक और सब स्त्रियाँ छावनीकी वेश्याए हो जायँगी? यह विषय बड़ विवादका है। साम्यवादियोंके विरोधियोंने इस विषयमें साम्यवादियोंके विचारोंका अनेक बार विपर्यास भी किया है। इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भिक युगके साम्यवादी नेताओंको व्यक्तिके लिये समाजके अतिरिक्त दूसरे सभी बन्धनोंका अस्तित्व असह्य था। वर्त्तमानकालीन कट्टर अतिवादी साम्यवादी भी व्यक्तियोंमें परस्पर कोई स्थायी बन्धन नहीं सह सकते। परन्तु साम्यवादके सच्चे प्रतिनिधि माने जाने योग्य नेताओंके उद्गारोंपर ध्यान देनेसे इसके अतिरिक्त और कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि साम्यवादी कुटुंबप्रथाको नष्ट कदापि नहीं करना चाहते, केवल उसके दूषण दूर कर देना चाहते हैं जिससे वह व्यक्तियोंकी उन्नति और सुखसाधनमें बाधक न होकर सहायक हो जाय। वे इन दो फलोंके लिये वर्त्तमान कुटुंबव्यवस्थामें कुछ फेरफार करना चाहते हैं—प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक दृष्टिसे स्वाधीन हो जाय, पिता अपने पुत्रपर, पति अपनी स्त्रीपर इस कारण अपना कोई अहसान न समझ सके कि उसकी कमाईसे उनका भरण-पोषण होता है; रोटी और कपड़ा देकर कोई किसीको अपना दास न समझ सके; कोई व्यक्ति यह आत्मसम्मानघातक विचार मनमें रखनेके लिये बाध्य न हो कि मैं दूसरेकी कमाईपर अपने दिन बिता रहा हूँ। दूसरे यह कि व्यक्तियोंका पारस्परिक बन्धन इतना ढीला कर दिया जाय कि वे जब चाहें तब अपने आपको उससे मुक्त कर

सकें; उनकी इच्छाके अतिरिक्त और किसी प्रकारका दबाव ऐसा करनेसे उनको रोक न सके।

वर्तमान कुटुम्बव्यवस्थामें साम्यवादी ये दोष पाते हैं—पतिके लिये भोजन पकाना, गर्भधारण, सन्तानका लालन-पालन आदि कार्य करती हुई स्त्री यद्यपि समाज अथवा राज्यके ही कार्य करती है और इसलिये इस परिश्रमके बदले समाजसे अथवा उसके नौकर पतिसे अपने निर्वाहका व्यय लेनेका उसको अधिकार है, फिर भी पति उसको रोटी कपड़ा देकर समझता है कि उसपर अहसान कर रहा है और स्त्रीको भी विवश होकर उसके इस भावकी वश्यता स्वीकार करनी पड़ती है। अपनी इच्छासे पतिकी इच्छाका संघर्ष होनेपर उसे अपनी इच्छाको दबा देना पड़ता है। पतिके आचरणसे उसे आन्तरिक घृणा है, उसके बर्ताव असह्य हैं, पर वह केवल यह सोचकर यह विषका घूँट पीते रहनेके लिये लाचार होती है कि उससे अलग होकर मैं अपने रोटी-कपड़ेका प्रबन्ध न कर सकूँगी अथवा बच्चोंके भरण-पोषणका जो भार मुझपर आ पड़ेगा उसे मैं न उठा सकूँगी। अनर्जनशील बालक बालिकाओंको भी पिताका यह अत्याचार सहना पड़ता है। यदि पिताकी कमाई कुटुंबके गुजारेके लिये काफी नहीं होती अथवा वृद्धावस्था आदि कारणोंसे वह कमानेके लिये अयोग्य हो जाता है तो समाज या राज्य उसके कर्त्तव्योंमें हाथ नहीं बँटाता; उसके कुटुंबको ही उसके कर्त्तव्यका भार उठाना पड़ता है जिसमें अकसर उसकी गर्भवती या नवप्रसूता स्त्री और पढ़ने योग्य अवस्थाके बालक ही मुख्य होते हैं। स्त्री दो महिनेके बच्चेको दिनभर अकेला छोड़कर खेतों या कारखानोंमें कठोर श्रम करनेके लिये बाध्य होती है। जो समय उसे अपने बच्चेके

पिता या संरक्षककी रजामंदी, सार्वजनिक स्थानमें सार्वजनिक अधिकारीके सामने प्रतिज्ञाबद्ध होने आदिकी आवश्यकता नहीं। वे कहीं और किसी प्रकारके परितोषके लिये आवश्यक कौल करार कर लें और उसकी सूचना इस कार्यके लिये नियुक्त विशेष अधिकारिको कर दें—बस उनके दाम्पत्य सम्बन्धको वैध मान लेनेके लिये इससे अधिक और किसी बातकी आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार जब वे दोनों अथवा कोई एक इस सम्बन्धको तोड़ना चाहे तो समाज चुपचाप उसकी इच्छाको कार्यरूपमें परिणत कर दे—उनका तलाक स्वीकार कर ले, भले ही ऐसा होनेसे समाजपर कई पितृहीन बच्चोंके भरण पोषणका भार पड़ता हो अथवा अन्य प्रकारसे उसकी हानि सम्भव हो। हाँ तलाकके लिये पहली सूचना पाकर ही वह उसकी तामील न कर दिया करे, दो तीन अथवा इससे भी अधिक सूचनाएँ पानेपर ही वह किसी तलाकको पक्का माना करे जिससे माऌम हो जायगा कि तलाककी सचमुच आवश्यकता है, किसी क्षणिक विकारके वश होकर यह कार्य नहीं किया जा रहा है।

तीसरा सुधार वे सन्तति पर माता पिताके अधिकारके सम्बन्धमें करना चाहते हैं। वे उनकी गोदसे उनके नन्हें बच्चेको छीन लेनेके इच्छुक नहीं हैं; पर उसके पालन-पोषण और शिक्षणका काम उन्हें समाजके इच्छानुसार करना पड़ेगा, यदि इसमें किसी प्रकारकी त्रुटि होगी तो समाज अवश्य हस्तक्षेप करेगा। यदि बालककी प्रवृत्ति एक ओर है और पिता उसे दूसरे रास्तेपर ढकेलना चाहता है तो समाज पिताको ऐसा न करने देगा। जहाँ पिता असमर्थताके कारण अपने कर्त्तव्योंका पालन न कर सकता होगा वहाँ उसका हाथ बँटावेगा। सारांश यह कि साम्यवादी किसीके वात्सल्य सुखकी कढ़ीमें कंकड़ी नहीं बनना

चाहते, पर साथ ही उन्हें यह भी स्वीकार नहीं कि मातापिताका अधिकार किसी प्रकार सन्तानकी उन्नतिमें बाधक हो और फलतः समाजकी हानि करे।

साम्यवाद और धर्म।

जिन देशोंमें साम्यवादका जोर है वे सभी ईसाईधर्म्मावलम्बी हैं इस लिये धर्मके विषयमें साम्यवादियोंने समय समयपर जो विचार प्रकट किए हैं वे प्रायः ईसाई धर्मको ही लक्ष्य करके कहे गए हैं। मार्क्स और उनके अनुयायी साम्यवादी धर्मको भी उन्हीं संस्थाओंमें समझते थे जो साम्यवादके प्रचारमें भारी बाधक हैं। तीन कारणोंसे वे धर्मको अपने रास्तेका काँटा समझते थे। एक तो इसलिये कि उसकी रक्षाके ठेकेदार अमीरोंके अनुग्रहके भूखे रहते हैं, उनको प्रिय लगनेवाली और लाभ पहुँचानेवाली बातोंकी रक्षाके लिये वे धर्मको सदा ढाल बनाए रहते हैं और ऐसे उपदेशोंका प्रचार करते हैं जिनसे अमीर-गरीब और सुखी-दुखीके भेद बने रहें। दूसरे यह कि जबजब क्रान्तिकी कोई चेष्टा की जाती हैं तब तब वे अपना सारा बल और प्रभाव उसको विफल करनेमें खर्च करते हैं। यद्यपि विजयी दलका अँगूठा चूमनेके लिये झुकनेमें उन्हें देर नहीं लगती पर जबतक विजयपताका क्रान्तिकारी दलके हाथमें नहीं आ जाती तब तक वे उसके शत्रुओंके प्रबल सहायक रहते हैं। तीसरा कारण यह है कि उसके विश्वास और शिक्षाएँ विज्ञानके विरुद्ध होती हैं, अतएव वैज्ञानिक आधारपर समाजके संगठनके लिये भारी विघ्नरूप हैं। उनकी बहुतसी बातें ऐसी हैं जो विज्ञानको सच्चा पथप्रदर्शक बनने देनेमें बाधक हैं। प्रोटेस्टेण्ट पादरियों और चर्चोंपर साम्यवादियोंकी उतनी अवकृपा या क्रोध नहीं है जितनी कि रोमनकेथोलिक पादरियों,

चर्चों और उनके सर्वप्रधान आचार्य रोमके पोपपर । इसका कारण यह है कि यह सम्प्रदाय सदासे प्रगतिशीलोंका रास्ता रोकनेका प्रयत्न करता आया है ।

तथापि साम्यवादियोंके उद्गारोंसे यह भाव नहीं निकाला जा सकता कि उनके राज्यमें धर्मोपदेश और धार्मिक कृत्य अपराध समझे जायँगे, गिरजोंको गोदामका रूप दे दिया जायगा और धर्माधिकारी क्लर्क या कुलीका काम करनेके लिये मजबूर होंगे । हाँ, उनकी यह इच्छा अवश्य माल्रम होती है कि धर्मकी सत्ता लोगोंकी दृष्टिमें घट जाय, उसकी शिक्षाओंके कारण उनको वैज्ञानिक सत्योंके स्वीकार करनेमें संकोच न हुआ करे । लेप्कनेक्टकी रायमें इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये धर्मपर किसी प्रकारका आक्रमण करनेकी आवश्यकता नहीं है, वैज्ञानिक शिक्षाका प्रचार और विस्तार ही इस कार्यकी सिद्धिके उत्तम उपाय हैं ।

फ्रेञ्च और जर्मन साम्यवादियोंकी अपेक्षा ब्रिटिश साम्यवादी नेताओंके उद्गार धर्मके प्रति अधिक सहिष्णुतापूर्ण हैं । वे साम्यवादके सिद्धान्तोंका 'न्यू टेस्टामेन्ट' की शिक्षाओंसे साम्य सिद्ध करनेकी भी चेष्टा करते हैं । मि० रैम्से मैकडोनल्डकी रायमें साम्यवादको धर्मके विषयमें पूर्ण निरपेक्ष रहना चाहिये । वे कहते हैं कि किसीका धार्मिक विश्वास बदलनेका समाजको उतना ही अधिकार है जितना कि उसके काले बालोंको भूरा बनानेका ।

डा० मेंजर आदि साम्यवादी इस कारण भी धर्मको उपेक्षाकी वस्तु समझते हैं कि वैज्ञानिक शिक्षाओंका जितना प्रचार अबतक हो चुका है उतनेहीसे उसकी नीवको बड़े जोरका धक्का लग चुका है और इनका अधिक प्रचार और समाजका नवीन संगठन दोनों

निश्चय ही धर्मकी इमारतको जमींदोज कर डालेंगे। उनका कहना है कि हमारा वर्त्तमान सामाजिक संगठन ही इस इमारतका सबसे मजबूत खम्भा है। जहाँ नवीन संगठनने इसको स्थानच्युत किया वहाँ इस इमारतके धड़ामसे गिर पड़नेमें देर न लगेगी।

सारांश यह कि अधिकांश साम्यवादी एरफर्ट कांग्रेसके इस निश्चयके अनुकूल हैं कि धर्म्म व्यक्तियोंका वह कार्य्यक्षेत्र है जिसमें समाजको हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं है। कुछ ऐसे लोग भी अवश्य हैं जो रोमन कैथोलिक चर्चोंको इस निश्चयसे लाभ उठानेका पात्र नहीं समझते, पर उनकी संख्या दूसरे पक्षवालोंसे कम है। पादरियों और गिरजोंके खर्चेके विषयमें साम्यवादियोंकी यह राय है कि जब धर्मप्रचार व्यक्तिका ही कार्य्यक्षेत्र समझा जायगा तब राज्यके कोषसे उसके लिये एक पैसा भी देना उचित नहीं है। उनपर श्रद्धा रखनेवाले अपने चन्देसे उनका खर्च चलावें। मि० एच. जी. वेल्सकी रायमें साम्यवादी राज्यके धर्म्मप्राण नागरिकोंको यह खर्च खलेगा भी नहीं, क्योंकि उस समय उनके सामने 'भिक्षां देहि' करनेवाला और कोई न होगा; अनाथ, असमर्थ, स्कूल, चिकित्सालय सभीका व्यय तो राजकोषके जिम्मे होगा; फिर धर्म्मसंस्थाओंके अतिरिक्त कौन उनके सामने हाथ पसारने जायगा?

यदि धर्मप्रेमी जनता धर्म्मसंस्थाओं और धर्मजीवियोंका खर्च अपनी कमाईमेंसे देना स्वीकार कर ले तो भी क्या साम्यवादी राज्य इसमें अपनी हानि न समझेगा कि सहस्रों मनुष्य कोई उत्पादक कार्य न कर दूसरोंकी कमाईसे पेट पालते रहें? यदि समझेगा तो क्या धर्म्मजीवियोंको भी प्रतिदिन कुछ समय उत्पादक कार्य्योंके लिये

देनेको बाध्य करेगा ? इसका उत्तर हमें उनके उद्गारोंमें नहीं मिलता।

साम्यवादी राज्यमें समाचारपत्र और पुस्तकें।

साम्यवादी राज्यमें समाचारपत्रोंके सञ्चालन और पुस्तकोंके प्रकाशनकी क्या व्यवस्था होगी ? क्या भिन्न भिन्न व्यक्तियों अथवा दलोंको इन साधनोंके द्वारा अपने विचार प्रकट करनेकी पूरी स्वाधीनता होगी ? प्रेस रखनेका अधिकार व्यक्तियोंको भी होगा अथवा एक मात्र राज्यको ही ? प्रेस रखने और पत्र चलानेके लिये जिस धनराशिकी आवश्यकता है वह व्यक्तियोंको कहाँसे मिलेगी ? साम्यवादी इन प्रश्नोंको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्वीकार तो करते हैं परन्तु इनका जितना स्पष्ट उत्तर देना चाहिए उतना स्पष्ट उत्तर नहीं देते। बहुतेरे तो इतना ही कहकर चुप हो जाते हैं कि हमारे आदर्श राज्यमें समाचारपत्र आदि पूर्ण स्वाधीन और सार्वजनिक सदाचार Public Morals के रक्षक होंगे और उनकी अवस्था सब प्रकारसे इतनी उत्तम होगी कि साम्यवादी राज्यके विशेष सुखोंमें उनकी गणना होगी। बहुत कम नेताओंने इस बीहड़ जमीनपर कदम मारनेका साहस किया है, और मंजिलतक तो प्राय कोई नहीं पहुँचा है। काउस्की, मेंजर, मरमिक्स, रेनार्ड, डेसलिनियर्स, वेल्स, आदि नेताओंके उद्गारोंसे उपर्युक्त प्रश्नोंपर जहाँतक प्रकाश पड़ता है वह इस प्रकार है—

लेखन-स्वातंत्र्य।

प्रायः सभी साम्यवादी इस बातमें सहमत हैं कि साम्यवादी राज्यमें सामयिक पत्र और ग्रन्थ बड़े कामके साधन होंगे। उस समय व्यक्तियोंके आचरणमें सदाचार तत्त्वोंकी रक्षा और वृद्धि करना एक मात्र इन्हींका काम रह जायगा, क्योंकि धर्मके अंजर पंजर तो अभीसे

ढीले हो चुके हैं और उस समयतक तो वह परलोक सिधार चुका होगा। इसके लिये वे समाचारपत्रों और पुस्तकों आदिको व्यक्तियोंके चरित्रोंपर प्रकाश डालनेका पूरा पूरा अधिकार देना उचित समझते हैं। जरासी बातके लिये जिस तरह आज पत्रोंपर मानहानिकी नालिश ठोंक दी जाती है साम्यवादी राज्यमें कदाचित् वैसी नालिश न की जा सकेगी। व्यक्ति अपनी निर्दोषिता उन्हींके कालमोंमें सिद्ध कर सकेंगे, अदालतमें नहीं। कोई पत्र प्रत्येक व्यक्तिके चरित्रको बिना अदालतमें घसीटे जानेके भयके सर्वसाधारणके सम्मुख रख सकेगा, पर उस व्यक्तिका उत्तर अथवा खंडन छापना भी उसका धर्म होगा। वे दलविशेषके पक्ष या विपक्षमें लिखनेके लिये भी समाचारपत्रोंको आजकी अपेक्षा बहुत अधिक स्वाधीनता देना चाहते हैं, क्योंकि कोई काल मतभेदसे खाली नहीं रह सकता और कोई कार्य्यक्षेत्र, जबतक उसमें एक दूसरेपर चोटें करनेवाले दल मौजूद न हों, कार्य्यकर्त्ताओंके लिये रुचिकर नहीं होता। इस प्रकार व्यक्तियों और दलोंके विरुद्ध बोलनेके लिये तो वे समाचारपत्रोंको पूरी स्वाधीनता देना चाहते हैं, परन्तु राज्यके विरुद्ध उनकी टीका टिप्पणीकी उग्रता प्रायः मर्यादित रक्खेंगे। जिन टीकाओंको पढ़कर लोगोंमें क्रान्ति करने—नई शासनपद्धति स्थापित करने—की इच्छा उत्पन्न हो उनके प्रचारमें वे बाधा करेंगे। यही नहीं ऐसे लेखों या पत्रोंको राज्य छपने तक न देगा। जहाँतक किसी समाचारपत्रकी टीकासे साम्यवादी राज्यको अपने अस्तित्वके सम्बन्धमें भय न होगा वहाँतक उसका मुँह खुला रहने दिया जायगा पर ऐसा भय उपस्थित होते ही उसका मुँह सी देनेमें साम्यवादी राज्य आगा पीछा भी न करेगा। साम्यवादी सरकारकी इस नीतिको स्थिरनीति मानते हुए यह अनुमान किया जा

सकता है कि उसके अमलमें सेन्सरीका महकमा बड़ा ही लम्बा चौड़ा होगा और उसकी चक्कीसे साबित निकलनेवाले पत्रों और पुस्तकोंको ही संसारमें आनेका अवसर मिलेगा।

डा० मेंजरकी यह भी सलाह है कि प्रत्येक बड़े नगर (Locality) के लिये राज्य अपनी ओरसे भी समाचारपत्र प्रकाशित करे जिसके

राजकीय पत्र।

कालम सर्वसाधारणकी शिकायतोंके लिये खुले हुए हों। समाजको हानि पहुँचानेवाले व्यक्तियोंके सब प्रकारके आचरणोंकी पोल इनमें खोली जाय और साथ ही जिसके विरुद्ध कुछ लिखा जाय वह अपने बचावोंमें जो कुछ कहना चाहे उसे भी उदारतापूर्वक उसमें स्थान दिया जाय।

इस विषयमें सभी साम्यवादी सहमत हैं कि सब प्रकारकी छपाईपर इजारा एक मात्र राज्यका ही हो। प्रेस रखनेका अधिकार केवल

प्रकाशक।

उसीको होगा और छोटीसे बड़ीतक सब प्रकारकी छपाई वही करेगा। जिस पत्रके प्रकाशनसे वह जनताका कोई खास लाभ समझेगा उसकी छपाईमें वह उसके संचालकोंसे धन न माँगेगा बल्कि सम्पादक तथा संचालकको कुछ पुरस्कार या पत्रकी विक्रीसे होनेवाले लाभका कोई निश्चित अंश (Royalty) भी देता रहेगा। पर जिससे उसे ऐसी आशा न होगी उसकी छपाईका खर्च प्रकाशक या संचालकको देना होगा। पुस्तकोंके प्रकाशनकी भी यही व्यवस्था होगी। यदि कोई व्यक्ति छपाईकी उजरत देनेको तैयार हो तो उसकी कृति कितनी ही निरर्थक क्यों न हो, राज्यका प्रेस उसके छापनेसे इनकार न करेगा। पर वह अपनी जिम्मेदारीपर या अपने व्ययसे उन्हीं पत्रों

या पुस्तकोंको छापेगा जिनसे उसे जनता और साहित्यका उपकार होनेकी आशा हो। उपयोगिताका निश्चय करनेके लिये एक समिति होगी जिसमें पुस्तक-लेखक अपनी पुस्तक और सम्पादक या संचालक अपने पत्रकी कापी और नीति आदि उपस्थित करेगा। यदि समिति उसको राज्यके धनसे छापनेकी सिफारिश करेगी तो रचयिता या सम्पादकसे उनका स्वत्वाधिकार खरीदकर राज्य अपनी ओरसे उन्हें प्रकाशित करेगा, अन्यथा बिना छपाई पाए छापनेसे इनकार कर देगा।

विक्रय-व्यवस्था।

अखबारों और पुस्तकोंके बेचनेवाले एजेण्ट प्रायः राज्यके वेतनभोगी नौकर होंगे। सब प्रकारके पत्र और पुस्तकें—चाहे उनका प्रकाशक राज्य हो अथवा कोई संस्था या व्यक्ति, प्रकाशनके अनन्तर उन एजेण्टोंके पास भेजी जायँगी और वे बिना किसीका पक्षपात किए सबकी चीजें बेचनेका एक सा उद्योग करेंगे। इन एजेण्टों और व्यक्ति-प्रकाशकोंके बीच राज्य मध्यस्थ होगा, प्रत्यक्ष रूपमें एकका दूसरेसे सम्बन्ध न होगा। विज्ञापन देकर अथवा अन्य उपायसे अपनी वस्तुकी बिक्री बढ़ानेके लिये व्यक्ति-प्रकाशक स्वाधीन होंगे। विज्ञापन सरकारी पुस्तकोंमें भी दिए जा सकेंगे।

व्यक्तियोंको धन कहाँसे मिलेगा।

जिन साम्यवादियोंने प्रकाशन-कार्यके सम्बन्धमें साम्यवादी राज्यकी यह नीति स्थिरकी है कि छपाई पाने पर राष्ट्रीय प्रिंटिंग वर्क्स किसी पत्र या पुस्तकके छापनेसे इनकार न किया करे वे अपनी इस व्यवस्थापर यह सोचकर प्रसन्न हैं कि इससे अपने विचार जनता तक पहुँचानेके इच्छक प्रत्येक व्यक्तिकी इच्छा

पूरी हो सकेगी । अपने खर्चमें थोड़ीसी कमी करके वह अपनी रचना प्रकाशित कराने भरके लिये धनसंचय कर लेगा। पुस्तक-लेखकके विषयमें उनका यह आशावाद ठीक हो सकता है। पर क्या खाने पीने और पहननेके खर्चमें किफ़ायत करके पत्र-संचालन जैसे कार्यके लिये अपेक्षित धनराशि एकत्र की जा सकेगी? साम्यवादी नेता यह बात स्वीकार करते हैं कि अभी बहुत समयतक साम्यवादी राज्यकी साम्पत्तिक अवस्था व्यक्तियोंको इतना पारिश्रमिक देने योग्य न होगी जिससे वे सुखपूर्वक जीवनयापन करनेके अतिरिक्त यथेष्ट संचय भी कर सकें । अभी पचासों बरसतक उन्हें केवल स्वल्प संचयके साथ सुखी और प्रायः निश्चिन्त जीवन पर ही सन्तोष करना होगा। ऐसी दशामें यदि कोई अपने रोजाना खर्चोंको घटाकर संचय करना भी चाहेगा तो कितना संचय कर सकेगा? क्या वह जन्म भर संचय करके भी इतना धन इकट्ठा कर सकेगा जिससे एक दैनिक पत्रका भली भाँति संचालन हो सके! साम्यवादी कमाई भी ऐसी ही वैसी होगी, क्योंकि उनका दाहना हाथ—विज्ञापन—नदारद होगा, केवल बिक्रीका भरोसा होगा। जब सब प्रकारके व्यापारका इजारा एक मात्र सरकारको ही होगा तब विज्ञापन कौन देगा और किस लिये देगा?

मि० डेसलिनियर्स इसके उत्तरमें कहते हैं कि साम्यवादी अखबार निकालनेके लिये संचालककी गाँठमें अधिक पैसे होनेकी उतनी आवश्यकता न होगी, क्योंकि प्रेससम्बन्धी सारे झंझट राज्यके सिर होंगे, सम्पादक या संचालक केवल एक संख्याकी छपाई पेशगी देकर बराबर छपाता रह सकता है, हाँ, सम्पादकके दिमागमें अवश्य ही बहुत बड़ी पूँजी दरकार होगी। यह पूँजी जिसके पास हो वह आजकी अपेक्षा भी आसानीसे उस समय पत्र चला सकता है।

जी हाँ, यह बात प्रायः निश्चित है कि साम्यवादी राज्यमें अखबार पढ़नेका मजा बहुत कुछ घट जायगा। विज्ञापनोंके अभावमें न उनका वर्तमान आकार रहना सम्भव है न प्रकार। वे क्षीणकाय और आकर्षणहीन होकर उस युगमें पहुँच जायँगे जिसमें दो सौ साल पहलेके अखबार रहते थे। परन्तु साथ ही यह भी बहुत सम्भव है कि आगे चलकर उन्हें विशेष मनोरंजक और आकर्षक बनानेका भी कोई उपाय निकल आवे।

स्वदेशभक्ति, सेना और परराष्ट्रीय नीति।

साम्यवादके प्रवर्त्तकों—मार्क्स और एंजेल्स—की रायमें श्रमजीवीके लिये कोई देश स्वदेश या मातृभूमि नहीं है, कोई देश या भूमि उसे अपना नहीं मानती, उसका जीवन एक खानाबदोशके जीवनकी अपेक्षा भी कम सुरक्षित और अधिक भारबोधक है। ऐसी दशामें उसका जितना हित अपने ही सरीखे सम्पूर्ण देशोंके मनुष्योंसे भाईचारा करनेमें है उतना केवल उस एक देशका भक्त बननेमें नहीं है जिसमें उसने जन्म पाया है। अराजक साम्यवादियोंके नेता बकुनिनने तो बड़े ही घृणापूर्ण शब्दोंमें स्वदेशभक्तिका तिरस्कार किया है। उसके विचारानुसार यह एक संकट है—मनुष्यको संकीर्ण बनानेवाली और घातक नीति है। क्योंकि इसके कारण एक देशके निवासी अन्य देशोंके मनुष्योंको अपना भाई या अपने बराबरका नहीं समझ सकते। ईश्वरने मनुष्यमात्रमें जो समता उत्पन्न की है उसका देशहितके भावसे घोर विरोध होता है, और लोगोंमें एकता नहीं फैलने पाती।

स्वदेशभक्ति।

साम्यवादके नए युगके नेताओंमें डा० मेंजर अवश्य मार्क्स और एंजेल्सके विचारोंसे अंशतः सहमत हैं, पर बर्न्सटीन, रेनार्ड आदिके

विचारसे स्वदेशभक्ति मनुष्यमात्रका प्रधान धर्म है और रहेगा; क्योंकि जिस समय संसार भरमें केवल एक ही राष्ट्र होगा, भिन्न भिन्न प्रकारके स्वार्थ रखनेवाले भिन्न भिन्न राष्ट्र एक महान् सार्वभौम राष्ट्रके अंग बनकर एक स्वार्थ और एक दृष्टिवाले हो जायँगे वह समय अभी बहुत दूर है, इतनी दूर जिसकी कल्पना करना भी कठिन है।

डा० मेंजरकी रायमें स्वदेशभक्ति मानव हृदयकी सच्ची वृत्ति नहीं है, बल्कि एक कृत्रिम और क्षणिक विकार है जो राजनीतिक घटनाओंके अनुसार अनेक रंग और रूप बदलता रहता है और जिसका पौधा विशेषतः उच्चवर्गवालोंहीके हृदयमें बढ़ता और पुष्ट होता है। उन्होंने स्वदेशभक्तिके दो भेद किए हैं। एक भक्ति राज्य-कर्त्ताओंके प्रति होती है, दूसरी स्वदेश और स्वदेशवासियोंके प्रति। रईसों, धर्माधिकारियों (पादरियों), सैनिक अधिकारियों और राजकर्मचारियोंकी भक्तिका आधार राजा ही होता है, क्योंकि इससे उनका घनिष्ट सम्पर्क होता है और उनका अस्तित्व, उनका दर्जा, उनका बड़प्पन आदि बहुत कुछ इस सम्पर्कपर ही अवलम्बित होता है। यह भक्ति, जिसका कारण भक्तिभाजन और भक्तिकर्ता दोनोंका एक ही बातमें होनेवाला स्वार्थ होता है; कभी कभी भक्तिभाजनके न रह जानेपर भी बनी रह जाती है। मध्यम श्रेणीवालोंकी स्वदेशभक्ति दूसरे प्रकारकी होती है। स्वदेशकी भूमि और स्वदेशवासियोंसे प्रेम और सहानुभूति उनकी स्वदेशभक्तिका आधार होती है, न कि कोई विशेष स्वार्थ। परन्तु तीसरी श्रेणीके नरनारियोंके हृदयमें जिनको दिन भर अत्यन्त कठिन परिश्रम करके रोटियोंका ठिकाना करना पड़ता है, स्वदेशभक्तिके लिये बिल्कुल स्थान नहीं होता। पहले तो छोटी छोटी आर्थिक चिन्ताएँ उनके मस्तिष्कको इस

प्रकार परिव्यास किए रहते हैं कि किसी बड़े प्रश्नकी ओर उनका ध्यान जा ही नहीं सकता। दूसरे राज्य अबसे कुछ ही बरस पहले तक जिस प्रकार उनके देह और प्राणका केवल अपने मतलबके लिये उपयोग करना अपना धर्म समझता रहा है उस प्रकार उन्हें उसके बदलेमें अधिकार देना, उनके सुखदुखकी परवाह करना, अपना धर्म्म नहीं समझता, इससे स्वभावतः ही स्वदेशभक्ति शब्द उनके लिये प्रायः निरर्थक होगया है।

डा० मेंजरके मतसे सहमत न होते हुए बर्न्सटीन लिखता है कि श्रमजीवियोंके राजनीतिक अधिकार कितने ही कम क्यों न हों, फिर भी इतने अधिकार उन्हें अवश्य प्राप्त हैं जिनसे राष्ट्रका स्वार्थ उनके लिये सम्पूर्ण उपेक्षाका विषय नहीं हो सकता। साथ ही वह यह माननेके लिये तैयार नहीं है कि स्वदेशभक्त होनेसे कोई मनुष्य सार्वभौम राष्ट्रका नागरिक होनेके अयोग्य हो जायगा। जार्ज रेनार्ड कहता है—'मातृभूमि' सारशून्य और निरर्थक शब्द अथवा मूर्तिरहित कल्पना नहीं है। वह उस देशकी प्रतिनिधि है जिसमें हमने जन्म लिया है, जिसमें हम बालकसे युवा हुए हैं और जिससे हमें जीवन तथा विचार प्राप्त हुए हैं। हमारा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाला भाव कितना ही क्यों न बढ़ जाय, जिनसे हमारा सबसे पहले परिचय हुआ बहुत समयतक हमारे संसारकी परिधि जिनके आगे नहीं बढ़ सकती थी—जिनके बीचमें हमारा लड़कपन बीता है उन सभी वस्तुओंके लिये हमारे हृदयमें एक विशेष प्रकारकी अनुभूति अवश्य होती रहेगी। हमारा हृदय उनको छोड़कर अधिक दूर नहीं जा सकता। 'मातृभूमि' इसी जन्मभूमिका न केवल विराट्रूप है, बल्कि हम लोगोंके संयुक्त स्वार्थों, ऐतिहासिक चरितावलियों, आशाओं और हमारी

आत्माओं तथा देहोंके परस्पर घनिष्ठ सम्बन्धकी प्रतिनिधि भी है। रेनार्ड उस युगका आना सम्भव मानता है जब कि सारे राष्ट्र मिलकर विश्वकुटुम्बके आकारमें परिणत हो जायँगे; पर अपने झोंपड़े इस आशापर ढा देनेका कोई कारण नहीं देखता कि किसी दिन हमको एक बड़ी हवेली मिलेगी। उसका कहना है कि साम्यवादी स्वदेशभक्तिका उच्छेद करना नहीं चाहते, उसका रूपान्तर करना ही उनको अभीष्ट है। वे स्वदेशको प्यार करते हैं और संसारके अन्य राष्ट्रोंके मुकाबिलेमें उसको बलवान् बनाकर खड़ा करना अपना धर्म मानते हैं।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि थोड़ेसे अतिवादियोंको छोड़कर आधुनिक युगके अधिकांश साम्यवादी नेता बर्नस्टीन और रेनार्डके विवादोंको ही स्वदेशभक्तिके विषयमें साम्यवादके आदर्श विचार और सिद्धान्त मानते हैं।

साम्यवादी उस समयके आनेका स्वप्न तो अवश्य देखते हैं जब कि संसार भरमें तोपें, बन्दूकें और किरचें गला डाली जायँगी और उनके लोहेसे किसानों और शिल्पियोंके लिये औजार बन जायँगे और इस कारण जब कि एक मनुष्य अथवा राष्ट्रको दूसरे मनुष्य अथवा राष्ट्रसे कुछ भी भय न रह जायगा। पर जिस समय यह स्वप्न जाग्रत अवस्थाका रूप धारण करेगा उस समयको वे अत्यन्त दूरवर्ती भविष्यके गर्भमें निहित मानते हैं। अतएव वे अभीसे किसी देशको शस्त्रसंन्यास लेनेका उपदेश नहीं करते और किसी न किसी प्रकारके सैनिक संगठनसे अपनी सैनिक शक्ति, कमसे कम आत्मरक्षाके लिये यथेष्ट रखना वे प्रत्येक राष्ट्रका कर्त्तव्य मानते हैं। जार्ज रेनार्ड सैनिक संगठनको दोष तो मानता है, पर आवश्यक और

सेना।

अस्थायी दोष मानता है, क्योंकि उसके मतसे अभी इस संगठनको नाश करना सर्वनाशका द्वार खोलना है। जब कि प्रत्येक राष्ट्र पलक गिरते ही अपने पड़ोसी राष्ट्रको निगल जानेके लिये तैयार बैठा हो, जब कि चारों ओर शिखण्डी धनुष्यबाण लिए खड़े हों तब भीष्मकी तरह अस्त्र परित्याग करनेको वह मृत्युका आवाहन करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं मानता।

सैनिक संगठनकी तरह सैनिक अनुशासनकी रक्षा भी साम्यवादी अपना कर्तव्य समझते हैं। कारखानेमें काम करनेवालोंकी तरह वे सेनामें भर्ती होनेवालेको यह उपदेश नहीं करते कि जो तुमसे काम ले उसकी सभी आज्ञाओंका पालन करना तुम्हारा धर्म है, जिस आज्ञाको तुम्हारी अन्तरात्मा उचित कहा करे उसे माना करो और जिसको वह अनुचित कहा करे उसे न माना करो। टाल्स्टायके रूसी युवकोंके प्रति इस उपदेशपर कि—"दूसरेको मारना मत सीखो, भले ही इस इन्कारके लिये तुमको जेल जाना पड़े अथवा तुम स्वयं मार डाले जाओ" जार्ज रेनार्ड अत्यन्त घृणा प्रकट करता है और जो सिद्धान्त संकटके समय मातृभूमिकी ओरसे शस्त्र ग्रहण करनेसे रोकता है उसको वह भयंकर कायरतासे पूर्ण बताता है।

जर्मन साम्यवादी काउस्की, बर्न्सटीन आदि भी रक्षार्थ सेना रखनेके तरफदार हैं। याद रहे कि काउस्की वर्त्तमान समयमें मार्क्सके प्रधान शिष्य और उसके अनुयायियों तथा दलके मुख्य नेता समझे जाते हैं।

जिस प्रकार स्वदेशकी रक्षाके लिये शस्त्रास्त्रयुक्त और शिक्षित सेना रखनेके विषयमें प्रायः सब देशोंके आदर्श माने जाने योग्य साम्यवादी नेता सहमत हैं उसी प्रकार सैनिक व्ययको कमसे कम कर देनेके

बारेमें भी उनकी दो राय नहीं हैं। वे जिस तरह राष्ट्रके अस्तित्वकी रक्षाके लिये सेनाकी आवश्यकता मानते हैं उसी तरह, राष्ट्रकी प्रगतिके लिये उसकी पीठसे सैनिक व्ययका बोझा हलका करना भी बहुत आवश्यक समझते हैं। अर्थात् वे लाठीको भी और कामोंके लिये बचा रखना चाहते हैं और साथ ही साँपको भी जीता नहीं छोड़ना चाहते। काउस्की आदिके मतसे इसका उपाय सम्पूर्ण वेतनभोगी सेनाको जवाब देकर स्वयंसेवक सेना खड़ी करना है जिसमें यह सेना इतनी बड़ी हो कि देशके अन्दरके विप्लव विद्रोह आदिका भी दमन कर सके और अन्य देशोंसे चढ़ दौड़नेवाली सेनाको भी उलटे पाँव लौटा सके। इसके लिये वह चाहता है कि सैनिक शिक्षा प्राप्त करना साम्यवादी राज्यके प्रत्येक नागरिकका अनिवार्य कर्त्तव्य हो और प्रत्येक नागरिक स्वयंसेवक सेनाके किसी न किसी पदपर नियुक्त हो। पर क्या यह योजना अल्पव्ययसाध्य है ? वेतनभोगी सेनाकी अपेक्षा अनेक गुना बड़ी इस सेनाको शिक्षा और आवश्यक शस्त्रास्त्र देना क्या थोड़े खर्चका काम होगा ? जितना समय व्यक्तियोंको सैनिक शिक्षा प्राप्त करने अथवा देनेमें लगेगा उतने समयतक राज्यको उन्हें वेतन भी देना पड़ेगा जो उनकी पहलेकी आमदनीसे किसी प्रकार कम नहीं हो सकता। अन्य साम्यवादी इस योजनाकी उपयोगिताके विषयमें इसी प्रकारकी शंकाएँ उठाते हैं पर स्वयं कोई निर्दोष योजना नहीं उपस्थित करते। सारांश यह कि अन्य बहुतसे प्रश्नोंकी तरह इस प्रश्नको भी साम्यवादी अभी हल नहीं कर सके हैं कि यथेष्ट सेना रखते हुए भी उसका खर्च किस प्रकार घटाया जा सकता है।

साम्यवादियोंका अन्तिम साध्य अथवा उद्देश्य सार्वभौम राष्ट्रीयत्व अथवा वह राष्ट्रीय संगठन है जिसमें संसारके राष्ट्रोंमें भक्ष्य भक्ष्यकका

सम्बन्ध न होकर भाई भाईका सम्बन्ध हो, एक ही कुटुम्बके भिन्न भिन्न व्यक्तियोंका सम्बन्ध हो, एक ही मूल-संस्थाकी उन्नतिके लिये प्रयत्नशील भिन्न भिन्न शाखा-संस्थाओंका सम्बन्ध हो, जिसमें सबका स्वार्थ और साध्य एक हो। वे सेना और शस्त्रास्त्र तभीतक रखना चाहते हैं जबतक उनका यह विचार प्रत्यक्ष नहीं हो जाता। ऐसी दशामें परराष्ट्रोंके सम्बन्धमें उनकी नीति यदि कोई हो सकती है तो वही जिससे संसारमें शान्ति, मित्रता और सहयोगकी वृद्धि हो। साम्यवादी नेताओंके कथनानुसार राष्ट्रोंके साथ उनकी नीति वैसी ही सरल, शुद्ध और बन्धुत्वकी भावनासे पूर्ण होगी जैसी कि घरमें व्यक्तियोंके साथ होती है। उनकी सेना या शस्त्रास्त्र किसी प्रकार उनके पड़ोसी राष्ट्रके लिये भयके कारण न होंगे। आजकल जो राष्ट्र अपनेको पूर्ण प्रजासत्तात्मक कहते हैं उनकी परराष्ट्रीय नीति भी साम्यवादियोंकी दृष्टिसे धूर्तता और पाखंडके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, भले ही वह बाहरसे देखनेमें ऐसी न जान पड़ती हो। साम्यवादी राज्योंकी परराष्ट्रीय नीति अन्दर और बाहर दोनों ओरसे सर्वथा शुद्ध होगी।

परराष्ट्रीय नीति।

---

१३ बोल्शेविज्म ।

सन् १९१४ में जिस समय युरोपीय महायुद्ध आरम्भ हुआ था उस समय अन्यान्य मित्रराष्ट्रोंकी तरह रूस भी उसके लिये पूरी तरहसे तैयार न था । परन्तु सर्वसाधारणकी समझमें यह बात अच्छी तरह नहीं आती थी । लोग समझते थे कि चाहे आरम्भमें जर्मनी भले ही कुछ सफलता प्राप्त कर ले परन्तु फिर भी रूसका सैनिक बल बहुत अधिक है और इसी लिये वह अन्तमें अवश्य विजयी होगा । उस समय सारे रूसमें बहुत अधिक उत्साह तथा देशहितैपिताका भाव भरा हुआ था । शिक्षित वर्गमें वह कृत्रिम ही था । इसका कारण यह था कि सर्वसाधारण न तो देशके हित आदिसे भली भाँति परिचित ही थे और न उन्हें कभी ऐसी शिक्षा ही दी गई थी जिससे उनमें देशहितैपिताका भाव जाग्रत होता । इसके अतिरिक्त बहुत दिनोंसे रूसकी शासनप्रणाली भी कुछ ऐसी ही थी कि वह सर्वसाधारणको अपनी ओरसे उदासीन बनाए रखती थी । रूसका सैनिक बल अवश्य बहुत अधिक था और आरम्भमें मित्रराष्ट्रोंको उस बलसे बहुत कुछ आशा भी थी । परन्तु उसमें एक बड़ी भारी त्रुटि थी । वह त्रुटि यह थी कि देशका शिल्प बहुत ही अवनत दशामें था जिसके कारण सेनाके लिये आवश्यक सामग्री बहुत ही कम तैयार हो सकती थी । इसीका परिणाम सन् १९१५

के आरम्भमें यह हुआ था कि रूसी सैनिकोंके लिये गोला बारूद आदिका बहुत बड़ा टोटा पड़ गया था और फलतः उसी वर्षके मध्यमें रूस देशका बहुत बड़ा अंश शत्रुओंके हाथमें चला गया था। अस्तु।

जिस समय युद्ध छिड़नेको था उसी समय सेण्टपिटर्सबर्गके बड़े बड़े कारखानोंमें खूब हड़तालें हो रही थीं। कुछ लोगोंका विश्वास है कि ये हड़तालें कुछ जर्मनोंके बहकानेसे ही हो रही थीं। जो हो, परन्तु सैन्यसंग्रहका आरम्भ होते ही हड़तालें बन्द हो गई और लोग देशहितके भावोंसे भरकर फिर अपने अपने काममें लग गए। लोगोंका युद्धारम्भके समयका भाव स्मरण करके ही पीछे राज्यक्रान्तिके समय भी जारको सहजमें इस बातका विश्वास न होता था कि हमारी प्रजा विद्रोह और राज्यक्रान्ति करेगी; और वह बराबर उसे दबानेका ही प्रयत्न करता था। युद्ध छिड़नेके समय रूस देशकी जो स्थिति थी वह बहुत ही सन्तोषजनक थी। सैन्य संग्रह बहुत अच्छी तरहसे हुआ था, और जारने उस समय सारे देशमें जो शराबकी बिक्री रोक दी थी उससे इस सैन्यसंग्रहके काममें और भी अधिक सहायता मिली थी।

रूसका सैनिक बल तो बहुत अधिक था परन्तु सैनिक व्यवस्था बड़ी ही विलक्षण और बहुतसे अंशोंमें त्रुटिपूर्ण थी। वहाँकी शान्तिकालीन सेनाएँ शान्तिकालमें प्रायः सदा एक ही स्थानमें रहती थीं। सैनिक अफसर प्रायः अपने सुभीतेके अनुसार अपने अनुकूल स्थानपर अपनी नियुक्ति करा लेते थे और वहाँ प्रायः स्थायी रूपसे रहा करते थे। इसका परिणाम यह होता था कि बड़े बड़े नगरोंके आसपास रहनेवाली सेनाओंमें तो अफसरोंकी संख्या बहुत अधिक

थी परन्तु अच्छी बस्तीसे दूर रहनेवाली सेनाओंमें अफसरोंकी प्राय कमी रहा करती थी। सैनिकों और सैनिक अफसरोंका वेतन भ बहुत कम होता था और पदवृद्धि भी सबकी समान नहीं होती थी सैनिकोंका एक वर्ग था जो गार्ड (Guards) कहलाता था। उस वर्गमें रहनेवालोंके लिये विशेष सुभीते थे और उच्च कुलके लोगोंक प्रायः उसीमें स्थान मिलता था। दूरदेशोंमें रहनेवाली सेनाओंके लिये अफसरोंकी बहुत कमी रहती थी। जब युद्धकालमें सैनिकोंकी संख्या बहुत बढ़ गई तब उस पुरानी व्यवस्थाकी त्रुटियाँ मालूम होने लगीं सैनिक शिक्षाकी भी कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं थी। सन् १९१४ के आरम्भमें ही इन सब त्रुटियोंको कुछ कुछ दूर करनेका प्रयत्न किया गया था और आशा थी कि पाँच वर्षमें रूसकी सैनिक व्यवस्था बहुत कुछ ठीक हो जायगी, परन्तु बीचमें ही युद्ध छिड़ गया और पुरानी अव्यवस्था दूर न हो सकी।

युद्धारम्भके समय रूसी रणविशारदोंका अनुमान था कि जर्मनी सबसे पहले हमारे ही देशपर आक्रमण करेगा; इसी लिये वे लोग बहुतसा देश शत्रुको समर्पित करनेके लिये तैयार हो गए और रूसी सरकारने सीमा प्रान्तोंमें सैनिक कार्योंके लिये नई रेलें आदि कुछ भी न बनाई। यहाँतक कि पुरानी रद्दी सड़कोंकी मरम्मत भी नहीं होने दी गई। यही कारण था कि सन् १९१५ में रूसी सैनिकोंको उन्हीं सड़कोंपर घुटनों घुटनों दलदलमें यात्रा करनी पड़ी थी। सीमा प्रान्तपर कहीं किलेबन्दी भी नहीं हुई। परन्तु युद्ध छिड़ते ही रूसमें सैन्यसंग्रह हो गया था इसलिये जर्मनीने पहले उस देशकी ओर रुख नहीं किया और फ्रान्सपर ही, बेलजियमकी ओरसे, आक्रमण किया। आरम्भके केवल दो एक युद्धोंको छोड़कर शेष प्रायः सभी अवसरोंपर

सन् १९१५ की वसन्त ऋतुतक रूसकी सेनाने अच्छी सफलता प्राप्त की थी। रूसकी जितनी भूमिपर शत्रुओंने अधिकार किया था उससे कहीं अधिक भूमि रूसने शत्रुओंसे छीन ली थी। इस लिये मार्नेके सुप्रसिद्ध युद्धके उपरान्त जर्मनों और आस्ट्रियनोंने अपनी अधिकांश शक्ति इसी प्रयत्नमें लगा दी थी जिसमें रूस उनकी अधिक भूमिपर अधिकार न कर ले।

अप्रैल १९१५ से रूसमें गोले-बारूद आदिकी कमी मालूम होने लगी। परन्तु उसी समय रूसके प्रधान सेनापति ग्रैण्ड ड्यूक निकोलसको विश्वास दिया गया कि मईमें ही बहुत कुछ बारूद और गोले तैयार हो जायँगे; इसलिये उसने जोरोंसे आक्रमण जारी रक्खा। परन्तु यह बात ठीक नहीं निकली और बहुत ही शीघ्र गोले बारूदके अतिरिक्त बन्दूकों तककी भी कमी दिखाई देने लगी। शत्रुपक्षको इस बातका पता लग गया और उसने जोरोंका आक्रमण करके रूसी सेनाको बहुत पीछे हटा दिया। इसमें रूसियोंको जन और सामग्रीकी बहुत अधिक हानि सहनी पड़ी। शीघ्र ही रूसियोंकी यह हानि और भी बढ़ने लगी और शत्रुपक्ष बराबर विजय प्राप्त करता गया। गेलीशियामें रूसकी जो भारी हार हुई थी उसके कारण उस प्रान्तमें रूसी सैनिकोंका भी टोटा पड़ गया था। पुरानी सैनिकोंकी सहायताके लिये जो कुमक आती थी उसके पास भी यथेष्ट गोला-बारूद और हथियार न होते थे। एक अवसरपर तो यह कमी इतना बढ़ गई थी कि रूसी तोपखानेको विवश होकर इस बातकी आज्ञा दी गई थी कि भारी युद्धके समय भी प्रत्येक तोप दिनभरमें दससे अधिक गोले न छोड़े। यदि रूसको सन् १९१५ में यह भयंकर हानि न उठानी पड़ती तो रूसमें कदापि राज्यक्रान्ति न होती। परन्तु

एक तो इस हारसे रूसी प्रजाका दिल टूट गया था और दूसरे जर्मनोंकी जीतके कारण देशमें दुर्दशा और कष्ट भी बहुत बढ़ गया था । यद्यपि लोग उस समय भी सरकारसे डरते थे परन्तु उस परसे उनका विश्वास उठ गया था और राज्यक्रान्तिके लिये विस्तृत क्षेत्र तैयार हो गया था । इतना होनेपर भी जारकी समझमें ये सब बातें नहीं आती थीं और वह राजनीतिक क्षेत्रमें किसी प्रकारके सुधारोंकी कोई आवश्यकता नहीं समझता था । उन्हीं दिनों रूसी समाचारपत्र भी इस पराजयका सारा दोष सरकारके मत्थे मढ़ने लग गए थे। जनरल सुकमलिनाफ तथा राजमंत्रियोंसे प्रजा बहुत असन्तुष्ट हो गई थी और पीछेसे उक्त जनरलपर मुकदमा भी चला था । साम्राज्यके शुभचिन्तक परामर्शदाताओंकी बातोंपर जार कुछ भी ध्यान नहीं देता था और समझता था कि रूस देशपर अनियन्त्रित शासन करनेका अधिकार मुझे स्वयं ईश्वरकी ओरसे प्राप्त है । कुछ स्वार्थी और दुष्ट उसके इस विचारको दृढ़ करनेमें और भी सहायक होते थे जिनमें प्रसिद्ध दुष्ट रास्पुटिन मुख्य था ।

इस अवसरपर संक्षेपमें रास्पुटिनका कुछ परिचय दे देना आवश्यक जान पड़ता है । वह साइबेरियाका एक निरक्षर और दुराचारी परन्तु विलक्षण शक्तिसम्पन्न कृषक था । रूसी भाषामें ‘ रास्पुटिन ’ शब्दका अर्थ ही है—‘ दुराचारी । ’ वह अपने आपको बड़ा भारी जादूगर और ईश्वरीय शक्तिसम्पन्न बतलाता था और टोने-टोटके करके रोगियोंको नीरोग किया करता था । वह बड़ा भारी झूठा, बदमाश और शराबी भी था । परन्तु रूसकी सम्राज्ञी जरीनापर उसने अपना बहुत अधिक प्रभाव तथा आतंक जमा रक्खा था । उसमें लोगोंको अपने वशमें कर लेनेकी अद्भुत शक्ति थी इसलिये उसने सम्राज्ञीके

अतिरिक्त और बहुतसे राजकर्मचारियों तथा मन्त्रियों आदिको पूरी तरहसे अपने अधिकारमें कर लिया था। जार उसको अपने देशसे निकाल देना चाहता था और इसके लिये उसने कई बार उद्योग भी किए थे परन्तु जरीनाके हठ और आग्रहके कारण उसकी एक भी न चलती थी। इसी लिये अन्तमें जारने विवश होकर उसके सम्बन्धमें किसीसे बातचीत तक करना छोड़ दिया। धीरे धीरे रास्पुटिनका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया था कि उसने लोगोंको रिश्वत लेकर राज्यकी बड़ी बड़ी नौकरियाँ दिलानेके लिये एक बड़ा दफ्तर सा खोल दिया और दो तीन मूर्खोंको मंत्रिमण्डलतकमें स्थान दिला दिया। धीरे सारे रूसमें उसकी तूती बोलने लगी। वह जो कुछ चाहता वही जारसे, अप्रत्यक्ष रूपसे और विशेषत: जरीनाकी सहायतासे, करा लेता था। सर्वसाधारण उसके कुकर्मों और अत्याचारोंसे बहुत दु:खी हो गए थे; परन्तु उनका कोई वश न चलता था और वे अन्दर ही अन्दर मन मसोसकर रह जाते थे।

रास्पुटिन दुराचारी और कुकर्मी तो था ही, इसलिये उसे जर्मनोंसे बड़ी बड़ी रिश्वतें भी मिली थीं। इन रिश्वतोंके कारण तथा स्वयं अपने स्वार्थोंकी रक्षाके विचारसे वह जर्मनोंके साथ अलग सन्धि करनेके पक्षमें हो गया था। बात यह थी कि रास्पुटिन चाहता था कि देश चाहे जहन्नुममें ही क्यों न मिल जाय पर मेरा प्रभुत्व बराबर बना रहे। युद्धके जारी रहनेकी दशामें केवल दो ही बातें हो सकती थीं। या तो पुरानी शासनप्रणाली त्रुटिपूर्ण और अयोग्य समझी जाती जिसके कारण देशमें राज्यक्रान्ति होती और या रूसी प्रजामें नई संजीवनी शक्ति लानेके लिये उसे बहुतसे राजनीतिक अधिकार दिए जाते। परन्तु इन दोनों ही दशाओंमें रास्पुटिन और उसके साथि-

योंका प्रभुत्व नष्ट हो जाता। इन सब कारणोंसे रास्पुटिन दलका भला इसीमें था कि जर्मनोंके साथ रूस अलग सन्धि कर ले, और इसके लिये उसने अपनी शक्तिके अनुसार बहुत कुछ प्रयत्न भी किए थे। तिसपर जर्मन गुप्तचरोंने यह अफवाह और भी जोरोंसे फैला रक्खी थी कि जार जर्मनीके साथ अलग सन्धि करना चाहता है। इधर जरीना भी बहुत बदनाम थी। एक तो वह एक जर्मन राजकुलकी लड़की थी और दूसरे वह सब तरहसे रास्पुटिनके वशमें थी। इन सब बातोंके कारण अनेक देशहितैषी रूसी जार, जरीना और रास्पुटिनसे बहुत विगड़ गए थे; और अन्तमें कुछ लोगोंने मिलकर रास्पुटिनको मार ही डाला।

जब प्रजा बहुत बिगड़ गई और जारको अपना तख्त डगमगाता हुआ दिखाई दिया तब वह प्रत्येक व्यक्तिपर षड्यंत्रकारी होनेका सन्देह करने लगा। इसीलिये उसने प्रधान सेनापति ग्रैण्ड ड्यूक निकोलसको भी सेनापतिके पदसे हटा दिया और नाम मात्रके लिये स्वयं वह पद ग्रहण कर लिया। जो लोग उसे भावी संकटोंकी सूचना देते थे उनकी बातोंपर वह विश्वास नहीं करता था। इसी बीचमें ड्रूमाने भी राजनीतिक सुधारोंके लिये आन्दोलन करना आरम्भ किया। यद्यपि उसकी बातोंकी कहीं सुनाई नहीं होती थी तथापि उसने अपना उद्योग नहीं छोड़ा। सेनाविभाग तथा मंत्रिमंडलमें जल्दी जल्दी लोग बदले जाने लगे; परन्तु सुधारकी आशा कहींसे नहीं हुई। प्रधान मंत्रीके पदपर जो नए लोग आते थे वे सब दमननीतिका ही अवलम्बन करते थे।

इसी बीचमें पोलैण्डका झगड़ा भी खड़ा हो गया। युद्धके आरम्भमें ही ग्रैण्ड ड्यूक निकोलसने वादा किया था कि पोलैण्डको पूरा स्वरा-

ज्य दे दिया जायगा और रूस वास्तवमें प्रूशियन तथा आस्ट्रियन पोलैण्डके उद्धारके लिये लड़ना चाहता है। पोलैण्डके सम्बन्धमें रूसकी यह बात प्रूशिया और आस्ट्रियाके लिये बहुत ही आपत्तिजनक थी, क्योंकि इससे उनके अधीनस्थ पोलैण्डकी प्रजाके बिगड़ खड़े होनेकी सम्भावना थी। परन्तु बात यह थी कि पोलैण्डवाले रूसियों या जर्मनोंके शासनकी अपेक्षा आस्ट्रियनोंके शासनको अधिक उत्तम समझते थे। इसका कारण यह था कि जर्मनी और रूस तो अपने अपने पोलैण्डमें प्रजाको हरतरहसे दबाते थे, लेकिन आस्ट्रियनोंने अपने अधीनस्थ पोलैण्ड प्रान्तमें प्रजाको पूरी पूरी स्वतंत्रता दे रक्खी थी। परन्तु जब युद्ध छिड़ा था तब पोलैण्डवालोंके साथ रूस बहुत अच्छा व्यवहार करने लग गया था। ग्रैण्ड-ड्यूक निकोलसने पोलैण्डकी स्वतंत्रताके सम्बन्धमें जो कुछ कहा था वह मानों जारकी ओरसे ही कहा था; और आरम्भमें रूसके विजयी होनेकी भी बहुत कुछ सम्भावना थी इसलिये पोलैण्डपर उक्त घोषणाका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। परन्तु जब रूसी पोलैण्डके बहुत बड़े भागपर शत्रुका अधिकार हो गया तब रूसी सरकारके लिये यह आवश्यक था कि वह अपना वचन पूरा करती। रूसी परराष्ट्रसचिव सैजोनोफका मत था कि पोलैण्डको पूरा पूरा स्वराज्य दिया जाय, परन्तु प्रधान मंत्री स्टर्मरका मत था कि ग्रैण्ड-ड्यूकवाली घोषणापर जारके हस्ताक्षर नहीं थे इसलिये पोलैण्डमें थोड़ा बहुत राजनीतिक सुधार कर देना ही यथेष्ट होगा। जार भी स्टर्मरके ही पक्षमें था और पोलैण्डको विशेष अधिकार नहीं देना चाहता था इसलिये विवश होकर सैजोनोफको इस्तीफा देना पड़ा और परराष्ट्रविभागकी देखरेख भी प्रधान मंत्री स्टर्मर ही करने लगा।

१९१५ में जब रूसमें युद्धसामग्रीका अकाल पड़ गया तब इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा जपानने बहुतसी युद्ध सामग्री वहाँ भेजी

जिससे १९१६ के आरम्भमें रूसी सेनाने फिर शत्रुओंका अच्छा मुकाबला किया और अनेक स्थानोंपर विजय भी प्राप्त की। अगस्तमें रूमानियाने भी मित्रदलकी ओरसे युद्धघोषणा की, परन्तु रूसके बहुत कुछ सहायता करनेपर भी वह शत्रुके प्रबल आक्रमणोंसे न बच सका। उस समय यद्यपि रूसको बाहरसे युद्धसामग्रीकी बहुत कुछ सहायता मिल रही थी तथापि उसकी आन्तरिक व्यवस्था ठीक नहीं थी। साम्राज्यके विशेष उपजाऊ प्रान्त शत्रुओंके हाथमें पड़ चुके थे, बहुतसी महत्त्वपूर्ण रेलवाइनें टूट चुकी थीं और जो बाकी बची थीं वे भी बहुत बुरी दशामें थीं। रेलवाइनोंके लिये नई सामग्री तैयार करने और पुराने इंजिनोंकी मरम्मत करनेकी कोई व्यवस्था नहीं थी। प्रायः सभी स्थानोंमें खाद्य पदार्थोंकी बहुत कमी थी। इस कमीका मुख्य कारण यह था कि रूसमें न तो एक स्थानसे दूसरे स्थानतक सामग्री पहुँचानेका कोई प्रबन्ध था और न उसका अपव्यय रोकनेकी कोई व्यवस्था थी। शान्तिकालमें सैनिकोंको नित्य प्रायः ६ छटाक मांस मिलता था परन्तु युद्धकालमें तीन पाव मिलने लगा था। इतना मांस उन कृषक सैनिकोंको दिया जाता था जो साधारणतः अपने घर सप्ताहमें एक बार मांस खाते थे। साथ ही बीचमें बहुतसे दलाल और अफसर भी बहुत सा माल हड़प कर जाते थे। अफसर लोग आसपासके प्रान्तोंसे भेड़ बकरियाँ आदि न खरीदकर सैकड़ों मील दूरसे मँगवाया करते थे। उन पशुओंको मार्गमें पूरा भोजन भी नहीं मिलता था जिसके कारण उनमेंसे बहुतसे अपने निर्दिष्ट स्थानतक पहुँचनेसे पहले ही मर जाते थे। इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारकी बेईमानियाँ होती थीं जिनके कारण अफसर लोग मालामाल हो गए थे। उधर लोगोंके सेनामें चले जानेके कारण खेती-बारीका काम भी बिलकुल

रुक गया था। पहलेसे देशमें खाद्य पदार्थ यथेष्ट भरा हुआ था, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु उसके बँटवारेकी कोई व्यवस्था नहीं थी। अक्टूबर १९१६ में पेट्रोग्रेडमें तो मक्खन प्रायः १२) रु० सेर विकता था; परन्तु साइबेरियामें मक्खनकी इतनी अधिकता थी कि लोगोंकी समझमें यही नहीं आता था कि इतना मक्खन क्या होगा; वे तेलके बदले उसी मक्खनसे गाड़ियोंके पहिए औंगते थे! युद्धारम्भके समय तो सैनिकोंको पकी पकाई रोटियाँ मिलती थीं परन्तु सन् १९१६ में ऐसी अव्यवस्था होगई थी कि सैनिकोंको स्वयं ही आटा पिसवानेके लिये मीलों जाना पड़ता था और लौटकर स्वयं ही रोटी पकानी पड़ती थी। प्रजा भी अन्नकष्टसे बहुत पीड़ित थी। यह कष्ट बड़े बड़े नगरोंमें और विशेषतः पेट्रोग्रेडमें और भी अधिक था। युद्धसे पहले पेट्रोग्रेडकी आबादी १५ लाख थी परन्तु सन् १९१६ में वह बढ़कर ३० लाख हो गई थी। इसका कारण यह था कि एक तो वहाँ युद्धसामग्री तैयार करनेके लिये बहुतसे नए कारखाने बन गए थे और दूसरे शत्रुके हाथमें गए हुए, प्रदेशसे बहुतसे लोग आकर वहीं बस गए थे। पेट्रोग्रेडमें खाद्य पदार्थ प्रायः पौलेण्ड और लिथुआनियासे ही आता था; परन्तु जर्मनोंने इन प्रान्तोंसे पेट्रोग्रेड जानेवाली रेल-लाइन ही तोड़ दी थी। मास्कोकी ओरकी रेलसे अधिक सामान आ ही न सकता था और कीफ तथा ओडेसावाली रेललाइन बहुत महत्त्वपूर्ण सैनिक कार्य्योंमें फँसी हुई थी। इस प्रकार पेट्रोग्रेड निवासियोंके भूखों मरनेकी बारी आ गई; परन्तु सरकारने इस भीषण अन्नकष्टको रोकनेकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया। न तो उसने लोगोंका पेट्रोग्रेडमें आना ही रोका और न खाद्य पदार्थोंकी कमी दूर करनेका ही कोई प्रयत्न किया। सच तो यह है कि वह समय-

पर कोई अच्छा काम करना जानती ही नहीं थी। शान्तिकालमें रूसका बहुत सा काम प्रायः बाहरसे आए हुए मालसे ही चलता था, परन्तु युद्धकालमें वह माल आना बन्द हो गया था। इसके अतिरिक्त सब चीजोंकी दर भी बहुत बढ़ गई थी। इतनेपर भी चीजें खरीदनेके लिये लोगोंको पहरों खड़े रहना पड़ता था। इन सब कारणोंसे रूसी प्रजा बिलकुल तंग आ गई थी।

१९१६ की ग्रीष्म ऋतुमें जारने प्रोटोपोपोफ नामक एक धनी व्यापारीको स्वराष्ट्रविभागका मंत्री नियुक्त किया। इसकी नियुक्ति रास्पुटिनने ही कराई थी। मंत्री बनते ही प्रोटोपोपोफ डूमा डेप्युटेशनके सभापतिकी हैसियतसे लन्दन गया था। वहाँसे लौटते समय उसने स्वीडनमें एक जर्मन महाजनसे गुप्तसन्धिके सम्बन्धमें बातें की थीं; कहते हैं कि इस आदमीका दिमाग भी कुछ खराब हो गया था और वह चरित्रहीन भी था। लन्दनसे लौटते ही उसने भीषण दमननीतिका अवलम्बन आरम्भ किया।

अक्टूबर १९१६ में बहुतसे कारखानोंके मजदूरोंने हड़ताल कर दी। उनका कहना था कि हम लोगोंको दिन भर तो कारखानोंमें काम करना पड़ता है और रात रात भर भोजनालयोंमें भोजन पानेके लिये खड़े रहना पड़ता है। अतः सरकार हम लोगोंको अधिकारियों द्वारा भोजन दिलवानेकी व्यवस्था करे। परन्तु सरकारने मजदूरोंकी इन बातोंपर कुछ भी ध्यान न दिया। देशकी आन्तरिक व्यवस्था करना प्रोटोपोपोफका काम था। उसने मजदूरोंकी शिकायत दूर करनेकी तो कोई आवश्यकता न समझी और उलटे सैनिकोंको आज्ञा दी कि मजदूरोंसे बलपूर्वक काम लिया जाय।

सैनिक बलके आगे ऊपरसे देखनेमें तो मजदूर लोग दब गए परन्तु अन्दर ही अन्दर उनका असन्तोष बहुत बढ़ गया।

नवम्बरमें डूमाका अधिवेशन हुआ। सब लोग समझते थे कि इस अधिवेशनमें स्टर्मर और प्रोटोपोपोफके कुप्रबन्ध और अव्यवस्थापर कड़ी टीका की जायगी और सरकारसे उन्हें पदच्युत करनेके लिये प्रार्थना की जायगी। पहली बैठक बड़े जोरोंके साथ हुई और उसमें स्टर्मरकी निन्दा करते हुए कहा गया कि वह ऐसी नीतिसे काम ले रहा है जो साम्राज्यके लिये बहुत ही नाशक है। इस अधिवेशनमें रास्पुटिनकी कार्रवाइयोंपर भी बहुत कुछ आक्षेप हुआ था। जारके सम्बन्धमें किसीने कुछ भी न कहा था, सब लोग केवल राजमंत्रियोंको दोष देते थे। प्रायः सभी समझदार उस समय डूमाके पक्षमें थे, और डूमा चाहती थी कि सम्राट्के प्रति निष्ठा रखकर उसे ठीक मार्ग-पर लाया जाय। परन्तु अभाग्यवश डूमाके हाथमें अधिकार कुछ भी न था। वह सब विषयोंपर केवल वादविवाद कर सकती थी और उनके सम्बन्धमें सरकारको सूचनाएँ दे सकती थी। बस, इसका काम इतना ही था; किसी विचारको कार्यरूपमें परिणत करनेमें वह नितान्त असमर्थ थी। अस्तु।

डूमाकी टीका-टिप्पणियोंसे घबराकर स्टर्मरने इस्तीफा दे दिया और उसके स्थानपर ट्रेपोफ नियुक्त हुआ। ट्रेपोफ बहुत सच्चा और ईमानदार था परन्तु उसके विचार अनुदार और संकुचित थे। फिर भी उसने समझदारीसे काम लिया और डूमाके नेताओंसे मिलजुलकर उनकी सूचनाओंके अनुसार थोड़ा बहुत काम भी किया। वह जारको देशकी वास्तविक अवस्थाका परिचय कराना चाहता था परन्तु प्रोटो-पोपोफ उसकी दाल ही न गलने देता था। इसलिये डूमावालोंके

हीं रणक्षेत्रमें भेज दिया था और उसके बहुत अधिक अफसर मा
जा चुके थे। यदि वे अफसर आरम्भसे ही पेट्रोग्रेडमें होते तो बहुतरे
लोगोंका विश्वास है कि जार नए दुष्ट परामर्शदाताओंके फेरमें न
पड़ता। वे लोग डूमाके विचारोंके साथ सहानुभूति प्रकट करते औ
जारको या तो डूमाकी बातें सुननेके लिये और या राजत्याग करनेके
लिये राजी कर लेते। सन् १९०५ में रूसमें जो क्रान्ति हुई थी
उसका ध्यान रखते हुए यही कहा जा सकता है कि जार बहुतसे
अंशोंमें डूमाकी बातें मान लेता और उसके राजत्यागकी बारी न
आती। उस समय पेट्रोग्रेडमें जो सेना थी उसके सैनिक निरे रङ्गरूट
और अफसर बिलकुल नए थे और लोगोंको आशा होने लगी थी कि
अब जारकी बुद्धि ठिकाने आ जायगी। परन्तु शीघ्र ही लोगोंका यह
भ्रम दूर हो गया।

जार और डूमाका झगड़ा बहुत बढ़ गया। डूमा अनियंत्रित शासनका अन्त और सुधार कराना चाहती थी परन्तु रास्पुटिनके दुष्ट साथियोंकी सम्मतिसे जारकी इच्छा थी कि डूमा दबा अथवा तोड़ दी जाय। राजपरिवारके जिन लोगोंने पहले जारको हरतरहसे समझाना बुझाना चाहा था, उन लोगोंको जारने अपना शत्रु समझ लिया और रास्पुटिनकी हत्याके उपरान्त उन सबको देशसे निर्वासित कर दिया। तब जारके चाचा ग्रैण्डड्यूक पालने उसे समझाना चाहा। एक अवसरपर पाल एक घण्टेतक जारको देशकी भीषण स्थिति बतलाता रहा; पर ज्यों ही पालकी बातें समाप्त हुई त्यों ही जारने बिना उसे कुछ उत्तर दिए बड़ी रुखाईसे विदा कर दिया। इसके उपरान्त उसने साम्राज्यकी काउन्सिलसे उन सब लोगोंको निकाल दिया जो देशहितके भावोंसे प्रेरित होकर जार अथवा प्रोटोपोपोफका विरोध करते थे

और तब इस आशयका एक घोषणापत्र निकाला कि पहले ड्रूमाको गवर्नमेण्टके साथ मिलकर काम करना चाहिए और तब किसी प्रकारके उदार शासन अथवा सुधारकी आशा करनी चाहिए। परन्तु यह घोषणापत्र कदाचित् प्रोटोपोपोफकी सम्मत्तिसे लोगोंको फुसलानेके लिये ही निकाला गया था। काउन्सिलके सभापतिकी आज्ञासे काउन्सिलमें भी राजनीतिक विषयोंकी चर्चा बन्द हो गई। ड्रूमाका अधिवेशन आरम्भ हुआ जिसमें सबसे पहले खाद्य पदार्थोंके प्रश्नपर विचार हुआ। जनवरीमें ही मि० रिटिच नामक एक योग्य और चतुर मनुष्य कृपिविभागका मंत्री बना दिया गया था और खाद्य पदार्थोंका प्रबन्ध उसे सौंप दिया गया था। यदि उसे अपने विभागमें स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करनेका पूरा पूरा अधिकार दे दिया जाता तो बहुत सम्भव था कि देशकी दशा बहुत कुछ सुधर जाती। परन्तु सरकार बीचबीचमें उसके कार्योंमें बहुत बाधक होती थी। बात यह थी कि उन दिनोंके देशके सभी सच्चे शुभचिन्तकोंको सरकार अपना शत्रु समझने लग गई थी और उनपर तनिक भी विश्वास न करती थी। जारका प्रोटोपोपोफको छोड़कर और किसीपर विश्वास नहीं था और वह समझता था कि ड्रूमा जो कुछ कहती है वह राज्यक्रान्तिके भावोंसे प्रेरित होकर कहती है। प्रोटोपोपोफ ड्रूमाको दबाकर अपने पदपर बना रहना चाहता था। उसका मुख्य उद्देश्य यह था कि पहले तो देशमें खूब अशान्ति और उपद्रव खड़ा किया जाय और तब इस बहानेसे शत्रुके साथ अलग सन्धि कर ली जाय कि देशकी आन्तरिक अशान्तिका दमन और भीषण शत्रुके साथ युद्ध संचालन साथ ही साथ और एक ही समयमें नहीं हो सकता। जार उसके इस दुष्ट उद्देश्यसे बिल्कुल अपरिचित था। परन्तु ड्रूमा इस बातको बहुत अच्छी तरह

समझती थी कि प्रोटोपोपोफका हित इसीमें है कि देशमें अशान्ति हो और इसीलिये वह अनेक उपायोंसे अशान्ति उत्पन्न कर रहा है। लेकिन डूमामें इतनी शक्ति नहीं थी कि वह प्रोटोपोपोफको मंत्रिपदसे हटा देती, इसलिये वह लाचार थी।

अब राज्यक्रान्तिका समय आ गया। मार्च १९१७ में पेट्रोग्रेडमें मजदूरे प्रायः भूखों मरने लगे। उसी समय कोयलेका भी अकाल पड़ गया। ८ मार्चको निकम्मे मजदूर गलियों और सड़कोंमें 'अन्न अन्न' चिल्लाते हुए फिरने लगे। प्रोटोपोपोफने उन मजदूरोंपर गोलियाँ चलानेका आज्ञा देकर अपनी परम मूर्खताका परिचय दिया। मजदूरोंने सैनिकोंका थोड़ा बहुत विरोध किया और दोनोंमें कुछ लड़ाई झगड़ा भी हुआ परन्तु और सैनिकोंके आ जानेसे मजदूर चुपचाप अपने अपने घर चले गए। बड़े बड़े कारखानोंमें सेनाएँ नियुक्त क दी गईं। परन्तु मजदूरोंकी शिकायतें दूर करनेका कोई प्रयत्न नह किया गया। तीन चार दिन बाद मजदूरोंने फिर सभाएँ करके अपन अन्नकष्ट मिटवाना चाहा परन्तु सैनिकोंने फिर उनकी सभाएँ भं कर दीं। उसी समय एक गार्ड रेजिमेण्टके कुछ सिपाहियोंने भी मज दूरोंपर गोली चलानेसे इनकार करके विद्रोह कर दिया और वे अप अफसरोंकी हत्या करके जनसाधारण और मजदूरोंमें जा मिले। इ प्रकार सेनामें भी विद्रोह मच गया और सेनाएँ ही परस्पर लड़ने लगीं जारने यह समझ कर कि इन सब उपद्रवोंकी जड़ डूमा ही है, तुर पार्लिमेण्टको तोड़ दिया। परन्तु डूमाने सर्वसम्मतिसे जारकी आ माननेसे इनकार कर किया और शासनकार्य्य अपने हाथमें लेने प्रयत्न आरम्भ कर दिया।

१३ मार्चको राड्जियान्कोने जारको दो तार दिए जिनमें उस कहा था कि इस समय देशकी दशा बहुत ही विकट हो रही है

अब यही अन्तिम समय है । यदि इस समय नई सरकारका संगठन न होगा और शासनाधिकार किसी ऐसे व्यक्तिके हाथमें न दिया जायगा जिसपर सर्वसाधारणका पूरा पूरा विश्वास हो तो देश और राजकुलके भाग्यका इसीसमय निर्णय हो जायगा । अतः इसी समय कोई उपयुक्त उपाय करना आवश्यक है । परन्तु जारने इन तारोंका कुछ भी उत्तर न दिया; इस बीचमें एक एक करके बहुत सी पलटनें विद्रोही हो गईं और जनसाधारणकी ओर जा मिलीं । बहुतसे राजनिष्ठ सैनिक अफसर मार डाले गए । डूमाने एक नया मंत्रिमंडल संगठित किया और एक कार्यकारिणी सभा (Executive Committee) बनाई जिसका सभापति राड्जियान्को बनाया गया । सब पुराने मंत्री गिरिफ्तार कर लिए गए और नई सरकारमें समस्त राजनीतिक दलोंके प्रतिनिधित्वके लिये केरेन्सकी न्याय-विभागका मंत्री बनाया गया । राड्जियान्कोने सैनिकोंसे युद्ध बन्द करने और डूमाकी आज्ञा माननेके लिये प्रार्थना की और मजदूरोंसे कहा कि तुम लोग अपने अपने कारखानेमें जाकर काम करो; तुम्हारी शिकायतोंपर विचार किया जायगा ।

उधर जारने पेट्रोग्रेडमें शान्ति स्थापित करनेके लिये सेनाएँ भेजीं, परन्तु वे सेनाएँ पेट्रोग्रेडतक इसलिये नहीं पहुँच सकीं कि डूमाकी कार्यकारिणी सभाके सभापति राड्जियान्कोने रेल्वे कर्मचारियोंको आज्ञा दे रखी थी कि जारकी भेजी हुई सेनाएँ पेट्रोग्रेडतक न लाई जायँ । राड्जियान्कोकी इच्छा थी कि व्यर्थ रक्तपात न हो और जार नियंत्रित शासनकी व्यवस्था करके अपने अधिकार बनाए रहे । डूमाकी अपीलके अनुसार धीरे धीरे सभी सेनाएँ अस्थायी सरकारकी अधीनतामें आ गईं । साम्यवादियोंने भी जब देखा कि अब जार राज्यच्युत हुआ चाहता है और राज्याधिकार एक नई सरकारके हाथमें जाया चाहता

है तब उन्होंने भी अपने उद्देश्योंकी सिद्धिके लिये इस अवसरको हाथसे जाने देना उचित न समझा। उसी समय पेट्रोग्रेडके श्रमजीवियोंकी एक काउन्सिल संगठित हुई। वह काउन्सिल यह समझती थी कि अब राज्याधिकार ऐसे ही लोगोंके हाथमें चला जायगा जो जमींदार या पूँजीदार हैं और हमारे कष्ट पहलेकी तरह ही ज्योंके त्यों बने रहेंगे। उस काउन्सिलमें सैनिकोंके भी बहुतसे प्रतिनिधि सम्मिलित हो गए। इस काउन्सिलमें प्रायः चार सौ सदस्य थे। जिस स्थानपर डूमाकी कार्यकारिणी सभाका प्रधान कार्यालय था उसकी बगलमें ही इस नई काउन्सिलने भी अपना प्रधान कार्यालय स्थापित किया। इसी काउन्सिलका नाम आगे चलकर सोवीट (Soviet) पड़ा। रूसका प्रसिद्ध साम्यवादी केरेन्स्की डूमाकी कार्यकारिणी सभामें सम्मिलित होकर अस्थायी सरकारके पक्षमें मिल गया था और चाहता था कि अस्थायी सरकार तथा सोवीट सरकारमें वैर-विरोध न बढ़ने पावे।

अब सोवीट कहने लगी कि जार सिंहासन त्याग दे और साम्यवादी सरकारकी स्थापना हो। परन्तु केरेन्स्कीने उसको बहुत समझा बुझाकर १५ मार्चको इस बातपर राजी कर लिया कि जारका लड़का सिंहासनपर बैठा दिया जाय और जारका भाई रीजेण्ट बना दिया जाय। यद्यपि केरेन्स्की पक्का साम्यवादी था और प्रजातंत्रको छोड़कर कभी राजतंत्रका पक्षपाती नहीं था तथापि उस समय वह राजतंत्रके लिये ही उद्योग करने लग गया था। इसका कारण कदाचित् यही था कि एक तो वह डूमावालोंके फेरमें पड़ गया और दूसरे वह यह भी समझता था कि सोवीट शासनकी प्रधानता होते ही सारे देशमें अराजकता फैल जायगी।

इसके उपरान्त ड्रूमाने अपने कुछ प्रतिनिधियोंको जारके पास उसे समझाने बुझाने और राजत्यागकी प्रार्थना करनेके लिये भेजा। उन प्रतिनिधियोंने जारको अच्छी तरह समझा दिया कि इस समयकी स्थिति बहुत विकट है। यदि इस समय पेट्रोग्रेडमें शान्ति स्थापित करनेके लिये सेनाएँ भेजी जायँगी तो वे भी विद्रोहियोंमें सम्मिलित हो जायँगी। जारकी समझमें भी ये सब बातें अच्छी तरह आ गईं। उसने बहुत ही थोड़े समयमें राजत्याग करना निश्चित कर लिया और १५ मार्चको तीसरे पहर तीन बजे राजत्यागपत्रपर हस्ताक्षर भी कर दिए। उसने यह भी कह दिया कि मैं अपने पुत्रको नहीं छोड़ सकता, तुम लोग मेरे भाईको राजसिंहासनपर बैठा लो। परन्तु जब सोवीटको मालूम हुआ कि राज्याधिकार जारके लड़केको नहीं बल्कि उसके भाईको मिलनेवाला है तब उसने राजतंत्रको स्वीकृत करनेसे इन्कार कर दिया। जारका भाई ग्रैण्ड डयूक मिकाइल उस समय पेट्रोग्रेटमें ही था। उसीके महलमें राड्जियान्को तथा छः दूसरे राजमंत्री भावी कर्त्तव्य निश्चित करनेके लिये एकत्र हुए। सोवीटका कहना था कि ग्रैण्ड डयूक मिकाइल राज्याधिकार अपने हाथमें लेनेसे इन्कार कर दे और प्रत्यक्ष सार्वजनिक मतके आधारपर गवर्नमेण्टका भावी स्वरूप निश्चित किया जाय। सात आदमियोंमेंसे तीनका तो यह मत था कि ड्रूमा और ग्रैण्ड डयूक मिलकर एक हो जायँ और ग्रैण्डडयूक सिंहासनपर बैठें, परन्तु चार आदमियोंकी सम्मति थी कि सोवीटकी बात मान ली जाय। केरेन्स्की भी इसी अन्तिम पक्षमें था। इसपर ग्रैण्डडयूकने निश्चित कर लिया कि भावी शासनकी व्यवस्था करनेके लिये जो सभा बने वह यदि मुझे राजा चुने तो राज्याधिकार अपने हाथमें ले सकता हूँ। ग्रैण्ड डयूकका यह निश्चय बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण था,

क्योंकि यदि वह सोवीटकी इच्छाके विरुद्ध सम्राट् बन बैठता तो बहुत सम्भव था कि वह कैद कर लिया जाता। सोवीटकी शक्ति उस समय बहुत बढ़ी चढ़ी थी।

जिस दिनसे जारने राजत्याग किया उस दिनसे पेट्रोग्रेडके एक राजप्रसादमें नित्य बहुतसे सैनिक एकत्र हुआ करते थे और डूमा तथा सोवाइटके लोगोंके व्याख्यान सुना करते थे। सोवीटवाले तो व्याख्यानोंमें प्रजा और कृपकोंकी पूरी स्वतंत्रताकी बातें कहा ही करते थे; परन्तु डूमावाले भी इस प्रकारकी बातें करनेसे नहीं चूकते थे। अस्थायी सरकार तो डूमावालोंके हाथमें थी पर सैनिक शक्ति सोवीटवालोंके हाथमें थी। सोवीटमें दो प्रकारके साम्यवादी थे। एक तो वे जो बिना किसी प्रकारकी भीषण क्रान्ति किए युद्ध जारी रखना चाहते थे, और दूसरे वे जो युद्ध बन्द करके बिलकुल नए सिरेसे सामाजिक और राजनीतिक संगठन करना चाहते थे। इसी दलके लोग आगे चलकर 'बोल्शेविक' * कहलाए। लेनिन और टाट्स्की उसी दलमें थे। ये लोग कट्टर साम्यवादी थे और युद्धको केवल निरर्थक नहीं बल्कि देशके लिये बहुत ही हानिकारक समझते थे।

---

* बोल्शेविक दलकी सृष्टि वास्तवमें रूसी साम्यलोकमतवादी दलकी १९१३ वाली ब्रुसेल्स-लण्डन कान्फरेन्समें हुई थी। उस कान्फरेन्समें एक विषयपर मतभेद हो गया था। उस समय लेनिनके पक्षमें बहुमत था। इसीलिये उस दलने अपना नाम बोल्शेविक "Bolshevik" रक्खा था। रूसी भाषामें इस शब्दका अर्थ है—बहुमतवाला पक्ष या दल। इसके विरुद्ध जिस दलमें कम लोग थे वह दल 'मेन्शेविक' (Menshevik) कहलाया। यद्यपि इसके उपरान्त कई अवसरोंपर बहुमत बोल्शेविकोंके पक्षमें नहीं था तथापि उनका दल पहलेकी तरह बराबर बोल्शेविक ही कहलाता रहा। आरम्भसे ही यह दल

जैसा कि ऐसे अवसरोंपर प्रायः हुआ करता है, सैनिकोंने अपने पक्षका बल बढ़ानेके लिये कुछ अत्याचार और उपद्रव भी किए थे। परन्तु जितनी भीषण क्रान्ति हुई थी उसे देखते हुए नई शासन-सत्ताके विरोधी भी यह बात मानते हैं कि रक्तपात अपेक्षाकृत बहुत ही कम हुआ था। उन दिनों नगरके कल-कारखानोंमें कुछ भी काम न होता था और मजदूर तथा सैनिक जलूस निकालते अनेक प्रकारके आनन्द मंगल करते थे। सोवीटने एक घोषणापत्र निकालकर सैनिकोंको उपद्रव करनेसे मना किया था कि इस समय तुम लोगोंको ऐसा काम करना चाहिए जिसमें क्रान्ति और उसके उद्देश्योंकी सिद्धिमें बाधा न पड़े। सेनाओंको अपने इच्छानुसार अपने अफसर चुननेका अधिकार मिल गया, पुराने सैनिक अधिकारियोंको यह अधिकार नहीं रह गया था कि किसीको कुछ दण्ड दे सके, और उनके बदले दण्ड देनेका अधिकार ऐसी कमेटियोंको दे दिया गया था जो स्वयं सैनिकोंकी ही चुनी हुई होती थीं। धीरे धीरे बिना किसी प्रकारके रक्तपात अथवा उपद्रवके मास्को तथा दूसरे अनेक बड़े बड़े नगरोंमें भी नई शासनसत्ता स्वीकृत कर ली गई। इसका मुख्य कारण यह था कि रूसकी प्रजा पहलेसे ही पुरानी राजसत्ताके कुप्रबन्धसे बहुत असन्तुष्ट थी। गाँवों और देहातोंके कृषकोंपर पहले तो इस राज्यक्रान्तिका कोई विशेष प्रभाव न पड़ा था क्योंकि उनके पास खाद्य पदार्थ यथेष्ट थे; और इसके अतिरिक्त उन्हें किसी दूसरी बातकी कोई चिन्ता नहीं थी। परन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि आगे चलकर जमीनपर हम लोगोंका अधिकार हो जायगा तब वे नई शासनव्यवस्थाके पक्षमें हो गए। इस सम्बन्धमें स्मरण रखने योग्य मुख्य बात यह है कि उस समय गाँवों आदिमें केवल स्त्रियाँ, बालक और वृद्ध

ही रह गए थे और वयस्क पुरुष सेनामें चले गए थे; और इस सम्बन्धमें मुख्य निर्णय उन्हीं वयस्क पुरुषोंका था। जब शेष लोगोंने देखा कि स्वयं सेना ही इस नई शासनव्यवस्थाके पक्षमें है तब उनके लिये उसका विरोध करनेका कोई कारण न रह गया।

जो हो, इस राज्यक्रान्तिका रूसके अपढ़ सैनिकोंपर बुरा प्रभाव पड़ा था—उनमें व्यवस्था न रह गई थी और आज्ञापालन तथा मर्यादाका भाव निकल गया था। जारने राजत्याग करते समयका ग्रैण्ड ड्यूक निकोलसको सर्वप्रधान सेनापति बनाया था। यदि निकोलसको सेनापर पूरा अधिकार होता तो उसमें अव्यवस्था न होने पाती; परन्तु शीघ्र ही सोवीट सरकारकी कार्रवाइयोंके कारण (२५ मार्च) उसे अपना पद त्यागना पड़ा और प्रधान सेनापतित्व जनरल एलेगजीफको मिला। तत्कालीन युद्धसचिव गचकाफने भी सेनाको व्यवस्थित रखनेका वहुत उद्योग किया था। परन्तु उसके हाथमें विलकुल अधिकार ही न था। जब नई शासनसत्ता पूर्णरूपसे स्थापित हो गई तव सब लोग इच्छा अथवा अनिच्छापूर्वक उसकी आज्ञा माननेके लिये बाध्य हो गए! समाचारपत्रोंमें इस परिवर्तनपर बहुत सन्तोष और आनन्द प्रकट होने लगा और पुरानी अनियंत्रित शासनसत्ताके सम्बन्धमें निन्दात्मक लेख निकलने लगे।

रूसकी तत्कालीन अस्थायी सरकार यद्यपि जोरोंसे लड़ाई जारी रखना चाहती थी तथापि उसका कुछ वश न चलता था। आरम्भमें सोवीट भी युद्ध जारी रखनेके पक्षमें ही थी परन्तु उसने साम्यके जिन सिद्धान्तोंकी घोषणा की उनके कारण सर्वसाधारणमें समताका भाव बढ़ गया था और यह भाव उस समय देशके लिये हानिकारक हुआ था। जब खेतोंके जोतने बोनेका समय आया तब बहुतसे सैनिक अपनी

अपनी पलटनोंको छोड़कर घरकी तरफ चलते बने जिसके कारण देशका सैनिक बल घट चला। सेनाके अतिरिक्त धीरे धीरे कारखानों आदिमें भी अव्यवस्था फैलने लगी और मजदूर बहुत ज्यादा मजदूरी माँगने लगे जिसके कारण बहुतसे कारखाने बन्द हो गए। तब सरकारने कारखानोंको अपने अधिकारमें लेना और नोट छापकर मजदूरोंको अधिक मजदूरी देना आरम्भ किया। नोटोंके प्रचारके कारण चीजोंका भाव बहुत बढ़ गया और सैनिकों, कृषकों तथा सर्वसाधारणके हाथमें कागजी धन भी बहुत आ गया। इन सब कारणोंसे देशमें कुछ समयके लिये अराजकता फैल गई जिससे दुखी होकर अस्थायी सरकारके राजमंत्री एक एक करके अपना पद छोड़ने लगे। १८ मईको नई सम्मिश्र (Coalition Government) की स्थापना हुई जिसमें सोवीटके सदस्य भी सम्मिलित किए गए। सोवीटवालोंको केरेन्स्कीने इस सरकारमें इसलिये सम्मिलित किया था कि वे भी इसके पक्षमें हो जाँय। परन्तु इससे भी कोई लाभ न हुआ, क्योंकि नई सरकार भी कोई वास्तविक अधिकार प्राप्त न कर सकी। कृषक लोग जमीनोंपर अपना अधिकार जमाने लगे, क्योंकि वे सुन चुके थे कि नए साम्यवादी शासनमें जमीनपर कृषकोंका ही पूरा पूरा अधिकार रहेगा। इस काममें उन कृषकोंको कृषिविभागके नए मंत्री चरनाफसे विशेष सहायता और उत्तेजना मिली थी। चरनाफ उस दलका साम्यवादी था जो जमींदारोंसे बिना कोई मुआवजा दिए जमीन छीन लेना चाहता था।

तत्कालीन युद्ध-सचिव केरेन्स्की यद्यपि साम्यवादी था तथापि रूसके प्रायः सभी दलोंके लोग समझते थे कि देशकी दशा सुधारनेमें वही सबसे अधिक समर्थ है। उसने टालस्टायके इस सिद्धान्तका

अवलम्बन किया कि किसी अनुचित कर्मका कभी विरोध नहीं करना चाहिए। जब वह न्यायविभागका मंत्री हुआ तब उसने प्राणदण्ड बिलकुल उठा दिया। वह युद्ध जारी रखना चाहता था इसलिये रणक्षेत्रोंमें घूम घूमकर वह सैनिकोंको लड़नेके लिये उत्तेजित करने लगा। उसके व्याख्यान बहुत ही ओजस्वी और प्रभावशाली होते थे जिनके कारण सैनिकोंपर अच्छा प्रभाव पड़ता था। इस बीचमें कृष्णसागरबेड़ेमें जो एडमिरल कोलचककी अधीनतामें था, विद्रोह मचा। उस विद्रोहको शान्त करनेके लिये १ जूनको केरेन्स्की वहाँ पहुँचा। वहाँ वह पूरी पूरी शान्ति स्थापित करने न पाया था कि इतनेमें क्रान्स्टैट नामक स्थानमें एक नया उपद्रव खड़ा हुआ। वहाँकी स्थानिक सोवीट सभाने अस्थायी सरकार अथवा प्रधान सोवीट सभाकी अधीनतामें रहने और उसकी आज्ञाएँ माननेसे इन्कार कर दिया। इस उपद्रवका आरम्भ लेनिनने किया था। लेनिनका मत था कि यदि अब भी सैनिक लोग युद्ध करनेके लिये उत्तेजित किए जायँगे तो राज्यक्रान्तिका कुछ भी उद्देश्य सिद्ध न होगा। अस्थायी सरकार इस नए आन्दोलनको दबानेमें समर्थ न थी, अतः क्रान्स्टैटमें, लेनिनके नेतृत्वमें बोल्शेविक विचारोंकी ओर लोगोंकी प्रवृत्ति बढ़ने लगी। जनरल एलेग्जीफ और एडमिरल कोलचकने इस्तीफा दे दिया। उन दिनों दक्षिणपश्चिमी रणक्षेत्रका सेनापति कार्निलाफ था। उसने भी सेनाको व्यवस्थित रखकर लड़ानेके लिये अनेक उपाय किए थे जिनमें उसे कुछ सफलता भी हुई थी। उसी बीचमें गेलीशियामें पहले तो रूसियोंको कुछ विजय हुई थी पर पीछे जब आस्ट्रियनोंकी सहायताके लिये जर्मन आ पहुँचे तब रूसियोंकी बड़ी भारी हार हुई और प्रायः सारा गेलीशिया प्रान्त उनके हाथोंसे निकल गया।

उधर सोवीटमें मतभेद हो चला था और उसके बोल्शेविक सदस्योंने १६ जुलाईको पेट्रोग्रेडमें अस्थायी सरकारको तोड़ देनेका प्रयत्न किया था। परन्तु उस समय बोल्शेविकोंको सफलता न हुई। केरेन्सकीने सेनाकी सहायतासे बोल्शेविकोंको परास्त कर दिया और उसके नेता लेनिनको वहाँसे क्रान्स्टैट भागना पड़ा। २२ जुलाईको केरेन्स्की प्रधान मंत्री बनाया गया। प्रधान मंत्री बनते ही केरेन्स्कीने जनरल ब्रूसीलाफके स्थानपर कार्निलाफको सर्वप्रधान सेनापति बनाया। अब सैनिकोंको फिर प्राणदण्ड देनेकी आज्ञा मिल गई, परन्तु इससे भी कोई विशेष लाभ न हुआ। अस्थायी सरकार और सोवीटमें बराबर झगड़ा चल रहा था इसलिये ७ अगस्तको फिरसे एक नया मंत्रिमंडल संगठित हुआ।

उस समय केरेन्स्कीने निश्चित किया कि मास्को नगरमें एक सभा हो जिसमें समस्त दलों और वर्गोंके प्रतिनिधि सम्मिलित हों। केरेन्स्कीका मुख्य उद्देश्य यह था कि सेनामें व्यवस्था भी बनी रहे जिससे युद्ध बराबर होता रहे, और मेरे हाथमें शक्ति भी बनी रहे जिससे आगे चलकर रूसमें साम्यवादके सिद्धान्तोंपर शासनसंस्था स्थापित हो सके। वह शत्रुओंसे रूसकी रक्षा भी करना चाहता था और अपने देशवासियोंको पूर्ण स्वतंत्रता भी देना चाहता था। इन्हीं सब बातोंके कारण रूसमें उन दिनों उसकी धाक बँधी हुई थी। २५ अगस्तको केरेन्स्कीने मास्को नगरके क्रेम्लिन राजप्रासादमें प्रसिद्ध मास्को कान्फरेन्सका अधिवेशन आरम्भ किया। अपने भाषणमें उसने कहा कि वर्त्तमान राज्यक्रान्तिके विरुद्ध यदि कोई आन्दोलन होगा तो उसे हर तरहसे दबानेका प्रयत्न किया जायगा; हाँ भविष्यमें क्या करना चाहिए इसके विषयमें आप सब लोग केवल अपने अपने विचार प्रकट

कर सकते हैं, क्योंकि यह कान्फरेन्स किसी प्रकारका निर्णय करनेके लिये नहीं हुई है। यद्यपि केरेन्स्कीने पहलेसे ही सबको मना कर दिया था तथापि जनरल कार्निलाफ और जनरल एलेगूजीफने रणक्षेत्रमें लड़नेवाली रूसी सेनाओंका सारा कच्चा चिट्ठा कान्फरेन्सके सामने पेश कर दिया और वतला दिया कि सैनिकोंकी इस समय कैसी दुर्दशा है और उसमें कितनी अव्यवस्था फैली हुई है। उस समय केरेन्स्कीने उक्त दोनों जनरलोंके साथ मिलकर सेनाकी अव्यवस्था दूर करने तथा सोवीटकी शक्ति नष्ट करनेका वचन दिया। परन्तु पीछे उसने अपने उस वचनकी पूर्ति नहीं की। जब ३ सितम्बरको जर्मनोंने रीगा वन्दर ले लिया तव कार्निलाफने समझ लिया कि अब केरेन्स्कीसे किसी प्रकारकी आशा रखना व्यर्थ है। अतः ८ सितम्बरको उसने केरेन्स्कीको कहला भेजा कि अब आप अपना सारा अधिकार मुझे दे दें और मैं जो नया मंत्रिमंडल संगठित करना चाहता हूँ उसमें आप न्यायविभागके मंत्रीका पद ग्रहण करें। केरेन्स्कीने कार्निलाफके दूतको गिरफ्तार कर लिया और कार्निलाफके दवानेके लिये स्थानिक सोवीटसे सहायता माँगी। इसपर कार्निलाफ अस्थायी सरकारका विरोधी हो गया और उसने कुछ सेनाएँ एकत्र करके उन्हें पेट्रोग्रेडपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी। इस सेनाका नायक कजाक जनरल क्राइमाफ बनाया गया। इसपर केरेन्स्कीने एक घोषणापत्र निकालकर सारी रूसी प्रजाको यह वतला दिया कि कार्निलाफ हमारी अस्थायी सरकारका विरोधी और शत्रु है। उस समय सैनिक अफसर तो कार्निलाफके पक्षमें हो गए परन्तु सैनिकोंने केरेन्स्कीका पक्ष लिया। जब कार्निलाफके भेजे हुए सैनिक पेट्रोग्रेड पहुँचे तब उन्होंने भी केरेन्स्की और सोवीटके भेजे हुए सैनिकोंके साथ से अरुचि दिखलाई।

इसपर विवश होकर कज्जाक जनरल क्राइमाफने भी अस्थायी सरकारके हाथ आत्मसमर्पण कर देना निश्चित किया। कुछ लोगोंका मत है कि पेट्रोग्रेड पहुँचते ही क्राइमाफने आत्महत्या कर ली और कुछ लोग कहते हैं कि सैनिकोंने उसे मार डाला। जो हो, उसके मर जानेसे सोवीट सरकारका विरोधी दल बहुत निर्बल हो गया।

केरेन्स्कीकी इस कार्रवाईसे रूसका राज्यधिकार अस्थायी सरकारके हाथसे निकलकर पूर्ण रूपसे सोवीटके हाथमें चला गया। १५ सितम्बर १९१७ को केरेन्स्कीने घोषणा कर दी कि रूसमें अब प्रजातंत्र राज्य स्थापित हो गया है। पुराना मंत्रिमंडल तोड़ दिया गया और उसके बदलेमें पाँच नए मंत्रियोंकी एक काउन्सिल बनाई गई जिसके हाथमें समस्त अधिकार दे दिए गए। उस काउन्सिलमें केरेन्स्कीने पराराष्ट्रविभागके मंत्रीका पद ग्रहण किया था। कार्निलाफवाले आन्दोलनमें जो सैनिक अधिकारी सम्मिलित हुए थे उन सबको केरेन्स्कीने बरखास्त कर दिया और कार्निलाफ तथा उसके एक साथीको गिरिफ्तार करके उसपर मुकदमा चलाया और अन्तमें उन दोनोंको कैद कर लिया। कार्निलाफको डोन प्रान्तके कज्जाकोंसे भी बहुत सहायता मिली थी। जब कार्निलाफ कैद हो गया तब डोन प्रान्तके कज्जाक युद्धक्षेत्रको छोड़कर अपने अपने घर जा बैठे और उन्होंने जनरल कैलेडीनको अपना सरदार और नेता बना लिया। केरेन्स्की तथा सोवीटने उन लोगोंसे कहा कि तुम कैलेडीनको हमारे सपुर्द कर दो जिसमें हम उसपर कार्निलाफकी सहायताका अभियोग चलावें, परन्तु कज्जाकोंने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया।

जिस समय जारने राजत्याग किया था उस समय पहले वह एक राजमहलमें कैद करके रक्खा गया था। उस समय अस्थायी सरकार

चाहती थी कि राजपरिवारको रूस राज्यके बाहर कहीं भेज दिया जाय। जब सोवीटको अस्थायी सरकारका यह विचार मालूम हुआ तब उसने पेट्रोग्रेडसे तुरन्त जारके निवासस्थान पर एक सेना भेजी और उसे ताकीद कर दी कि जार अथवा राजपरिवारके लोग कहीं जाने न पावें। सोवीट चाहती थी कि जबतक इस बातका निर्णय न हो जाय कि जारकी कितनी सम्पत्तिपर उसका अधिकार रहने दिया जाय और कितनी सम्पत्तिपर राज्य अधिकार कर ले तबतक जार अथवा राजपरिवारके लोग रूससे बाहर न जाने पावें। अस्थायी सरकारको भी विवश होकर यह बात मान लेनी पड़ी थी परन्तु उसे राजपरिवारके लोगोंके जीवन आदिके सम्बन्धमें बड़ा सन्देह होने लगा था। अगस्त १९१७ में केरेन्स्कीने सोचा कि यदि जार यहीं रहेगा तो सम्भव है कि वर्तमान राज्यक्रान्तिके विरोधी उठ खड़े हों और फिरसे एकतंत्री शासन स्थापित करनेका उद्योग करें; इसलिये उसने उसे साइबेरिया प्रान्तके ठोवलस्क नामक स्थानमें भेज देना निश्चित किया। सोवीट यह भी चाहती थी कि जार तथा जारीनापर अभियोग चलाया जाय परन्तु अस्थायी सरकार बराबर इसका विरोध करती रही और अनेक कारणोंसे राजदम्पतिपर अभियोग न चल सका। केरेन्स्कीके उद्योगसे राजपरिवारके सब लोग तथा उनके पारिषद आदि ठोवलस्क भेज दिए गए और वे लोग वहींके गवर्नरके घरमें रहने लगे। वहाँ साइबेरियाके दूरके नगरोंसे बहुतसे किसान जारके दर्शनोंको आया करते थे और अनेक प्रकारसे उसके प्रति अपनी भक्तिका परिचय दिया करते थे, इस कारण बहुतसे लोगोंको यह भय होने लगा कि कहीं साइबेरियाके कृषक ही जारका पक्ष लेकर न उठ खड़े हों। जार भी नहीं चाहता था कि

व्यर्थ लोगोंको कुछ कहने सुननेका मौका मिले और अस्थायी सरकारके मार्गमें नई बाधाएँ उपस्थित हों इसलिये उसने चाहा कि मैं पासके एक मठमें, जो बहुत ही एकान्तमें है, जा रहूँ। उसकी यह इच्छा पूरी हो गई और वह उस मठमें जा रहा। कुछ दिनों बाद कुछ अराजक बोल्शेविकोंने वहाँ पहुँचकर जार, जरीना तथा राजकुमारों और राजकुमारियों आदिकी हत्या कर डाली। ये हत्याएँ कब, कैसे और किस स्थानपर हुई इसके सम्बन्धमें जितने मुँह उतनी बातें हैं, उसका बिलकुल ठीक पता अभीतक बहुत ही कम लोगोंको मालूम है। कहते हैं कि ये हत्याएँ बहुत ही निर्दयतापूर्वक की गई थीं। जो हो, इस राज्यक्रान्तिके यज्ञमें रूसी राजपरिवारकी बलि अवश्य पड़ गई।

सोवीटने २६ सितम्बरको पेट्रोग्रेडमें लोकमतवादियोंकी एक कानफरेन्स (Democratic Conference) करना निश्चित किया। उस समय सोवीटमें कुछ लोग ऐसे भी थे जो बोल्शेविकोंके विरोधी थे और जैसे हो, युद्ध जारी रखना चाहते थे। परन्तु लेनिनके नेतृत्वमें बोल्शेविकोंका

१ बोल्शेविकोंके नेताओंमें लेनिन ही सर्वप्रधान है। मास्कोमें बोल्शेविकोंकी जो प्रधान कार्याधिकारिणी सभा है, उसका वह सभापति है। वास्तवमें बोल्शेविक आन्दोलनकी जान लेनेन ही है। उसका जन्म १० अप्रैल १८७० को एक बहुत ही उच्च तथा प्रतिष्ठित कुलमें हुआ था। उसका पिता सिम्बर्स्क सरकारका मंत्री था। उसने कजनके विश्वविद्यालयमें शिक्षा पाई थी। परन्तु अपने साम्यवादी उग्र विचारोंके कारण वह कजन नगरसे निर्वासित कर दिया गया था। लेनिनके कुलके कई आदमी क्रान्तिवादी और क्रान्तिकारक हो गए हैं। इसी अपराधमें उसके एक भाईको १८८७ में रूसी सरकारने फाँसीका दण्ड दिया था। उसका वास्तविक नाम व्लैडेमिर इलिच उलियानाफ है। उसकी स्त्री भी एक बार देशसे राज्यद्वारा निर्वासित हो चुकी है। वह कार्ल मार्क्सका बहुत बड़ा भक्त है परन्तु उसके सिद्धान्तोंका निष्कर्ष वह स्वयं अपने मनमाने ढंगसे निकालता है। आर्थिक विषयोंपर उसने अनेक ग्रन्थ और लेख आदि लिखे हैं।

प्रभुत्व और प्रभाव बहुत बढ़ रहा था। लेनिनका मत था कि पुरा
ढंगकी उस सरकारका अन्त कर दिया जाय जिसमें धनिकवर्गक
ही प्रभुत्व और लाभ है, और युद्ध बन्द करके उसके स्थानपर ऐस
सरकार स्थापित की जाय जो दरिद्रवर्गका हितसाधन करे। केरेन्स्क
अवश्य ही लेनिनका विरोधी था परन्तु फिर भी उसे इतना साह
नहीं होता था कि क्रान्तिकारक लेनिनको गिरिफ्तार कर ले। २
सितम्बरको लोकमतवादी कानफरेन्समें जो व्याख्यान दिया था उसं
उसने बोल्शेविकोंको भी कुछ धमकी दी थी और कहा था कि यदि
बोल्शेविक लोग वर्त्तमान सरकारको अधिकारच्युत करने अथवा प्रति
क्रान्ति करनेका कोई प्रयत्न करेंगे तो सरकार अवश्य ही अच्छी तर
उनका दमन करेगी। उस समय सोवीटके उपसभापति साम्यवादी
स्कोबेलेफके प्रस्तावपर एक ऐसा नया मंत्रिमंडल संगठित होना नि
श्चित हुआ जिसमें कार्निलाफवाले विद्रोहमें सम्मिलित होनेवाले लोगों
को छोड़कर शेष सब दलोंके लोगोंको रक्खा जाय। केरेन्स्कीका यह
भी प्रस्ताव था कि जबतक राज्यके भावी संगठनका स्वरूप निश्चित
करनेवाली कोई सभा न हो तबतक काम चलानेके लिये एक अस्था
यी पार्लिमेण्ट बना दी जाय। यह प्रस्ताव भी स्वीकृत हो गया और
इसीके अनुसार कार्य होना निश्चित हुआ। परन्तु उस समयतक सर-
कारका बल बहुत घट गया था और सर्वसाधारण बोल्शेविकोंके पक्षमें

उसने 'राज्य और राज्यक्रान्ति' (The State and Revolution) नामकी एक छोटीसी पुस्तक लिखी है जिसमें उसने बोल्शेविज्मके सिद्धान्तोंका वर्णन करते हुए बतलाया है कि आदर्श साम्यवादी राज्य स्थापित करनेके लिये नियमानुमोदित रीतिसे आन्दोलन करना बिलकुल निरर्थक है। रूसमें इस समय उसका बड़ा आदर है और वर्त्तमान बोलशेविक रूसका वही कर्त्ता-धर्त्ता और विधाता है।—लेखक।

मेलते जा रहे थे। ८ अक्टूबरको नया मंत्रिमण्डल संगठित हुआ जिसमें तीन क्रान्तिकारक साम्यवादी, चार साम्यलोकमतवादी, तीन स्वतंत्र साम्यवादी, चार कैडेट प्रतिनिधि और दो निष्पक्ष मंत्री नियुक्त हुए।

१३ अक्टूबरको जर्मनोंने बाल्टिकमें आक्रमण किया और तीन ही चार दिनमें बाल्टिकके बेड़े तथा अनेक छोटे मोटे द्वीपोंपर अधिकार कर लिया। उस समय सोवीटके कुछ सदस्य अवश्य युद्धके पक्षमें थे, परन्तु अधिकांशका यही सिद्धान्त था कि केवल जर्मन साम्राज्यवादियोंके कारण ही जर्मन प्रजा हमारे साथ लड़ रही है, नहीं तो स्वयं जर्मन प्रजाका इसमें कोई दोष नहीं है। इस प्रकार सोवीटमें भी बोल्शेविज्मके भाव धीरे धीरे बढ़ रहे थे। २० अक्टूबरको सोवीटने घोषणा की कि यदि शत्रु चाहें तो हम उनके साथ सन्धि कर सकते हैं, परन्तु न तो हम उनको अपना कोई प्रान्त अथवा हरजाना देंगे और न उनसे कोई प्रान्त या हरजाना लेंगे। हम किसीसे युद्ध करना नहीं चाहते, परन्तु यदि हमपर कोई आक्रमण करेगा तो आत्मरक्षाके लिये हमें विवश होकर अवश्य लड़ना पड़ेगा। ६ नवम्बरको सोवीटने एक क्रान्तिकारक कमेटी संगठित की। इस कमेटीने सैनिकोंसे अपील की कि केरेन्स्की अथवा सैनिक अधिकारियोंकी आज्ञाओंका पालन न करो। पेट्रोग्रेडकी अनेक सेनाओंने बोल्शेविकोंकी इस आज्ञाका पालन भी किया। बस बोल्शेविकोंका जोर और भी बढ़ चला और उन्होंने सरकारी बंक, तारघर तथा दूसरी सरकारी इमारतों आदिपर अधिकार कर लिया। उधर अस्थायी पार्लिमेण्टमें केरेन्स्कीने बोल्शेविकों और उनकी कार्रवाइयोंका विरोध किया और उनका जोर रोकनेके अनेक प्रयत्न आरम्भ किए। परन्तु अबतक सेना तथा सर्वसाधारणमें बोल्शेविकोंके विचार बहुत अच्छी तरह फैल गए थे इसलिये

वर्षोंसे रूससे स्वतंत्र होना चाहता था और इस काममें उसे आस्ट्रिया तथा जर्मनीसे बराबर सहायता मिला करती थी। रूसमें यही प्रान्त सबसे अधिक उपजाऊ था और सारे रूसका अन्नभाण्डार गिना जाता था। इस प्रान्तने स्वतंत्र होकर रूमानियाकी सहायतासे बोल्शेविकोंके साथ लड़ना भी आरम्भ कर दिया था। दिसम्बर मासमें रूसके दो और प्रान्त स्वतंत्र हो गए। साइबेरिया और बेसेरेबियाने अपने अपने स्वतंत्र प्रजातंत्रकी घोषणा कर दी। १५ मार्च १९१८ को जर्मनीने रूसके कोरलैण्ड प्रान्तको भी स्वतंत्र कर दिया और उसे अपने संरक्षणमें ले लिया। उस समयतक लिथुआनिया प्रान्त भी स्वतंत्र हो चुका था और उसकी स्वतंत्रताको २३ मार्चको जर्मनीने भी स्वीकृत कर लिया। २२ अप्रैलको एस्थोनिया प्रान्तके निवासियोंने जर्मन सरकारसे प्रार्थना की कि हमें रूससे अलग करके जर्मन-साम्राज्यमें मिला लिया जाय। काकेशस प्रान्तकी प्रायः ४० जातियाँ सितम्बर १९१७ से ही स्वतंत्र होनेका प्रयत्न कर रही थीं और उन्होंने अपना एक प्रजातंत्र भी स्थापित कर लिया। इस प्रजातंत्रने भी २२ अप्रैलको अपनी स्वतंत्रताकी घोषणा कर दी। इनके अतिरिक्त डोन, वश्कीर, तुर्किस्तान, कजन, जार्जिया, टारिड और याकुश आदि प्रान्तोंमें भी छोटे छोटे स्वतंत्र प्रजातंत्र स्थापित हो गए थे। इस प्रकार विशाल रूससाम्राज्यके वहुतसे छोटे बड़े प्रान्त स्वतंत्र हो गए और बोल्शेविकोंके हाथमें प्रायः केवल दो तिहाई रूस ही रह गया। अब रूसमें घोर गृहयुद्ध आरम्भ हुआ, चारों ओर बोल्शेविकोंसे दूसरे पक्षवाले लड़ने लगे। रेलोंकी अव्यवस्थाके कारण अकालने भी भयंकर रूप धारण किया जिससे रूसी प्रजाकी दुर्दशा और भी बढ़ गई।

रूसकी इस दुर्दशासे दूसरे देशोंने भी लाभ उठाना चाहा। जर्मनीने यूक्रेनको अपने हाथमें करके उसे रूसके विरुद्ध उभाड़ा। इस

पर बोल्शेविकोंने यूक्रेनका अनाज नष्ट करना आरम्भ कर दिया। उधर फिनलैण्डमें रूसी सरकारने वहाँकी स्वतंत्र सत्ताकी रक्षा करनेवाले सैनिकोंके साथ भी युद्ध छेड़ दिया। साइबेरियामें पहलेसे ही आस्ट्रियाके जेचो-स्लव जातिके बहुतसे सैनिक कैद थे जो जर्मनी और आस्ट्रियाके विरोधी थे। इस गड़बड़ीमें वे भी स्वतंत्र हो गए और उन्होंने साइबेरियामें बोल्शेविकोंके विरुद्ध एक नई सत्ता खड़ी कर ली। लन्दनमें पहुँचा हुआ करेन्स्की भी मित्र राष्ट्रोंका जोर पाकर साइबेरियाकी इस नई सत्ताकी सहायता करने लग गया। उस समय तक जारकी हत्या नहीं हुई थी इसलिये बहुतसे कज्जाक भी उन स्लवोंमें मिल गए और जारको पुनः राजसिंहासनपर बैठानेका उद्योग करने लगे। सारे फिनलैण्ड प्रदेशपर जर्मनोंने अधिकार कर लिया था। कोरलैण्ड और पोलैण्डपर भी जर्मनीने अपना पूरा पूरा अधिकार जमा लिया और यूक्रेन तो पहलेसे ही उसके पक्षमें था। साईबेरिया प्रान्त और वहाँकी रेलें पहले ही जेचो-स्लवोंके हाथमें चली गई थीं जो मित्रराष्ट्रोंसे सहायता पाकर बोल्शेविकोंपर आक्रमण कर रहे थे। जुलाई १९१८ में मास्कोसे पूर्व ओर जेचो-स्लवोंका पक्ष बहुत प्रबल हो गया था। डोन नदीके किनारे कज्जाक लोग भी मास्कोपर आक्रमण करनेके लिये तैयार हो गए थे। उत्तरकी ओर आर्कजलके उपसागरमें अँगरेजों ओर फ्रान्सीसियोंकी सेनाएँ पहुँचकर मास्कोकी ओर बढ़ने लग गई थीं। इस प्रकार बोल्शेविक चारों ओरसे शत्रुओंसे घिर गए थे। उस समय विवश होकर लेनिनको जर्मनोंसे धन तथा जनकी सहायता लेनी पड़ी। जर्मनोंकी सहायतासे बोल्शेविकोंने अगस्त मासमें जेचो-स्लवोंको खूब परास्त किया। कज्जाकोंका नेता सेनापति क्रूसेलाफ भी कैद कर लिया गया। बोल्शेविक सत्ताके विरोधी अनेक

बड़े बड़े नेता या तो गोलीसे मार डाले गए और या कैद हो गए । इस प्रकार जर्मनीकी सहायतासे रूसमें फिर एक बार बोल्शेविकोंकी सत्ता अच्छी तरह स्थापित हो गई । अगस्तमें ही लेनिनने जर्मनीसे नई सन्धि करके उसे कुछ प्रदेश भी दे दिया और आर्चेंजलमें जर्मनीका पक्ष लेकर अँगरेजों तथा फ्रान्सीसियोंके साथ युद्ध करना स्वीकृत कर लिया । उस अवसरपर एक बार मास्कोमें किसीने लेनिनपर गोली भी चलाई थी परन्तु वह बच गया । लेनिनने समझा कि मुझपर यह आक्रमण अँगरेजों तथा फ्रान्सीसियोंके बहकानेसे ही हुआ है, इसलिये उसने मास्कोमें रहनेवाले अँगरेजों तथा फ्रान्सीसियोंके प्रतिनिधियोंको कैद कर लिया । उधर साइबेरियामें बोल्शेविकोंके नए विरोधियोंकी सहायता करनेके लिये जापानी, अमेरिकन और कनेडियन सेनाएँ भी धीरे धीरे आगे बढ़ने लगीं । अँगरेज और फ्रान्सीसी उस समय रूसपर चढ़ाई करनेके लिये अपनी अधिक सेना भेजनेके लिये तैयार नहीं थे, इसलिये उन्होंने स्वयं रूसियोंको ही बोल्शेविकोंके विरुद्ध उभाड़ना आरम्भ किया । दक्षिणकी ओर कृष्णसागरपर पहलेसे ही अँगरेजोंका अधिकार हो गया था । उनकी सहायतासे काकेशस प्रान्तमें सेनापति डेनिकिनने खड़े होकर बोल्शेविकोंका विरोध आरम्भ किया और सन् १९१९ के आरम्भमें उसने काकेशस प्रान्तसे बोल्शेविकोंको निकाल भी दिया । उस अवसरपर भारती सेनाओंने भी सेनापति डेनिकिनकी सहायता की थी । रूसके यूक्रेन प्रान्तको भी मित्रराष्ट्रोंने धीरे धीरे अपने पक्षमें कर लिया था और उस ओरसे भी वे बोल्शेविकोंको तंग करने लग गए थे । अँगरेजी और फ्रान्सीसी सेनाएँ कृष्णसागरकी ओरसे ओडेसा बन्दरपर उतर पड़ीं और बहुत सम्भव था कि यूक्रेनवालोंको ये सेनाएँ यथेष्ट सहायता देतीं परन्तु

उसी समय कई राजनीतिक कारणोंसे मित्रराष्ट्रोंपरसे यूक्रेनवालोंकी श्रद्धा उठ गई। यूक्रेनवाले लेम्बर्ग प्रान्त अपने अधिकारमें करना चाहते थे। परन्तु इससे पहले ही पोलैण्डने लैम्बर्ग पर अधिकार कर लिया था। उस समय मित्रराष्ट्र पोलैण्डके ही अधिक पक्षपाती और सहायक थे। यूक्रेनवालोंने लेम्बर्गपर आक्रमण करके उस नगरको घेर लिया। इन सब कारणोंसे बोल्शेविकोंको अच्छा मौका मिल गया और उन्होंने यूक्रेन प्रान्तपर अधिकार कर लिया। अब मित्रराष्ट्रोंकी चिन्ता और भी बढ़ गई और वे बोल्शेविकोंको रोकनेके लिये रूमानियाको प्रसन्न करके अपनी ओर मिला रखनेका प्रयत्न करने लगे। परन्तु इस प्रयत्नमें भी मित्रराष्ट्रोंको विशेष सफलता न हुई। उधर बोल्शेविकोंने ओडेसा और सेबास्टेपुलसे भी मित्रराष्ट्रोंकी सेनाओंको परास्त करके पीछे हटा दिया। परन्तु पूर्वकी ओर साइबेरियन रेलवेके मार्गसे आगे बढ़कर सेनापति कोल्चकने अपनी एक स्वतंत्र सरकार खड़ी कर ली थी और उस ओरसे बोल्शेविकोंके साथ लड़ना आरम्भ कर दिया था। पहले तो कोलचकने अच्छी विजय प्राप्त की परन्तु पीछे जर्मनोंकी सहायता पाकर लेनिनकी सेनाने कोल्चककी सेनाको परास्त करके बहुत दूरतक पीछे हटा दिया। इस समयतक बोल्शेविक सेना बराबर तीन ओरसे शत्रुओंसे घिरी हुई लड़ रही है। कभी बोल्शेविकोंके विरोधियोंकी जीत होती है और कभी बोल्शेविक विजय प्राप्त करते हैं। इधर हालमें जो समाचार आए हैं उनसे यही प्रतीत होता है कि बोल्शेविक लोग सहजमें नहीं दबाए जा सकते। कई बार पेट्रोग्रेड और मास्कोके पतनके समाचार आए परन्तु अन्तमें बोल्शेविक ही विजयी हुए। रूमानिया, हंगरी, पोलैण्ड, आस्ट्रिया, जर्मनी, बल्गेरिया, सर्बिया आदि सभी

देशोंमें कुछ न कुछ बोल्शेविक विचार फैल गए हैं । स्वयं फ्रान्स और इंग्लैण्डतककी प्रजा बोल्शेविकोंसे युद्ध करनेका विरोध करती है ।

यद्यपि सभी मित्रराष्ट्र बोल्शेविकोंके विरोधी हैं परन्तु इंग्लैण्डके अतिरिक्त और कोई उनसे लड़नेके लिये तैयार न हुआ । अमेरिकाने न तो रूसमें कभी कोई अपनी फौज ही भेजी और न युद्धसामग्री ही। इटलीकी सरकार सेना भेजनेके लिये तैयार थी परन्तु स्वयं सेना ही तैयार न हुई । फ्रान्सने जो सेना भेजी थी उसने ओडेसामें पहुँचकर गदर कर दिया जिसके कारण विवश होकर फ्रान्सको अपनी सेना वापस बुला लेनी पड़ी और फिर दोबारा सेना भेजनेकी उसकी हिम्मत ही न पड़ी । आर्चेंजेलसे इंग्लैडने अपनी सेनाएँ वापस बुला ली हैं, वहाँकी प्रजाने अपने देशकी सरकारको इस बातके लिये विवश किया है कि बोल्शेविकोंसे लड़नेवालोंको किसी प्रकारकी जरा भी सहायता न दी जाय । यहाँतक कि अभी हालमें इंग्लैण्डके स्वतंत्र श्रमजीवी दलकी अनेक ऐसी सभाएँ हुई हैं जिनमें प्रधान मंत्री लायड जार्जकी रूससम्बन्धी नीति पर असन्तोष प्रकट किया गया है और बोल्शेविकोंसे तुरन्त सन्धि करनेकी प्रार्थना की गई है । स्वयं इंग्लैण्डकी पार्लिमेण्टमें अनेक ऐसे सदस्य हैं जो बोल्शेविकोंको स्वतंत्रतापूर्वक अपने देशकी व्यवस्था करनेका अवसर देनेके पक्षमें हैं । साइबेरियामें कोल्चककी सेनाएँ अभी हालमें बुरी तरह परास्त हुई हैं । बोल्शेविक रूसकी सीमाओंपर जितनी छोटी मोटी रियासतें हैं वे सब बोल्शेविकोंके साथ युद्ध बन्द करनेकी चिन्तामें लगी हुई हैं । अभी हालमें पेट्रोग्रेडके समीप जेनरल यूडेनिचके साथ बोल्शेविकोंका जो घमासान युद्ध हुआ था उसमें यूडेनिचको हारकर

छे लौटना पड़ा। यही नहीं बल्कि उसकी सेना तीन रसे बोल्शेविकोंद्वारा घिर गई थी जिससे आशा होती कि जनरल युडेनिच मित्रराष्ट्रोंका साथ छोड़कर बोल्शेविकोंके थ सन्धि कर लेंगे। उस विकट अवसपर यूडेनिचने फिनलैण्डसे हायता माँगी थी परन्तु उन्हें कोरा जवाब मिला। फिनलैण्डने कहा कि बोल्शेविकोंसे लड़नेके लिये न तो हमारे पास धन है और न न। यहाँ यह भी बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि जिस कार डेनिकिन और यूडेनिचकी सहायताके लिये फ्रान्स और इंग्लैण्ड यार हैं उसी तरह बोल्शेविकोंकी सहायताके लिये जर्मनी भी तैयार । फ्रान्स और इंग्लैण्डकी तरह जर्मनीमें भी बहुत सी युद्धसामग्री ची हुई रक्खी है जो बराबर बोल्शेविकोंकी सहायताके लिये भेजी जा ही है। स्वयं रणक्षेत्रमें कई जर्मन सेनापति बोल्शेविक सेनाएँ लेकर नकी ओरसे लड़ रहे हैं। स्वयं अपने देशमें भी जर्मनी बोल्शेविक त्ता स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहा है। यही कारण था जब मित्रराष्ट्रोंने जर्मनीसे कहा कि हम सब राष्ट्र मिलकर रूसपर घेरा डालना चाहते हैं, तुम भी हमारा साथ दो, तब जर्मनीने कह दिया कि यह तुमसे नहीं हो सकता।

अब हम संक्षपमें पहले यह बतला देना चाहते हैं कि बोल्शेविक सरकारका संगठन कैसा है और तब यह बतलानेका प्रयत्न करेंगे कि बोल्शेविक सरकार इतनी बदनाम क्यों है और संसारके अधिकांश राष्ट्र क्यों उसके शत्रु हो रहे हैं।

बोल्शेविक सरकारका संगठन किसानों, मजूरों और सिपाहियोंकी नित्यनैमित्तिक आवश्यकताओंके विचारसे हुआ है। यह शासन-संगठन प्रजाकी सत्ताकी रक्षा करता है। देशके सर्वसाधारण प्रजाजनोंके

हाथमें रूसकी शासनसत्ता रहे यही बोल्शेविक शासन-संगठन सिद्धान्त है। 'लिबरेटर' पत्रमें प्रकाशित मि० जान रीडके लेखके अनुसार रूसका वर्तमान संगठन इस प्रकारका है कि रूसके प्रत्येक स्त्री पुरुषको १८ वर्षकी वयस होनेपर शासनप्रबन्धमें वोट देनेका अधिकार मिलता है। परन्तु सबसे बड़े आश्चर्यकी बात—ऐसी बात कि जिसका संसारमें किसीने स्वप्नमें भी अनुभव न किया होगा—यह है कि जो लोग अपने फायदेके लिये मजूरोंसे काम कराते हैं, अर्थात् कारखानोंके मालिक हैं, जो लोग बिना परिश्रम किये धनभोग करते हैं और जो लोग व्यापारी हैं उन्हें रूसके शासनप्रबन्धमें मत देनेका अधिकार नहीं है। इसका कारण यह मालूम होता है कि बोल्शेविक संसारसे अमीर गरीबका भेद ही उठा देना चाहते हैं और धनकी प्रतिष्ठा कम करके धनके असम वितरणकी अवस्थाको बदल देना चाहते हैं। मालूम होता है, बोल्शेविकोंकी दृष्टिमें धन सभ्यताका माप नहीं है। यह बड़ी विचित्र बात है कि विषयसुखके साधनोंका ही विस्तार करनेको सभ्यता माननेवाले पाश्चात्य संसारमें एक देश ऐसा भी है जहाँ धनीकी कोई प्रतिष्ठा नहीं और गरीबोंकी सब कुछ है। संसारमें इस तरहकी अवस्था दीर्घ कालतक रह सकती है या नहीं यह स्वतंत्र प्रश्न है पर यह भी एक सोचनेकी बात है कि जिन देशोंमें धन ही शासनप्रबन्धका अधिकार दिलाता है, धन ही वोट देनेका अधिकार प्राप्त कराता है, क्या वहाँ गरीबोंपर यह अन्याय नहीं हो रहा है कि विषयसुख भी धनी लूटें, अधिकार भी उन्हींको हो, देशका शासन भी वे ही करें और गरीब किसी गिनतीमें न हों?

रूसमें देशशासनका अधिकार गरीबोंके ही हाथमें है। कारखानोंके मालिकोंके अतिरिक्त पहलेकी पुलिस और राजरक्षक फौजको भी वोट

देनेका अधिकार नहीं; गूंगे, बहरे और अपराधी भी इस अधिकारसे वंचित हैं ।

जिस प्रकार प्रत्येक देशका शासन एक मन्त्रिमण्डल द्वारा होता है उसी प्रकार रूसका शासन करनेवाला एक मन्त्रिमण्डल है जिसे कामिसार सभा कहते हैं । इस सभामें ११ कामिसार या मन्त्री होते हैं जो मध्यवर्ती शासकमण्डल द्वारा चुने जाते हैं । यह मध्यवर्ती शासकमण्डल समस्त रूसकी कांग्रेस द्वारा चुना जाता है और यह कांग्रेस सालमें दो बार होती है । इस कांग्रेसमें रूसके गाँव गाँवसे प्रतिनिधि आते हैं । हरएक गाँवमें किसानोंकी एक एक सभा है जिसे वोलोत सोवीट कहते हैं । गाँवकी यह वोलोत सोवीट जिलेकी सभामें, जिसे उयेजेद सोवीट कहते हैं एक प्रतिनिधि भेजती है । उयेजेद सोवीटोंसे प्रादेशिक सोवीटों अर्थात् ओब्लास्टमें प्रतिनिधि भेजे जाते हैं । यह तो किसानोंकी सभाओंकी वात हुई । इसी प्रकार मजूरोंकी सोवीटें होती हैं जो प्रादेशिक सोवीटोंमें अपने प्रतिनिधि अलग भेजती हैं । शहरोंके जिन हिस्सोंमें मजूर नहीं हैं वहाँ निर्वाचनका कोई स्थायी प्रवन्ध नहीं हैं, पर यदि वहाँके वावर्ची मेहतर आदि सरकारसे प्रार्थना करें तो निर्वाचनका प्रवन्ध कर दिया जाता है । प्रतिनिधियोंका जो निर्वाचन होता है वह राजकाज और दलविषयक सिद्धान्तपर होता है, अर्थात् लोग अपना जो प्रतिनिधि चुनते हैं सो उसका नाम या जाति देखकर नहीं चुनते, उसके सिद्धान्त और उससे हो सकनेवाले कार्यको देखकर उसे चुनते हैं । इस प्रकार छोटेसे छोटे गाँवसे प्रदेशतक चुनाव होता है और इस प्रकार रूसकी कांग्रेसके लिये छ छ महीने बाद प्रतिनिधि चुने जाते हैं । बीचमें यदि किसी समय कांग्रेस करने-की आवश्यकता हुई तो मध्यवर्ती शासकमंडल या दो तिहाई सोवीट

कर कर सकते हैं। कांग्रेसमें दो हजार प्रतिनिधि होते हैं और कांग्रेस राष्ट्रकी नीति निर्धारित करके उसके अनुसार काम चला- लिये मध्यवर्ती शासकमंडल नियुक्त करती है। ऊपर जिन कामि- की बात कही वे इसी शासकमंडलके भिन्न भिन्न विभागोंके होते हैं। सङ्घटनाके अनुसार ये मंत्री चाहे जब बदल दिये जा ते हैं और उनके स्थानपर दूसरे नियुक्त किये जा सकते हैं। यह कार उन्हें चुननेवाले मध्यवर्ती शासकमंडलको है जिसको यह धिकार कांग्रेससे मिला है। संघटनाके शब्द ये हैं—"मध्यवर्ती सकमंडल कामिसारोंका नियंत्रण, नियोजन और निष्कासन करता । कामिसार ही वास्तविक सरकार है। पर कामिसारोंके बनाये कानूनोंको जबतक मध्यवर्ती शासकमंडलकी मंजूरी न मिले तब- क वे कानून अमलमें नहीं लाये जायँगे।" इस प्रकार कामिसार सकमंडलके सामने उत्तरदायी हैं, शासकमंडल कांग्रेसके सामने तरदायी है और कांग्रेस गाँव गाँवके किसानों और स्थान स्थानके जूरोंकी सभा है। रूसकी जनतामें सैकड़ा पीछे ८० से अधिक ये ग हैं। इसलिये रूसकी वर्तमान सरकार रूसकी सर्वसाधारण जनता है। हम समझते हैं कि इस जनतामान्य जनतारूप सरकारकी ापनाका कोई विरोध नहीं कर सकता। अब बात यह है कि सिद्धा- त अच्छा होनेपर भी प्रायः संसारकी यह रीति है कि सिद्धान्त ताक- र धर दिया जाता है और कार्यकर्ता लोगोंको दबाकर मनमानी कार्र- ाई किया करते हैं। बोल्शेविक सरकारके सिद्धान्तके बारेमें कोई ुछ नहीं कहता। जो कुछ कहा जाता है वह यही कि ये लोग ेशमें बड़ा अन्याय कर रहे हैं। परन्तु इस निन्दाके साथ उनकी तुति भी सुनी जाती है। इससे दोनों बातें साबित होती हैं कि

बोल्शेविक सरकार अच्छी भी है और बुरी भी । इसका यह मतलब है कि कुछ बातें इसकी अच्छी हैं और कुछ बुरी भी, या यह भी अर्थ हो सकता है कि कुछ लोगोंकी दृष्टिसे यह सरकार अच्छी है और कुछ लोगोकी दृष्टिमें बुरी । इसलिये दोनों पक्षोंकी बातें सुनकर बोल्शेविक सरकारके सम्बन्धमें निर्णय करना ठीक होगा ।

अब हम पहले यह बतलाना चाहते हैं कि बोल्शेविक सरकारके विरोधी और निन्दक उसके सम्बन्धमें क्या कहते हैं ।

अबतक बोल्शेविक सरकार और बोल्शेविक अत्याचारका जो कुछ निन्दात्मक वर्णन आया है उसका संक्षिप्त सार एक स्थानमें यदि देखना हो तो 'टाइम्स' के ओम्सके संवाददाताके लेखमें देख सकते हैं । उसी लेखके अनुसार रूसकी बड़ी ही भयङ्कर अवस्था है । बाजार हाट सब कुछ सरकार छीन रही है और किसानोंके खलिहान लूटे जा रहे हैं । जहाँ किसान कुछ रुकावट करते हैं वहाँ तो बेचारे बच जाते हैं, नहीं तो उनकी बड़ी दुर्दशा है । कुछ जिलोंमें यह सरकारी आज्ञा है कि किसी गाँवमें जाना हो तो कमसे कम १२ रेडगार्ड सिपाहियोंको एक साथ जाना चाहिए । इसका कारण यह है कि दो चार सिपाही जाएँ तो मारे जाएँ । रेलगाड़ियाँ सिवाय फौजी कामोंके और किसी काम नहीं आतीं, क्योंकि मजूर शराब छानकर मस्त रहते हैं, कुछ काम नहीं करते ।

वही संवाददाता मास्कोका हाल यों बतलाता है कि सिवाय सरकारी दुकानोंके सब दुकानें बन्द हैं और बिना टिकट दिखलाये बाजारसे कोई चीज नहीं मिल सकती । जो लोग बोल्शेविक नहीं हैं उनको टिकट नहीं मिल सकते । जो लोग बोल्शेविकोंसे अलग रहते

हैं उनपर कल्पनातीत अत्याचार होता है । मास्कोमें करीब करीब वैसा ही जाड़ा पड़ता है जैसा कि साइबेरियामें, पर मास्कोमें आग जलानेके लिये कोयला नहीं हैं और न लकड़ी ही है । कितने लोग भूखों मर रहे हैं इसका अनुमान करना असम्भव है, पर जो कोई रूससे आता है यही कहता हैं कि बोल्शेविकोंने समस्त शिक्षित जनसमुदायको नष्ट कर डलानेका दृढ़ निश्चय कर लिया है। मास्कोमें भाव इतने बढ़ गये हैं कि कहनेसे लोग झूठा समझेंगे। गिरजाघरोंके बारेमें यही संवाददाता कहता है कि मास्कोके गिरजाघर थियेटर हो गये हैं और सुप्रसिद्ध स्ट्रसनोईका मठ नाचघर हो गया है । गिरजाघरने बोल्शेविकोंको बहिष्कृत कर दिया है जिससे बोल्शेविक गिरजाघरोंका प्रभाव मिटा देना चाहते हैं।

लोग जबतक अपनी जात बचानेके लिये, जो सरकार कहे वह करनेके लिये तैयार नहीं होते तबतक उन्हें खाना कपड़ा नहीं दिया जाता । हर एक नगर फौजी छावनी है, हर जगह फौजी तालीम होती है । पुरानी फौजके अफसरोंको पकड़कर फौजमें काम करनेके लिये विवश करते हैं और उनके बालबच्चोंको पकड़कर उनकी सरकार-भक्तिका बीमा करा लेते हैं । यदि किसी अफसरके स्त्री या बालबच्चे नहीं हुए और उसपर सन्देह हुआ तो उसके मित्रोंको सूचना दे दी जाती है, कि देखना, यदि यह फौजको छोड़ भागा या इसने कर्त्तव्य पालन न किया तो तुम सब गोलीसे मार दिए जाओगे। फौजके अफसरोंको सब अधिकार हैं । असन्तुष्ट अफसरों और मनुष्योंको मार डालनेके लिये जगह जगहपर गुंडे और बदमाश रक्खे गए हैं । इन अत्याचारोंमें सबसे भारी अत्याचार वह है जिसकी सूचना आर्चेंजलमें बैठी हुई मित्रसेनाके एक सेनापति मेजर जनरल पूलके सरकारी

खरीतेके साथ विलायत पहुँची थी। उसके सम्बन्धमें उक्त संवाद-दाता लिखता है कि कुलीन स्त्रियोंको राष्ट्रकी सम्पत्ति मान लेनेका प्रयोग कई स्थानोंमें किया गया पर इससे बड़ी अशान्ति फैली और यह प्रयोग यशस्वी नहीं हुआ, पर इसमें सन्देह नहीं कि इन बोल्शेविकोंके कारण भले घरोंकी स्त्रियोंको बड़े बड़े अत्याचार सहने पड़ रहे हैं। उच्च श्रेणीके लोगोंकी बड़ी दुर्गति है, उन्हें कीमती जेवर यहूदियोंके हाथ सस्ते दामपर बेचकर जीवन-निर्वाह करना पड़ता है। जो बोल्शेविकोंका अधिकार नहीं मानता वह तुरन्त गोलीसे मार दिया जाता है। मास्कोमें चीनियोंकी एक बटैलियन इसी कामपर तैनात है। इतने आदमी मारे गये हैं कि अनुमान करना असम्भव है। पेटोग्रेडकी बसती पहले २० लाख थी अब ७ लाख रह गई है। सिपाहियों और मजदूरोंका जमाना है। कहते हैं सिपाहियोंका मासिक वेतन ३०० रूबल अर्थात् अपने यहाँके ४५०) रु० हैं। इसके अतिरिक्त कई तरहके भत्ते भी उन्हें मिलते हैं। पर कड़ाई भी इस कदर है कि यदि कोई सिपाही फौज छोड़ देगा तो वही नहीं बल्कि उसके सब घरवाले भी मार डाले जाते हैं। अभी हालमें डेली एक्सप्रेसमें एक सम्वाददाताने प्रकाशित किया था कि बोल्शेविक सैनिकोंको, जितने समयतक वे रणक्षेत्रमें रहकर युद्ध करते हैं प्रति घंटे ६ पाउण्ड पुरस्कार दिया जाता है और ट्रास्कीके अंगरक्षक अफसरोंको २५०० पाउण्ड मासिक वेतन मिलता है।

मि० जार्ज ए. बी. डेवरनामके एक और सज्जन हैं जिन्होंने वेस्ट मिनिस्टर गजेटमें एक बार बोल्शेविकोंकी निन्दा करते हुए लिखा था कि कुछ लोग बोल्शेविज्मको बहुत ही उच्च कोटिका और उन्नत साम्यवाद समझते हैं, परन्तु यह उनकी बड़ी भारी भूल है। साम्य-

वाद वास्तवमें विधायक है परन्तु इसके विपरीत बोल्शेविज्म सर्वांशमें विनाशक है। बोल्शेविक लोग केवल अराजकता फैलाते और रक्तपात करते हैं। इस काममें वे फ्रान्सीसी राज्यक्रान्तिके हेबर्ट दलके स्थानापन्न कहे जा सकते हैं। वे स्वयं अपने ही देशमें नहीं बल्कि अन्यान्य देशोंमें भी बहुत ही घातक विष फैला रहे हैं। इसके अतिरिक्त मि० डेवरने स्वयं इंग्लैण्डके कृषकों और मजदूरोंकी अवस्थाका वर्णन करते हुए यह भी बतलाया है कि बोल्शेविकोंकी कार्रवाइयोंके कारण उनमें अराजकता और राजद्रोहका भाव कहाँतक बढ़ गया है। कुछ सप्ताह हुए रूससे बहुतसे लोग भाग आए थे उनमें दो तीन अँगरेज स्त्रियाँ भी थीं, ये स्त्रियाँ गत अक्टूबरमें भारतमें पहुँची थीं। उनमेंसे एक स्त्रीका कथन है कि रूसकी प्रजा बोल्शेविक सरकारसे बहुत ही असन्तुष्ट है। साधारणतः बोल्शेविक सैनिक गलियोंमें सर्वसाधारणपर आक्रमण करते फिरते हैं और जहाँ तहाँ उन्हें गोलियोंसे मार गिराते हैं। जो कुछ उनके सामने आता है उसे वे लूट लेते हैं। उनके डरके मारे रातके समय सड़कोंपर प्रायः रोशनी तक नही होने पाती। लोग डरके मारे घरसे बाहर नहीं निकलते। जिस समय पहले पहल रूसमें बोल्शेविक सत्ता स्थापित हुई थी उस समय पेट्रोग्रेडके निवासी घरोंसे निकाल दिए गए थे और उनका सारा माल असबाव लूट लिया गया था। इसीलिये तमाम बाजार बन्द हो गए थे। न तो किसीके पास धन बच गया था और न खाने पहननेका कोई सामान। सैनिकोंको इस बातकी स्पष्ट आज्ञा मिल जाती थी कि तुम घर घर जाकर तलाशी लो और जो कुछ रुपया पैसा या खाद्य पदार्थ मिले वह सब कुछ उठा लाओ। ये सैनिक स्त्रियोंके साथ बहुत ही बुरा व्यवहार करते थे और कभी कभी उनके प्राणतक ले लेते थे। इन्हीं सब

कारणोंसे दुखी होकर या तो लोग शहर छोड़कर भाग जाते थे और या दल बाँधकर बोल्शेविक सैनिकोंके साथ लड़ मरते थे। पेट्रोग्रेड नगरको अच्छी तरह लूट चुकनेके उपरान्त बोल्शेविक सैनिकोंने आसपासके गाँवोंके कृपकोंको लूटना और उन्हें बेगारमें पकड़ना आरंभ किया था। अभी हालमें न्यूजीलैण्डका एक सार्जेन्ट रूसी युद्धक्षेत्रसे लौटा था जो बतलाता था कि समस्त रूसी प्रजा बोल्शेविक सत्तासे यहाँ तक घबरा गई है कि वह उससे पीछा छुड़ानेके लिये कोई उपाय उठा न रक्खेगी। उसके कथनानुसार पेट्रोग्रेड और मास्कोकी प्रजाके साथ तो बाल्शेविक लोग कुछ भी नहीं बोलते और न उससे किसी प्रकारका कर आदि ही लेते हैं परन्तु गाँवों और देहातोंके कृपकों आदिसे वे केवल बड़े बड़े कर ही नहीं लेते बल्कि उनसे जबरदस्ती बड़े बड़े ऋण लेते हैं और अनेक अवसरोंपर उनका सर्वस्व लूट लेनेमें भी आगा पीछा नहीं करते। जिस स्थानसे उन्हें सहायता लेनी होती है उस स्थानपर वे पहले अपना अत्याचार कुछ कम कर देते हैं। जो प्रदेश एक बार बोल्शेविकोंके हाथसे निकल जाता है वह फिर उनके हाथमें नहीं जाता और न जा सकता है। क्योंकि स्वयं वहाँकी अत्याचारपीड़ित प्रजा ही बोल्शेविकोंका विरोध करने लग जाती है। कहा जाता है कि बोल्शेविक लोग अपने विरोधियोंके साथ और भी अधिक अत्याचारपूर्ण व्यवहार करते हैं। एक लेखकके कथनानुसार मेरी इस्पिरीडोनाफ नामक एक स्त्रीने जो क्रान्तिकारक साम्यवादी दलकी थी एक बार बाल्शेविकोंके विरुद्ध षड्यंत्र रचा था। इसपर बोल्शेविक सैनिकोंने उसके सिरके बाल पकड़कर उसे जमीनपर घींचा था, उसके स्तन सिगरेटोंसे जलाए थे और बहुत कड़ी सरदीके समय उसे बिलकुल नंगा करके एक खुली गाड़ीमें बैठा दिया था और उस-

की रक्षाके लिये दो उजड्ड बदमस्त कज्जाक खड़े कर दिए थे। इसी प्रकारके सैकड़ों वर्णन समाचारपत्रोंमें अबतक छप चुके हैं जिनमें बोल्शेविकोंकी बहुत अधिक निन्दा की गई है। यहाँतक कि स्वयं इंग्लैण्डकी सरकारकी ओरसे Reports on Bolshevism नामकी एक सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है जो बोल्शेविकोंके अत्याचारों और अन्यायोंके वर्णनसे भरी पड़ी है।

बोल्शेविकोंपर केवल अनेक प्रकारके अमानुषी अत्याचार करनेका ही अभियोग नहीं लगाया जाता बल्कि यह भी कहा जाता है कि वे सारे संसारमें भीषण राज्यक्रान्ति करके बोल्शेविक सत्ता स्थापित करना चाहते हैं। कहा जाता है कि उन्होंने भारत और चीनतकमें राज्य-क्रांति करनेके लिये अपने प्रतिनिधि भेजे हैं; चाहे भारतवासी बोल्शेविज्मका नाम भी न जानते हों और भारतवासियोंके भावोंसे बोल्शेविक भाव कितने ही विपरीत क्यों न हों। यह भी कहा जाता है कि ताशकन्दमें बोल्शेविकोंका बड़ा भारी अड्डा भी है और वहाँ वे लोग हिन्दुस्तानी भाषा सीखने लगे हैं! वे लोग डाक्टर सन्याटसेनसे चीनमें भी सोवीट शासन स्थापित कराना चाहते हैं। यहाँतक कि अफ़गानिस्तानके अमीरतकको भी उन्हींने भारतवर्षके साथ लड़ा दिया था। यहाँ कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यकता न होगी कि भारतवर्षके कुछ थोड़ेसे विरोधी ही सरकारी अधिकारियोंको भड़काने और भारतवासियोंकी ओरसे असन्तुष्ट करनेके लिये भारतवासियों और बोल्शेविकोंका सम्बन्ध स्थापित करनेका प्रयत्न करते हैं। आगे चलकर हम यह बतलानेका प्रयत्न करेंगे कि बोल्शेविकोंकी इतनी ज्यादा बदनामी करनेमें उनके निन्दकोंका क्या उद्देश्य है। भारतके साथ बोल्शेविकोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेका उद्देश्य भी यदि उसीके अन्तर्गत, नहीं तो उसीके

ढंगका अवश्य है। लेकिन इस बातका विवेचन करनेसे पहले हम उस दूसरे पक्षकी भी थोड़ीसी बातें बतला देना चाहते हैं जो बोल्शेविकोंकी अच्छी बातोंपर प्रकाश डालता है। क्योंकि जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं बोल्शेविकोंकी कुछ बातें अच्छी भी हैं और कुछ बुरी भी।

जान रिकमान नामके एक सज्जन १९१७ में रूसमें थे। उन्होंने अपनी आँखों देखी बातें 'मैञ्चेस्टर गार्जियन'में लिखी हैं। तदनुसार रूसमें राज्यक्रान्ति होनेके पूर्व जो व्यापारसम्बन्धी सहकारी संस्थाएँ स्थापित हुई थीं वे अब बोल्शेविक सरकारमें मिल गई हैं। सहकारी संस्थाएँ सरकारी हो गई हैं और देशका सब व्यापार सरकारके हाथमें है। इससे सरकारके खजानेमें अबतक बहुत रुपया आया और जान रिकमैन कहते हैं कि इसमेंसे बहुत बड़ी रकम शिक्षाके काममें खर्च की जा रही है। हर तरहकी शिक्षाका प्रबन्ध हुआ है और हो रहा है। रातकी पाठशालाएँ स्थान स्थानपर खुली हैं। कृषिविद्यालयोंको बड़ी बड़ी रकमें दी गई हैं और स्थान स्थानपर बालकोंके लिये व्यायामशालाओंका भी प्रबन्ध हुआ है। बोल्शेविक सरकारकी यह इच्छा थी कि रूसके प्रत्येक ग्राममें एक एक पाठशाला स्थापित की जाय। परन्तु जान रिकमैन कहते हैं कि शिक्षकोंके अभावसे बोल्शेविकोंकी यह उच्चाकांक्षा पूर्ण न हो सकी और इसलिये उन्होंने पहले शिक्षक तैयार करनेके लिये ट्रेनिङ्ग कालेज खोले हैं। पहलेकी स्वेच्छाचारी शासनपद्धतिमें शिक्षकोंकी कोई कदर नहीं थी, उन्हें यथेष्ट वेतन नहीं मिलता था और इस तरह उनमें अपने कार्यके प्रति कोई उत्साह ही न रह गया था। अब वह उत्साह जाग्रत हुआ है। शिक्षक बननेका हौसला बढ़ता जा रहा है। इसके साथ ही अनेक कृषि और

शिल्पशालाएँ खुली हैं। पहलेके शासनमें स्कूलके साथ बच्चोंको फौजी तालीम दिलानेका कोई नाम भी नहीं लेता था, पर अब सर्वत्र बाय-स्काउट सेना तैयार हो रही है और मिल्टनका शिक्षाका जो आदर्श था कि शिक्षासे मनुष्य युद्धकला और शान्तिकालके हर तरहके कामको योग्यता और पुरुषार्थके साथ कर सके, उसी आदर्शपर रूसकी वर्तमान शिक्षापद्धतिका विकास होता हुआ देख पड़ रहा है।

हम ऊपर बोल्शेविक सरकारकी सङ्घटना (Constitution) का पूरा विवरण दे चुके हैं। उससे पाठक जान गये होंगे कि बोल्शेविके सरकारका आधार सारी प्रजाकी राय है। प्रत्येक गाँवमें एक एक सभा है, फिर जिले और प्रान्तकी भी एक एक सभा है। इन सभाओंको सोवींट कहते हैं। ग्रामके सोवीटके सभासद अपने प्रतिनिधि चुन कर जिलके सोवीटमें भेजते हैं। जिलेका शासन जिला-सोवीट द्वारा होता है। जिला-सोवीटोंके प्रतिनिधि प्रान्तिक सोवीटमें आते हैं और प्रान्तका शासन प्रान्तिक सोवीट द्वारा होता है। सब प्रान्तोंके सोवीट अपने प्रतिनिधि पेट्रोग्रेडकी कांग्रेसमें भेजते हैं। यही कांग्रेस पार्लिमेंट है और इससे जो प्रान्तिकमण्डल बनता है वही मुख्य मंत्रिशासकमण्डल है जिसे people commi-ssaries अर्थात् लोकसेवक मण्डल कहते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक स्थानका भीतरी शासन उसी स्थानके सोवींट द्वारा होता है। उस स्थानका शिक्षाप्रबन्ध, स्वच्छता, आरोग्यरक्षण, कर लगाना और वसूल करना आदि सब काम उसी स्थानके सोवींटके हाथमें हैं, अर्थात् एक एक सोवींट एक एक स्टेट या सरकार है। इसको इतना अधिक अधिकार है कि सोवीटोंके कहनेसे रेलका प्रबन्ध जैसे सार्वदेशिक कामको भी पेट्रोग्रेडकी कौन्सिलसे इन्हें सपुर्द कर दिया गया था। पर इसका परिणाम वहां

हुआ जो हो सकता है, अर्थात् प्रबन्ध सब बिगड़ गया और फिर मुल्य सरकारको सब प्रबन्ध अपने हाथमें लेना पड़ा। पर इसमें एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। वह यह है कि बोल्शेविक सरकार प्रजाका अधिकार मानती है। शासनारम्भमें भूलें हुआ ही करती हैं पर भूल करनेका भी स्वराज्यप्रार्थीको हक है, यह सिद्धान्त मान कर बोल्शेविक सरकारने रेलवेको भी कुछ कालके लिये स्थानिक प्रबन्धमें कर दिया।

भूमिके बँटवारेके सम्बन्धमें सरकार और किसानोंमें मतभेद है। सरकार चाहती है कि देशकी भूमि सरकारकी मानी जाय और सरकार द्वारा ही उसकी उपजशक्ति आदि बढ़ानेका प्रबन्ध हो। परन्तु किसान यह चाहते हैं कि प्रत्येक ग्रामकी भूमि उन ग्रामवासियोंकी ही समझी जाय और उस ग्रामका सोवीट केवल उसका प्रबन्ध करे। परन्तु इस मतभेदने अभी कोई उपद्रव नहीं खड़ा किया है। अनाजका ठीक ठीक बँटवारा देशमें करनेके लिये स्थान स्थानपर अनाज कमेटियाँ स्थापित की गई हैं। देशका सब अनाज सरकारने अपने कब्जेमें कर लिया है जिसमें ऐसा न हो कि कहीं तो यथेष्टसे भी अधिक अन्न हो और कहीं लोग भूखों मरे। देशमें जितने बंक हैं सब सरकारने अपने हाथमें कर लिए हैं। बोल्शेविकोंका यह कर्म कहाँतक न्यायसङ्गत है इसका निर्णय करना कठिन है। समतावादी सोशलिस्ट पक्ष अमीरोंकी जायदाद और धन लेकर उसके बदलेमें उन्हें कुछ दिलाना उचित समझता है पर बोल्शेविक सिद्धान्त इसके विपरीत है। वह सिद्धान्त यह है कि अमीरोंकी जायदाद छीन लेनी चाहिए पर उन्हें बदलेमें कुछ नहीं देना चाहिए। क्योंकि यह देशका धन है, किसी व्यक्तिका नहीं। इन दो सिद्धान्तोंमें न्याय्य और अन्याय्य कौन है,

इस विषयकी चर्चा नीतिशास्त्रका काम है। जो हो, रूसकी वर्तमान सरकार उन दुःखोंको दूर करनेका प्रयत्न कर रही है जो जारके समय उन्हें मुँह बन्द करके सहने पड़ते थे। रूसमे जारके समय पुलिसका जैसा भयङ्कर अत्याचार था और अदालतोंमें जैसा अन्धेर था उसमें रूसकी प्रजाका वही हाल हो रहा था जो कसाईखानेमें एक न बोलनेवाली गौका होता है। रूसकी प्रजाने स्वप्नमें भी ईमानदार पुलिस और न्यायी अदालत नहीं देखी थी। जबसे राज्यक्रान्ति हुई है तबसे पुलिसका विधान गाँववालोंके हाथमें आ गया है। गाँववाले जब चाहते हैं, अपनी रक्षाके लिये पुलिस निर्माण करते हैं, नहीं तो उसकी भी कोई जरूरत नहीं। अदालतके लिये फिर पञ्चायत-प्रथाका उद्धार हुआ है और गाँववाले अपने पञ्चोंको चुनकर अपने झगड़े निपटा लिया करते हैं। प्रायः पञ्च बड़े बूढ़े ही चुने जाते हैं जिनके बुद्धि और अनुभव विशेष रहा करता है।

जुआचोरी और शराबखोरी जारके समय जैसी थी अब उसका वह रूप नहीं। जारके समय यह अन्धेर था कि यदि कोई जुआरी या शराबी पकड़ा जाता तो पुलिसकी जेब गरम करनेसे ही वह छूट जाता था। फिर दूसरे बार पकड़े जानेतक वह मजेमें शराब पीये या बेचे, जो चाहे करे, कोई पूछता नहीं था। ऐसी कितनी ही बुराइयाँ थीं जो पुलिसको रुपया देकर मोल ली जा सकती थीं। पर कोई राजनीतिक अपराध करे, किसी प्रकारका राजनीतिक उद्योग करे जिससे किसी तरहका खटका प्रचलित राज्यपद्धतिको हो तो उसको अवश्य दण्ड मिलता था। राजनीतिके रास्ते न जाकर और कोई बुरा काम करे तो कोई हर्ज नहीं था। बोल्शेविक सरकारने इस अन्धेरको मिटा दिया है। अब ऐसे कुकर्मोंका अमोघ प्रतिकार किया जाता है।

उदाहरणार्थ, रूसमें अब शराब तैयार करना मना है। यदि कोई शराब तैयार करे तो उसको जेल या जुर्मानेकी सजा तो नहीं दी जाती पर उसकी भट्टी छीन ली जाती है और अनाज कमिटीने उसे जितना अनाज खरीदनेका परवाना दिया हो वह घटा दिया जाता है और उतना ही अनाज वह खरीद सकता है जिसके बिना उसके घरके लोग भूखों न मरें। अर्थात् अनाजका दुरुपयोग करके जो उससे शराब बनाता है उसको अनाज ही इतना कम दिया जाता है कि वह शराब बना ही न सके।

मार्च १९१९ में रूटरके एक तारसे मालूम हुआ था कि "अमेरिकन राजदूत फ्रान्सिस अभी रूससे अमेरिका लौट आए हैं। उन्होंने सिनेटकी अनुसन्धान-समितिके सामने कहा कि रूस सरकारकी ओरसे जो मि० राबिन यहाँ लौट आए हैं उन्हें बोल्शेविक सरकारने यह अधिकार दे रक्खा है कि ब्रेस्टलिस्टोस्ककी सन्धिके समान अधिकार अमेरिकाको देकर उसे अपने पक्षमें कर लें। राबिनने कमिटीसे कहा कि लेनिन और ट्राजकीपर जर्मनोंका कुछ भी प्रभाव नहीं है। बोल्शेविज्म केवल युगधर्म है; अमेरिकाको उसमें हस्तक्षेप न करना चाहिए क्योंकि रूस स्वयं बोल्शेविज्म चाहता है।"

बोल्शेविक सरकारकी संघटना और उसकी इस लेखमें दर्शित सदिच्छामूलक शासनकार्यप्रणाली, मि० राबिनका कथन आदि बातोंके अतिरिक्त विलायतमें भी बोल्शेविकोंके साथ सहानुभूति रखनेवाले एक जनसमुदायका अस्तित्व है जो इस बातका प्रमाण है कि बोल्शेविकोंकी बार बार जो निन्दा सुनाई देती है वह सब अंशोंमें सत्य नहीं है, उसमें मिथ्यात्वका भी बहुतसा अंश मिला हुआ है। जिन लेनिन और ट्राजकीके बारेमें पहले इतनी निन्दा हम सुन चुके

हैं, क्या वे वास्तवमें जर्मनदूत हैं? लेनिन और ट्राजकी बोल्शेविक सरकारके मुखिया हैं। क्यों इन्होंने जर्मनोंसे रुपया लेकर रूसके गले-पर छुरा चलाया? बोल्शेविक सरकारकी संघटनाके अनुसार बोल्शेविक कांग्रेसको यह अधिकार है कि वह जब चाहे और जिन्हें चाहे सरकारी कामसे हटा दे। कांग्रेसने लेनिन और ट्राजकीको अभीतक क्यों नहीं हटाया? हर छः महीने बाद मन्त्रिमण्डलका निर्वाचन होता है। इतनी छमाहियाँ बीत गईं फिर भी लेनिन और ट्राजकी यथाक्रम राष्ट्रपति और वैदेशिक सचिव बने हुए हैं। क्या इन्होंने देशकी आँखोंमें धूल झोंक दी है? पर रूसने जब उन्हें माना है, तब तो यही कहना चाहिए कि रूसको उनका आधिपत्य भाता है। यही नहीं, लेनिन और ट्राजकी जैसे दृढमस्तिष्क शासकोंके कारण ही रूसमें बोल्शेविक सिद्धान्तोंने जड़ पकड़ी और उसकी अवस्था पहलेसे बहुत अच्छी है। पुलिस और अदालतके वर्तमान प्रबन्धके बारेमें कहा जाता है कि ऐसा प्रबन्ध पहले कभी नहीं था। 'यंग स्टेट्समैन' पत्र कहता है कि रूसमें इस समय जैसी शासनसुव्यवस्था है वैसी पहले कभी नहीं थी। वर्तमान शासनप्रबन्धके बारेमें मैंचेस्टर गार्जियनका सम्वाददाता कहता है कि "Under Bolshevik rule order of *a kind superior to that ever experiened under the old* regime was maintained" अर्थात् जब वह संवाददाता रूसमें था उस समय वहाँ ऐसी सुव्यवस्था थी कि जारके समयकी व्यवस्था उसके सामने तुच्छ प्रतीत होती है। और विलायतके पत्रोंसे तो यहाँतक पता लगा है कि जर्मनीमें जो कैसरके राज्यका पतन हुआ, वह रूस सरकारकी मददसे ही हुआ और लेनिन और ट्राजकीके ही बलपर जर्मनीके सोशलिस्ट जर्मनीमें सोशलिस्ट सरकारकी

स्थापना कर सके। फिर भी रूसकी बोल्शेविक सरकारके सम्बन्धमें इतना तीव्र मतभेद है कि कुछ लोग क्या, प्रायः सभी बलशाली राष्ट्र उसका दमन चाहते हैं।

रूसी गोरखधन्धेके ग्रन्थमें 'बुलिट प्रकरण' एक महत्त्वका प्रकरण है जिससे यह पता लगता है कि रूसके बोल्शेविकोंके साथ रा० विलसन और मि० लायड जार्ज सन्धि करनेके लिये पहले तैयार थे पर पीछे फ्रान्सके मो० क्लेमेंशो और विलायतके लार्ड नार्थक्लिफ तथा उनके दलवालोंके दबावसे यह निश्चय किया गया कि बोल्शेविक सरकार क्रूर और नीच है इसलिये उसके साथ सन्धि करना उचित नहीं।

सन्धिपरिषदस्थ अमेरिकन प्रतिनिधि-मण्डलमें मि० विलियम बुलिट नामके एक सज्जन थे और पाठकोंको स्मरण होगा कि सन्धिपरिषद्के अमेरिकन प्रतिनिधिमण्डलसे कुछ महीने पहले इन्होंने यह कहकर इस्तीफा दे दिया था कि रा० विलसन जिन सिद्धान्तोंकी दुहाई देकर लड़ाईके मैदानमें उतरे और जिन सिद्धान्तोंके अनुसार शान्तिमूलक सन्धि करनेको प्रणबद्ध हुए थे उन सिद्धान्तोंकी हत्या होती हुई देखकर अब उनके साथ काम करनेकी इच्छा नहीं होती और इसलिये मैं अपने पदसे इस्तीफा देता हूँ। परन्तु उस समय यह नहीं मालूम हुआ था कि किस खास बातके कारण मि० विलियम बुलिट रा० विलसनसे नाराज होकर सन्धिपरिषदसे अलग हो रहे हैं। यद्यपि रा० विलसनके १४ सिद्धान्तोंकी हत्या होती हुई साधारणतः दिखाई दे रही थी; पर खास बात अब स्पष्ट रूपसे प्रकट हुई है और वह यही है कि रूसके सम्बन्धमें इन्होंने जिस नीतिका अवलम्बन किया उसे मि० बुलिटने न्यायके विरुद्ध समझा और इसीलिये अपने पदसे इस्तीफा दिया।

सामान्य रूपसे कथा इस प्रकार है कि सन्धिपरिषदका कार्य जब होने लगा तब परिषदके सूत्रधारोंने यह देखा कि हम लोग आपसमें सन्धि कर लेंगे और रूस बिना हमसे पूछे यदि मनमानी कारवाई करेगा तो हमारी सन्धिमें एक प्रकारका दोष रह जायगा और रूसने सन्धिको न मान अपने बलका प्रताप दिखलाया तो हमारा किया कराया सब चौपट हो जायगा। इसलिये इस बातका विचार हुआ कि रूसके बोल्शेविक राज्यसे भी सन्धि कर लेनी चाहिए। पाठकोंको प्रिङ्किपो कानफरेन्सकी बात स्मरण होगी जिसमें बोल्शेविक निमन्त्रित किये गये थे और उन्होंने आना भी स्वीकार किया था। यह प्रिङ्किपो कानफरेन्स उसी विचारका परिणाम था। पर यह कानफरेन्स नहीं हुई। इसी समय रा० विलसन और मि० लायडजार्जकी सम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि अपना कोई आदमी रूसमें भेजकर बोल्शेविक सरकारसे बातचीत की जाय। तदनुसार मि० लायडजार्जके प्राइवेट सेक्रेटरी मि० फिलिफ करने कुछ प्रस्ताव लिखकर दिये। ये प्रस्ताव और इन प्रस्तावोंपर लेनिनने जो प्रति प्रस्ताव भेजे दोनोंका सारांश इस प्रकार है—

(१) सोवीट सरकार रूसके बाहर किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करे।

(२) सोवीट सरकारके विरुद्ध उठे हुए लोगोंको छोड़ दे।

(१) सीमान्तरस्थ राज्योंको स्वभाग्यनिर्णयका पूर्ण और स्वतन्त्र अधिकार दे।

(४) रूस-साम्राज्यके भविष्यका रूसके सब दल मिलकर ही निर्णय करें।

(५) रूसपर जो ऋण हो उसे रूस-सरकार चुका दे।

मि० फिलिफ करने ये प्रस्ताव अपनी जिम्मेदारीपर प्राइवेट तौरपर लिखे पर साधारणतः आपसमें यह निश्चय हो गया होगा कि मि० बुलिट इन प्रस्तावोंको लेकर रूसमें जायँ और वहाँ बोल्शेविक सरकारसे वातचीत करें और यदि इन प्रस्तावोंको वह स्वीकार करे तो बाकायदा सन्धि हो। मि० लायडजार्जने मि० बुलिटकी सवारीके लिये एक क्रूजर जहाज दिलवाया और उस जहाजमें बैठकर मि० फिलिप करके प्रस्ताव साथ लेकर बोल्शेविक सरकारसे सन्धिकी बातचीत करनेके लिये मि० बुलिट इंग्लैण्डसे रवाना हुए।

वहाँ जाकर मि० बुलिटने सब प्रस्ताव लेनिनको दिखलाये और सन्धि करना स्वीकार किया। इतना काम करके मि० बुलिटने वहाँसे लौटकर लेनिनका वक्तव्य, सन्धिका रूसद्वारा स्वीकृतपत्र, जनरल स्मट्स, सर मारिस हानके और मि० लायडजार्जके हाथमें दिया। हेलसिंगफोर्ससे तारद्वारा इस सन्धिपत्रका पूरा विवरण उन्हें मालूम हो चुका था, इसलिये उन्होंने उसे नीचेसे ऊपर तक एकबार देखा और जनरल स्मट्सके हाथमें देकर कहा कि यह अत्यन्त महत्त्वका सन्धिपत्र है। इसपर मि०लायड जार्जने कहा—पर क्या करूँ, ब्रिटिश जनताको कौन मनावे? डेली मेलका एक अङ्क उनके हाथमें था। उसको दिखलाकर उन्होंने कहा कि ब्रिटिश समाचारपत्रोंका जबतक यह हाल है तब तक रूसके साथ व्यवहार करनेमें मैं अपनी समझसे क्या काम ले सकता हूँ। बोल्शेविकोंसे सन्धि होनेकी बात चारों ओर फैल गई पर इतनेमें न जाने क्या हुआ, ऊपर लिखी बातचीतके एक सप्ताहके बाद ही सीन एकदम बदल गया और मि०लायड जार्जने पार्लिमेंटमें कहा कि सन्धिकी बात सब झूठ है। ये सब बातें मि० बुलिटने अमेरिकन सिनेटसभाकी उस वैदेशिक सम्बन्धसमितिके सामने कही थीं जो उस समय सन्धिपरिषदके सन्धिपत्र

पर विचार कर रही थीं । मि० बुलिटकी इन बातोंमें जो कुछ झूठ सच हो उसकी जिम्मेदारी उन्हीं पर है या उनका इजहार विलायतके जिन समाचारपत्रोंने छापा है उनपर है । परन्तु इन सब बातोंका रहस्य क्या है, यह भी देखना चाहिए ।

मि० बुलिटने वैदेशिक सम्बन्धसमितिके सामने इसका रहस्य खोलते हुए यह कहा है कि मि० लायड जार्ज सन्धिके अनुकूल थे पर 'टाइम्स'के सम्पादक और मि० स्टीड और युद्धमंत्री मि० चर्चिलके द्वारा लार्ड नार्थक्लिफने कामन्स सभाके बहुसंख्यक कानसरवेटिवोंको उनके विरुद्ध उभारा और यदि मि० लायड जार्ज उनकी बातें न मान लेते तो वे एकदम पदच्युत कर दिये जाते । ये बातें जब अमेरिकन वैदेशिक सम्बन्धसमितिके सामने कही गईं तब अमेरिकन जनतापर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा और मि० लायड जार्ज तथा रा० विलसन तथा अमेरिकन स्टेटसेकेटरी मि० लैनसिंगकी कार्रवाइयोंका प्रतिवाद होने लगा । क्योंकि इस बुलिट मिशनमें मि० लायड जार्जके साथ रा० विलसन और मि० लैनसिंगका भी हाथ था । मि० लैनसिंगने मि० बुलिटकी इन बातोंका समर्थन या प्रतिवाद कुछ भी करनेसे इनकार किया । मि० विलसन भी चुप्पी साध गये । फ्रांसकी पार्लिमेंटमें जब यह प्रश्न उठा तब वहाँ मो० क्लेमेंशोने भी यही कहा कि मैं इस विषयमें कुछ नहीं जानता, न मि० लायडजार्जने मुझे कोई खबर ही दी । पर समाचारपत्रोंसे यही माळूम होता था कि मो० क्लेमेंशोको पूरी खबर थी । यही नहीं बल्कि वे इस प्रस्तावके विरुद्ध थे । वे बोल्शेविकोंसे सन्धि करना चाहते ही न थे परन्तु खुल्लमखुल्ला यह बात उन्होंने कभी कही नहीं । तथापि उनके सिद्धान्तोंसे फ्रांस परिचित था और रूसके प्रति उनकी नीति देखकर फ्रांसके बहुत से

लोग असन्तुष्ट भी थे और जहाँ तक हमारा अनुमान है बीचमें उनका हत्या करनेका जो प्रयत्न हुआ था उसका सम्बन्ध रूसके प्रति उनकी इसी नीतिसे है। जो हो, फ्रांस, इटाली और इंग्लैण्डकी वर्तमान सरकारोंने रूससे लड़ना ही उचित समझा पर इससे एक भले आदमीको मुँहके बल गिरानेकी चेष्टा करनेसे इन सरकारोंकी अवश्य ही बदनामी हुई और बोल्शेविक सन्धिपत्रकी सब बातें सर्वसाधारणके सामने आ गई हैं।

मि० बुलिटने यह सन्धिपत्र कमांडर केनवर्दीको दिखलाया था, फ्रांसकी पार्लिमेण्टमें मि० लांगेटने इनके सम्बन्धमें कहा कि I regard Mr. Bullit as one of the straightstandmost honest men that I have ever met. मि० बुल्टि जैसे सीधे और सच्चे आदमी मैंने तो बहुत ही कम देखे हैं। मि० बुलिटने इस प्रकार जो भण्डा फोड़ा था उसके समर्थनमें कर्नल शेरवुड केलीका इजहार भी आ गया और एक नया प्रकरण और उपस्थित हुआ जो इस प्रकार है—

उत्तरी रूसमें ब्रिटिशोंकी जो फौज है या थी उसमें कर्नल शेरवुड केली नामक अफसर भी थे। इन्होंने वहाँ रहते हुए ही विलायतमें अपने मित्रके पास एक चिट्ठी भेजी और उसमें उत्तरी रूससम्बन्धी ब्रिटिश युद्धनीतिकी निन्दा की। कर्नल शेरवुड कहते हैं कि, "मैं जानता था कि यह पत्र रास्तेमें सेन्सर द्वारा फाड़ा जायगा और मुझे कमांडर-इन-चीफके सामने सफाई देनी पड़ेगी। पर यह काम मैंने जान बूझकर किया, क्योंकि मैंने इसे अपने ईमान और शानके अनुकूल ही समझा।" कर्नल शेरवुड लार्ड राब्लिनसनके सामने लाये गये। लार्ड राब्लिनसनने उनसे कहा, "तुमने बड़ा भारी अपराध किया है पर तुम्हारा पहलेका रेकर्ड अच्छा है इसलिये तुम्हारी यही सजा है

कि तुम यहाँसे घर भेज दिए जाओ।" इसके साथ साथ कर्नलके दो बड़े अफसरोंने कर्नलपर कुछ दोषारोप करके एक पत्र रालिनसनके पास भेजा। कर्नलने उन्हें एक पत्र लिखा कि मेरे ऊपर क्या दोष लगाए गए हैं वे मुझे माळूम हों और मुझे उनका उत्तर देनेका मौका मिले। अफसरोंके साथ बातचीत होकर यह तै हुआ कि कर्नल अपनी चिट्ठी वापिस ले लें और उनके विरुद्ध जा रिपोर्ट है वह रद्द कर दी जाय। कर्नलने अपनी चिट्ठी वापस ले ली पर विलायत आकर उन्होंने सुना कि उनपर जो दोषारोपण किया गया है उससे वे मुक्त नहीं हैं। तात्पर्य रूससम्बन्धी ब्रिटिश नीतिकी निन्दा करनेके कारण स्पष्टवक्ता शेरवुडका वेतन, पेन्शन आदिका अधिकार जाता रहा, पर उससे वरमिंगहम आदि स्थानोंके मजूरोंने सोवीट रूसमें जाकर स्वयं सब हाल देखनेका निश्चय किया—उन्हें यह माळूम हुआ कि रूसके साथ हमारी सरकारने नाहक लड़ाई लड़ी है। कर्नल शेरवुडने विलायत आकर यह बतलाया कि किस तरह अधिकारी लोगोंको धोखा देकर रूसमें ले जाते हैं और जबर्दस्ती बोल्शेविकोंसे लड़ाते हैं। कहते हैं, फ्रान्समें चलो और फ्रान्ससे ले जाते हैं रूस, और जानेवालोंको यह पता भी नहीं रहता कि हम कहाँ जा रहे हैं। इसी कारणसे एक बार फ्रान्सके किनारे ब्रिटिश फौजने गदर किया था जिसकी खबर कुछ महीने पहले यहाँ आई थी। 'मैंचेस्टर गार्जियनके' हेलसिंगफोर्सके संवाददाताने प्रोफेसर डब्ल्यू. टी. गूडकी रहस्यमय घटना प्रकाशित की थी। प्रोफेसर गूड इसी पत्रके संवाददाता थे और बहुत दिनोंतक रूसमें रह चुके थे। बोल्शेविकोंके सम्बन्धमें इनकी राय सरकारी रायसे बिलकुल भिन्न थी। रूसमें इनकी प्रतिष्ठा भी थी यहाँतक कि इस्थोनिया राज्यमें बोल्शेविकोंकी ओरसे सन्धिपत्र

लेकर ये ही जा रहे थे। मास्कोसे इन्होंने प्रस्थान किया और रास्तेमें शायद इस्थोनियाके ब्रिटिश राजदूतके कहनेसे पकड़े गये, २४ घण्टे तक जेलमें रक्खे गए। बाहरी दुनियासे किसी प्रकार इनका सम्बन्ध न हो, कोई इन्हें देख न सके, इस प्रकारका वह कैदखाना था और प्रोफेसर गूडका ही यह काम था कि इस हालतमें भी उन्होंने बाहर अपनी खबर भेजी और अपना छुटकारा कराया। प्रोफेसर गूडने क्या किया कि अपने जेबी शीशेको सूर्यकी किरणोंके सामने रखकर उसका प्रतिबिम्ब बाहर डालकर लोगोंको यह सूचना दी कि भीतर एक असहाय कैदी है। एक छोटेसे झरोखेसे उन्होंने अमेरिकन संवाददाताके नाम चिट्ठी छोड़ी। इस उपायसे उनका छुटकारा हुआ परन्तु इस्थोनियनोंने कहा कि ब्रिटिश राजदूतके कहनेसे हमने ऐसा किया। मि० गूड उस राजदूतके दफ्तरमें गए, वहाँ जाकर बहुत बिगड़े तब वहाँसे हेंलसिंगफार्सतक जानेवाला एक डिस्ट्रायर जहाज उनको सवारीके लिये मिला। जहाजपर सवार हुए, पर रास्तेमें फिर पकड़े गए और जोरको नामक स्थानमें लाए गए जहाँ ब्रिटिश एडमिरल रहता है। 'मैंचेस्टर गार्डियन' को यह मालूम हुआ था कि मि० गूडके पास सोवीट सरकारका एक नया सन्धिपत्र है जो ब्रिटिश सरकारको देनेके लिये उनके सुपुर्द किया गया है और इसी कारणसे यह गड़बड़ हुई है। जिस जहाजसे चैथम बन्दरमें इनके आनेकी बात थी वह जहाज एक तो समयपर नहीं आया और दूसरे एडमिरल्टीसे उसके सम्बन्धमें यह सूचना भी आई कि जबतक हुक्म न दिया जाय तबतक इस जहाजका कोई आदमी बाहर न जाय और बाहरका भीतर न आवे। अभीतक यह नहीं मालूम हुआ कि प्रोफेसर गूड कहाँ हैं, उनका जहाज कहाँ है और यह क्या रहस्य है। इस पर

'मैंचेस्टर गार्डियन' के संवाददाताने लिखा था कि, "क्या प्रोफेसर गूड रूससे सन्धि प्रस्ताव लाए हैं या उन्हें कोई ऐसी बात करनी है कि जिससे मि० चर्चिल नाराज हों ?"

अब हम अन्तमें रूसके सम्बन्धमें एक और सज्जनकी सम्मति दे देना चाहते हैं। इनका नाम आर्थर रैन्सम है। ये इंग्लैण्डके एक प्रतिष्ठित पत्रके सम्वाददाता हैं और रूसकी वास्तविक स्थितिका पता लगानेके लिये फरवरी १९१९ के आरम्भमें वहाँ गए थे। वहाँ पहुँचकर ये छः सप्ताहतक रहे थे और इन्होंने प्रत्येक विभागकी कार्रवाई आदि बहुत अच्छी तरह देखी और समझी थी। रूससे लौटकर इन्होंने "१९१९ में रूसमें छः सप्ताह" (Six Weeks in Russia in 1919) नामक एक छोटी पुस्तक प्रकाशित की। इन्होंने अपनी पुस्तककी भूमिकामें लिखा है कि लोग बोल्शेविकोंको गालियाँ देना तो खूब जानते हैं परन्तु उनकी वास्तविक शासन तथा कार्यप्रणाली जाननेका कोई प्रयत्न नहीं करते। उन्होंने यह भी लिखा है कि यद्यपि बोल्शेविकोंके साथ अँगरेजोंकी लड़ाई हो रही है तथापि बोल्शेविक सरकार इतनी उदार है कि वह अँगरेजी पत्रोंके संवाददाताओंको अपने देशमें आने तथा वहाँकी वास्तविक दशा देखनेकी प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा देती है। बर्न कानफरेन्समें निश्चित हुआ था कि बोल्शेविक लोग कुछ साम्यवादियोंको अपने देशमें जाने दें और वहाँका हाल चाल जाननेका अवसर दें। इन साम्यवादियोंमें अनेक ऐसे थे जो पहलेसे बोल्शेविकोंकी निन्दा किया करते थे। परन्तु बोल्शेविकोंने उनसे भयभीत होनेका कोई कारण नहीं समझा और इंग्लैण्डके एक, स्वीडनके एक तथा नार्वेके दो प्रतिनिधियोंको प्रसन्नतापूर्वक अपने देशमें आनेकी आज्ञा दी। यही नहीं बल्कि उन्होंने उन लो-

कि आने-जाने, रहने तथा देखने-समझने आदिकी भी यथेष्ट व्यवस्था कर दी।

मि० रैन्सम तीन दूसरे सम्वाददाताओंके साथ ३० जनवरी १९१९ को स्टाकहोमसे मास्कोके लिये रवाना हुए थे। मि० रैन्सम पहले पेट्रोग्रेड गए और वहाँ उन्होंने ऐसी व्यवस्था देखी जैसी जारके समयमें नहीं देखी थी। वहाँसे वे बोल्शेविकोंकी राजधानी मास्कोमें पहुँचे। यहाँ सवारियोंका किराया आदि अवश्य ही पहलेकी अपेक्षा बहुत बढ़ गया था और दूसरी सभी आवश्यक सामग्रियाँ भी बहुत महँगी हो गई थीं, तौ भी राज्यकी ओरसे घोड़ों तकके खाने आदिकी बहुत अच्छी व्यवस्था हुई थी। मास्कोकी अधिकांश बड़ी बड़ी दूकानें राज्यके अधिकारमें जा चुकी थीं। जूतेकी एक दूकानपर साइनबोर्ड लगा था—"मास्को सोवीटकी जूतोंकी पाँचवीं दूकान।" एक कपड़ेकी दूकान पर लिखा हुआ था—"मास्को सोवीटकी कपड़ोंकी तीसरी दूकान।" किताबोंकी दूकानपर था—"किताबोंकी ग्यारहवीं दूकान" इत्यादि। मि०रैन्समकी बातोंसे मालूम होता है कि अभी रूसमें सब चीजोंकी बहुत कमी है इसलिये जिन्हें किसी कपड़े आदिकी आवश्यकता होती है उन्हें पहले एक कमेटीके पास जाना पड़ता है और वहाँसे अपनी आवश्यकता प्रमाणित करके चीजें खरीदनेका अधिकार प्राप्त करना पड़ता है। यह व्यवस्था इसलिये है कि जिसमें लोग आवश्यकतासे अधिक चीजें लेकर दूसरोंको उनसे वंचित न कर सकें। मकानोंकी दीवारों आदिमें गोले गोलियों आदिके कारण जो छिद्र हुए थे उन सबकी मरम्मत हो गई है। लोगोंके रहनेके लिये मकानों आदिकी व्यवस्था भी सरकार ही करती है जिसमें मकानके मालिक अधिक किराया नहीं लेने पाते। भोजन आ

दिकी भी प्रायः यही व्यवस्था है। सरकारी दूकानोंके अतिरिक्त अ
लोग भी चीजें बेचते हैं परन्तु वे दाम बहुत अधिक लेते हैं। चीनी
चाय और प्रकाश आदि प्राप्त करनेमें बहुत कठिनता होती है। अँग
रेज कैदियोंको खुले आम बिना किसी पहरे आदिके सारे नगरमें घू
नेकी इजाजत है।

पाठकोंको विदित होगा कि सन्धि महासभा (Peace Confe
ance में एक प्रस्ताव हुआ कि रूसकी भिन्न भिन्न गवर्नमेण्टों
प्रतिनिधियोंको प्रिंकिपोमें बुलाकर उनके साथ सन्धिकी बातचीत क
जाय। इसपर रूसकी सोवीट सरकारने एक नोट तैयार कर
मित्रराष्ट्रोंके पास भेजा था। उस नोटमें कहा गया था कि यद्यपि
इस समयकी परिस्थिति रूसकी सोवीट सरकारके लिये बहु
ही अनुकूल है तथापि सोवीट सरकार युद्ध बन्द क
देना चाहती है और साथ ही अपने शत्रुओंके सा
बहुत कुछ रिआयत करनेके लिये भी तैयार है। पहली रिआयत त
यह है कि हम अपने पुराने ऋणोंके सूदके बदलेमें कच्चा माल देनेके
लिये तैयार हैं और साथ ही अपने शत्रुओंकी प्रजाके साथ खानों तथ
जंगलोंके सम्बन्धमें भी कुछ रिआयत कर सकते हैं। प्रान्तोंके उचित
बँटवारेमें भी हमें कोई आपत्ति नहीं है। अन्तमें कहा गया था कि
रूसकी सोवीट सरकार अपने प्रतिनिधि प्रिंकिपो द्वीपमें अथवा औ
कहीं भेजकर सन्धिके सम्बन्धमें विचार करनेके लिये तैयार है। उस
नोटके सम्बन्धमें बोल्शेविकोंके विरोधी मेन्शेविकोंतककी यह सम्मति थी
कि इसमें सोवीट सरकारने केवल अपने ही हितका नहीं बल्कि समस्त
रूसके हितका पूरा पूरा ध्यान रक्खा है। साथ ही कुछ लोगोंका यहाँ
तक विश्वास था कि इससे राज्यक्रान्तिके उद्देश्योंकी हत्या होती है। १०

र्सीको बोल्शेविकोंकी कार्य्यकारिणी समितिका अधिवेशन इस सम्ब-
में विचार करनेके लिये हुआ था। उस अधिवेशनमें बहुत कुछ
दविवाद हुआ था और रूसकी तत्कालीन दशाकी आलोचना की
ई थी। उसमें यह भी कहा गया था कि भिन्न भिन्न देशोंकी सर-
ारोंको अपने अपने देशमें राज्यक्रान्तिका जितना ही अधिक भय है,
सोवीट रूसके साथ उतनी ही अधिक शत्रुता करते हैं। उदाहर-
ार्थ फ्रान्स है जिसकी पूँजीको युद्धके कारण सबसे अधिक धक्का
हुँचा है और जो सबसे अधिक दुर्बल हो गया है; यही कारण है
ि फ्रान्स किसी प्रकार हमारे साथ सन्धि करनेके लिये तैयार नहीं
ता। परन्तु अमेरिकाकी पूँजी अच्छी दशामें है इसलिये वह हमारे
ाथ सन्धि करनेके लिये तैयार है। सोवीट सरकारसे दूसरी सरका-
कें डरनेका एक यह भी कारण है कि श्रमजीवी दलकी एक सरका-
के अस्तित्वके कारण अन्यान्य देशोंके श्रमजीवियोंमें भी वैसी ही
रकार स्थापित करनेकी प्रवृत्ति होती है; इसीलिये कुछ सरकारें
ोवीट सरकारको नष्ट कर देनेके लिये जी-जानसे प्रयत्न करती हैं।
क व्यक्तिने यह भी कहा था कि रूसमें केवल सोवीटोंके द्वारा ही
कता स्थापित हो सकती है, यह बात शत्रुपक्ष भी मन ही मन अच्छी
ारह समझता है। यूक्रेनमें गत १५ महीनोंमें नए और पुराने ढंगकी
नेक सरकारें स्थापित हुईं परन्तु अन्तमें सफलता सोवीट सरकारकी
ी हुई। पश्चिमी युरोपकी सरकारें यह बात जरूर समझती
ोंगी कि रूसमें यदि सर्वसाधारणकी इच्छा और सम्मतिके अनुसार
ाम करनेवाली कोई सरकार है तो वह केवल सोवीट सरकार ही
ै। अन्तमें सर्वसम्मतिसे समितिने निश्चित किया कि शान्ति स्थापित
करनेके लिये कोई बात उठा न रक्खी जाय।

रैन्समने एक ऐसे आदमीके भतीजेसे भी बातचीत की थी जो किसी समय बहुत बड़ा पूँजीदार था। आरम्भमें जिस समय श्रमजीवियोंका प्रभुत्व बढ़ने लगा था उस समय उस पूँजीदारने मजदूरोंका बहुत विरोध किया था परन्तु अन्तमें जब अक्टूबरमें राज्यक्रान्ति हो गई और बैंकोंआदिपर राष्ट्रका अधिकार हो गया तब उसने विवश होकर मजदूरोंकी बात मान ली। उसने अपने कारखानेके सब मजदूरोंको इकट्ठा करके एक सहयोगसमिति संगठित की और अपना कारखाना उसके सपुर्द कर दिया। यह निश्चित हुआ था कि प्रत्येक मजदूर एक एक हजार रबल (रूसी सिक्का) दे। परन्तु उस समय मजदूरोंके पास इतना धन नहीं था इसलिये उनकी ओरसे कारखानेके मालिकने अपने ही पाससे वह धन लगा दिया और मजदूरोंके नाम ऋणस्वरूप लिख लिया। यद्यपि इस प्रकार ऋण देकर प्रकारान्तरसे स्वयं ही पूँजीदार बने रहना सोवीट कानूनके विरुद्ध था तथापि वह कारखाना एक छोटेसे कस्बेमें था इसलिये किसी प्रकार काम निकल गया। कानूनको देखते हुए कारखानेके मालिकको यह आशा तो नहीं थी कि मेरा रुपया वापस मिलेगा, परन्तु फिर भी वह कारखानेसे अलग नहीं होना चाहता था इसलिये उसने ऐसी व्यवस्था की थी। मजदूरोंने एक प्रबन्धसमिति संगठित की, मालिकको उसका सभापति और उसके भतीजेको उपसभापति बनाया और साथ ही अपने तीन प्रतिनिधि चुन दिए। मालिकको १५०० रबल और भतीजेको १००० रबल मासिक वेतन स्वरूप मिलने लगे और कारखाना खूब अच्छी तरह चलने लगा। इसके कुछ दिनों बाद सम्पत्तिपर कर लगा। कारखानेदारने बुद्धिमत्तापूर्वक पहले ही अपना मकान कारखानेके सपुर्द कर दिया था जिसमें सभापतिकी हैसियतसे

रहनेके लिये उसे दो तीन कमरे मिल गए थे। प्रान्तीय सोवीटने जब उससे ६०००० रबल करस्वरूप माँगे तब उसने अपनी सारी व्यवस्था बतला दी। तौभी राजकर्मचारियोंने उससे २०००० रबल माँगे और जब वह इतना धन भी न दे सका तब उसे और उसके भतीजेको गिरिफ्तार करके ले गए। इसके बाद जब मजदूरोंने जाकर कहा कि अब कारखानेपर हम सब मजदूरोंका अधिकार हो गया है और कारखानेका काम चलानेके लिये इन चचा-भतीजेकी आवश्यकता है, तब कहीं जाकर उन दोनोंका छुटकारा हुआ। इसके बाद कुछ दिनोंमें कारखानेकी बहुत उन्नति हुई और मजदूरोंको लाभका यथेष्ट अंश मिला। रैन्समको पूछनेपर यह भी मालूम हुआ था कि मजदूरे न तो पहलेकी अपेक्षा अच्छा या ज्यादा काम करते हैं और न बुरा या कम।

रैन्समकी भेंट एक क्रान्तिवादीसे भी हुई थी। उस क्रान्तिवादीका नाम बुकरिन था। वह एक अच्छे समाचारपत्रका सम्पादक, अर्थशास्त्र तथा क्रान्तिसम्बन्धी पुस्तकोंका लेखक और ब्रेस्टवाली सन्धिका घोर विरोधी था। उसने रैन्समसे कहा था कि इस समय हम लोगोंने एक ऐसे क्रान्तिकारक युगमें प्रवेश किया है जो कमसे कम ५० वर्षतक रहेगा; परन्तु इस बीचमें केवल सारे युरोपमें ही नहीं बल्कि सारे संसारमें क्रान्ति हो जायगी। रैन्समने पहलेसे ही ऐसे क्रान्तिवादियोंकी बातोंका एक बहुत अच्छा उत्तर तैयार कर रक्खा था। वही उत्तर उस समय उसने बुकरिनको दिया। उसने कहा—"आप लोग यह तो बराबर कहा करते हैं कि इंग्लैण्डमें राज्यक्रान्ति होगी; परन्तु क्या आपने कभी यह बात नहीं सोची कि इंग्लैण्ड कृषिप्रधान नहीं बल्कि शिल्पप्रधान देश है और यदि वहाँ राज्यक्रान्ति होगी तो वहाँके

निवासी भूखों मर जायँगे ? रूसमें तो बहुतसा अन्न होता है इस लिये क्रान्तिके समय भी यहाँके निवासियोंको खाने पीनेका कष्ट नहीं होता। परन्तु यदि इंग्लैण्डमें क्रान्ति हुई तो वहाँके लोगोंके लिये खानेका भी ठिकाना न रह जायगा। मेरी समझमें तो यदि इंग्लैण्डमें राज्यक्रान्ति हुई तो उससे रूसकी भी हानि ही होगी।" इसपर बुकरिनने हँसकर कहा—"आपके भी वही पुराने दकियानूसी खयाल हैं। यह कहना तो सही है कि यदि युरोपमें राज्यक्रान्ति होगी तो अमेरिकासे खाद्य पदार्थोंका आना बन्द हो जायगा परन्तु उस समयतक हम लोगोंको साइबेरियासे भी तो खाद्य पदार्थ मिलने लगेंगे।" इसपर रैन्समने पूछा कि "क्या साइबेरियाकी यही टुटहूँटूँ रेलवे सारे रूस, जर्मनी और इंग्लैण्डके लिये खाद्य पदार्थ लावेगी ?" बुकरिनने कहा—"हंगरी और रूमानियामें भी तो खूब अनाज होता है। जहाँ युरोपमें एक बार आपसकी मारकाट बन्द हुई वहाँ युरोप अपने लिये खाद्य पदार्थोंकी आप ही व्यवस्था कर लेगा। अँगरेज और जर्मन इंजीनियरोंकी सहायतासे हम ऐसी व्यवस्था कर लेंगे कि सारे युरोपके श्रमजीवीप्रधान राज्योंके लिये अकेला रूस ही सब खाद्य पदार्थ तैयार कर ले। जिस समय इंग्लैण्डमें राज्यक्रान्ति होगी उस समय अँगरेजी उपनिवेश आपसे आप अमेरिकाके संरक्षणमें चले जायँगे; और तब अमेरिकामें राज्यक्रान्तिकी बारी आवेगी। और सबके अन्तमें हम दक्षिण आफ्रिकाकी पूँजीदारीका अन्त करेंगे। उस समय युरोपके श्रमजीवीप्रधान राज्योंकी औपनिवेशिक नीति बिलकुल ही बदल जायगी। आजकल पिछड़ी हुई जातियोंके धनका अपहरण करनेके लिये उनपर विजय प्राप्त की जाती है; परन्तु भविष्यमें औपनिवेशिकोंके हाथसे अपहरणके साधन छीननेके लिये उनपर विजय प्राप्त की

जायगी । पर इसमें एक ही बातका डर है । वह यह कि यह झगड़ा इतना भीषण होगा कि शायद सारी युरोपीय सभ्यता इससे नष्टभ्रष्ट हो जाय ।"

दूसरे दिन रैन्समकी बातचीत एक और आदमीसे हुई थी जो मास्कोके एक मासिकपत्रका सम्पादक था और जो श्रमजीवियोंमें शिक्षा-प्रचार करनेके अतिरिक्त अपने देशकी पुनर्घटनासम्बन्धी समस्याओंपर भी यथेष्ट विचार किया करता था । उसकी बातोंसे मालूम हुआ था कि रूसके श्रमजीवी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये बहुत अधिक उत्सुक हैं; परन्तु उन्हें पढ़नेके लिये यथेष्ट पुस्तकें नहीं मिलतीं । लोगोंको हाथसे लिखकर प्रतियाँ तैयार करनी पड़ती हैं । इसी प्रकारकी रुकावटें और भी अनेक अच्छे अच्छे कामोंमें पड़ती हैं । तौ भी उसे आशा थी कि यदि रूस अधिक दिनोंतक भी चारों ओरसे घिरा रहेगा तौ भी शीघ्र ही वहाँकी सारी त्रुटियोंको पूरा करनेकी व्यवस्था हो जायगी, क्योंकि वहाँ कच्चे मालकी कमी नहीं है। उसने यह भी कहा था कि हमारे यहाँ सबसे बड़ी कमी इस बातकी है कि एक स्थानसे दूसरे स्थानतक माल ले जानेके साधन नहीं हैं । परन्तु शीघ्र ही हम ऐसे साधन तैयार कर लेंगे; और तब युरोपमें सबसे अच्छा निवास-योग्य देश केवल रूस ही रह जायगा । परन्तु इस बीचमें केवल हमें ही नहीं बल्कि युरोपके अन्यान्य देशोंको भी बहुत बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ सहनी पड़ेंगी । अबतक पश्चिमी युरोपवाले युद्धके दुष्परिणामोंका अनुभव नहीं कर सके हैं परन्तु शीघ्र ही उन्हें यह कटु और अप्रिय अनुभव होगा । हाँ, अन्यान्य राष्ट्रोंकी राज्यक्रान्ति अपेक्षाकृत बहुत ही निकट और कष्टदायक होगी । पश्चिमी देशोंमें जब कभी राज्यक्रान्ति होगी तब सरकारी कर्मचारी तोपें लगाकर जिलेके जिले उड़ा देंगे ।

क्योंकि वहाँके शासक क्रान्तिका दमन करनेके लिये संगठित और कृतनिश्चय हैं । हमारे यहाँका एकसत्तात्मक राज्य भी ऐसा ही कर सकता था; परन्तु जब एकाएक उसका अन्त हो गया तब हमारा काम अपेक्षाकृत बहुत ही सहज हो गया और हमारे मार्गमें कोई रुकावट न रह गई । परन्तु जर्मनी * आदि देशोंमें ऐसा नहीं होगा।"

रूसी प्रजाकी आर्थिक दशा सुधारनेके लिये बोल्शेविकोंने एक सुप्रीम काउन्सिल स्थापित की है । जिस समय राजनीतिक झगड़ोंका अन्त हो जायगा उस समय सोवीटोंका राजनीतिक महत्त्व बहुत ही कम हो जायगा । उस समय राज्यको शत्रुओंसे अपनी रक्षा करनेकी चिन्ता न रह जायगी और वह अपनी सारी शक्ति देश तथा प्रजाकी आर्थिक स्थिति सुधारनेमें लगा देगा । इसी आर्थिक दशाके सुधारके उद्देश्यसे उक्त काउन्सिल संगठित हुई है। उसमें भिन्न भिन्न कार्यकारिणी सभाओं और श्रमजीवियोंके संघोंके ६५ प्रतिनिधि हैं और प्रति मास उसका अधिवेशन होता है । ब्रेस्टवाली सन्धिके कारण रूसकी जो आर्थिक क्षति हुई थी उसके कारण वहाँकी आर्थिक दशा बहुत कुछ विकट हो गई थी। आरम्भमें उक्त काउन्सिलका उद्देश्य उक्त क्षतिकी पूर्ति करना ही था । उसके सभापतिसे जब रैन्समने पूछा कि क्या रूस बिना दूसरे देशोंकी सहायताके अपनी आर्थिक दशा सुधार सकता है ? इसपर उसे उत्तर मिला था कि रूसको विवश होकर आप ही अपनी दशा

* युद्धमें एक प्रकारसे जर्मनी हार गया और वहाँके कैसरको सिंहासन छोड़ना पड़ा । इसीलिये उक्त अनुमान ठीक नहीं उतरा । वहाँ भी रूसकी तरह एकाएक एकतंत्री राज्यका अन्त हो गया और बिना किसी प्रकारके रक्तपातके साम्यवादी राज्य स्थापित हो गया । अब वहाँकी प्रजा बहुतसे अंशोंमें बोल्शेविक सिद्धान्तोंकी ओर प्रवृत्त हो रही है ।

सुधारनी पड़ेगी क्योंकि इस समय हमें जिन मशीनों आदिकी आवश्यकता है वे हमें बाहरसे जल्दी नहीं मिल सकेंगी। अर्थसचिव क्रेस्टेन्स्कीने यह भी कहा था कि जब दूसरे देशोंमें राज्यक्रान्ति होगी तब वे भी अपना ऋण चुकानेसे इनकार कर देंगे और तब सहजमें हम भी अपना ऋण चुकानेसे सहजमें बच जायँगे। और यदि ऐसा न भी हुआ तो भी हम कच्चा माल देकर अपना ऋण चुका देंगे। इसपर रैन्समने उससे कहा था कि जब रूसकी सोवीट सरकारको युरोपसे आर्थिक सहायता न मिलेगी तब अवश्य ही उसका अन्त हो जायगा। इसपर उसने कहा था कि यदि महँगी आदिके कारण नोट छापनेमें हमारा बहुत अधिक व्यय होगा तब तो अवश्य ही ऐसा होगा परन्तु हम इस कठिनतासे बचनेका एक और ही उपाय कर रहे हैं। जिस प्रकार हम दूसरे देशोंको चीजोंके बदलेमें चाँदी या सोना न देकर केवल चीजें ही देते हैं उसी प्रकार हम अपने देशमें भी विनिमयके कामके लिये सिक्कोंका व्यवहार घटा रहे हैं। श्रमजीवियोंको पहले केवल धन ही दिया जाता था परन्तु अब उन्हें रहनेके लिये मकान दिए जाते हैं जिनमें प्रकाश और उष्णताकी भी व्यवस्था कर दी जाती है। देहातोंसे खाद्य पदार्थ मँगवानेमें हमें अवश्य ही कठिनता होती है परन्तु जब हम देहातियोंको तैयार माल देने लगेंगे तब सहजमें ही बदलेमें उनसे खाद्य पदार्थ ले सकेंगे। यदि हमारे सिक्कों और नोटों आदिका भाव बराबर गिरता गया तब तो अवश्य ही हमारी सारी व्यवस्था नष्ट हो जायगी परन्तु यदि हम बिना नोटों या सिक्कोंके ही सब काम चला सके तो अवश्य ही हमें पूर्ण सफलता होगी। परन्तु अभी हम बिना धनके काम नहीं चला सकते।

राज्यक्रान्तिके उपरान्त बहुतसे लोगोंने खाद्य तथा दूसरे पदार्थ बहुत अधिक दामोंपर बेचकर खूब रुपया जमा कर लिया था। ऐसे लोगोंसे रुपया वसूल करनेके लिये सोवीट सरकारने एक विशेष कर लगाया था। ऐसे लोग सरकारी बंकोंमें अपना रुपया नहीं जमा करते थे इसलिये उनके रुपयोंका पता नहीं लग सकता था। उसके लिये नई व्यवस्था यह हुई थी कि घोषणा करके पुराना धन (सिक्के और नोट) रद्द कर दिया जाय और उसके स्थानपर नए नोट तथा सिक्के चलाए जायँ और इस क्रियाके उपरान्त भी यदि लोगोंके पास कुछ पुराना धन बच रहे तो उसे वसूल करनेके लिये थोड़े दिनों बाद उक्त क्रिया फिर दोहरा दी जाय। इस सम्बन्धमें रैन्समको शंका हुई थी कि कहीं इस व्यवस्थासे सर्वसाधारण और विशेषतः देहाती असन्तुष्ट न हो जायँ और वे एक नई प्रतिक्रान्तिके लिये आन्दोलन न करने लगें। इस शंकाके समाधानमें उससे कहा गया था कि यदि देहातियोंको सारी व्यवस्था अच्छी तरह समझा दी जायगी तो वे तनिक भी असन्तुष्ट न होंगे; क्योंकि इससे केवल थोड़ेसे धनवानोंकी ही हानि होगी। यदि कोलचक आदि हमारा राज्य नष्ट करके अपना राज्य स्थापित करेंगे और अपने नए सिक्के तथा नोट आदि चलाना चाहेंगे तब अवश्य ही सर्वसाधारणमें असन्तोष फैलेगा, क्योंकि उसका प्रभाव धनवान् और दरिद्र सबपर पड़ेगा। हमारे शत्रुओंको चाहे सब प्रकारसे सफलता हो परन्तु यदि वे हमारी आर्थिक व्यवस्था बदलना चाहेंगे तो सारे देशमें घोर असन्तोष तथा विरोध होगा। और फिर हमारे देशमें क्रान्ति हो ही नहीं सकती जबतक कि दूसरे देश हमपर आक्रमण न करें। और राजनीतिक दृष्टिसे इस समय दूसरे देशोंका हमपर आक्रमण करना असम्भव है।

नगरों और देहातोंमें विनिमयका मुख्य साधन बने हुए कपड़े हैं। और यही शिल्प रूसके दूसरे सब शिल्पोंसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। युद्धसे पहले इस शिल्पमें पाँच लाख मजदूर लगे हुए थे परन्तु युद्ध और राज्यक्रान्ति होनेपर भी १९१९ के आरम्भमें इस शिल्पमें चार लाख मजदूर लगे हुए थे। कपड़ेकी जितनी बड़ी बड़ी मिलें और कारखाने हैं उन सब पर राष्ट्रका अधिकार हो गया है। देशके भिन्न भिन्न भागोंमें जो कारखाने थे वे अपने अपने वर्गके अनुसार एक दूसरेके पास कर दिए गए हैं। इस वर्गीकरणकी व्यवस्थासे बहुतसे व्यर्थके परिश्रम बच गए हैं। अब माल भी अच्छे और प्रायः एकसे तैयार होने लग गए हैं। रद्दी और अनावश्यक माल बनना बन्द हो गया है। रूसमें रूई आदि बाहरसे नहीं जाती और वहाँ बहुत ही थोड़ी रूई पैदा होती है। इसलिये वहाँवाले आधी रूई और आधा सन मिलाकर ही एक नए ढंगसे बहुत अच्छा सूत तैयार कर लेते हैं और उसके सूतको भी बिलकुल रूईके रूपमें ले आते हैं। इन सब कारखानोंकी व्यवस्थाके लिये भी एक स्वतंत्र कमेटी स्थापित है। यूक्रेनके साथ बोल्शेविक रूसकी कुछ कुछ मित्रता स्थापित हो जानेके कारण ऊन भी उन्हें खूब मिलने लगेगा।

प्रायः लोग कहा करते हैं कि बोल्शेविक सरकार खेतोंपरसे कृषकोंका व्यक्तिगत स्वत्व हटा रही है। परन्तु यह बात ठीक नहीं है। बोल्शेविकोंने कृषकोंके वर्ग अवश्य स्थापित किए हैं परन्तु वे केवल आदर्शरूप हैं। ऐसे वर्ग स्थापित करनेके लिये कभी कोई विवश नहीं किया जाता। हाँ इस बातका प्रयत्न अवश्य किया जाता है कि पैदावार अच्छी और खूब हो। कृषकोंको वर्गोंके लाभ बतलाए जाते हैं और उन्हें अच्छी और ज्यादा फसल तैयार करनेकी शिक्षा दी

जाती है । कृषिशास्त्रके समस्त अच्छे अच्छे रूसी ज्ञाताओंको एकत्र करके एक सभा संगठित की गई है जो छोटी छोटी पुस्तकें प्रकाशित करके लोगोंको कृषिके अच्छे अच्छे उपाय बतलाती है ।

श्रमजीवियोंके सम्बन्धमें बोल्शेविक रूसमें एक अलग श्रमविभाग और उसका एक स्वतंत्र मंत्री है जिसे व्यापारसंघोंकी काउन्सिल चुनती है । कार्यकारिणी समितिके नौ सदस्योंमेंसे पाँचका चुनाव भी व्यापारसंघोंके ही द्वारा होता था। पहले श्रमसम्बन्धी सब प्रश्नोंपर प्रायः श्रमजीवियोंका निर्णय ही मुख्य हुआ करता था परन्तु बादमें यह सोचा गया कि यदि श्रमजीवी लोग कारखानोंको केवल अपने ही हितकी दृष्टिसे चलाना चाहेंगे तो सम्भव है कि उससे सारे समाजका और अन्तमें स्वयं उन श्रमजीवियोंका भी अहित हो। श्रमजीवियोंको ठीक मार्गपर लानेके लिये वहाँ तोपों और बन्दूकोंका प्रयोग नहीं किया गया, बल्कि उन्हें धीरेसे यह बात समझा दी गई कि कारखाने केवल श्रमजीवियोंकी ही सम्पति नहीं हैं बल्कि सारे समाजकी सम्पति है इसलिये श्रमसम्बन्धी प्रश्नोंपर केवल श्रमजीवियोंका ही नहीं बल्कि सारे समाजका मत लेना आवश्यक है । अब श्रमसम्बन्धी कमेटीमें आधे सदस्य श्रमजीवियोंके प्रतिनिधि होते हैं और आधे अन्य विभागों आदिके । इस विभागके तीन अन्तर्विभाग हैं । एक श्रमजीवियोंके हितका ध्यान रखता है, दूसरा श्रमका विभाग करता है और तीसरा मजदूरी तथा काम करनेका समय आदि निश्चित करता है । राजनीतिक प्रश्नों, कार्यों और दलों आदिका इन विभागोंपर कभी कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता क्योंकि उनका सारा काम व्यापारसंघोंके ही द्वारा होता है । अन्यान्य विभागोंकी तरह इस विभागमें भी अनेक परस्पर विरोधी राजनीतिक दलोंके भी लोग खूब मिलकर काम करते हैं । हाँ

जो आदमी स्वयं राज्यक्रान्तिका ही विरोधी हो उसे उसमें स्थान नहीं मिलता। सोवीटोंकी स्थापनाके कारण व्यापारसंघोंकी संख्या घटी नहीं बल्कि बराबर बढ़ती जा रही है। इसमें इतनी विशेषता और हुई है कि एक ही काम करनेवाले कारीगर और व्यापारी मिलकर एक हो गए हैं। लोहेका सामान बेचने और बनानेवालोंका एक ही संघ है। रूसके भिन्न भिन्न भागोंमें जीवननिर्वाहकी आवश्यक सामग्रीका मूल्य एक सा नहीं है—कहीं कम है और कहीं ज्यादा। इसीलिये मजदूरोंके वेतनमें जो वृद्धि होती है वह सारे देशमें एक सी नहीं होती बल्कि इसी कमी और बेशीके लिहाजसे होती है। यद्यपि साम्यवादी लोग साधारणतः मजदूरोंसे बहुत अधिक काम लेनेके घोर विरोधी हैं तथापि आजकल वे अपने देशकी आवश्यकता और हितका ध्यान रखते हुए उनसे अधिक समयतक काम लेते हैं।

बोल्शेविक रूसमें शिक्षाकी भी यथेष्ट उन्नति हुई है। जहाँ पहले केवल छः विश्वविद्यालय थे वहाँ अब सोलह विश्वविद्यालय हैं जिनमेंसे अधिकांश स्थानिक सोवीटोंकी प्रेरणासे स्थापित हुए हैं। विद्यार्थियोंकी संख्या भी बहुत अधिक बढ़ गई है। साम्यवादके सिद्धान्तोंके अनुसार विद्यार्थियोंसे कोई फीस नहीं ली जाती। जो विद्यार्थी विश्वविद्यालयमें प्रविष्ट होना चाहते हैं पहलेकी भाँति अब उनकी कठिन परीक्षा नहीं ली जाती। उन्हें इस बातका भी अधिकार रहता है कि वे केवल अपने मनमाने विषयकी ही शिक्षा प्राप्त करें। किसी विद्यार्थीकी इच्छाके विरुद्ध उसपर अनेक अनावश्यक विषय नहीं लादे जाते। कानून और डाक्टरी पढ़नेवालोंकी संख्या घट रही है और विज्ञान, इतिहास तथा दर्शन आदि पढ़नेवालोंकी संख्या खूब बढ़ती जा रही है। शिल्पों आदिके विद्यार्थी भी अब बढ़ रहे हैं। स्कूलोंमें केवल तो

ही दरजे होते हैं। एकमें सातसे बारह वर्षके और दूसरेमें १३ से १७ वर्षतकके बालक पढ़ते हैं। सब बालकोंको भोजन और कुछको कपड़े आदि भी राज्यकी ही ओरसे मिलते हैं। जिन स्थानोंपर शिल्पसम्बन्धी शिक्षा दी जाती है उन स्थानोंपर श्रमजीवियोंकी खूब भीड़ हुआ करती है। एक एक लेक्चर सुननेके लिये हजार हजार आदमी जमा होते हैं। बड़े बड़े नगरोंकी कौन कहे छोटे छोटे गाँवों तकमें हजारों नए पुस्तकालय और वाचनालय स्थापित हो गए हैं। शिक्षाप्रचारके लिये एक स्वतंत्र विभाग है जो पुस्तकें आदि छापकर मुफ्त बाँटता है। सारे रूसमें पुस्तकें आदि बाँटनेकी बहुत अच्छी व्यवस्था है। स्थानिक सोवीटें प्रचारके लिये जितनी पुस्तकें आदि माँगती हैं उन्हें उतनी पुस्तकें डाकखानेके द्वारा मिल जाती हैं। परन्तु कागज आदिकी कमी है और छपाई बहुत महँगी पड़ती है इसलिये देशकी सारी माँग पूरी नहीं हो सकती। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि बोल्शेविक रूसमें बहुत सा साहित्य मुफ्त बाँटा जाता है और बहुत सा बहुत सस्ते दामोंपर बेंचा जाता है।

बोल्शेविकोंके सम्बन्धमें सम्मति देनेवाले दो पक्ष हैं। एक पक्ष तो उनकी घोर निन्दा करता है और उन्हें अत्यन्त अन्यायी तथा अत्याचारी बतलाता है। परन्तु यह बात स्पष्ट है कि पहले दलके लोग प्रायः ऐसे ही हैं जो स्वार्थ अथवा किसी और कारणसे दूसरे बैठे बैठे उनकी निन्दा किया करते हैं और आजकल युरोपमें प्रायः ऐसे ही लोगोंकी अधिकता है। दूसरे पक्षमें बहुत ही थोड़े लोग हैं परन्तु प्रायः वे सबके सब ऐसे ही हैं जो स्वयं रूसमें जाकर वहाँकी व्यवस्था और शासनप्रणाली अपनी आँखोंसे देख आए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भमें अपनी सत्ता

स्थापित करनेके लिये बोल्शेविकोंने रूसी प्रजापर अनेक प्रकारके अत्याचार और अन्याय किए और उनके इस प्रकारके कृत्योंके साथ किसी समझदारकी जरा भी सहानुभूति नहीं हो सकती। सैकड़ों हजारों आदमियोंका रक्तपात करके सार्वजनिक मतके आधारपर शासनसत्ता स्थापित करनेका उद्योग कभी प्रशंसनीय अथवा अनुकरणीय नहीं हो सकता; परन्तु इस सम्बन्धमें यह बात अवश्य ध्यानमें रखने योग्य है कि जब कभी राज्यक्रान्ति अथवा नई शासनसत्ताकी स्थापना होती है तब बहुत कुछ अनावश्यक रक्तपात होता है। राज्यक्रान्ति अथवा नई शासनसत्ता स्थापित करनेवाले नेताओंके विचार और उद्देश्य उत्तम हो सकते हैं परन्तु सर्वसाधारणका जो अंश उनका सहायक होता है वह प्रायः सदा और सब देशोंमें उच्छृंखल ही हुआ करता है। जब कभी कोई राजा अथवा क्रान्तिकारी किसी देशमें कोई नई शासनसत्ता स्थापित करना चाहता है तब कुछ समयके लिये उसके सहायक आदि अवश्य ही उद्दंड और अत्याचारी हो जाते हैं। हमारे इस कथनकी पुष्टि करनेवाले सैकड़ों प्रमाण इतिहासमें भरे पड़े हैं। यहाँतक कि विजय प्राप्त करनेपर विजयी सेनाको कुछ समयके लिये मनमाना अत्याचार करनेका अधिकार मानों नियमानुसार मिल जाता है। बोल्शेविकोंने केवल रूसकी प्राचीन अत्याचारपूर्ण शासनप्रणालीपर ही विजय नहीं प्राप्त की थी बल्कि बहुतसे अंशोंमें कुछ सार्वभौम अनुचित नियमों और सिद्धान्तोंपर भी विजय प्राप्त की थी। ऐसी दशामें यदि उनके शासनकालके आरम्भमें कुछ अनुचित कृत्य अथवा अत्याचार हुए हों तो उनके लिये वे बहुत अधिक दोषी नहीं ठहराए जा सकते। आजकल उनके ऐसे अत्याचारोंके समाचार भी कम आने लगे हैं। दूसरी बात यह है कि यदि

बोल्शेविकोंके सिद्धान्त ठीक हों और उनके नेताओंकी कार्यप्रणाली निर्दोष हो तो जनसाधारणके अनुचित कृत्योंके कारण स्वयं उन सिद्धान्तों आदिको ही दूषित मान बैठना ठीक नहीं है। यदि बहुतसे हिन्दू बेईमानी करें अथवा बहुतसे ईसाई दुराचारी हों तो उनके दुष्कृत्योंका उत्तरदाता स्वयं हिन्दू अथवा ईसाई धर्म्म नहीं ठहराया जा सकता।

अस्तु। अब हम संक्षेपमें यह बतलाना चाहते हैं कि किन कारणोंसे प्रेरित होकर लोग बोल्शेविकोंकी निन्दा करते हैं। अबतक बोल्शेविक रूसके सम्बन्धमें जितने समाचार आए हैं उनसे यही सिद्ध होता है कि बोल्शेविक सरकारके साथ मित्रराष्ट्रोंकी घोर शत्रुता है और उन मित्र राष्ट्रोंमेंसे केवल इंग्लैण्डने ही बोल्शेविकोंके शत्रुओंकी सबसे अधिक सहायता करके उन्हें परास्त करनेका आयोजन किया है। इसके अतिरिक्त यह बात भी स्वतःसिद्ध है कि ब्रिटिश सरकारकी इस कार्रवाईसे इंग्लैण्डकी प्रजा और विशेषतः वहाँके श्रमजीवी तथा साम्यवादी असन्तुष्ट हैं और इसीलिये ब्रिटिश सरकारसे अबतक केवल इसी बातकी नहीं प्रार्थना की गई है कि बोल्शेविकोंके विरोधियोंको सहायता देना बन्द कर दिया जाय बल्कि इस बातकी भी प्रार्थना होने लगी है कि उनके साथ सन्धि कर ली जाय। जो लोग साम्यवादियोंके विरोधी हैं और सदा उनकी निन्दा ही किया करते हैं वे यदि बोल्शेविकोंकी निन्दा करें और उन्हें गालियाँ दें तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। क्योंकि बाल्शेविज्म एक प्रकारसे साम्यवादकी चरम सीमा है। परन्तु ऐसे निन्दकोंमें कुछ ऐसे लोग भी मिल गए हैं जिनका बोल्शेविकोंके नाशसे ही आर्थिक हित है। साईबेरियामें मूल्यवान् धातुओंकी कई खानें हैं जिन्हें कुछ ब्रिटिश

व्यापारियोंने ऐडमिरल कोलचककी अस्थायी सरकारकी सहायतासे अपने हाथमें ले रक्खा है। यदि कोलचककी सरकार बनी रहे तो एक प्रभावशाली ब्रिटिश व्यापारीमंडलका बहुत बड़ा लाभ हो सकता है। इसी प्रकारके और भी दो एक कारण हैं परन्तु वे गौण ही हैं। मुख्य कारण यदि कोई है तो वह राजनीतिक ही है। एक बोल्शेविकके कथनानुसार, जैसा कि हम पहले कह आए हैं, यदि रूसमें बोल्शेविकोंकी पूरी विजय हो जाय तो उसके परिणामस्वरूप एक विश्वव्यापी भयंकर राज्यक्रान्ति हो सकती है। यह ठीक है कि यदि इंग्लैण्ड इस समय रूसमें बोल्शेविकोंको दबा लेगा तो भविष्यमें उसे वहाँ अपना व्यापार बढ़ानेका भी अच्छा अवसर मिल जायगा। परन्तु इसके साथ ही उसका सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि इंग्लैण्डके मजदूरों आदिपर बोल्शेविक सत्ताकी स्थापनाका अबतक जो प्रभाव पड़ चुका है उसका नतीजा भुगतनेसे वह बच जायगा। इंग्लैण्डके मजदूरे भी अब यह सिद्धान्त उपस्थित करने लग गए हैं कि देशके समस्त उद्योग धन्धोंपर राष्ट्रका अधिकार हो जाय। वे पूँजीवालोंका प्रभुत्व नष्ट करके सम्पत्तिका उचित विभाग कराना चाहते हैं और अपने अधिकार तथा सुभीते बढ़ाना चाहते हैं। इंग्लैण्डके मजदूरे केवल औद्योगिक और आर्थिक कारणोंसे ही आन्दोलन नहीं करते बल्कि राजनीतिक कारणोंसे भी करते हैं। उनका कहना है कि रूसमें सेना भेजकर जो हस्तक्षेप किया जाता है वह बन्द कर दिया जाय और व्यवसायसम्बन्धी झगड़ोंमें सरकार सेनाके द्वारा हस्तक्षेप न किया करे। वे यह भी नहीं चाहते कि लोग सेनामें जबरदस्ती भरती न किए जाया करें और सबसे बढ़कर बात यह है कि वे शासनाधिकार अपने हाथमें लेना चाहते हैं इंग्लैण्ड-

की वर्त्तमान सरकार इन सब बातोंका विरोध करती है और समझती है कि यदि बोल्शेविक सत्ताका रूसमें अन्त हो जायगा तो इंग्लैण्डके मजदूरोंका जोश भी ठंढा पड़ जायगा। हम यह तो नहीं कह सकते कि बोल्शेविक सत्ताके अन्तका इंग्लैण्डके मजदूरोंपर क्या प्रभाव पड़ेगा परन्तु प्रसंगवश हमें बोल्शेविकोंके मुख्य नेता लेनिनकी एक युक्तिका स्मरण हो आया है। लेनिनने एक अवसरपर कहा था कि अन्यान्य देशोंकी सरकारें अपनी रक्षाके लिये लाख उपाय करें, अपने देशमें एक भी बोल्शेविकको घुसने न दें और अपने चारों ओर चीनकी दीवार खड़ी कर लें तो भी यदि उनके देशकी स्थिति सचमुच राज्यक्रान्तिके अनुकूल होगी तो वे सब कुछ करके भी राज्य-क्रान्तिको रोक न सकेंगे और जिस देशकी परिस्थिति राज्यक्रान्तिके अनुकूल ही न होगी उस देशमें लाख प्रयत्न करनेपर भी कोई राज्य-क्रान्ति नहीं कर सकता। भारत या फारसमें कोई क्या खाकर राज्य-क्रान्ति करेगा और जर्मनी आस्ट्रिया अथवा स्वयं रूसकी राज्यक्रान्ति रोकनेमें कौन समर्थ हुआ? लेनिनने यह भी कहा था कि युरोपीय युद्धके कारण युरोपके अधिकांश देशोंकी स्थिति राज्यक्रान्तिके अनु-कूल हो गई है। अगर आज सारा रूस समुद्रमें डूब भी जाय तो भी युरोपमें राज्यक्रान्ति हुए विना न रहेगी। रूसको २० बरसके लिये रसातल भेज दीजिए तो भी इंग्लैण्डके मजदूर जितने समयतक काम करना चाहते हैं उससे एक घंटे अधिक काम करनेके लिये तैयार न होंगे अथवा वे जितनी मजदूरी चाहते हैं उससे एक शिलिंग कम-पर भी राजी न होंगे। हमें भय है कि हम अपने विषयसे कुछ दूर जा पड़े तो भी प्रसंगकी बात थी; वह छुट न सकी। यह तो इंग्लैण्ड देशसम्बन्धी राजनीतिक कारण हुआ। एक राजनीतिक

कारण ब्रिटिश साम्राज्यसम्बन्धी भी है। अँगरेज राजनीतिज्ञ इस बातसे डरते हैं कि कहीं इस नए आन्दोलनका प्रभाव भारत, अफगानिस्तान, ईरान और मेसोपोटामिया आदिपर न पड़े, नहीं तो ब्रिटिश साम्राज्यको भी धक्का पहुँच सकता है। परन्तु हमारी समझमें यहीं वे थोड़ी सी भूल करते हैं। रूसके ढंगकी राज्य-क्रान्ति सबसे पहले उन्हीं युरोपीय राष्ट्रोंमें हो सकती है जो सभ्यताके शिखर तक पहुँच गए हैं क्योंकि यह राज्यक्रान्ति आधुनिक युरोपीय सभ्यताका ही फल है। भारत सरीखे पिछड़े हुए देशोंमें जहाँ कि उस सभ्यताका बीज अभी अच्छी तरह अंकुरित भी नहीं हुआ बोल्शेविज्मरूपी फल लगना नितान्त असम्भ है और यदि हम थोड़ी देरके लिये उसे किसी प्रकार सम्भव भी मान लें तो फिर वह एक दूसरे कारणसे पुनः असम्भवका असम्भव ही हो जाता है। वह दूसरा और सबसे बड़ा कारण यह है कि बोल्शेविज्म हम भारतवासियोंकी प्रवृत्ति और प्रकृतिके ही बिलकुल प्रतिकूल है।

अन्यान्य साम्यवादियोंकी तरह बोल्शेविकोंका भी यह सिद्धान्त है कि राजा और प्रजा, मालिक और नौकर, पूँजीदार और मजदूरका अनर्थकारी भेद नष्ट कर दिया जाय। मनुष्यमात्रको एक ही स्थिति-में ला देना इसका लक्ष्य है। वे मजदूरोंको ही कारखानोंका मालिक बनाना चाहते हैं और सैनिकोंको भी नागरिकोंके समान अधिकार देकर सेनापतियोंकी नियुक्ति उन्हींके द्वारा कराना चाहते हैं। विश्वा-भिमानके भावके सामने देशाभिमानके भावको वे गौण बनाना चाहते हैं। यदि ये सब सिद्धान्त बुरे हैं तो बोल्शेविक भी बुरे हैं और यदि ये सब सिद्धान्त अच्छे हैं तो बोल्शेविक भी अच्छे हैं। हम न तो बोल्शेविकोंकी निन्दा करते हैं न स्तुति। हमारा कथन केवल इतना

ही है कि जबतक धनी और दरिद्र, सेव्य और सेवक, शासक और शासित आदिका भेद बना रहेगा तबतक मानवजाति कभी सन्तुष्ट या प्रसन्न नहीं होगी और इस भेदभावको नष्ट करनेके लिये बराबर प्रयत्न करती रहेगी । यह प्रयत्न बराबर अबतक होता आया है, इस समय हो रहा है और भविष्यमें जब तक उद्देश्य सिद्ध न होगा तब तक बराबर होता रहेगा—किसीके रोके न तो यह प्रयत्न आजतक रुका है और न आगे कभी रुक सकता है ।



१५ भारतीय कृषक और मजदूर।



ऐसी दशामें जब कि सारे संसारके कृषकों और मजदूरोंकी दुर्दशा तथा उनके सुधारके आयोजनोंका वर्णन किया जा चुका है भारतीय कृषकों तथा मजदूरोंकी दुर्दशाका थोड़ासा वर्णन दे देना भी आवश्यक जान पड़ता है। भारतीय कृषकोंकी कहानी मोटे हिसाबसे सारे भारतवर्षकी कहानी है क्योंकि भारतकी जनसंख्याका ४/५ अंश देहातोंमें ही बसता है। पर इस कहानीका आदि, मध्य और अन्त सब ही दुःखपूर्ण है। भारतीय किसानका जन्म, जीवन और मृत्यु तीनों दुःखमें होते हैं। दुःख ही उस जन्ममें उसकी सम्पत्ति होती है वह दुःख ही लेकर आता है और दुःख ही छोड़ जाता है। उसके दुःख अतुलनीय और अनुपमेय हैं; अपनी उपमा वे आप ही हैं। जो सारे वर्षमें एक दिन भी नहीं जानता कि भरपेट खाना किसे कहते हैं, जिसने एक बार भी अनुभव न किया हो कि शीत और लूसे बचनेवालोंको क्या सुख मिलता है, जिसने जन्मभरमें एक बार भी न जाना हो कि निश्चिन्त और निर्भय जीवन कैसा होता है; मानसहित जीवनका सुख जिसे कभी एक क्षणके लिये भी नहीं मिला, अपमान जिसका भोजन, उपवास जिसका वस्त्र, भय और चिन्ता जिसके ओढ़ने बिछानेके सामान हों, उसके दुःखोंकी किसके दुःखसे तुलना की जाय? पशुकी भाँति खरीदे और बेचे

जानेवाले दास भी कदाचित् उसके समान दुःखी न होंगे । दासको कमसे कम भरपेट अन्न और शीत या लूसे बचने भरको वस्त्र तो मिल जाते थे, पर भारतीय कृपकके लिये त्यौहारके अतिरिक्त अन्य सब समयोंमें दोनों चीजें आजन्म असम्भव कोटिमें रहती हैं। दासको एक व्यक्ति या अधिकसे अधिक एक परिवारको प्रसन्न रखना पड़ता था, परन्तु भारतीय कृपकको अनेक कोपशील देवताओंको प्रसन्न रखकर जीना पड़ता है । जमींदार, उसका कारिन्दा और प्यादे, महाजन, उनके मुनीम और प्यादे, पटवारी, कानूनगो, थाने और तहसीलके सिपाही, चौकीदार, नहरके पतरौल, अमीन और जिलेदार, सेना और दौरेके अधिकारियोंकी रसदका प्रबन्ध करनेवाले कर्मचारी—सभी उसके देवता हैं । इनमेंसे हरएकका तीसरा नेत्र उसको जलाकर राख कर सकता है ।

भारतीय कृपककी दरिद्रता पराकाष्ठातक पहुँच चुकी है । भारतवासीकी औसत आमदनी तीन पैसे रोजाना है, पर भारतीय कृषककी औसत दैनिक आय इससे भी कम है । जमींदार लगान बढ़ाता जाता है और महाजन सूदकी दर । बैलका दाम, परिवारका बोझ, जीवननिर्वाहका व्यय सब कुछ बढ़ रहा है । उसके आसपासके बलवान् हिंस्र जन्तुओंकी भूख भी बढ़ रही है । परन्तु भूमाताके भांडारसे प्रतिवर्ष जो अन्न मिलता है उसका परिणाम बराबर घट रहा है; बढ़ना तो दूर रहे, वह ज्योंका त्यों भी नहीं रह सकता । हरसाल ही वह कुछ न कुछ ह्रासकी ओर बढ़ता है । ह्रास क्यों न हो ? उसके कारण भी तो ऐसे वैसे नहीं हैं । जिससमय भारतवर्षके ग्रामोंमें बसनेवाली सारी जनताकी जीविकाका आधार एक मात्र हल, बैल और खेत ही न थे, कमसे कम एक तृतीयांश मनुष्योंकी जीविका उद्योग-

धन्धों तथा अन्य व्यवसायोंसे चलती थी, साथ ही आबादी और आवश्यकताएँ भी आजसे कम थीं, उस समय वारीवारीसे गाँवके एक या दो ओरकी भूमि जोती और परती छोड़ी जाती थी। इस प्रकार भूमिकी उर्वरा शक्ति घटने नहीं पाती थी। एक दो सालके लिये परती छोड़ी हुई भूमिके अतिरिक्त हर एक गाँवमें कुछ ऐसी भूमि भी रहती थी जो कभी न जोती जाती थी, जिसके कारण हर एक किसानको खूब गाय बैल रखनेका सुभीता था और फलतः जिससे खादकी कमी नहीं होने पाती थी। परन्तु अब जब कि गाँवोंमें खेती और महाजनी ये दो ही रोजगार रह गए हैं, (जमींदारीकी गिनती व्यवसायमें न करनी चाहिए) गाँवमें रहनेवाले प्रत्येक मनुष्यके लिये खेती करना अनिवार्य सा हो गया है; जिसका फल यह हुआ है कि वहाँ परती भूमिका पता पाना तक कठिन हो गया है; पशुओंके चरनेको कौन कहे, चलने तककी जगह नहीं रह गई है; किसानको अपनी अधिक खेत पानेकी लालसा मेंड़ोंको छीलकर तृप्त करनी पड़ती है, खेतके बन्दोवस्तके समय मकान या इलाकेके नीलामका तमाशा देखनेमें आता है और चलता पुरजा जमींदार हर चौथे साल चालाकीसे अपनी आमदनी दूनी कर लेता है। जो खेत तीन सालमें एक बार बोया जाता था वह अब एक सालमें तीन बार बोया जाता है! और खाद तीन सालमें भी एक बार नहीं पाता! भला ऐसे खेतोंकी उर्वरा शक्तिका दिवाला न निकले तो और क्या हो?

उपर्युक्त कारणोंसे भारतके किसानोंकी कमाई घटते घटते उस सीमा तक पहुँच गई कि यदि वह निश्चित अंकोंमें बताई जाय तो एकाएक किसीका उनकी सत्यतापर विश्वास ही न होगा। परन्तु जिन्हें यह माळूम है कि भारतके १२ करोड़ मनुष्य सदा सर्वदा

चौबीस घंटेमें केवल एक बार भोजन पाते हैं और वह भी भरपेट नहीं, आधापेट, वे कदाचित् भारतीय कृषककी औसत सालाना आमदनी १०) रु० या ११) सुन कर चौंकेंगे। ये १२ करोड़ अभागे कौन हैं? कृषक और अर्द्धकृषक जो खेतीके अतिरिक्त समय समयपर मजदूरी भी किया करते हैं। मि० विलियम डिग्बी अपनी पुस्तकमें संयुक्त प्रान्तके एक कृषक कुटुंबकी साल भरकी आमदनी ५१/२ एकड़ भूमिकी खेतीसे खर्च बाद करके ४५=) बताते हैं। इटावेके भूतपूर्व कलक्टर मि० क्रुक एक दूसरे परिवारकी ७ एकड़की खेतीसे ४०) की आमदनी बताते थे जब कि केवल अन्नके लिये उसे ५०) की आवश्यकता होती थी। यह आय सुकालकी है, अकालकी कथा वर्णनातीत है।

क्या इतनी कम आमदनीसे भी—उतनी कम आमदनीसे जिससे कई गुना अधिक धन युरोप अमेरिका आदिका एक साधारण मजदूर चुरुट, सिगार तथा आमोदप्रमोदके कामोंमें व्यय कर देता है—आजकलके समयमें निर्वाह हो सकता है? और किसीका हो या न हो पर भारतमें जन्म लेनेवालेका तो अवश्य होता है। उसको तो सब कष्ट सहनेकी आदत हो गई है। वह भूख और सरदी गरमीको जीत लेनेवाला तपस्वी अथवा योगी हो गया है। भूखपर उसकी विजयका हाल सर चार्ल्स ईलियटके शब्दोंमें यदि आप सुनना चाहें तो यह है कि भारतकी आधी कृषिजीवी जनता बारह महीनेमें एक दिन भी यह नहीं जान सकती कि भरपेट भोजन किसे कहते हैं। कपड़ेकी उसे कितनी आवश्यकता है, इसको समझनेके लिये अवधके भूतपूर्व डिप्टी कमिश्नर मि० आयरविनका एक अनुभव उदाहरणका काम देगा। वे लिखते हैं कि अवधके एक

गाँवमें जहाँकी सरदीका यह हाल है कि तापमान (Freezing point) तक पहुँच जाता है, केवल १० कम्बल, १६ रजाइयाँ और २४ मिरजइयाँ १७३ आदमियोंका शीत निवारण करती हैं। भारतीय कृषकका मुख्य आहार सागपात, शकरकन्द, महुआ, चावलके कण और सावाँ, कोदों, खेसारी आदि अत्यन्त मोटे अन्न हैं। बाजरा, गेहूँ, जौ इत्यादि केवल उतने दिन उसके पेटमें जा सकते हैं जितने दिन वे खलियानमें रहते हैं। अधिकांशके भाग्यमें उस समय भी इनका स्वाद चखना नहीं होता, क्योंकि जमींदार और महाजनके प्यादे खलियान क्या खेतसे ही उसकी कमाईकी नाकाबन्दी करनेको तैयार रहते हैं और मँड़कर राशि तैयार होते ही उसे कृषकके सामनेसे अदृश्य कर देते हैं, केवल उसकी तौल और उसके लिये किए हुए परिश्रमकी याद ही बेचारेके पास रह जाती है। जिस गन्नेको उसने जेठमें अपने शरीरको कड़ी धूपमें झुलस झुलसकर सींचा और गोड़ा और माघकी रातमें खूनको जमाते हुए पेरा था, उसके रसका भी धोवन ही उसके बच्चोंकी जबानतक पहुँच सकता है। पर इस धोवनसे भी वह पूस और माघके दो महीने तर कर देता है। इसी प्रकार उसका खास ओढ़ना बिछौना पयाल और पताई हैं। अधिकांश किसानोंके पास जाड़ा बितानेके लिये केवल एक नीमास्तीन, मिरजई और एक चादर या खोल अथवा धुस्सा होता है। जब इनसे काम नहीं चलता तबके लिये पयाल, पताई और गुलैर (वह स्थान जहाँ गन्नेका रस पकाया जाता है) हैं। उस समयकी दशाका सहज ही अनुमान हो सकता है जब अकाल आदिके कारण ये आश्रय भी अप्राप्य होते हैं। हरे पेड़ोंकी पत्तियाँ तक इन अस्थि और चर्मके कंकालोंकी उदरज्वालामें दग्ध हो जाती हैं। जब यह भोजनसामग्री

भी अप्राप्य हो जाती है तब हजारों और लाखोंकी संख्यामें ये पुनर्जन्ममें भरपेट अन्न पानेकी लालसा रखते हुए इस लोकहीसे प्रयाण कर जाते हैं। अकालोंका दौरा भी अब क्रमशः चालीस पचास वर्षोंसे घटकर हर तीसरे या चौथे साल होने लगा है।

जिसके भोजन और वस्त्रकी यह कथा हो उसके मकानका वर्णन सुननेकी किसे आवश्यकता होगी? उसको तो अनुमान कर लेना ही यथेष्टसे अधिक होगा। अधिकसे अधिक एक वाक्य इस सबन्धमें कहा जा सकता है। वह यह कि पशुशाला ही बहुतसे भारतीय कृषकोंका शयनागार होती है। और यदि आपमें इससे भी अधिक देखनेका साहस हो तो आप बहुतोंको केवल पेड़ोंकी छायामें ही सोते हुए देख सकते हैं। बस, हद हो गई!

भारतीय कृषकको राजकरके रूपमें अपनी कमाईका कितना अंश देना पड़ता है, इसका वर्णन भी रोमाञ्चकारी है। भूकर वसूल करनेकी यहाँ मुख्य दो व्यवस्थाएँ हैं; जमींदारी और रैयतवारी। बरमा, आसाम और अधिकांश मदरासमें पिछली व्यवस्था है, शेष प्रान्तोंमें पहली। रैयतवारी व्यवस्थावाले प्रान्तोंमें सरकार कृषकसे अपने ही कर्मचारियों द्वारा भूकर वसूल करती है। जमींदारी व्यवस्थावालोंमें यह काम जमींदार नामक एक बीचवाला व्यक्ति करता है जिसे सरकारको इस करका एक निश्चित्त अंश देकर शेषको स्वयं भोग करनेका अधिकार होता है। जमींदारी प्रान्तोंके भी दो भेद हैं। बंगाल बिहार और युक्तप्रदेशके कुछ जिलोंमें जमींदारसे सरकारका प्राप्तव्य अर्थात् मालगुजारी सदाके लिये इस्तमरारी बन्दोबस्त द्वारा निश्चित हो गया है; केवल कृषकसे जमीन्दारका जो प्राप्तव्य होता है वह अर्थात् लगान बढ़ता रहता है; परन्तु अन्यत्र दोनों

हीको अपना अपना प्राप्तव्य बढ़ानेका अधिकार है और वे उसे बराबर बढ़ाते रहते हैं। इस्तमरारी बन्दोवस्तवाले प्रान्तोंमें जमींदार अवश्य सुरक्षित और सुखी हैं, पर कृषकके लिये सभी दिन भादों मास हैं। आम तौरपर उसे उपजका आधा लगानके रूपमें दे देना पड़ता है; आधा बचता है सारी लागत और नफेके लिये। कहीं कहीं लगान और इस बचतका अनुपात इससे भी अधिक और कम अर्थात् ६० और ४० है। खेतोंके एक बहुत ही संकुचित अंशके अतिरिक्त अन्यत्र लगान बढ़ानेके लिये प्रायः कोई निर्बन्ध या रोक नहीं है। यदि प्रतियोगिताका सुकाल हो तो हर पाँच सालके बाद जमींदार अपने पावनेकी रकम दूनी कर सकता है और प्रायः करता ही है। खेतके लिये प्रतियोगिताकी अधिकताका इससे अच्छा और क्या प्रमाण होगा कि मालकी अदालतोंमें जिन मुकदमोंकी संख्या सबसे अधिक होती है वे बेदखलीके होते हैं। जिस समय जमींदार खेतोंका बन्दोबस्त करने लगता है उस समय अच्छी खासी हवेली या इलाकेके नीलामका दृश्य प्रत्यक्ष हो जाता है। खेतके अतिरिक्त एक ग्रामीणके लिये और कौन सहारा है? उसने केवल मिट्टी खोदना सीखा है। इसके अतिरिक्त पेट पालनेकी न तो और कोई हिकमत उसे मालूम है और न सीखने या उससे काम लेनेका सुभीता ही उसे प्राप्त होता है। फिर बिना चार बीघे खेत पास रहे महाजन क्या देखकर उसकी साख मानेगा; जिसकी दृष्टिमें उसका विश्वासपात्र रहना उतना ही आवश्यक है जितना एक साधारण प्राणीके लिये हवा। ऐसी दशामें चाहे जितने पर और जिस प्रकार मिले, चार बीघे खेतका पट्टा वह अवश्य प्राप्त कर रखेगा।

दखीलकारी और शरहमुऐयन नवैयतके खेतोंपर अवश्य ही जमींदारको लगान बढ़ानेकी पूरी स्वाधीनता नहीं है, विशेष दशाओंमें और

विशेष सीमातक ही उनपर लगान वढ़ाया जा सकता है। पर ऐसे खेत रखनेवाले सौभाग्यशाली कृषक बहुत ही कम हैं। आजकलके जमींदार पाँच सालसे अधिक किसी विशेष खेतपर एक कृषकका अधिकार रहने ही कब देते हैं जो वह शरहमुऐयनदार तो क्या दखीलकारतक बननेकी आशाको मनमें स्थान दे सके। पुराने उदार जमींदारोंकी कृपासे दो चार बीघे जमीनपर जिन्हें ऐसा अधिकार प्राप्त हो गया है वह भी जमींदार या महाजनमेंसे किसी एकके पास चला जा रहा है। ऐसे खेतोंपर लोगोंका विशेषतः जमींदारोंका आठ पहर दाँत रहता है। अगर एक सालका लगान भी बाकी रह गया तो कृषक इस्तीफा लिखनेके लिये मजबूर किया गया। बहुतेरे दबंग जमींदार तो बिना बकाया रहे भी डरा धमकाकर इस्तीफा लिखवा लेते हैं। कृषकके पास न धन है न विद्या, न अनुभव, न सहायता; वह किस बिरतेपर पानीमें रहकर मगरमच्छसे वैर करे? ³⁄₄ भारतीय किसान 'कच्ची रिआया' (गैरदखीलकार काश्तकार) हैं, पट्टेकी मुद्दत समाप्त होते ही जिन्हें बेदखल कर देने अथवा नए रूपमें लगान लगानेका पूरा अधिकार जमींदारको होता है। रैयतवारी प्रान्तोंमें भी समय समयपर मालगुजारी बराबर बढ़ती ही रहती है। अपेक्षाकृत वे भारतीय कृषक कुछ सुखी हैं जिनको लगान निश्चित सिक्कोंके रूपमें नहीं बल्कि उपजके निश्चित अंशके रूपमें देना पड़ता है। यद्यपि यह अंश भी सारी उपजके आधेसे कम नहीं होता, तथापि महँगी सस्ती और अकालके समय इस व्यवस्था अर्थात् बटाईकी पद्धतिसे कृषकका बहुत उपकार होता है। *बंगालमें यह पद्धति अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा अधिक प्रचलित* है और इसके फलस्वरूप वहाँके कृषक भी अन्य प्रान्तोंके कृषकोंकी

अपेक्षा सुखी कहे जा सकते हैं। प्राचीन कालमें सम्पूर्ण भारतके कृपकोंसे इसी पद्धति या व्यवस्थाके अनुसार राजकर वसूल किया जाता था। जितनी भूमि वह जोत सकता था और जिसमें उपज हो जाती थी उसीका एक निश्चित अंश उसे राजकर-स्वरूप देना पड़ता था, शेपके लिये उससे कुछ न माँगा जाता था। यह अंश भी $\frac{1}{12}$ से लगाकर $\frac{1}{6}$ तक होता था। जब इस व्यवस्थाके अनुसार उपजका आधा दे देनेवाले कृपकको भी औरोंसे सुखी मान सकते हैं, तब जिसको उपजका छठा, आठवाँ, दसवाँ या बारहवाँ भाग देकर शेपके उपभोग करनेका अधिकार होता था उस कृपकको जितना सुखी कहा जाय उतना यथार्थ ही होगा। यद्यपि आजसे चार पाँच सौ या हजार बरस पहलेके भारतीय कृपकके अस्तबलमें वर्त्तमान कालके अमेरिकन कृपकोंके अस्तबलोंकी तरह सवारी और शिकारके लिये अलग अलग घोड़े और गाड़ीखानेमें दो दो चार चार मोटरें नहीं खड़ी रहती थीं, पर फिर भी सुख और सन्तोप उसके घरमें सदा रहते थे। अन्नकी वह दीवारें उठाता था, दूध घीका बेचना पाप समझता था, बिना ब्राह्मणको खिलाए भोजन न करता था, अतिथियोंसे चार चार महीनेतक न पूछता था कि आपको कहाँ और कब जाना है, उसकी घरवालियाँ भिक्षुकों और भिक्षार्थी विद्यार्थियोंकी प्रतीक्षामें दरवाजेपर खड़ी रहा करती थीं। वह संसारमें अपने आपको सबसे अधिक सुखी समझता था और बड़े गर्वसे कहता था—"उत्तम खेती मध्यम बान। निकृष्ट सेवा भीख निदान।" उस सुख और सन्तोपकी मूर्त्ति कृपककी किस बातसे आजकलके कृपकोंसे तुलना की जाय जो अतिथिको देखकर घरमें चला जाता है, भिक्षुकको आते देख दरवाजा बन्द कर देता है, जिसके

यहाँ एक समय भी किसी मेहमानको पड़ोसीसे कुछ उधार माँगे विना भोजन नहीं कराया जा सकता; जिसकी स्त्रियाँ अपनी सत्यनारायण व्रतकी मन्नत अगले जन्ममें पूरी करनेके लिये साथ ले जाती हैं।

केवल अपने और खेतके सामर्थ्यसे भी अधिक लगान देकर ही भारतीय कृषक अपने पूर्वजन्मके महाजनोंके ऋणसे निष्कृति नहीं पाता। पट्टा लिखनेके समय जमींदार और उसके कारिन्देको नजराना, पटवारीको तहरीर और प्यादेको दस्तूरी देना उसका कर्त्तव्य होता है। बेबाकीकी रसीद प्राप्त करनेके समय कारिन्देकी वार्षिक बलि चढ़ानी पड़ती है। तकाजेका डंडा तनिक हलके हाथसे लगाया करे, इस उद्देश्यसे प्यादेकी भी सालमें दो चार बार भेंट पूजा करनी पड़ती है। जमींदारके घर लड़केका व्याह हो तो 'नचौना' और लड़की व्याही जाय तो 'दायज' देना उसका अनिवार्य्य कर्त्तव्य है। जमींदारको यदि घोड़ा रखनेका शौक चर्राय तो 'घोड़ौना' नामक टैक्स दे, उसके यहाँ ब्राह्मणभोजन हो तो दवाईके लिये रखा हुआ घी समर्पित कर दे। किसी बड़े कामके लिये जब उसे धनकी जरूरत हो तो उसके बैल या घोड़ेकी लाटरीका टिकट खरीदे। गाँवमें किसी हाथी-ऊँटवाले साधुमहन्तका अखाड़ा या किसी मुन्नी-मैना-जानका डेरा आधमके और जमींदार महाशयकी भक्ति या रसिकतामें उबाल आ जाय तो यथासाध्य अन्न, तरकारी, घी आदि भेटकर उसका मान रखना भी कृषकके लिये आवश्यक है। होलीमें एक कटोरी भंगमिश्रित शरबत (भंगरसा) के प्रसादके लिये एक रुपया पूजा चढ़ानेकी वसीयत उसके दड़दादा ही कर गए हैं। इन सबसे बढ़कर जमींदारकी अदालतका यह दंड है जिसका स्वरूप अधिकारी ईश्व-

रकी तरह प्रत्येक अपराधमें एक ही रहता है—कृषकके प्रत्येक पापका प्रायश्चित्त नगदनारायणकी निश्चित वलि होता है।

जमींदार और उसके पुछल्लोंके अतिरिक्त महाजनोंके फेरीदार, पुलिसके सिपाही, नहरके और दौरेवाले अधिकारियोंके दूत भी कृषकको अपना भक्ष्य समझते हैं और यथासाध्य उसे इन सभी जबर्दस्ती पूजा करानेवाले देवताओंको सन्तुष्ट रखना पड़ता है। कमजोरकी स्त्रीको भाभी बनानेकी साध किसे नहीं होती ?

उपवासके अतिरिक्त भारतके किसानोंका जन्म और मृत्युका दूसरा साथी ऋण है। ऐसे कृषकको ढूँढ़ निकालना जरा टेढ़ी खीर है जिसको 'परोपकाररत' महाजनने कुछ न कुछ अहसानमन्द न कर रक्खा हो। अधिकांश किसानोंके तो आठ महीनेके गुजारेका ठिकाना एक मात्र ऋण ही है। गाँवमें ऐसे बहुतेरे किसान मिलते हैं जो अपनी प्रत्येक फसलकी सारी उपज पहले महाजनको सौंप देते हैं, फिर उसीसे रुपए और अन्न लेकर लगान देते और पेट पालते हैं, जिनका सारा टाट पसार ऋणपर है; महाजनकी दयाके विना जो एक दिन भी जीनेमें असमर्थ हैं। अधिकतर भारतीय कृषक उधार बीज लाकर बोते, ऋणके रुपएसे बैल खरीदते, ऋण लेकर लगान देते और महाजनके ही भाण्डारके अन्नसे पेट पालते हैं। इसका फल यह होता है कि महाजनकी सत्ता उसपर जमींदारसे भी बढ़ चढ़कर होती है। जमींदारकी अप्रसन्नताका अनर्थ सहनेके लिये वह एक बार तैयार भी हो सकता है, पर महाजनकी टेढ़ी नजर देखनेकी उसमें शक्ति नहीं। जमींदार यदि उसके लिये देवता है तो महाजन साक्षात् स्थिति और नाशका अधिकारी ईश्वर। खेतकी अपेक्षा भी ऋणका सौदा अधिक महँगा करनेके लिये भारतीय कृषक सदा तैयार रहता

है। लगानकी दर किसी समय उसको अधिक ऊँची जँच सकती है, पर व्याजकी नहीं। सैकड़े ३७॥) सालाना व्याज उसके लिये मामूली बात है, पर गैरदखीलकार या शिकमी कृपकको प्रायः ७५) सालाना सूद स्वीकार करनेपर ही ऋण मिलता है। कभी कभी इसके ऊपर उसे रुपए पीछे कुछ सेर गेहूँ गुड़ या धान भी महाजनकी भेंट करना होता है। इस व्याजपर भी ऋण देनेकी सिफारिश करनेवालेको वे घूसतक देते हैं, खुशामद आदिकी तो बात ही क्या? अधिकांश कृषक साल बसालका व्याजतक नहीं चुका सकते। पिछले सालके व्याजको अगले साल मूलमें परिवर्तन कराके महाजनका सन्तोष भर करा देते हैं। ऋण इतना अधिक हो गया है कि एक सुकालवाले सालकी अपनी सारी कमाई देकर भी कृपक अपना ऋण नहीं चुका सकते। कृपकोंकी यह दशा देखकर ही सरकारने सहयोग समितियोंकी व्यवस्था सोची थी और अवश्य ही इस व्यवस्थासे उनका बहुत उपकार होता, परन्तु जहाँ साक्षरताका यह हाल है कि अनेक गाँववालोंको चिट्ठी पढ़ानेके लिये दूसरे गाँवतक जाना पड़ता है (भारतमें चिट्ठी लिख पढ़ लेनेवाले शिक्षित पुरुषोंकी संख्या सैकड़े पीछे ६ है) वहाँ सहयोगसमिति (Co-operative Societies) का नामतक कोई जान ले, यही गनीमत है; उनकी स्थापना और सफलतापूर्वक संचालनकी आशा उनसे कब रक्खी जा सकती है? यही कारण है कि इस महोपकारिणी व्यवस्थाका प्रचार भी अत्यन्त मन्दगतिसे हो रहा है—इतनी मन्दगतिसे कि सौ दो सौ वर्षमें भी उसकी टाँकीसे भारतीय कृपकोंके ऋणका पहाड़ कटनेकी आशा नहीं की जा सकती। जान पड़ता है यह ऋणरूपी वामन भारतीय कृपकोंको रसातल भेजकर ही रहेगा, पीठ तो उनकी अभीसे इसके पैरोंके नीचे है।

कृषकोंकी पराकाष्ठातक पहुँची हुई यह दरिद्रता ही है जिसके कारण भारतीय कृषिकी उन्नति होना तो दूर रहे, दिनों दिन वह अधोगतिकी ही ओर अग्रसर हो रही है। कृषिकी उन्नतिमें भारतीय कृषकोंकी निरक्षरता उतनी बाधक नहीं है जितनी कि दरिद्रता। किसी कृषिकालेजका विशारद न होनेपर भी भारतीय कृषक वंशपरम्परासे कृषिकर्म करते आनेके कारण विशेष विशेष धान्योंके अनुकूल भूमि, ऋतु, खाद, जुताई आदिका यथेष्ट ज्ञान रखता है। पर वह उस निर्धनताको क्या करे जो कभी कभी उसे पुराने अत्यन्त घिसे हुए फाल तकको नहीं बदलने देती! वह जानता बहुत कुछ है, पर कर कुछ भी नहीं सकता। वह न अच्छे बैल रख सकता है, न हल, न मजदूर। और फिर 'अच्छे' लगान और ब्याजसे बचता ही क्या है जो वह अच्छे साधनों और उपकरणोंके लिये खर्च करे! मजदूरको वह इतनी कम मजदूरी दे सकता है कि केवल वही मजदूर उसको सहायता देना स्वीकार करता है, जिसको दूसरा काम नहीं मिल सकता। जो मजदूर ऋण या परिवारादिके बन्धनके कारण अपना गाँवतक छोड़नेसे लाचार है केवल वही कृषि और कृषकका पल्ला पकड़े हुए है, शेष सब बड़े बड़े नगरों, अथवा विदेशोंको भाग गए हैं। मजदूर उसी किसानका नियमित या अनियमित रूपसे काम करना स्वीकार करता है जो उसे कुछ खेत देकर उसे जोत बो देता है, क्योंकि मजदूरी न बढ़ सकनेकी दशामें वह इतना खेत पा जानेको ही गनीमत समझता है। फल यह होता है कि जिस समय कृषकको मजदूरोंकी सहायताकी अत्यन्त आवश्यकता होती है उस समय वे अपना काम करते रहते हैं; और जबतक उन्हें फुरसत होती है तबतक कृषककी बहुत कुछ हानि हो जाती है। अधिकांश कृषक महाजनके घरसे मूलका

डयोढ़ा देनेकी शर्त्तपर वीज लाकर बोते हैं। ये महाजन कभी अच्छा धान्य उनको देनेके लिये नहीं रखते, अच्छा धान्य बेचते और बुरा 'डयोढ़ा' चलानेके लिये रखते हैं। ऐसे वीजोंमेंसे प्रायः आधे तो जमते ही नहीं, जो जमते भी हैं उनमेंसे बहुसंख्यक तनिकसे पाले या तेज हवासे ऐंठ जाते हैं, और जो बच जाते हैं वे न अच्छी तरह बढ़ सकते हैं और न फल सकते हैं। नहरोंसे भी भारतके कृषकोंका कोई उपकार नहीं हो रहा है। जिन जिन जिलोंमें नहरें जारी हैं वहाँ हर तीसरे साल अकाल देवका दौरा तो नहीं होता, पर नहरोंके देवताओंकी आराधनामें कृषकके जितने धन और समयका नाश होता है उसकी तुलनामें यदि उसे हर तीसरे साल अकालका स्वागत करना पड़ता तो शायद उसे वह स्वागत कम खलता। कितने गाँवोंके कृषक नहरकी झंझटों और उसके अधिकारियोंके अत्याचारोंसे तंग आकर पानी लेनेसे इन्कार कर देते हैं। इस पानीका मूल्य भी उन्हें इतना देना पड़ता है जिसको लगानका अनुज कहना किसी प्रकार अनुचित नहीं हो सकता।

सारांश यह कि भारतीय कृषकका रोग सब प्रकारसे असाध्य हो चुका है—जहाँतक तीव्र आशावादकी गति है, उसकी असाध्यता उसके बहुत आगे जा चुकी है। उसकी नौकामें इतना पानी भर चुका है कि सैकड़ों डाँड़ भी उसे घाटतक नहीं पहुँचा सकते। हाँ यदि कोई दयालु व्यक्ति रस्सी फेंककर उसका उद्धार करना चाहे तो भले ही कर सकता है।

भारतीय मजदूरोंकी दशा भी बहुतसे अंशोंमें कृषकोंकी दशाके ही समान है। भारतीय कृषकोंका कोई संगठन नहीं है। पूँजीदार उनके परिश्रमसे अनुचित लाभ उठाते हैं, उनसे बहुत अधिक समयतक

काम लेते और थोड़ा वेतन देते हैं, उनके रहनेके लिये मकानों आदि-की कोई उचित व्यवस्था नहीं है और सरकार भी उनके हितोंकी रक्षाकी ओर विशेष ध्यान नहीं देती। यदि भारतमें श्रमजीवियोंका कहीं छोटा मोटा संगठन है तो वह केवल मदरास नगरमें है। वहाँकी मिलोंके मजदूरों, ट्रामवे चलानेवालों, रिक्शा खींचनेवालों, छापेखानेमें काम करनेवालों और रेल्वेवर्कशापमें काम करनेवालोंके पाँच संघ अभी हालमें संगठित हुए हैं। यहाँके शिल्प और व्यापारकी उन्नति करनेके बहानेसे पूँजीदार लोग श्रमजीवियोंके परिश्रमसे अनुचित लाभ उठानेका प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार उनके महत्त्वपूर्ण प्रश्नको गौण बना देते हैं।

१९०८ में सरकारने यहाँके कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंकी दशाकी जाँच की थी जिसके परिणामस्वरूप १९११ में फैक्टरियों सम्बन्धी ऐक्टमें कुछ परिवर्तन और सुधार हुए थे। १९०८ वाली जाँचसे पता लगा था कि रूई, सूत और जूटके कारखानोंमें श्रमजीवियोंको बहुत अधिक समयतक काम करना पड़ता है। बम्बईकी कपड़ेकी मिलें नित्य कमसे कम १४ घण्टेतक और अहमदाबाद तथा भड़ौंचकी मिलें गर्मीके दिनोंमें भी १४ घण्टेसे अधिक काम लेती हैं। आटे आदिकी मिलोंमें तो बीस और बाईस घण्टोंतक काम लिया जाता है। आगरे और दिल्लीकी मिलोंमें भी मजदूरोंको औसत १४ घण्टेसे कम काम किए बिना छुट्टी नहीं मिलती। इन्हीं सब कारणोंसे १९११ में निश्चय किया गया कि कपड़ेकी मिलोंमें मजदूरोंसे प्रतिदिन १२ घण्टेसे अधिक और प्रति सप्ताह ६ दिनसे अधिक काम न लिया जाय और प्रतिदिन बीचमें उन्हें आध घण्टेकी छुट्टी भी दी जाय। इस आध घण्टेमें मजदूरोंको कारखानेसे निकलकर अपने

रहनेके स्थानतक जाना पड़ता है, वहाँ जाकर भोजन करना पड़ता है और वहाँसे लौटकर ३० मिनटके अन्दर ही उन्हें फिर अपने काम पर पहुँचना पड़ता है। जिन मजदूरोंका मकान मिलोंसे मीलों दूर होता है उनकी दुर्दशाका अनुमान पाठक स्वयं ही कर सकते हैं। भारतीय कारखानोंकी पहलेकी उक्त व्यवस्थाकी निन्दा करते हुए कमीशनके सदस्य डाक्टर टी. एम. नैयरको लिखना पड़ा था कि श्रमजीवियोंकी दुर्दशा और पतन करनेवाली दूसरी व्यवस्थाका अनुमान ही नहीं किया जा सकता। इस अवसर पर यह वात ध्यानमें रखने योग्य है कि इस अनुचित व्यवस्थाका मूल कारण प्रतियोगिता पिशाचिनी ही है। अभी हाल (दिसम्बर १९१९) में भारतसरकारने कपड़ेके कारखानोंसे श्रमजीवियोंका काम करनेका समय घटानेके सम्बन्धमें कुछ सलाह माँगी थी। इसके उत्तरमें कदाचित् बम्बईके कारखानेदारोंने कहा था कि जबतक हमे जापानके मिलोंके साथ प्रतियोगिता करनी पड़ती है तबतक इस विषयपर विचार न करना ही ठीक है। हाँ जिस समय जापान आदि देशोंमें भी, जिनके साथ हमें भीषण प्रतियोगिता करनी पड़ती है, मजदूरोंसे थोड़े समयतक काम लेनेकी व्यवस्था न हो जाय तबतक भारतमें इस प्रकारकी व्यवस्था करना बहुत ही हानिकारक है।

भारतीय मजदूरोंको मजदूरी भी इतनी कम मिलती है कि उससे बहुत ही कठिनताके साथ उनका निर्वाह होता है। कहा जाता है कि भारतमें और देशोंकी अपेक्षा खाने पहनने आदिमें बहुत कम खर्च पड़ता है परन्तु इधर कुछ दिनोंसे भारतमें खाद्य पदार्थों तथा कपड़ों आदिका मूल्य बहुत बढ़ गया है। जिस समय सरकारकी आज्ञासे श्रीयुक्त के० वी० दत्तने यहाँकी मूल्यवृद्धिके सम्बन्धमें जाँच करके

अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी उसी समयतक पदार्थोंके मूल्यमें बहुत अधिक वृद्धि हो चुकी थी। उसपर इधर युरोपीय युद्धके कारण जो भीषण मूल्यवृद्धि हुई है वह वर्णनातीत है। मजदूरोंको बहुत ही छोटी छोटी और गन्दी कोठरियों अथवा झोंपड़ियोंमें रहना और बहुत ही मोटा अन्न खाकर गुजारा करना पड़ता है। कृषकोंकी भाँति यहाँके मजदूर भी सदा ऋणी बने रहते हैं और उनका ऋण बराबर बढ़ता जाता है। जिस दिन मजदूरोंको वेतन मिलता है उसी दिन बल्कि उसी समय—मिलसे बाहर निकलते ही—वह मोदियों अथवा महाजनोंके हाथमें चला जाता है। इस कारण भारतीय मजदूर पेटभर भोजनतक नहीं पा सकते और बहुत अधिक सूद देकर ऋण लेते और उसीसे किसी प्रकार अपना काम चलाते हैं। प्रायः लोग कहा करते हैं कि भारतीय मजदूर अच्छा या ज्यादा काम नहीं कर सकते। परन्तु वे कभी यह बात सोचनेका कष्ट नहीं उठाते कि जिन मजदूरोंको और तो और पेटभर भोजन भी नहीं मिलता वे अच्छा या ज्यादा काम कैसे कर सकते हैं ? भारतमें प्रायः ५० वर्षोंसे कपड़ेकी मिलें स्थापित हैं परन्तु इतने दिनोंमें भी यहाँके बुनाईके काममें जो किसी प्रकारकी उन्नति नहीं हुई उसका मुख्य कारण इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता कि यहाँके मजदूर सदा बड़े कष्टमें रहते हैं, नहीं तो कपड़े बुननेके काममें भारतवासी किसीसे कम योग्य नहीं हैं, बल्कि कुछ लोगोंका तो यहाँतक विश्वास है कि अच्छे कपड़े बुननेका काम भारतवासियोंसे बढ़कर और कोई जाति नहीं कर सकती। यह बात इतिहाससे अच्छी तरह सिद्ध होती है और बड़े बड़े विद्वान् इसे मानते हैं।

जिन मजदूरोंको लगातार बारह बारह घण्टेतक, और वह भी केवल आधे पेट भोजन करके ही, काम करना पड़े, वे यदि सदा दुर्बल

और रोगी रहें तो यह कोई अस्वभाविक बात नहीं है। उनका इस प्रकार अस्वस्थ दशामें रहना भी उनके अच्छा काम करनेमें बाधक होता है। एक बार एक सज्जनने कहा था कि भारतीय मिलोंमें काम करनेवालोंकी कौन कहे यदि यों ही कोई किसी मिलमें आठ दस घण्टेतक कुरसीपर खाली बैठा रहे तो दस पाँच दिनमें ही बीमार पड़ जाय। उक्त कमीशनके सामने गवाही देते हुए बम्बईके सुप्रसिद्ध डा० सर भालचन्द्र कृष्ण भाटवड़ेकरने कहा था कि बम्बईकी मिलोंमें वायु और प्रकाश बिलकुल नहीं पहुँचता जिसके कारण उनमें काम करनेवाले मजदूर सदा दुर्बल और रोगी बने रहते हैं। रत्नागिरीके डा० चवनने कहा था कि मिलोंमें काम करनेवाले अधिकांश मजदूर प्रायः क्षयी अथवा अजीर्णसे पीड़ित रहते हैं। अभी हालमें भारतमें जो औद्योगिक कमीशन बैठा था उसकी रिपोर्टमें भारतसरकारके स्वास्थ्य-विभागके कमिश्नरका लिखा हुआ कुछ अंश भी सम्मिलित है। उसमें उक्त कमिश्नरने कहा है कि भारतके औद्योगिक क्षेत्रमें स्वास्थ्यकी ओर बहुत ही थोड़ा ध्यान दिया गया है और देशके किसी भागमें अबतक उसका महत्व स्वीकृत नहीं हुआ है।

जिस देशके मजदूरोंको भरपेट भोजन भी न मिलता हो, और जो प्रायः शारीरिक चिन्तामें ही लगे रहते हों उनका सदा अशिक्षित बने रहना ही युक्तियुक्त है। साधारणतः भारतीय मजदूरोंके लिये 'काला अक्षर भैंस बराबर' ही होता है। भारतसरकारसे कई बार इस बातकी प्रार्थना की गई कि भारतीय मजदूरोंके लिये प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य कर दी जाय परन्तु उसने इस ओर अभीतक कोई ध्यान नहीं दिया। यद्यपि भारतीय मजदूर अशिक्षित हैं तथापि वे अयोग्य अथवा मूर्ख नहीं हैं; और उनकी योग्यता तथा बुद्धिमत्ता-

-का बहुत कुछ परिचय इन संघोंकी कार्रवाइयोंसे मिल सकता है जो अभी हालमें मदरासमें स्थापित हुए हैं। थोड़े दिनों पहले बिना किसी प्रकारके संगठनके ही बम्बईके प्रायः ७०००० मजदूरोंने बहुत बड़ी हड़ताल की थी जो कई दिनोंतक जारी थी। अहमदाबादमें भी ऐसा ही हुआ था। इन घटनाओंसे सिद्ध होता है कि भारतीय मजदूरोंमें मिलजुलकर काम करनेका माद्दा है। परन्तु शिक्षाका अभाव उनके मार्गमें कुछ न कुछ बाधा अवश्य उत्पन्न करता है। कुछ कारखानेदारोंने अपने यहाँके मजदूरोंके बालकोंकी शिक्षाके लिये कुछ स्कूल आदि खोले हैं। इस सम्बन्धमें सबसे बड़ा काम जमशेदनगरके ताताके लोहेके कारखानेने किया है। वहाँके मजदूरोंके बालकोंके लिये कारखानेकी ओरसे प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य कर दी गई है। परन्तु यह सब काम बहुत ही संकुचित क्षेत्रमें हुए हैं और अपेक्षाकृत बहुत ही थोड़े लोगोंको इनसे लाभ पहुँचता है। पूरा काम उसी समय हो सकता है जब कि स्वयं सरकार इस ओर ध्यान दे और समस्त देशके मजदूरोंके बालकोंके लिये मुफ्त और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षाकी व्यवस्था कर दे।

सरकारने जिस प्रकार श्रमजीवियोंकी शिक्षादीक्षाकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है उसी प्रकार उनके निवासस्थानोंके सुधारकी ओरसे भी वह उदासीन रही है; परन्तु कुछ कारखानेदारोंने जिस प्रकार अपने श्रमजीवियोंके बालकोंके लिये कुछ शिक्षालय आदि खोल दिए हैं उसी प्रकार उनमेंसे कुछने श्रमजीवियोंके रहनेके लिये मकान वगैरह भी बनवा दिए हैं। परन्तु इसमें उनका मुख्य उद्देश्य यही रहा है कि हमारे श्रमजीवी सदा हमारे ही यहाँ रहें और हमें छोड़कर दूसरी जगह न चले जायँ। क्योंकि जिन मिलोंमें मजदूरोंके रहने आदिकी

भी व्यवस्था होती है उनमें काम करना मजदूरे अधिक पसन्द करते हैं । लेकिन मिलोंमें बने हुए उन मकानोंकी भी कोई अच्छी व्यवस्था नहीं है । इसका प्रमाण यह है कि उन मकानोंमें रहनेवाले श्रमजीवियोंमें भी प्रति सैकड़े ६ आदमी मरा करते हैं । इन सब दुर्दशाओंके अतिरिक्त चाय आदिके बगीचोंमें तथा दूसरे कारखानोंमें भी मजदूरोंको जो ठोकरें खानी और गालियाँ सुननी पड़ती हैं उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है । मदरासका श्रमजीवी संघ कानूनी साधनोंसे इन सब दुर्दशाओंका अन्त करना चाहता है परन्तु अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता । इसके लिये सारे देशके श्रमजीवियोंको मिलकर प्रयत्न करना चाहिए । हर्षका विषय है कि भारतीय मजदूरोंकी मोहनिद्रा भी अब टूटने लगी है और वे अपने अधिकार तथा महत्त्व समझने लगे हैं । इस समय समस्त संसारके श्रमजीवियोंमें भ्रातृभाव उत्पन्न करके उन्हें संगठित करनेका प्रयत्न हो रहा है । इसलिये आशा होती है कि अन्यान्य देशोंके उन्नत श्रमजीवियोंकी कृपा और सहायतासे भारतीय श्रमजीवियोंका भी बहुत कुछ उद्धार हो जायगा ।

बम्बईमें ' कामगार-हितवर्धक सभा ' नामकी एक सभा स्थापित हुई है जिसमें ७५ मिलोंके मजदूर शामिल हैं । अभी हाल ही (ता० २१ दिसम्बर १९१९ को) इस सभाका वार्षिक अधिवेशन बड़े ठाठसे हुआ था और उसमें कई महत्त्वके प्रस्ताव पास किये गये थे। अधिवेशनका विवरण पढ़नेसे मालूम होता है कि इस सभाका संगठन अच्छा है और आगे इसके द्वारा मजदूरोंके कल्याणकी बहुत कुछ आशा की जाती है ।

---

१६ उपसंहार।



पहलेके प्रकरणोंमें हम यह बतला चुके हैं कि आरम्भसे अबतक साम्यवादकी किस प्रकार उन्नति हुई और उसके सिद्धान्तोंमें क्या क्या परिवर्तन और परिवर्द्धन हुए। सेण्ट साइमन, फोरियर और ओवेन आदिके अनुयायी तो यह चाहते थे कि साम्यवादके सिद्धान्तों पर बना बनाया एक आदर्श राज्य अथवा समाज चटपट स्थापित हो जाय; और ब्लैंक तथा लैसेलके अनुयायी चाहते थे कि लोकमतवादके सिद्धान्तोंके आधारपर समाजका फिरसे संगठन हो और राज्य अपनी ओरसे उत्पादक समितियाँ स्थापित करे। इस प्रकार साम्यवादियोंके दो दल हुए जिनमेंसे एक तो अधिकारोंके केन्द्रीकरण और राजकीय व्यवस्थापर जोर देता था और दूसरा दल राज्यको अनावश्यक समझता हुआ केवल स्थानिक सार्वजनिक संस्थाओंको ही सब कुछ बनाना चाहता था। ब्लैंक और लैसेल चाहते थे कि राज्य अपनी साखपर उत्पादक समितियाँ स्थापित करे और ये समितियाँ आदि अपने आन्तरिक प्रबन्ध आदिके लिये बिलकुल स्वतंत्र हों और आप ही अपनी उन्नति करें। राड्बर्टस् और कुछ अंशोंमें मार्क्स भी अधिकारोंके केन्द्रीकरण और राज्यकी आवश्यकतापर ही अधिक जोर देता था। तात्पर्य यह कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता आदिके सम्बन्धमें राज्यके अधिकार आदिका प्रश्न ही बराबर समय समयपर उठता रहा; और अभी-

तक इस समस्याकी मीमांसा नहीं हो सकी है। क्योंकि साम्यवादका आन्दोलन अभी विकासयुगमें ही है—वह पूर्णता तक नहीं पहुँचा है। इसलिये वर्तमान औद्योगिक राजनीतिक और सामाजिक आदि परिस्थितियोंको देखते हुए ही इस प्रश्नपर विचार करना चाहिए।

साम्यवादकी सृष्टि केवल थोड़ेसे सिद्धान्तोंको लेकर नहीं हुई है बल्कि कुछ वास्तविक कारणों और अवस्थाओंने उसका सृजन किया है। लाखों कराड़ों आदमी दिन रात कठिन परिश्रम करनेपर भी जीवन अथवा संसारका कोई सुख नहीं भोगने पाते और दूसरे लाखों आदमी बिना किसी प्रकारका परिश्रम किए ही आवश्यकतासे कहीं अधिक सुख भोग करते हैं। साम्यवादसम्बन्धी आन्दोलनके आरम्भका मुख्य कारण केवल यही है और जबतक यह असामंजस्य अथवा विरोध दूर न होगा तबतक यह आन्दोलन बराबर जारी रहेगा। कुछ आन्दोलनकारियोंने सामाजिक विकासके नियमोंपर बिना ध्यान दिए ही इस प्रश्नका निराकरण करना चाहा था और इसके लिये वे केवल क्रान्तिको ही अपना मुख्य शस्त्र बनाना चाहते थे। परन्तु एक सीमातक कहा जा सकता है कि उन्हें भी सफलता नहीं हुई। प्रत्येक कार्यमें कुछ न कुछ अनुभवकी आवश्यकता होती है और प्रत्येक व्यवस्थाका पहले परीक्षित हो जाना जरूरी होता है। अभीतक दोनों ही पक्षोंके सिद्धान्तों आदिकी परीक्षा हो रही है और उनके सम्बन्धमें अनुभव प्राप्त किया जा रहा है। अन्तमें विजय उसी पक्षका होगा जिसके सिद्धान्त परीक्षा और अनुभवमें ठीक उतरेंगे।

जो हो, परन्तु इससे सन्देह नहीं कि साम्यवादसम्बन्धी आन्दोलनके निम्न लिखित परिणाम अवश्य हुए हैं—

(१) साम्यवादी लोग आर्थिक संस्थाओंकी उत्पत्ति, उन्नति और पतनपर अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंकी सहायतासे अच्छी तरह विचार करने लग गए हैं; और हेगेल तथा डार्विनके विचारोंका उनपर यह प्रभाव पड़ा है कि वे क्रान्तिको छोड़कर विकासके मूल सिद्धान्तोंकी ओर प्रवृत्त हो गए हैं।

(२) साम्यवादने संसारको यह बतला दिया है कि समाजके समस्त उद्योग-धंदे और व्यवसाय समस्त समाजके हितके लिये होने चाहिएँ और समस्त व्यवहारोंमें नैतिक सिद्धान्तोंका सबसे अधिक ध्यान रहना चाहिए। कुछ लोग साम्यवादपर इस बातका अभियोग लगाते हैं कि वह मनुष्यकी केवल तुच्छ वृत्तियों और वासनाओंका ही ध्यान रखता है। परन्तु यह बात बिलकुल असत्य है।

(३) साम्यवादने दरिद्रवर्गके कष्ट, सभ्य-जगतके सामने रख दिए हैं। साम्यवादसम्बन्धी आन्दोलनका सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ है कि मनुष्यजातिका जो बहुत बड़ा दुःखी और दरिद्र अंश पहले उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा जाता था अब उसीके कल्याण और दुःखमोचनके उपाय समस्त उन्नतिशील देशोंमें सोचे जा रहे हैं। इसीके कारण लोकमतवादसम्बन्धी आन्दोलनने वास्तविक और प्रभावशाली रूप धारण किया है। इसे केवल राजनीतिक झगड़ा समझना बड़ी भारी भूल है। शीघ्र ही वह समय आवेगा जब कि दरिद्रोंके दुःखमोचनका प्रश्न संसारमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हो जायगा और दूसरे समस्त प्रश्न उसके सामने दब जायँगे।

(४) आजकल समाजमें धनका जो विषम विभाग दिखाई देता है उसका सम्यवादने बहुत ही अच्छा पर्यालोचन किया है। समाज-

रूपी अंगमें जितने रोग अथवा क्षत है उन सबका निदान साम्यवादने कर लिया है। यदि इस सम्बन्धमें कोई आपत्ति हो सकती है तो वह केवल यही कि इस निदानके द्वारा रोगोंकी विकटता बहुत बढ़ाकर बतलाई जाती है परन्तु यदि विशेष ध्यानपूर्वक देखा जाय तो जान पड़ेगा कि साम्यवादने प्रचलित प्रतियोगिताकी जो तीव्र आलोचना की है वह निम्नलिखित कारणोंसे उचित ही है।

(क) समाजमें बहुत अधिक संख्या श्रमजीवियोंकी ही है परन्तु नैतिक दृष्टिसे उनकी स्थिति बहुत ही शोचनीय तथा असन्तोषजनक है। वे प्रायः पतित, नीतिभ्रष्ट और दुःखी ही रहते हैं। वे सदा पराधीन और अरक्षित ही रहते हैं और मानवसमाजके एक बहुत बड़े अंशका सदा ऐसी हीन दशामें रहना कभी युक्तियुक्त अथवा अभीष्ट नहीं हो सकता। जिन बातोंसे श्रमजीवियोंका हित अथवा कल्याण होता है उन बातोंपर स्वयं उन श्रमजीवियोंका कोई वश अथवा अधिकार नहीं होता। न तो वे किसी एक स्थानपर जमकर रह सकते हैं, न उनके भरण-पोषणका कोई निश्चित आधार होता है और न वृद्धावस्था आदिमें उनके निर्वाहकी कोई उचित व्यवस्था होती है।

(ख) आजकल संसारमें जो प्रतियोगिता चल रही है वह बहुतसे अंशोंमें प्रायः अराजकताके ही समान है। उसे यह दुष्ट स्वरूप किसी घटनाके कारण नहीं प्राप्त हुआ है बल्कि वास्तवमें यही उसका स्वाभाविक स्वरूप है। यह अराजकता दो प्रकारसे अपना अस्तित्व प्रकट करती है। एक तो इसका पता बड़ी बड़ी हड़तालोंसे लगता है जिन्हें हम औद्योगिक अथवा आर्थिक युद्ध ही कह सकते हैं। इन हड़तालोंके कारण बहुत

से लोगोंको अनेक प्रकारके कष्ट पहुँचते हैं; और कभी कभी तो सारे राष्ट्रका औद्योगिक और सामाजिक जीवन ही बड़े संकटमें पड़ जाता है। अराजकताके प्रकट होनेका दूसरा प्रकार यह है कि कभी कभी व्यापारिक क्षेत्रोंमें ऐसा अवसर आ जाता है जब कि बड़े बड़े कारखानों और रोजगारोंके वारे-न्यारेकी नौबत आ पहुँचती है। कभी कभी तो इसका नाशक प्रभाव समस्त सभ्यजगतपर होने लगता है। उस समय बड़े बड़े कारखानोंका दिवाला निकल जाता है और ऐसे लाखों करोड़ों आदमी भूखे मरने लगते हैं जिनका इस सम्बन्धमें कुछ भी अपराध नहीं होता।

(ग) जब कभी प्रतियोगिताके कारण व्यापारिक क्षेत्रोंमें उक्त प्रकारका हाहाकार मचता है तब बहुतसा सामान रद्दी और निरर्थक हो जाता है। बिक्रीके लिये जो माल तैयार होता है केवल वही रद्दी नहीं होता बल्कि उसे उत्पन्न करने तथा एक स्थानसे दूसरे स्थान-तक पहुँचानेकी सामग्रियाँ भी बेकार हो जाती हैं और इनके कारण जो हजारों आदमी भूखे मरने लगते हैं वह अलग।

(घ) इस व्यवस्थाके कारण धनवान् और दरिद्र दोनों ही वर्गोंमें बहुतसे ऐसे लोग भी निकल आते हैं जो आजन्म निकम्मे रहते हैं और कभी कोई काम नहीं करते; और इन सबके भरण-पोषणका भार भी उन्हीं बेचारे श्रमजीवियोंपर आ पड़ता है।

(ङ) प्रतियोगिताकी इस व्यवस्थासे एक ऐसा वर्ग भी तैयार हो जाता है जो सदा बहुतसा रद्दी और निकम्मा माल तैयार किया करता है; क्योंकि प्रतियोगितामें यह भी देखा जाता है कि हमारा माल महँगा न पड़े।

(च) लोगोंको दिनरात व्यापारमें धन कमानेका ही ध्यान लगा रहता है जिससे सभी पेशों और सभी वर्गोंके लोग प्रायः नीतिपथसे हट जाते हैं।

(छ) इस प्रकार समाजमें जो विषमता, दुर्दशा तथा असन्तोष बढ़ता है वह समाजके लिये बहुत ही हानिकारक तथा घातक है। यद्यपि श्रमजीवियोंकी दशामें अबतक थोड़ा बहुत सुधार हुआ है तथापि वह सुधार उस ज्ञानके मुकाबलेमें बहुत ही कम है जो उन श्रमजीवियोंने अपने अधिकारों तथा आवश्यकताओंके सम्बन्धमें प्राप्त किया है, इसीलिये आजकल उन्नतिके मार्गमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ और बाधाएँ होती हैं।

इस बातको हरएक समझदार मंजूर करेगा कि साम्यवादने समाजके इन दोषोंपर प्रकाश डालकर उसकी बहुत बड़ी सेवा की है। उसने स्वयं श्रमजीवियोंको भी उनकी दुर्दशा बतला दी है और धनवानोंको भी आनेवाले संकटसे सचेत कर दिया है। आजकल पूँजीदारीकी जिस प्रथाकी वृद्धि हो रही है उसके द्वारा भी उत्पादन और विभागके साधनोंपरसे व्यक्तिगत अधिकार उठता जा रहा है और दलबद्ध लोगोंका अधिकार होता जा रहा है। अबतक जितने बड़े बड़े कारखाने बन चुके हैं प्रतियोगिताके कारण उनसे भी बहुत बड़े बड़े कारखाने स्थापित करनेकी आवश्यकता होती है, इसलिये कई बड़े बड़े पूँजीदार मिलकर अपनी पूँजी लगाते और एक बहुत बड़ा नया कारखाना खोलते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि व्यापारक्षेत्रमें छोटे छोटे पूँजीदारोंके लिये कोई जगह ही नहीं रह जाती और उन्हें विवश होकर व्यापारिक वर्गसे निकलना और श्रमजीवी दलमें सम्मिलित होना पड़ता है। भूमिके सम्बन्धमें भी कृषकोंकी यही दशा होती है।

इसी दशाके सुधारके लिये साम्यवादी यह चाहते हैं कि जमीन और पूँजीपर सारे समाजका अधिकार हो जाय।

अब यह देखना बाकी रह गया है कि विकासके सिद्धान्तोंके साथ साम्यवादके सिद्धान्तोंका कहाँतक सामंजस्य है। आरम्भसे ही अनेक साम्यवादी यह मानते आए हैं कि केवल विकासके नियमोंके वशवर्त्ती होकर पूँजीदारीकी प्रचलित प्रथा निकली और उन्नत हुई है। प्राचीन कालमें संसारमें दासत्व प्रथा प्रचलित थी। विकासके नियमोंके अनुसार धीरे धीरे सुधार हुए और अब मजदूरी देकर काम लेनेका युग आया है। कुछ दिनोंमें यह परिपाटी भी उठ जायगी और आपसे आप वह युग आ जायगा जिसमें साम्यवादके सिद्धान्त आपसे आप कार्यरूपमें परिणत होते हुए दिखाई देंगे।

विकासवादका एक सिद्धान्त यह है कि संसारके समस्त जीव और पदार्थ अपना अस्तित्व बनाए रखनेके लिये निरन्तर एक प्रकारका विकट प्रयत्न अथवा संग्राम करते रहते हैं। साम्यवादके कुछ विरोधी कहा करते हैं कि व्यापारक्षेत्रमें आजकल जो प्रतियोगिता होती है वह भी विकासवादके सिद्धान्तके अनुसार अपना अस्तित्व बनाए रखनेके लिये प्रयत्न अथवा संग्राम है। अतः जब यह प्रतियोगिता ही न रह जायगी तब समाज उन्नति भी न कर सकेगा। परन्तु यह आक्षेप ठीक नहीं है। इतिहासके आरम्भमें एक वह भी समय था जब कि साधारण पशुओंकी ही भाँति मनुष्य भी जीवन-संग्राममें लगे रहा करते थे परन्तु ज्यों ज्यों मनुष्यका ज्ञान बढ़ता गया त्यों त्यों वह उच्च भावोंसे प्रेरित होकर न्याय और स्वार्थत्यागकी ओर प्रवृत्त होता गया। यदि यह बात न होती तो मनुष्य अबतक एक दूसरेको मारकर खाते हुए ही दिखाई देते अथवा कमसे कम दासत्व प्रथा ही

संसारमें स्थायी हो जाती। परन्तु वास्तवमें यह बात नहीं है। मनुष्य सदा अपने जीवनके सुधारका प्रयत्न किया करता है। यद्यपि इस प्रयत्नमें भी स्वार्थका भाव ही मुख्य होता है परन्तु वह भाव दिनपर दिन परिष्कृत होता जाता है। आरम्भमें जहाँ केवल अपना अस्तित्व बनाए रखनेके लिये संग्राम होता था वहाँ अब केवल कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त करने अथवा कुछ श्रेष्ठ दशातक पहुँचनेके लिये ही संग्राम होता है। जीवन-संग्राम होता अवश्य और निरन्तर है परन्तु विकासके नियमोंके अनुसार उसके स्वरूपमें भी बराबर परिवर्तन होता जाता है। आजकल जो प्रतियोगिता चल रही है वही इस संग्रामका अन्तिम स्वरूप नहीं है। इसमें भी कुछ परिवर्त्तन होगा परन्तु इस सम्बन्धमें विचारनेकी बात केवल यही है कि वह स्वरूप कौनसा हो।

एक बात और है। केवल जीवन-संग्रामसे ही समाजकी उन्नति नहीं होती। सामाजिक उन्नतिके लिये अनेक दूसरी बातोंकी भी आवश्यकता होती है। सामाजिक उन्नतिमें यह कभी न होना चाहिए कि उसका एक अंग तो बहुत उन्नत हो जाय और दूसरा अंग अवनत अथवा हीन दशामें ही पड़ा रह जाय। वही उन्नति वास्तविक उन्नति समझी जायगी जिसमें सब अंगोंको समान रूपसे बढ़नेका अवसर मिले, अर्थात् उन्नति एकांगी नहीं बल्कि सर्वांगी होनी चाहिए। यही कारण है कि मनुष्यने राजनीतिक सामाजिक अथवा नैतिक क्षेत्रोंमें अबतक जो काम किया है उसमें उसने जीवन-संग्रामको सदा नियंत्रित रखनेका ही प्रयत्न किया है। मनुष्योंके स्वार्थ, अहंभाव तथा निर्दयता आदिको—जीवनसंग्रामके लिये जिनकी बहुत कुछ आवश्यकता होती है—रोकने और नियंत्रित रखनेके लिये मनुष्यने अबतक

अनेक प्रकारके राजनीतिक नियम बनाए हैं और नैतिक व्यवस्थाएँ की हैं। इससे सिद्ध होता है कि मानवसमाजकी उन्नतिमें नीतिका स्थान भी बहुत कुछ ऊँचा है। इस नीतिके प्रभावसे जीवनसंग्रामका अन्त नहीं हो जाता बल्कि वह पहलेकी अपेक्षा कुछ उच्च कोटिमें पहुँच जाता है। पशुओंमें जिस कोटिका जीवनसंग्राम होता है उसकी अपेक्षा मनुष्योंका जीवनसंग्राम अधिक उच्च कोटिका है और साथ ही वह दिनपर दिन उच्चतर कोटिमें पहुँचता जाता है। साम्यवाद इस जीवनसंग्राम और इसके परिणामस्वरूप होनेवाले नैतिक तथा सामाजिक विकासको और भी उच्चतर कोटिमें पहुँचाना चाहता है।

इस नैतिक अथवा सामाजिक उन्नतिका एक और अंग है जो विशेष रूपसे विचारणीय है। मनुष्योंमें मिलजुलकर रहने और काम करनेका भाव होता है और इसीलिये वह परिवार दल और समाजका संगठन करता है। इस संगठनके लिये उसे कुछ न कुछ स्वार्थत्याग भी करना पड़ता है। पतिपत्नीको एक दूसरेके लिये और दम्पतिको बालकोंके लिये अपने स्वार्थका त्याग करना पड़ता है। इस प्रकार स्वार्थत्याग और सहयोगका यह भाव परिवारसे बढ़कर नगर, नगरसे बढ़कर प्रान्त, प्रान्तसे बढ़कर देश और देशसे बढ़कर विश्वतक पहुँच जाता है। अर्थात् एक पारिवारिक भाव यहाँतक विकसित होता है कि सारी मनुष्य जाति उसके क्षेत्रके अन्तर्गत आ जाती है। अभी मनुष्यके इस भावने इतनी उन्नति नहीं की कि उसके अनुसार प्रत्यक्ष कार्य्य होने लगे परन्तु अबतक देशाभिमान और राष्ट्राभिमानके रूपमें यह भाव जितना विकसित हो चुका है उसे देखते हुए यह अनुमान करना युक्तिसंगत ही प्रतीत होता है कि कभी न कभी यह भाव बढ़कर सारे संसार और सारी मनुष्य जातितक व्याप्त हो जायगा।

अपना अस्तित्व बनाए रखनेके लिये संसारमें जो संग्राम होत
केवल व्यक्तिगत नहीं है । केवल एक व्यक्ति ही अपना
बनाए रखनेके लिये दूसरे व्यक्तिके साथ नहीं लड़ता झगड़ता
देशों, जातियों तथा राष्ट्रोंमें भी परस्पर संग्राम होता है। इसके
रिक्त एक ही देश, जाति अथवा राष्ट्रमेंके अनेक वर्ग भी परस्पर
हैं। इन सब कारणोंसे आजकलका जीवन-संग्राम बहुत ही पे
हो गया है; और उसी पेचीदगीके कारण मनुष्योंमें अनेक नए
उत्तम गुणोंका विकास हुआ है। नए नए अविष्कार करने, बड़े
कारखानों तथा दूसरे व्यापारोंकी व्यवस्था करने और नित्य नए
तथा उपाय निकालनेकी योग्यता इसी जीवन-संग्रामके कारण व
है। यह जीवन-संग्राम यद्यपि अनेक दृष्टियोंसे हेय और निन्दनीय
तथापि उसने मानव-जातिकी उन्नतिमें अवश्य ही बहुत बड़ी सह
यता दी है। जो जातियाँ अथवा देश इस संग्राममें निरन्तर लगे
रहते हैं वे उन्नत और सम्पन्न हो जाते हैं, और जो इसकी ओरसे
उदासीन रहते हैं वे केवल पिछड़े ही नहीं रह जाते बल्कि बहुधा नष्ट
भी हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें प्रत्येक देश और राष्ट्रके लिये यह
आवश्यक है कि वह अपना सामाजिक संगठन ऐसी उत्तमतासे करे
जिसमें उसके यहाँ कोई ऐसी सामाजिक ... उत्...
जो प्रतियोगिता अथवा जीवन-संग्राममें ...
कर सके और यही उत्तम सामा... संग...
लक्ष्य है। अबतक जिस ...
देशोंको इतना उन्नत कि...
वाद अनेक उपयोगी सुधार
यह सुधार चटपट नहीं हो

तैयार करनेकी आवश्यकता है। सामाजिक व्यवस्थाओं आदिमें अवतक जितने बड़े बड़े परिवर्त्तन हुए हैं वे सब क्रम क्रमसे, शनैःशनैः ही हुए हैं। इस उन्नतिके मार्गमें समाजके अग्रसर होनेकी जितनी अवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता शासन-संस्थाके अग्रसर होनेकी है। शासन-संस्थाओंका सदासे मुख्य कार्य यही रहा है कि सर्वसाधारणके कल्याण और उन्नतिकी व्यवस्था करे। आरम्भमें शासन-संस्थाओंकी सृष्टि ही इसी उद्देश्यसे हुई थी; परन्तु इधर बीचमें अनेक ऐसे एकतंत्री राज्य उत्पन्न होगए थे जो प्रजाके कल्याणकी ओरसे प्रायः पराङ्मुख रहा करते थे। कुछ ही दिनों पहले यह देखनेमें आता था कि शासक लोग न तो प्रजाके लाभका कोई विशेष कार्य करते थे और न उनकी बातें ही सुनते थे। परन्तु, अब अधिकांश देशोंमें यह बात जाती रही है। अब राजकार्योंमें प्रजाके प्रतिनिधियोंसे बहुत कुछ सहायता ली जाती है। और यह बात भी प्रत्यक्ष देखनेमें आती है कि जिन देशोंमें लोकमतवादका जितना ही अधिक आदर होता है वहाँकी प्रजा उतनी ही अधिक सुखी, सम्पन्न और उन्नत होती है। न्यूज़ीलैण्ड नामक छोटासा अँगरेजी उपनिवेश इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। वहाँकी रेलें, खानें और टेलिफोन आदि सब राष्ट्रकी सम्पत्ति हैं। न्यूजीलैण्डमें पहले एक बंक था जिसका १९९४ में दिवाला निकलने लगा था। यदि उस समय उस बंकका दिवाला निकल जाता तो अवश्य ही न्यूजीलैण्डवालोंकी बहुत बड़ी आर्थिक क्षति होती। परन्तु वहाँ लोकमतवादका पूरा जोर था इस लिये सरकारने उस बंकको तुरन्त सरकारी बना लिया और उसकी चालीस लाख पाउण्डकी जमानत कर दी। उस सरकारी बंकसे लोगोंको बहुत ही थोड़े सूद पर ऋण मिलने लगा जिसके

कारण उसकी आर्थिक दशा अच्छी हो चली। वहाँकी सरकारने ऐसे नियम बनाये हैं जिनसे बहुत बड़ी बड़ी जमीदारियाँ खड़ी ही नहीं हो सकतीं और इस प्रकार भूमिका प्रायः समान बँटवारा हो जाता है। श्रमजीवियोंकी रक्षाकी भी वहाँ बहुत अच्छी व्यवस्था है। वहाँ श्रम-सम्बन्धी जितने झगड़े होते हैं उनका निपटारा पंचायतसे हो जाता है; पुलिस या फौजके बन्दूकें अथवा तोपें लेकर पहुँचनेकी नौबत ही नहीं आती। श्रमजीवियोंको वृद्धावस्थामें पेन्शन देनेकी व्यवस्था पहले पहल न्यूजीलैण्डमें ही हुई थी। वहाँ किसी स्थानमें बिना वहाँके निवासियोंकी इच्छाके शराबकी दुकान नहीं खुल सकती। इसके अतिरिक्त सब लोगोंके जान-बीमें और चिकित्सा आदिकी भी सरकार-की ओरसे नियमित और निश्चित व्यवस्था होती है। तात्पर्य यह कि वहाँका शासन सब प्रकारसे अनुकरणीय है।

न्यूजीलैण्डकी व्यवस्था बतलानेमें हमारा उद्देश्य यह था कि पाठकोंको मालूम हो जाय कि सब लोगोंके मिलजुलकर काम करनेसे क्या क्या लाभ होते हैं। सहयोगके लाभोंका इससे भी अच्छा प्रमाण सहयोग समितियोंकी कारगुज़ारी है। श्रमजीवियोंके पास न तो अधिक पूँजी होती है न काम करनेका समय; और न उन्हें विशेष ज्ञान तथा अनुभव ही होता है। परन्तु इतना होने पर भी सहयोग समितियोंने अधिकांश देशोंमें आश्चर्यजनक उन्नति की है और समाजको बहुत बड़ा लाभ पहुँचाया है। इन सहयोग समितियोंसे साम्यवादके अनेक उद्देश्योंकी भी बहुत अच्छी सिद्धि होती है। सहयोग समितियाँ प्रायः अपने सदस्योंके व्यवहार भरके लिये ही माल तैयार करती हैं और न तो किसीको अतिरिक्त मूल्य अथवा नफा लेने देती हैं और न किसीके साथ प्रतियोगिता करती हैं। उनका सबसे बड़ा गुण यह है कि वे

सर्वसाधारणकी ही सम्पत्ति होती हैं और सर्वसाधारण ही उसका संचालन आदि करते हैं। लिमिटेड कम्पनियोंमें भी प्रायः यही बात होती है, परन्तु उनमें एक सबसे बड़ा दोष यह होता है कि उनके अधिकांश हिस्से बहुत बड़े बड़े पूँजीदार पहले ही खरीद लेते हैं और सर्वसाधारण उनसे होनेवाले लाभोंसे वंचित हो जाते हैं। ऐसी अनेक लिमिटेड कम्पनियाँ तो अभी हालमें भारतमें ही खड़ी हुई हैं जिनके सब शेयर थोड़ेसे बड़े बड़े पूँजीदारोंने पहले ही खरीद लिए हैं और सर्वसाधारणमें एक भी शेयर नहीं जाने दिया। इसमें सन्देह नहीं कि लिमिटेड कम्पनीवाली व्यवस्थाने अबतक यथेष्ट उन्नति कर ली है, परन्तु सर्वसाधारणको वे तभी पूरा पूरा लाभ पहुँचा सकती हैं जब कि वे समाज अथवा राष्ट्रके अधिकारमें आ जायँ।

इसमें सन्देह नहीं कि साम्यवादके सिद्धान्तोंका संसारके प्रायः सभी उन्नत और सभ्य देशोंमें अबतक यथेष्ट प्रचार हो गया है। अबतक संसारमें जितने अर्थशास्त्रसम्बन्धी सिद्धान्त प्रचलित हैं और जितनी आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं उन सबका साम्यवादके सिद्धान्तोंसे बराबर खण्डन होता है, परन्तु साम्यवादके सिद्धान्त बहुतसे अंशोंमें अकाट्य और अखण्डनीय ही बने हुए हैं। इसका कारण यह है कि साम्यवादके सिद्धान्त उक्त सिद्धान्तोंकी अपेक्षा बहुत उन्नत तथा आगे बढ़े हुए हैं। और यही कारण है कि इन सिद्धान्तोंके माननेवालोंकी संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी होती जाती है। जिस देशमें दोचार साम्यवादी खड़े हो जाते हैं उस देशकी प्रायः सारी प्रजाके विचार और मत बदल जाते हैं; प्रायः सारा देशका देश साम्यवादके सिद्धान्त मानने लग जाता है। इसके विरोधी प्रायः वे ही होते हैं जिनके स्वार्थमें यह बाधक होता है; परन्तु वे

हाँ विरोधी प्रायः सब प्रकारका अधिकार अपने हाथमें रखते हैं इस लिये और लोगोंका वस नहीं चलता। कुछ कट्टर धार्मिक तथा आचारनिष्ट भी साम्यवादका विरोध करते हैं। परन्तु इसका कारण यह है कि अनेक देशोंमें साम्यवादियोंने धर्म्म और विवाह-प्रथा आदिपर अनेक अनुचित और अनावश्यक आक्षेप किए है। बस ऐसे ही कुछ विरोधियोंके कारण साम्यवादके उद्देश्यों-की ठीक ठीक सिद्धि नहीं होने पाती। लोग इधर उधरके और गौण-विषयोंपर ही लड़ने-झगड़ने लग जाते हैं और मुख्य उद्देश्य खटाईमें पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ कार्योंके लिये नम्रता, स्वार्थत्याग और अध्यवसाय आदि जिन अनेक गुणोंकी आवश्यकता होती है वे गुण सब लोगोंमें नहीं पाए जाते। अतः इन गुणोंके अभावको भी साम्यवादके प्रचारके मार्गमें बाधक समझना चाहिए। इतनी बाधाओं और विघ्नोंके होते हुए भी साम्यवादने जितनी उन्नति की है उससे सिद्ध होता है कि साम्यवादके सिद्धान्त बहुत ही ठीक और युक्ति-युक्त हैं।

साम्यवादी लोग वर्तमान पूँजीदारीकी प्रथा और प्रतियोगिताकी निन्दा तो बहुत कुछ करते हैं; परन्तु इस पूँजीदारी और प्रतियोगिता-के सम्बन्धमें एक बात बतला देना बहुत ही आवश्यक है जिसके बिना तत्सम्बन्धी विचार एकांगी ही रह जाता है। इस पूँजीदारीकी प्रथा और प्रतियोगिताने जहाँ एक ओर एक दरिद्रवर्गकी सृष्टि की है वहाँ दूसरी ओर उसने संसारकी आर्थिक उन्नतिमें भी बहुत बड़ी सहायता की है। यदि पूँजीदारीकी प्रथा और प्रतियोगिता न होती तो आज संसारमें इतना धन और वैभव न दिखाई होता। ऐसी दशामें वह पक्ष बहुत ही ठीक जँचता है जो इन दोनोंको विकास-

के नियमोंका परिणाम बतलाता है और उन्हीं नियमोंके आधार पर भावी सुधारकी कल्पना करता है। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों साम्यवादके सिद्धान्तों और विचारों आदिके दोष भी निकलते जाते हैं और इसके परिणाम-स्वरूप विरोधियोंकी संख्या भी कम होती जाती है। इधर हालमें साम्यवादी कांग्रेसों आदिमें जितने प्रस्ताव और कार्य्य-क्रम स्वीकृत हुए हैं वे सभी दृष्टियोंसे इतने निर्दोष हैं कि उनसे साम्यवादके विरोधियोंका मुँह बहुत कुछ बन्द होता जाता है। पहले जो लोग अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, विकासवाद, देश-प्रेम, धर्म्म अथवा आचार आदिकी आड़ लेकर साम्यवादके सिद्धान्तों पर आक्रमण किया करते थे उन्हें अब इस सम्बन्धमें कुछ कहने-सुननेकी बहुत ही थोड़ी जगह रह गई है। यद्यपि साम्यवादके प्रति प्रायः सभी देशोंकी सरकारोंके भाव अच्छे नहीं हैं तथापि श्रमजीवियोंके प्रति वे सभी सहानुभूति प्रकट करतीं और उनके हितके लिये अनेक नए नए कानून बनाती हैं। कुछ दिनों पहले तक सरकार जनसमाजकी बातों पर बहुत ही कम ध्यान देती थी, परन्तु अब उसके कल्याणकी चिन्ता और प्रयत्न करना उनका प्रधान कर्त्तव्य हो गया है।

साम्यवादके मुख्य आधार वे ही आदर्श सिद्धान्त हैं जो अबतक प्रायः सभी बड़े बड़े धर्म्मों और जातियोंने स्थिर किए हैं। सत्य, न्याय और दया आदिके मूल सिद्धान्तों पर ही साम्य पूर्ण रूपसे निर्भर करता है। इन आदर्श सिद्धान्तों तक पहुँचने और उन्हें प्रत्यक्ष रूपसे कार्य्यमें परिणत करनेके लिये प्रत्येक सत्यप्रिय मनुष्यको सच्चे हृदयसे प्रयत्न करना चाहिए। जिस समय लोग अपनी उचित आवश्यकताओं और स्वार्थों पर अधिक उदारता, अधिक बुद्धिमत्ता और अधिक विज्ञताके साथ विचार करेंगे तभी उन्हें साम्यवादके सिद्धान्तोंको प्रत्यक्ष

करनेमें सफलता होगी। यह सफलता सहजमें नहीं हो सकती। इसके लिये लोगोंको अनेक प्रकारके कष्ट सहने पड़ेंगे, अनेक प्रकारके कटु अनुभव प्राप्त करने पड़ेंगे और बहुत दिनोंतक पूरा स्वार्थत्याग करना पड़ेगा; परन्तु जब यह सब बातें हो जायँगी—साम्यवादी राज्योंकी स्थापना हो जायगी तब मनुष्य नैतिक दृष्टिसे बहुत अधिक श्रेष्ठ और आर्थिक दृष्टिसे बहुत अधिक सुखी हो जायँगे। आजकल धनोपार्जन और धनसंग्रहके लिये लोगोंको तरह तरहकी जो बेईमानी और धोखे-बाजी करनी पड़ती है उसका अन्त हो जायगा और वे ईमानदारीके साथ और थोड़ासा परिश्रम करके ही अपना निर्वाह करनेके योग्य हो जायँगे। प्रत्येक स्वस्थ व्यक्तिको जीविका उपार्जन करनेके लिये उचित परिश्रम अथवा सामाजिक सेवा करनी पड़ेगी। उस समय सब लोगोंको ऐसे अधि-कार और अवसर प्राप्त हो जायँगे जिनके द्वारा वे अपने जीवनको वास्तवमें श्रेष्ठतर बना सकेंगे। और जो लोग दुर्बल अस्वस्थ अथवा शारीरिक दृष्टिसे काम करनेके अयोग्य होंगे समाज उनके भरणपोषणकी उचित व्यवस्था किया करेगा। परन्तु साथ ही जो लोग काम करनेके योग्य होनेपर भी जान बूझकर परिश्रम करनेसे जी चुरावेंगे उन्हें ठीक मार्ग पर भी लानेकी व्यवस्था की जायगी। लेकिन हमें इस बातका दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि शारीरिक दृष्टिसे साधारणतः सभी योग्य मनुष्य समाजकी आज्ञाके अनुसार काम करनेमें कभी आनाकानी न करेंगे।

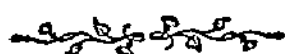
उस समय सामाजिक सेवा ही मनुष्योंका मुख्य कार्यक्षेत्र र जायगा और उनमें सात्विक प्रतियोगिता और उच्चाकांक्षाएँ उत्पन्न जायँगी जो उन्हें श्रेष्ठतर जीवन व्यतीत करनेकी ओर प्रवृत्त करेंगी

और फलतः उसका स्वरूप भी वर्तमान प्रतियोगिताके उद्देश्य और स्वरूपकी अपेक्षा बिलकुल भिन्न होगा। आजकल जो ईर्ष्या द्वेष अथवा दुर्भाव देखनेमें आता है उसका उस समय नाम भी न रह जायगा। आजकलके अन्याय अत्याचार और निर्दयता आदिको भी उस युगमें कहीं स्थान न मिल सकेगा। केवल उन्हीं गुणोंका यथेष्ट विकास होगा जो सामाजिक सेवाके लिये आवश्यक होंगे। जो मनुष्य जिस कामके लिये स्वभावतः अधिक उपयुक्त होगा उससे वही काम लिया जायगा और प्रत्येक मनुष्यको उसकी सामाजिक सेवाके बदलेमें उचित सामाजिक पुरस्कार मिला करेगा। सामाजिक सेवा करनेके उपरान्त लोगोंको जो बहुतसी फुरसत मिला करेगी उस फुरसतके वक्त यदि वे चाहेंगे तो अपने मनमाने और भी बहुतसे कार्य कर सकेंगे, क्योंकि इस सम्बन्धमें लोगोंको सब प्रकारकी पूरी स्वतंत्रता रहेगी।

इधर कई शताब्दियोंमें जो अनेक घटनाएँ हुई हैं उनसे सिद्ध होता है कि लोगोंकी प्रवृत्ति ऐसी व्यवस्थाकी ओर बढ़ रही है जिसके अनुसार सब प्रकारके शिल्पों और व्यापारों आदिपर समष्टिके हितके विचारसे समाजका अधिकार हो जाय। स्वतंत्र मनुष्योंकी समितियाँ यदि शिल्प आदिपर अपना अधिकार कर लेंगी तो उससे नैतिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक उन्नतिके मार्गमें कभी किसी प्रकारकी बाधा न होगी। यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो यही सिद्ध होगा कि उन्नतिके जितने साधन और अंग हैं, साम्यवाद उन सबका पूरक साधन और अंग है। यही कारण है कि इस प्रकारकी सामाजिक व्यवस्था आजकल सबसे अधिक अभीष्ट हो रही है। दिन-पर दिन इस बातके भी अनेक प्रमाण मिलते जाते हैं कि ऐसी

व्यवस्था पूर्णरूपसे सम्भव और कार्य्यमें परिणत होनेके योग्य है ।
यद्यपि भिन्न भिन्न देशोंकी ऐतिहासिक और सामाजिक अवस्थाओं तथा राष्ट्रीय प्रवृत्तियों आदिके विचारसे भिन्न भिन्न देशों और राष्ट्रोंमें इस व्यवस्थाका स्वरूप एक दूसरीसे कुछ भिन्न होगा, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि सबके मूल सिद्धान्त और उद्देश्य एक ही होंगे । इस प्रकार उन्नतिका एक ऐसा प्रशस्त मार्ग निकल आवेगा जिसपर मनुष्यजाति निश्चय ही सुख और शान्तिपूर्वक, और साथ ही विशेष सुख तथा शान्तिकी आशा रखती हुई, अग्रसर हो सकेगी । उस समय संसारमें किसी प्रकारका दुःख, बेचैनी, असन्तोष, निराशावाद अथवा क्रान्तिमूलक भाव न रह जायगा । समाजकी सारी शक्तियाँ समाजके लाभ और सेवाके कामोंमें ही लगी रहेंगी । मनुष्यजातिका बहुत दिनोंका निश्चित किया हुआ आदर्श प्रत्यक्ष हो जायगा और सब लोग आपसमें भाई भाईकी तरह मिलकर वही काम करनेमें अपना भला समझेंगे जिससे केवल उनके राष्ट्रका ही नहीं बल्कि सारे मानव-समाजका भला होता होगा । ईश्वर करे यह आदर्श शीघ्र ही प्रत्यक्ष हो ।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज ।



हिन्दी-संसारमें यह ग्रन्थमाला सबसे अच्छी और सबसे पहली है । पिछले सात आठ वर्षोंमें इसने हिन्दी साहित्यकी सबसे अधिक सेवा की है । हिंदी-भाषा-भाषियोंके लिए यह आदर और अभिमानकी चीज है । इसका जिस तरह अंतरंग मनोहर होता है, बहिरंग भी उसी तरह आँखोंको शीतल करनेवाला होता है । अर्थात् विषयकी गम्भीरता, उपयोगिता और रचना–सौन्दर्यके साथ साथ इसका प्रत्येक ग्रन्थ कागज, छपाई, सफाई और जिल्दबंदी आदिकी दृष्टिसे भी बहुत बढ़िया होता है । इसमें अस्थायी और अन्तःसार-शून्य कूड़ा-कर्कटके लिए जगह नहीं, बहुमूल्य और स्थायी ग्रंथ-रत्न ही इस मालामें गूँथे जाते हैं । इसके प्रत्येक ग्रन्थके चुनावमें और संशोधन तथा सम्पादनमें बहुत अधिक सावधानी रक्खी जाती है । इसी कारण वर्तमान ग्रन्थ-मालाओंमें इसकी प्रसिद्धि और ग्राहकसंख्या सबसे अधिक है और थोड़े ही समयमें इसके अधिकांश ग्रन्थोंके दो दो और तीन तीन संस्करण हो चुके हैं । इसके प्रायः सभी ग्रन्थोंकी पत्र–सम्पादकों और दूसरे विद्वानोंने मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है ।

प्रत्येक हिन्दी-प्रेमीको इसका स्थायी ग्राहक बनना चाहिए । आठ आने ' प्रवेश फीस ' जमा करा देनेसे चाहे जो स्थायी ग्राहक बन सकता है । स्थायी ग्राहकोंको बहुत लाभ होता है । वे सीरीजके ग्रन्थोंके एक तरहसे ' कमीशन एजण्ट ' बन जाते हैं । क्योंकि उन्हें सीरीजके तमाम ग्रन्थ–ग्राहक होनेसे पहले निकले हुए और आगे निकलनेवाले—पौनी कीमतमें दिये जाते हैं और चाहे जिस ग्रन्थकी, चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जितनी बार, उन्हें इसी पौनी कीमतमें मिल सकती हैं । पूर्वप्रकाशित ग्रंथोंका लेना न लेना उनकी इच्छा पर निर्भर है, परन्तु आगे निकलनेवाले ग्रन्थ वर्षभरमें कमसेकम ५) दामके लेनाही पड़ते हैं। अधिकका लेना ग्राहकों की इच्छापर निर्भर है।

प्रत्येक ग्रन्थके भेजनेकी सूचना वी. पी. भेजनेके १५ दिन पहले दी जाती है। सूचनामें पुस्तकका विषय, लेखकका नाम, मूल्य आदिका संक्षिप्त विवरण दिया रहता है।

अब तक इस ग्रन्थ-मालामें नीचे लिखे हुए ४० ग्रन्थ निकल चुके हैं:—

प्रकीर्णक पुस्तकमाला।

सीरीजके सिवाय हमारे यहाँसे नीचे लिखी हुई फुटकर पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं।

व्यापार-शिक्षा	॥-)	भारत-रमणी (नाटक) ...	॥।=)
युवाओंको उपदेश ...	॥-)	बूढ़ेका ब्याह (काव्य) ...	।=)
शान्ति-वैभव	।-)	प्राकृतिक चिकित्सा ...	।=)
कनकरेखा (गल्पें) ...	॥।)	योग-चिकित्सा	=)
कोलम्बस (जीवनी) ...	॥।)	दुग्ध-चिकित्सा	=)
चर्चोंके सुधारनेके उपाय ...	॥)	लन्दनके पत्र	≡)
ठोक पीटकर वैद्यराज ...	।-)	ब्याहीबहू (स्त्रीशिक्षा) ...	≡)
मणिभद्र (उपन्यास) ...	॥=)	अंजना-पवनंजय (काव्य) ...	=)॥
हिन्दीजैनसाहित्यका इतिहास	।=)	श्रमण नारद	=)
सन्तान-कल्पद्रुम... ...	॥।)	सदाचारी बालक	=)
पिताके उपदेश	=)	दियातले अँधेरा	-)॥
अच्छी आदतें	=)॥	भाग्य-चक्र	-)
अस्तोदय और स्वावलम्बन...	१=)	विद्यार्थी जीवनका उद्देश्य ...	-)
देवदूत (काव्य)... ...	।=)	सुगम चिकित्सा	=)
विधवा-कर्तव्य	॥)	कर्नल सुरेश विश्वास ...	॥)

नोट—हमारे यहाँ अन्यान्य प्रकाशकोंके भी उत्तमोत्तम ग्रन्थ बिक्रीके लिये मौजूद रहते हैं।

मैनेजर—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पोष्ट० गिरगाँव, बम्बई।